बी.ए. तृतीय वर्ष

राजनीति विज्ञान, प्रथम प्रश्नपत्र

भारत की विदेश नीति

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY – BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr (Prof) Akhilesh Sharma
   OSD RUSA
   Department of Higher Education, Bhopal

2. Dr Dhananjay Kumar Verma
   Professor
   Govt MLB College, Bhopal

3. Dr Amar Nayak
   Associate Professor
   S.N. Girls Autonomous (PG) College, Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

2. Dr H.S. Tripathi
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

3. Dr L.P. Jharia
   Director Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

4. Dr (Prof) Akhilesh Sharma
   OSD RUSA
   Department of Higher Education, Bhopal

5. Dr Dhananjay Kumar Verma
   Professor
   Govt MLB College, Bhopal

6. Dr Amar Nayak
   Associate Professor
   S.N. Girls Autonomous (PG) College, Bhopal

COURSE WRITERS

Dr Sudhir Kumar, Assistant Professor, Centre for Political Studies, School of Social Science, JNU
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारत की विदेश नीति

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 भारतीय विदेश नीति, विकास विशेषताएं, सिद्धांत एवं निर्धारक तत्व	**इकाई 1** : भारतीय विदेश नीति **(पृष्ठ 3–50)**
इकाई–2 भारत के पड़ोसी देशों के साथ संबंध : पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान एवं अफगानिस्तान	**इकाई 2** : पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंध **(पृष्ठ 51–96)**
इकाई–3 भारत के महाशक्तियों के साथ संबंध : अमेरिका, रूस, चीन	**इकाई 3** : महाशक्तियों के साथ भारत के संबंध **(पृष्ठ 97–204)**
इकाई–4 क्षेत्रीय संगठन : सार्क, आसियान, ओपेक, ब्रिक्स	**इकाई 4** : क्षेत्रीय संगठन **(पृष्ठ 205–232)**
इकाई–5 समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे : मानवाधिकार वैश्वीकरण, पर्यावरण निशस्त्रीकरण, सीमापार आतंकवाद	**इकाई 5** : समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे **(पृष्ठ 233–274)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 भारतीय विदेश नीति **3–50**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भारतीय विदेश नीति : एक परिचय
1.3 विकास एवं विशेषताएं
1.4 भारत की विदेश नीति के सिद्धांत एवं निर्धारक तत्व
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंध **51–96**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 पाकिस्तान के साथ संबंध
2.3 बांग्लादेश के साथ संबंध
2.4 श्रीलंका के साथ संबंध
2.5 भूटान के साथ संबंध
2.6 अफगानिस्तान के साथ संबंध
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 महाशक्तियों के साथ भारत के संबंध **97–204**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 अमेरिका के साथ संबंध
3.3 रूस के साथ संबंध
3.4 चीन के साथ संबंध
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 क्षेत्रीय संगठन **205–232**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सार्क
4.3 आसियान
4.4 ओपेक
4.5 ब्रिक्स
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे **233–274**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मानवाधिकार वैश्वीकरण
5.3 पर्यावरण
5.4 निशस्त्रीकरण
5.5 सीमापार आतंकवाद
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत की विदेश नीति' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. (तृतीय वर्ष) राजनीति विज्ञान के पाठ्यक्रमानुसार लिखी गई है।

आधुनिक युग अंतर्राष्ट्रीयता का युग है। समस्त राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं के लिए एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपने व्यवहार को अर्थ देने के लिए प्रत्येक राष्ट्र कुछ सिद्धांत तय करता है तथा उसी के आधार पर वह अन्य राष्ट्रों के साथ अपने संबंधों को निर्धारित करता है। विदेश नीति निर्माण प्रक्रिया साधनों एवं उद्देश्यों के बीच चुनाव से संबंधित है। ये उद्देश्य वे हैं जो एक राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में हासिल करना चाहता है। विदेश नीति कई तत्वों के पारस्परिक समन्वय का परिणाम होती है।

भारत सांस्कृतिक रूप से विविधताओं भरा राष्ट्र रहा है। भारत में विद्यमान हित समूह तथा राजनीतिक दल भी भारत की विदेश नीति विशेषकर गुटनिरपेक्ष रहने की नीति को आकार देने का साधन रहे हैं। विश्व के सभी देश अपने-अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति और उनमें वृद्धि के लिए प्रयास करते रहते हैं। इसके लिए वे विदेशी संबंधों में स्वतंत्र विदेश नीति का प्रयोग करते हैं और यह प्रयास करते हैं कि उनकी विदेश नीति का अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। वे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में खटास पैदा करने वाले लक्ष्यों को अपनी विदेश नीति में राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए गौण स्थान पर रख देते हैं, भारत भी इसका अपवाद नहीं है।

इस पुस्तक में हम भारतीय विदेश नीति एवं इससे संबंधित पहलुओं का अध्ययन करेंगे। इकाई के बीच-बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' कॉलम के अंतर्गत विद्यार्थियों की योग्यता परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। संबंधित विषय के निहित उद्देश्यों को विषय विश्लेषण के पूर्व, इकाई के आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए पाठ्यक्रम को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

पहली इकाई में भारत की विदेश नीति के उद्देश्य और निर्धारिक तत्वों, स्वतंत्रता संग्राम की विरासत, घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय वातावरण, विदेश नीति के आधारभूत उद्देश्य, विकास के चरण, आलोचनात्मक विश्लेषण एवं भारत में विदेश नीति के निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

दूसरी इकाई में भारत के पड़ोसी देशों- पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान और अफगानिस्तान के साथ संबंधों की समीक्षा की गई है।

तीसरी इकाई में विश्व की तीन प्रमुख महाशक्तियों अमेरिका, रूस और चीन के साथ भारत के संबंधों में आए उतार-चढ़ाव का विश्लेषण करते हुए इन देशों के साथ अद्यतन संबंधों की समीक्षा की गई है।

चौथी इकाई विश्व के प्रमुख क्षेत्रीय संगठनों पर केंद्रित है। इसमें सार्क, आशियान, ओपेक, ब्रिक्स आदि की भूमिकाओं का विश्लेषण किया गया है।

पांचवीं इकाई में वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में उभरते मुद्दों जैसे मानवाधिकार, सार्वभौमीकरण, पर्यावरण संरक्षण, निशस्त्रीकरण तथा सीमापार आतंकवाद की चर्चा की गई है।

टिप्पणी

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगी।

इकाई 1 भारतीय विदेश नीति

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 भारतीय विदेश नीति : एक परिचय
1.3 विकास एवं विशेषताएं
1.4 भारत की विदेश नीति के सिद्धांत एवं निर्धारक तत्व
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

भारत विश्व में ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अहम स्थान रखता है। इसका स्थान विश्व के कुछ महत्वपूर्ण देशों में है। निश्चित तौर पर ऐसे देश के दूसरे देशों से संबंध विश्व के विकास की प्रक्रिया में एक अहम भूमिका निभाते हैं। विदेश नीति किसी राष्ट्र के अन्य देशों के साथ संबंधों की द्योतक है।

कोई राष्ट्र अपने आप में पूर्ण नहीं होता। जो एक राष्ट्र प्राप्त करना चाहता है उसके अपने संसाधन उसके लिए कभी भी पर्याप्त सिद्ध नहीं होते क्योंकि राष्ट्र के निवासियों की सोच एवं आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं।

यद्यपि प्रत्येक राष्ट्र का प्रयास यही होता है कि वह अधिक से अधिक स्वावलंबी बने। स्वावलंबन की इस इच्छा को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की भाषा में 'राष्ट्रों की आत्मनिर्भरता' कहा जाता है। पूर्ण आत्मनिर्भरता एक स्वप्न के समान है। राष्ट्र परस्पर जुड़े होते हैं तथा एक-दूसरे पर अपनी आवश्यकताओं के लिए निर्भर करते हैं। समस्त राष्ट्रों की आपसी अंतर्निर्भरता अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अटूट सत्य है। इसी कारण एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से ऐतिहासिक सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक संबंधों को स्थापित कर अपने हितों की सुरक्षा के प्रयास करता है। अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के भी प्रयास करता है।

इस इकाई में विदेश नीति के अर्थ, परिभाषा व महत्व आदि को समझाते हुए भारतीय विदेश नीति के विकास एवं विशेषताओं व सिद्धांतों का समीचीन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- विदेश नीति के अर्थ एवं परिभाषा से अवगत हो पाएंगे;

- भारतीय विदेश नीति के सिद्धांतों से परिचित हो पाएंगे;
- भारत की विदेश नीति की विशेषताओं को जान पाएंगे;
- भारत की विदेश नीति को निर्धारित करने वाले तत्वों का विश्लेषण कर पाएंगे।

टिप्पणी

1.2 भारतीय विदेश नीति : एक परिचय

कोई राष्ट्र अपने आप में पूर्ण नहीं होता। जो एक राष्ट्र प्राप्त करना चाहता है उसके अपने संसाधन उसके लिए कभी भी पर्याप्त सिद्ध नहीं होते क्योंकि राष्ट्र के निवासियों की सोच एवं आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। राष्ट्र के ये उद्देश्य एवं संसाधन दोनों देश-काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। यद्यपि प्रत्येक राष्ट्र का प्रयास यही होता है कि वह अधिक से अधिक स्वावलंबी बने। स्वावलंबन की इस इच्छा को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की भाषा में 'राष्ट्रों की आत्मनिर्भरता' कहा जाता है। परन्तु पूर्ण आत्मनिर्भरता एक स्वप्न के समान है। राष्ट्र परस्पर जुड़े होते हैं तथा एक दूसरे पर अपनी आवश्यकताओं के लिए निर्भर करते हैं। समस्त राष्ट्रों की आपसी अंतनिर्भरता अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अटूट सत्य है। इसी कारण एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक संबंधों को स्थापित कर अपने हितों की सुरक्षा के प्रयास करता है। साथ ही साथ वहीं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के भी प्रयास करता है।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपने व्यवहार को अर्थ देने के लिए प्रत्येक राष्ट्र कुछ सिद्धांत तय करता है तथा उसी आधार पर वह अन्य राष्ट्रों के साथ अपने संबंधों को निर्धारित करता है। पर स्पष्ट निर्भरता के अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में प्रत्येक राष्ट्र अपनी विदेश नीति के द्वारा ही अपने राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों और अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है जो अन्य राष्ट्रों से संबंधित होते हैं। वास्तव में विदेश नीति ही उन लक्ष्यों तथा राष्ट्रीय हितों को परिभाषित करती है जो राष्ट्र प्राप्त करना चाहता है।

पैडलफोर्ड तथा लिंकन के अनुसार-"विदेश नीति उस प्रक्रिया का मुख्य तत्व है जिसके द्वारा राष्ट्र अपने विशेष लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को ठोस कार्य-दिशा देते हैं तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं।"

हैंडरसन के शब्दों में-"विदेश नीति राष्ट्रीय परंपराओं से संचालित होती है। समस्याओं का अलग-अलग समाधान विदेश नीति नहीं है। विदेश नीति एक स्थायी नीति है जो राष्ट्रीय जीवन मूल्यों तथा सांस्कृतिक परिवेश से भी निर्मित होती है।"

प्रो. ब्रुकिंग्स के अनुसार-"विदेश नीति एक जटिल एवं गतिशील राजनीतिक मार्ग है जिस पर कोई राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के प्रसंग में चलता है।"

हॉलस्टी के अनुसार-"विदेश नीति का अध्ययन बाह्य वातावरण के प्रति राज्य की क्रियाओं का तथा आंतरिक परिस्थितियों का, जिनमें उन क्रियाओं का निर्माण होना है, होता है।"

श्लीचर के अनुसार-"विदेश नीति का तात्पर्य सरकारी प्रतिनिधियों के उन क्रिया-कलापों से है जिनके द्वारा वे अपने राष्ट्र की सीमा के बाहर के मानवीय व्यवहार को प्रमाणित करते हैं।"

एंडरसन व क्रिस्टल के अनुसार-"विदेश नीति नीति के सामान्य सिद्धांतों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन करती है जिसके द्वारा किसी राज्य के आचरण को प्रभावित करके अपने महत्वपूर्ण हितों की सुरक्षा एवं पुष्टिकरण करता है।"

हार्टमैन के शब्दों में- "यह जान-बूझकर चयन किए गए राष्ट्रीय हितों का एक क्रमबद्ध वक्तव्य है।"

डॉ. महेन्द्र कुमार के शब्दों में- "विदेश नीति कार्यों की सोची-समझी क्रिया दिशा है, जिससे राष्ट्रीय हित की विचारधारा के अनुसार परिभाषित विदेशी संबंधों में उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।"

किसी राष्ट्र की विदेश नीति उसके नीति-निर्माताओं द्वारा बनाई तथा लागू की जाती है। ऐसा करते समय विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी आवश्यकताएं, समझ एवं प्राथमिकताएं होती हैं। इस सबसे विदेश नीति का निर्माण कार्य बड़ा जटिल हो जाता है। वे तत्व जो विदेश नीति के नियमित व्यवहार को प्रभावित करते हैं उन्हें सामूहिक तौर पर विदेश नीति के निर्धारक तत्व कहा जाता है; जैसे आंतरिक तत्व और बाहरी तत्व।

आंतरिक तत्वों में भू-राजनीतिक स्थिति, आर्थिक स्थिति तथा विचारात्मक तत्वों, विशिष्ट वर्ग तथा हित समूह शामिल होते हैं और दूसरे भाग में बाहरी, द्विपक्षीय, क्षेत्रीय तथा विश्व वातावरण को शामिल करते हैं।

राष्ट्र का आकार विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व होता है। किसी राष्ट्र की विदेश नीति, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उसका स्थान आकार से निर्धारित होता है। आकार में सामान्य तौर पर मानवीय तथा गैर-मानवीय दोनों तत्वों को शामिल किया जाता है। वे राष्ट्र जिनके पास बड़ी संख्या में मानवीय तथा गैर मानवीय साधन हैं, हमेशा बड़ी शक्ति बनने की कोशिश करते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी शक्ति बनने के लिए उनके पास अवसर होता है। बड़े राज्य की विदेश नीति छोटे आकार वाले राज्य की विदेश नीति से भिन्न होती है। अमेरिका, रूस, चीन, फ्रांस तथा भारत आदि राज्यों की विदेश नीतियों में आकार एक महत्वपूर्ण तत्व है।

परंतु ऐसा सोचना गलत है कि विदेश नीति का अकेला निर्धारक आकार ही है। उदाहरण के तौर पर जापान एवं दक्षिण कोरिया अपने छोटे आकार के बावजूद प्रभावशाली देशों में से है। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व ग्रेट ब्रिटेन एक महाशक्ति था जबकि उसका आकार काफी छोटा है।

कई बार बड़ा आकार किसी राष्ट्र की सुरक्षा के लिए समस्याओं को उत्पन्न करता है। उदाहरणतः भारत का बड़ा आकार तथा कई देशों से लगने वाली उसकी सीमाएं उसके लिए परेशानी का सबब हैं। इसी प्रकार विस्तृत सीमाओं के कारण सुरक्षा खर्च बढ़ जाता हैं। बड़े राष्ट्र का रक्षा खर्च उसकी आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता है।

भूगोल

किसी राष्ट्र का भूगोल विदेश नीति का सापेक्ष तथा सबसे अधिक स्थायी तत्व है। भूमि की आकृति, उसका उपजाऊपन, मौसम, स्थिति आदि मुख्य तौर पर किसी राष्ट्र की विदेश नीति को प्रभावित करते हैं। ये तत्व राष्ट्र के लोगों की आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं

की पूर्ति की क्षमताओं, दोनों को प्रभावित करते हैं। ये तत्व राष्ट्र के लोगों की आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकओं की पूर्ति की क्षमताओं, दोनों का निर्धारण करते हैं। उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त भौगोलिक स्थिति काफी सहायक होती है।

टिप्पणी

संयुक्त राज्य अमेरिका के विश्व शक्ति बनने में इसके भूगोल ने अहम भूमिका निभाई है। इसके तीन तरफ समुद्री सीमाओं ने इसे सुरक्षात्मक दृष्टि से अहम भूमिका प्रदान की है। इसी प्रकार ब्रिटेन की एक प्रमुख नौ सेना शक्ति के रूप में विकास में इंग्लिश चैनल ने अहम भूमिका निभाई है। हिंद महासागर की सबसे बड़ी तटवर्ती शक्ति के रूप में भारत की भौगोलिक स्थिति उसकी विदेश नीति पर काफी प्रभाव डालती है। एक विस्तृत भू-क्षेत्र वाले देश पर नियंत्रण कठिन होता है।

इसी प्रकार सामान्य मौसम, उपजाऊ भूमि इत्यादि तत्व राष्ट्र के आर्थिक विकास को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन, खनिज पदार्थ, खाद्य उत्पादन तथा ऊर्जा साधनों की प्रचुरता ने यूरोपीय देशों के विश्व में अहम शक्ति बनने में प्रमुख भूमिका निभाई। इसी प्रकार अमेरिका की सकारात्मक भौगोलिक परिस्थिति ने उसके विकास में प्रमुख भूमिका अदा की है।

यद्यपि भूगोल विदेश नीति का प्रमुख तत्व है परंतु बदलते वक्त में इसकी भूमिका कम हो गई है। संचार व्यवस्था में विकास तथा आधुनिक युद्ध तकनीक तथा राष्ट्रों की भौगोलिक रुकावटों पर काबू पाने की क्षमता ने भूगोल की भूमिका को कम कर दिया है।

आर्थिक स्थिति

आर्थिक स्थिति वर्तमान में विदेश नीति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्वों में से है। महाशक्तियों की नीतियां विशाल आर्थिक तथा औद्योगिक संसाधनों द्वारा संचालित होती हैं। आज अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के आर्थिक रूप से अधिक विकसित राष्ट्र पिछड़े देशों की तुलना में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। उदाहरण के लिए सोवियत संघ के पतन के बाद नवोदित राष्ट्र अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण अपने आप को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भी कमजोर स्थिति में पाते हैं। आर्थिक निर्भरता देशों की विदेश नीति की क्रियाशीलता को सीमित करती है। आर्थिक विकास का स्तर ही उन संबंधों के क्षेत्र का निर्धारण करता है जो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ बनाना चाहता है। एक राष्ट्र की सैनिक तैयारी तथा सैनिक क्षमता प्रत्यक्ष रूप से उस राष्ट्र के आर्थिक स्तर तथा औद्योगिकीकरण से संबंधित होती है। केवल औद्योगिक तथा आर्थिक रूप से विकसित देश भी बड़ी तथा स्थायी शक्ति बन सकते हैं।

परन्तु अन्य तत्वों की ही तरह आर्थिक विकास की विदेश नीति में सीमित भूमिका होती है। उदाहरणत: खाड़ी देश आर्थिक रूप से काफी बेहतर स्थिति में होने के बाद भी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अहम भूमिका नहीं निभा पा रहे। वहीं दक्षिण कोरिया खराब आर्थिक स्थिति के बावजूद भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अदा करता है।

संस्कृति तथा ऐतिहासिक परंपराएं

राष्ट्र की सांस्कृतिक परंपरा तथा इतिहास भी विदेश नीति का महत्वपूर्ण तथा बहुमूल्य तत्व होता है। वे मानदण्ड तथा परंपराएं, जो इसके लोगों के संबंधों की विशेषताएं होती हैं, बहुत अधिक प्रभावशाली तत्व हैं। एक राष्ट्र की विदेश नीति का निर्माण करने वाले

टिप्पणी

नेता राष्ट्रीय हितों को बनाने तथा इनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया के दौरान हमेशा अपने सांस्कृतिक साधनों, ऐतिहासिक परंपराओं तथा अनुभवों द्वारा निर्देशित होते हैं।

ऐतिहासिक अनुभव तथा सांस्कृतिक संबंध भी दूसरे राष्ट्रों के साथ संबंधों के स्वरूप तथा क्षेत्र के विश्लेषण तथा अनुमान लगाने में सहायक होते हैं।

साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद की नीतियों के कटु अनुभव, नए उदय हुए प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों की विदेश नीतियों के साम्राज्यवाद-विरोधी तथा उपनिवेशवाद विरोधी नीतियों के निर्धारक तत्व बने हैं। इतिहास राष्ट्रों के मध्य संबंधों, विशेषत: पड़ोसी राज्यों के साथ संबंधों को निर्धारित करने वाला निर्धारक तत्व हैं। भारत तथा पाकिस्तान के मध्य विदेश नीतियों से संबंधित प्रतिक्रियाएं अधिकतर इतिहास पर आधारित रही हैं।

अंतर्राष्ट्रीय शक्ति-संरचना

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के नव-यथार्थवादी सिद्धांतकारों का मानना है कि विदेश नीति पर प्रमुख प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संरचना का पड़ता है। अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संरचना से अभिप्राय शक्तिशाली राष्ट्रों के उत्थान व पतन से है। उदाहरणस्वरूप शक्तिशाली यूरोपीय राज्य जो प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व अत्यंत शक्तिशाली थे अब विश्व राजनीति में अहम भूमिका नहीं निभाते क्योंकि दो विश्व-युद्धों ने उन्हें न केवल आर्थिक दृष्टि से कमजोर बना दिया बल्कि इन विश्वयुद्धों के दौरान बने शक्ति शून्य राष्ट्रों ने अमेरिका को अपनी अलगाववाद की नीति से बाहर निकाला तथा इसे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में नई भूमिका प्राप्त हुई। इसी प्रकार अमेरिका तथा सोवियत संघ के शीत युद्ध के समय में महाशक्तियां बनने के कारण भारत जैसे देशों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वे ऐसी नीति अपनाएं जिससे वे शीत युद्ध से दूर रहते हुए इन दोनों राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सहयोग रखें ताकि उन्हें अपने लोगों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उनसे आवश्यक सहायता प्राप्त हो सके। दूसरे महायुद्ध के बाद जो द्विध्रुवीय व्यवस्था बनी तथा जो बाद में बहुध्रुवीय तथा बहुकेन्द्रीय व्यवस्था में बदली, ने इन सभी राष्ट्रों की विदेश नीति निर्णयों को बहुत हद तक प्रभावित किया।

10वीं शताब्दी में राष्ट्रों की नीतियां हमेशा उस समय से बड़े राष्ट्रों द्वारा बनाई गई शक्ति-संतुलन व्यवस्था से प्रभावित होती थीं। परंतु 20वीं शताब्दी के दूसरे भाग में शक्ति-संतुलन का सिद्धांत प्रचलित रहा है। आज क्षेत्रीय स्तर पर भी यह सिद्धांत कम प्रभावी हो गया है। अब वैश्विकीकरण की प्रक्रिया प्रत्येक देश की विदेश नीति को प्रभावित करती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किस विद्वान ने विदेश नीति को राष्ट्रीय परंपराओं द्वारा संचालित माना है?

   (क) हैंडरसन (ख) लिंकन

   (ग) पैडलफोर्ड (घ) इनमें से कोई नहीं

2. "यह जान बूझ कर चयन किए गए राष्ट्रीय हितों का एक क्रमबद्ध वक्तव्य है।" विदेश नीति के संबंध में उक्त कथन किसका है?

   (क) पैडलफोर्ड (ख) हार्टमैन

   (ग) हार्टमैन (घ) लिंकन

1.3 विकास एवं विशेषताएं

टिप्पणी

किसी भी पराधीन राष्ट्र का स्वतंत्र विदेश नीति का आरंभ स्वतंत्रता के बाद ही हो सकता है। नि:संदेह भारतीय विदेश नीति की स्वतंत्र उत्पत्ति 1947, 15 अगस्त के बाद ही हुई थी परन्तु ब्रिटिश शासन के दौरान ही भारतीय नेताओं या यूं कहें कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों को नीति निर्माण और लागू करने में हिस्सेदार बनाया जाने लगा था। इसी दौरान भारतीय नेताओं का विदेश नीति दृष्टिकोण तैयार हुआ। भारत ने अपनी स्वतंत्रता के बहुत वर्ष पूर्व ही अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भाग लेना आरंभ कर दिया था तथा अन्य राष्ट्रों के साथ उसके संबंधों की स्थिति स्वतंत्रता के बाद के काल में इसकी विदेश नीति पर प्रभाव डालने वाली एक स्रोत सिद्ध हुई।

स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव

स्वतंत्र भारत ने अपने 1947 के पूर्व के बाह्य संबंधों की संरचना को न तो बदलने का ही प्रयत्न किया तथा न ही उसमें कोई मौलिक परिवर्तन किए। इस बात का यहां उल्लेख किया जा सकता है कि कूटनीति के संचालन में, अपने प्रशासनिक ढांचे में, राष्ट्रीय हित की अपनी कुछ परिभाषाओं में और कुछ महत्वपूर्ण विषयों पर नीतियों का सृजीकरण करते हुए अपनी कूटनीति की पद्धति में पंडित नेहरू द्वारा संचालित भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार के पूर्व उदाहरणों का अनुसरण किया। राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के निर्णय ने इसी विशेषता को प्रकट किया परंतु इसके साथ-साथ 1949 में ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के रूप को राष्ट्रों के राष्ट्रमण्डल में परिवर्तित करने में भी भारत ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

भारत स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही कुछ निर्णयों को उसी प्रकार बनाए रख सका, इसका कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार ने 1947 से पूर्व ही, वास्तव में 1917 से ही, मौनरूप से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत की अर्ध-स्वतंत्र सत्ता को मान्यता प्रदान कर दी थी। अंतर्राष्ट्रीय नीतियों में पृथक् किंतु सत्ता विहीन अस्तित्व के रूप में प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् भारत का भाग लेना इंग्लैण्ड ने स्वीकार कर लिया था।

इसका कारण इंग्लैण्ड की अपनी साम्राज्यवादी पकड़ को मजबूत बनाने की यह महत्वाकांक्षा तथा भारतीय स्वाधीनता संग्राम का बढ़ता दबाव था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद के काल में भारत द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में जो अनुभव प्राप्त किया गया व स्वतंत्र भारत के युद्धोपरांत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में जो परिवर्तन आए, उनका विश्लेषण करने तथा समझाने में यही काम आया।

1947 से पूर्व भारत के आर्थिक तथा व्यापारिक संबंध

इंग्लैण्ड तथा अन्य देशों के साथ भारत के स्वतंत्रता पूर्व काल के आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों के अध्ययन से इस बात की पुष्टि होती है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में भारत की अर्ध-स्वतंत्रता की स्थिति थी। 20वीं शताब्दी के द्वितीय तथा तृतीय दशकों में भारत अनेक देशों के साथ आर्थिक तथा व्यापारिक संबंध बनाने की स्थिति में था। अत: ब्रिटेन के प्रभाव में झुकाव अपेक्षित था। 1919 में ब्रिटिश सरकार ने भारत को वित्तीय स्वायत्तता देना मान लिया। परिणामस्वरूप भारतीय राजकोषीय आयोग की स्थापना की गई तथा इस आयोग में कुछ भारतीय उद्योगों के लिए शुल्क संरक्षण की सिफारिश की। 1923 में एक

शुल्क बोर्ड स्थापित किया गया। 1924 में भारत के इस्पात उद्योग को संरक्षण प्रदान किया गया। 1931 में भारत ने ओटावा में भारत–ब्रिटिश व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किए। इन समझौतों के द्वारा उन भारतीय तथा ब्रिटिश माल का जो दूसरे देशों की मण्डियों में प्रवेश करता था, शुल्क दरों में अधिमान दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ब्रिटिश व्यापारिक संबंध तथा अन्य राष्ट्र मण्डल देशों के साथ व्यापारिक संबंध भारत के स्वतंत्रता पूर्व के ब्रिटेन तथा अन्य देशों के साथ आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों द्वारा प्रभावित हुए।

साम्राज्यीय शासकों के साथ भारत के संबंध

1947 से पूर्व भारत के विदेशी सम्बंध ब्रिटिश साम्राज्य के साथ जुड़े हुए थे तथा उसके औपचारिक सलाह किए बिना ही साम्राज्यीय सरकार ने 1914 में सम्पूर्ण साम्राज्य को युद्ध में झोंक दिया था। परंतु भारत तथा अन्य उपनिवेशों के साधनों पर निर्भरता तथा अपनी आवश्यकताओं के कारण युद्ध के दौरान इसने उपनिवेशों तथा भारत के साथ सुरक्षा के विषयों तथा विदेशी मामलों पर परामर्श करने की परंपरा आरंभ की थी। भारत को स्वतंत्र उपनिवेश की स्थिति तो नहीं दी गई थी किंतु साम्राज्य के युद्ध में भारतीय प्रयत्नों के फलस्वरूप इसे अन्य स्वतंत्र उपनिवेशों के साथ जोड़ दिया गया था। अगस्त 1917 को मांटेग्यू घोषणा, जिसमें भारत में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना को ब्रिटिश सरकार के अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया था, युद्ध में भारतीय सहायता को सुनिश्चित बनाने के लिए की गई थी।

1917 में लार्ड जॉर्ज की सरकार ने भारत के युद्ध सम्मेलनों में भाग लेने के फलस्वरूप इसके साम्राज्यीय सरकार से संबंध अवश्य सुदृढ़ हुए तथा फलस्वरूप इसके अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में स्थान में बढ़ोत्तरी हुई।

एक भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने पेरिस शांति सम्मेलन में भाग लिया तथा राष्ट्र संघ की मूल सदस्यता प्राप्त की। इस प्रकार अंत: युद्ध काल में भारत अंतर्राष्ट्रीय अस्तित्व की स्थिति प्राप्त करने में तथा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेने की स्थिति में आ गया था। भारत में इस अवधि में जो अनुभव प्राप्त किया उसका स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का निर्माण करने वालों द्वारा उपयोग किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव

वास्तव में प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही भारतीयों ने कांग्रेस के नेतृत्व में विदेशी सम्बन्धों में अधिक सक्रिय भाग तथा दिलचस्पी लेनी आरंभ की। 1920 में जब आयरलैण्डवासी अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे तो कांग्रेस ने उन्हें एक सद्भावना संदेश भेजा। 1921 में अपने दिल्ली अधिवेशन में AICC ने पहली बार विदेश नीति के संबंध में एक पूर्ण प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि भारत अपने पड़ोसियों तथा अन्य सभी राज्यों से अच्छे तथा मैत्रीपूर्ण संबंध रखने का इच्छुक है। इसमें ब्रिटिश भारतीय सरकार की कड़ी आलोचना की गई क्योंकि अपनी नीतियों द्वारा यह सरकार भारतीय राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करके ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों की रक्षा कर रही थी।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा विदेश विभाग की स्थापना

1927 में मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने चीन, मेसोपोटामिया तथा ईरान के क्षेत्र में भारतीय सैनिकों के प्रयोग का प्रतिरोध किया। पराधीन लोगों द्वारा विश्व में साम्राज्यवाद विरोधी

आंदोलनों को संगठित करने तथा सहायता देने के लिए कांग्रेस ने अपने 1928 के कलकत्ता अधिवेशन में AICC को एक विदेश विभाग स्थापित करने का निर्देश दिया। ईजिप्ट, सीरिया, फिलिस्तीन तथा ईराक के लोगों को, जो पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे, कांग्रेस ने अपनी शुभ-कामनाएं भेजीं। कांग्रेस ने एक विदेश विभाग की स्थापना की तथा पं. जवाहर लाल नेहरू इसके अध्यक्ष बनाए गए। वह भारतीय विदेश नीति के निर्देशक के रूप में काम करने लगे। इस अनुभव ने उन्हें स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के निर्माता की भूमिका अदा करने तथा इसे चलाने में अत्यंत सहायता दी।

1930 में कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से तथा दृढ़ शब्दों में नाजियों तथा फासीवादियों द्वारा किए जा रहे आक्रामक कार्यों की आलोचना की। भारत ने एक साम्राज्यवादी युद्ध के आरंभ होने के प्रति विश्व को सचेत किया तथा यह कहा कि भारत इसमें शामिल नहीं होगा। 1939 में त्रिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस ने भारत द्वारा अपनी विदेश नीति स्वयं बनाने तथा संचालन करने का अधिकार दिए जाने की मांग की।

भारत तथा दूसरा विश्व युद्ध

जब दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हुआ तथा ब्रिटेन ने भारत को अपने पक्ष में एक युद्ध सहायक बना लिया तो कांग्रेस ने इसका कड़ा विरोध किया। बाद में इसने अटलांटिक चार्टर के आधार पर भारत को पूर्ण राज्य घोषित किए जाने की मांग की।

1945 से 1947 तक कांग्रेस ने कई एक प्रस्तावों तथा घोषणाओं द्वारा यह कहा कि सभी देशों को स्वतंत्र होने/रहने का अधिकार है तथा विश्व में सभी साम्राज्यवादी शक्तियों को चाहे उन्हें किसी नाम से भी पुकारा जाए, समाप्त किया जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का भारत ने स्वागत तो किया परंतु इसके संगठन पर महाशक्तियों के अनावश्यक नियंत्रण के प्रति असंतोष भी व्यक्त किया। 1949 में कांग्रेस ने परमाणु बम की उत्पत्ति पर खेद व्यक्त किए तथा तथा साम्राज्यवादी शक्तियों में चल रहे शक्ति संघर्ष के प्रति असंतोष व्यक्त किया। भारत ने एशियाई तथा अफ्रीकी राज्यों पर विदेशी शासन को समाप्त करने की मांग की।

कांग्रेस द्वारा पारित इन ऐतिहासिक घोषणाओं तथा प्रस्तावों ने भारतीय विदेश नीति के आधारभूत सिद्धांतों- (शीत युद्ध का विरोध, साम्राज्यवाद का विरोध, नस्लवाद का विरोध, शक्ति-राजनीति का विरोध तथा गुटनिरपेक्षता का समर्थन आदि) की आधारभूत जड़ें प्रदान कीं।

भारत में विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया

एक संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में विदेश नीति निर्माण पर राजनैतिक कार्यपालिका का नियंत्रण होता है। विदेश नीति कार्यालय, राजनैतिक कार्यपालिका द्वारा लिए गए निर्णयों को लागू करने का कार्य करता है। वर्तमान में विश्व व्यवस्था में आए व्यापक परिवर्तन सूचना एवं तकनीक के क्षेत्र में हुए विकास के कारण विदेश नीति निर्माण का कार्य और भी जटिल हो गया है। विदेश नीति संबंधी मामलों पर विदेशमंत्री तथा विदेश सेवा कार्यालय के अतिरिक्त प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमंडल भी उत्तरदायी होती है। इन संस्थानों का प्रमुख कार्य विदेश नीति के मुख्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है। विदेश सेवा कार्यालय का मुख्य उद्देश्य, नीति-निर्माताओं को त्वरित एवं विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध करवाना तथा

प्रत्येक क्षेत्र में नीति-निर्माण में सलाह देना है। दूसरे शब्दों में, विदेश नीति निर्माण एवं अनुपालन में विदेश सेवा कर्यालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

ब्रिटिश काल में भारत सरकार के अधीन एक विदेशी मामलों से संबंधित विभाग था। ये विभाग अमेरिका एवं चीन के पड़ोसी सामान्यतया प्रशिया, अफगानिस्तान तथा तिब्बत में भारतीय प्रतिनिधियों को नियंत्रित करता था। इसी प्रकार एक राष्ट्रमंडल संबंधी रिश्तों के लिए विभाग भी था जिसका विकास समुद्र पार भारतीयों से संबंधित विभाग से हुआ था। इस विभाग के अंतर्गत दो उच्चायुक्त-दक्षिण अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया तथा बर्मा सिलोन तथा मलाया में भारतीय प्रतिनिध भी आते थे। इसी प्रकार वाणिज्य विभाग का नियंत्रण लंदन के उच्चायोग पर था- जिसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन में भारत के व्यापारिक हितों की देखरेख करना था। 1947 में विदेश मंत्रालय तथा राष्ट्रमण्डल संबंधी मामलों का उदय विदेश विभाग तथा राष्ट्रमंडल संबंधी मामले के विभाग के विलय के फलस्वरूप हुआ। 1949 में राष्ट्रमंडल संबंधी मामलों को विदेश मंत्रालय से हटा दिया गया। परिणामस्वरूप वर्तमान विदेश मंत्रालय का उदय हुआ।

विदेश मंत्रालय का संगठन

विदेश मंत्री के अतिरिक्त विदेश मंत्रालय में हमेशा से ही एक राज्य मंत्री अथवा उप मंत्री रहने की परंपरा रही है। इन्हें सदैव कुछ प्रशासनिक मामले सौंपे जाते हैं। पंडित नेहरू के प्रधानमंत्री एवं विदेशमंत्री काल में राज्य मंत्रियों की इतनी अहमियत नहीं थी। अधिकारी अक्सर उन्हें नजरंदाज कर विदेशमंत्री के संपर्क में रहते थे। पंडित नेहरू के कार्यकाल मे ंएक सेक्रेटरी जनरल भी होता था जिसका प्रमुख कार्य विदेश सेवा मुद्दों पर सलाह देना तथा विदेश मंत्रालय में समन्वय स्थापित करना था। लाल बहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्री बनने के बाद सेक्रेटरी जनरल पद को अनावश्यक समझते हुए समाप्त कर दिया गया तथा विदेश सचिव को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया कि वर्तमान में विदेश मंत्रालय का प्रशासनिक अधिकारी विदेश सचिव होता है।

राजनैतिक कूटनीति

जानकारी एवं तथ्यों का सही होना विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण अंग है। गलत जानकारियों पर आधारित विदेश नीति असफल रहती है। इस प्रकार विदेश नीति निर्माण में उपलब्ध जानकारी को उपर्युक्त महत्व भी दिया जाना आवश्यक है। अन्य शब्दों में उपलब्ध जानकारी की समीक्षा तथा सम्मेलन विदेश-नीति निर्माण का दूसरा स्तर है। तृतीय स्तर पर ऐसी नीतियों का निर्माण है जो किसी देश विशेष, अंतर्राष्ट्रीय संगठन अथवा घटना विशेष को ध्यान में रखते हुए बनाई जाती है।

रिपोर्टिंग

समयानुसार विश्व में विभिन्न धारणाओं की जानकारी होना एक आवश्यक तत्व है। इसी क्रम में विदेश मंत्रालय विश्व में अपने सभी कार्यालायों से समय-समय पर देशवार घटनाओं की जानकारी लेता है। प्रत्येक देश में भारतीय मिशन को रिपोर्ट भेजनी होती है। केवल तथ्यात्मक जानकारी के अलावा मिशन के अधिकारी को इन घटनाओं को ध्यान में रखते हुए अपना मत भी देना होता है। इन सारी रिपोर्टों को विदेश मंत्रालय में संकलन किया जाता है तथा फिर उसका अध्ययन किया जाता है।

टिप्पणी

सामान्यत: मिशन को अपनी रिपोर्ट प्रत्येक माह भेजनी होती है। इस रिपोर्ट का उद्देश्य साम्राज्य राजनैतिक एवं अन्य घटनाक्रमों तथा उद्देश्यों के संदर्भ में मुद्दों को विस्तारित करना होता है। अचानक हुए किसी घटनाक्रम का विवरण इस रिपोर्ट में नहीं दिया जाता है। इन रिपोर्टों का आधार समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचार एवं अन्य समाचार होते हैं। इनका निर्माण कर्मचारी जैसे प्रथम अथवा द्वितीय सेक्रेटरी द्वारा किया जाता है। कई बार राजदूत स्वयं अपनी रिपोर्ट लिखना पसंद करते हों इनकी प्रतियां मंत्रालय के विभिन्न विभागों को भेजी जाती है। सामान्य तौर पर अवर सेक्रेटरी स्तर के अधिकारी प्रथमत: इन रिपोर्टों को देखते हैं तथा इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण हिस्सों को रेखांकित करते हुए अगले अधिकारी को प्रेषित कर देते हैं। यही रिपोर्ट विदेश सचिव के पास जाती है। विदेश सचिव अगर चाहें तो उसके कुछ हिस्सों को विदेश मंत्री के सामने रख सकते हैं।

किसी अचानक घटे घटनाक्रम की जानकारी के लिए मिशन आपातकालीन रिपोर्ट भी तैयार करते हैं। इन घटनाक्रमों का चयन इस आधार पर किया जाता है कि ऐसी घटना का भारत और उस देश के संबंध अथवा भारत अथवा किसी अन्य देशों के साथ उसके संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है।

आपातकालीन स्थिति में सिफर टेलीग्राम जिससे तीव्र और गुप्त संदेश भेजे जा सकते हैं, का उपयोग किया जाता है। इसके बाद एक विस्तृत रिपोर्ट भेजी जाती है।

वर्तमान में संचार तकनीक के विकास के साथ इस प्रकार की रिपोर्टिंग का महत्व कम हो गया है। इसका प्रमुख कारण है कि समाचार पत्र अथवा उनके आधार पर एकत्रित सामग्री अब विश्व भर में एक साथ इन्टरनेट पर उपलब्ध है। इससे मिशन द्वारा भेजी गई रिपोर्ट का महत्व कम हुआ है। इसी प्रकार सोशल नेटवर्किंग साइट ने भी जानकारियों को आसान बना दिया है।

ऐसे में मिशन का महत्त्व तभी बना रह सकता है जब उसके द्वारा बनाई गई रिपोर्ट गहन शोध एवं अध्ययन का नतीजा हों।

आर्थिक कूटनीति

वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण आर्थिक कूटनीति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। आर्थिक मदद, ऋण, व्यापारिक सम्पर्क तथा अन्य करार राजनैतिक मुद्दों से अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। यद्यपि प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू आर्थिक विकास एवं कूटनीति के बीच संबंध से भलीभांति परिचित थे। इसी कारण 1946 में भारतीय विदेश सेवा की स्थापना की गई तथा आर्थिक संबंधों को देखना इसका एक प्रमुख कर्तव्य भी था परंतु पिछले कुछ वर्षों तक इस पहलू पर बहुत अधिक ध्यान नहीं दिया गया। 1947 में यद्यपि विदेश मंत्रालय में आर्थिक मामलों संबंधी विभाग बनाया गया परंतु 1950 में इसे समाप्त कर दिया गया। 1961 में इसे पुन: बनाया गया। परंतु 1991 के बाद आर्थिक मामलों की महत्ता बढ़ी है तथा विभिन्न देशों के साथ द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों को मूर्त रूप देना इसकी प्राथमिकताओं में सम्मिलित है। परंतु शोध क्षमता के अभाव में द्विपक्षीय आर्थिक मामलों में वाणिज्यिक मंत्रालय की भूमिका विदेश मंत्रालय से अधिक महत्वपूर्ण है। अब विदेश मंत्रालय, वाणिज्य मंत्रालय मिलकर विदेश व्यापार एवं आर्थिक संबंधों का रखरखाव करते हैं।

टिप्पणी

सांस्कृतिक कूटनीति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद -भारत तथा अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक संबंध और पारस्परिक समझ स्थापित और सुदृढ़ करने और उन्हें पुनर्जीवित करने के प्राथमिक उद्देश्य के साथ 1950 में भारतीय सांस्कृतिक परिषद की औपचारिक रूप से स्थापना की गई थी जैसा कि संस्था अंतर्नियमों में उल्लेख किया गया है, इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं-

- भारत के विदेशी सांस्कृतिक संबंधों से संबंधित नीतियों एवं कार्यक्रमों को तैयार करने और उन्हें कार्यान्वित करने में भागीदारी करना।
- दूसरे देशों और लोगों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देना।
- अन्य देशों और भारत के बीच सांस्कृतिक संबंध और पारस्परिक संबंध को बढ़ावा देना और उसे सुदृढ़ करना।
- संस्कृति के क्षेत्र में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ संबंध स्थापित और विकसित करना।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए परिषद ने निरंतर कार्य किया है।

परिषद के मुख्य कार्यकलाप निम्नलिखित हैं-

भारत सरकार और अन्य अभिकरणों की ओर से विदेशी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति योजनाओं का प्रशासन, अंतर्राष्ट्रीय छात्रों का कल्याण, भारतीय नृत्य एवं संगीत सीखने के लिए विदेशी छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करना, प्रदर्शनियों का आदान-प्रदान, अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों एवं परिसंवादों का आयोजन एवं उनमें भाग लेना, विदेशों में मुख्य सांस्कृतिक उत्सवों में भाग लेना, विदेशों में 'भारत महोत्सव' का आयोजन करना, मंचीय कलाकारों की मंडलियों का आदान-प्रदान, विदेशों में मंचीय कलाकारों द्वारा व्याख्यान-प्रदर्शन का आयोजन, विशिष्ट अतिथि कार्यक्रम, जिसके अंतर्गत विदेशों के प्रसिद्ध व्यक्तियों को भारत आने के लिए आमंत्रित किया जाता है और आगंतुकों का विदेश कार्यक्रम जिसके अंतर्गत विदेशों में व्याख्यान देना, पुस्तकों का प्रस्तुतीकरण करने, दृश्य-श्रव्य सामग्री, कला वस्तुएं तथा संगीत यंत्र मुहैया कराने के लिए विशेषज्ञ भेजे जाते हैं, अंतर्राष्ट्रीय समझ-बूझ के लिए जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार हेतु सचिवालय उपलब्ध कराना, वार्षिक मौलाना आजाद स्मृति व्याख्यान का आयोजन करना, मौलाना आजाद निबंध प्रतियोगिता का आयोजन करना, भारत तथा विदेशों में वितरण के लिए पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रकाशन, विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक केन्द्रों को बनाए रखना एक समृद्ध पुस्तकालय और मौलाना अबुल कलाम आजाद की पांडुलिपियों का रख-रखाव, दुर्लभ पांडुलिपियों को डिजिटल बनाना।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के 14 क्षेत्रीय कार्यालय बैंगलूर, चण्डीगढ़, चेन्नै, हैदराबाद, कोलकाता, लखनऊ, मुंबई, तिरुअनंतपुरम, जयपुर पुणे, वाराणसी, शिलांग, कटक और गुवाहाटी में कार्य कर रहे हैं। क्षेत्रीय कार्यालयों के कार्यकलापों में स्थानीय निकायों/संगठनों के साथ समन्वय और परिषद की छात्रवृत्ति योजना के तहत अध्ययन कर रहे विदेशी छात्रों को सहायता प्रदापन करना शामिल है। क्षेत्रीय कार्यालय सांस्कृतिक शिष्टमंडलों और परिषद के विशिष्ट आगंतुकों को संभारिकी सुविधाएं भी प्रदान करते हैं।

परिषद का प्राथमिक उद्देश्य भारत तथा अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक संबंधों और पारस्परिक समझ-बूझ को स्थापित, पुनर्जीवित तथा सुदृढ़ करना है। विदेशों में भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूकता और समझ के बढ़ाने के उद्देश्य से परिषद विदेश स्थिति विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में पीठों को स्थापित किया है। इन पीठों में भारतीय प्रोफेसरों की अल्पकालिक और दीर्घकालिक आधार पर प्रतिनियुक्ति की जाती है।

फिलहाल परिषद द्वारा द्विपक्षीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम, विदेशों में हिन्दी प्रचार-प्रसार योजना और परिषद के अपने कार्यक्रमों के तहत 19 दीर्घावधिक पीठें भारतीय भाषाओं तथा भारत के संदर्भ में सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के लिए संचालित की जा रही है। परिषद पोर्ट आफ स्पेन (त्रिनिदाद टोबैगो), बुडापेस्ट (हंगरी), मास्को (रूस), वारसा (पोलैण्ड), सोफिया (बुल्गारिया), बीजिंग (चीन), अंकारा (टर्की), ब्रुसेल्स (बेल्जियम) और वालाडोलिड (स्पेन) में हिंदी पीठें; संस्कृत पीठें बैंकाक (थाईलैण्ड) और पेरिस (फ्रांस) में; वारसा (पोलैण्ड) में एक तमिल पीठ; ओश (किर्गीस्तान) और ताशकंद (उजबेकिस्तान) में अंतर्राष्ट्रीय संबंध पीठ; जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में शांति अध्ययन पीठ; पोर्ट आफ स्पेन (ट्रिनिडाड टोबैगो) में एक फिल्म/सिनेमा अध्ययन पीठ और बुखारेस्ट (रोमानिया), पारामारिबो (सूरीनाम) और जलालाबाद अफगानिस्तान में तीन शिक्षकों के लिए हिन्दी पीठें चला रही हैं। परिषद 11 आवर्ती अल्पकालिक पीठ भी चला रही है।

अर्ध प्रतिमाएं और प्रदर्शनियां

परिषद द्वारा वेलेयू पुस्तकालय, सैन फ्रांसिस्को, वाशिंगटन राज्य, एस्ट्रेचकोना पार्क ओटावा (कनाडा) और पियाजा गांधी, सैन डोनेटो, मिलान इटली में महात्मा गांधी की तीन प्रतिमाएं भेजी गईं। महात्मा गांधी की तीन अर्धप्रतिमाएं पोर्टरिको विश्वविद्यालय, पीआर न्यूयार्क, विसेंजा, मिलान इटली और यूएनएसडब्ल्यू विश्वविद्यालय, सिडनी में स्थापित करने के लिए भेजी गई। परिषद ने रवीन्द्रनाथ टैगोर की दो प्रतिमाएं स्थायी रूप से लगाने के लिए उस्ट कामेनोगोर्स्क सिटी कजाकिस्तान और टैगोर म्यूजियम बांग्लादेश भेजी। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने श्री अरविंदो की एक प्रतिमा स्थायी रूप से यूनेस्को मुख्यालय में लगाने के लिए पेरिस भेजी।

भा.सा.स. परिषद् ने आठ प्रमुख प्रदर्शनियों (भा.सा.स.परि. का अपना संग्रह) जिसमें 'सेलेब्रेटिंग वुमन-अमृता शेरगिल रीविजिटेड' सियोल (कोरिया) अस्ताना (कजाकस्तान) और काबुल (अफगानिस्तान); 'वूमन बाई वूमन' प्रदर्शनी अल्जीरिया, सार्क पेंटिंग प्रदर्शनी श्रीलंका, बंगलादेश और मालदीव के एक फोटोग्राफिक प्रदर्शनी 'द मुराल आफ इंडिया' रोम, इटली एक फोटोग्राफिक प्रदर्शनी 'लीगेसी आप कम्पैशन' लंदन, बर्लिन और केसाडीला इंडिया वैलाडोलिड (स्पेन) एक प्रदर्शनी (पहला सेट) 'कल्पनामास्टरपीसेज आफ फिगरेटिव इंडियन कन्टेम्पौटरी पोंटोंस' लंदन; कैसा डी ला इंडिया, वालाडोलिड (स्पेन) और बर्लिन (जर्मनी) प्रदर्शनी का एक सेट पोर्ट आफ स्पेन और सूरीनाम तथा तीसरा सेट फिलीपींस भेजा गया।

विदेश भेजे गए सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल

परिषद ने सुश्री गीता राधाकृष्णन (मोहिनीअट्टम), सुश्री सुशीला मेहता (भरतनाट्यम), सुश्री अदिति मंगलदास (समकालीन नृत्य' समूह 'दृष्टिकोण') सुश्री श्रुति बंद्योपाध्याय (मणिपुरी नृत्य); सुश्री संगीता दास (ओडिसी); श्री हरि और सुश्री चेतना (कत्थक), सुश्री अरुसी मुद्गल (ओडिसी) पं. देवू चौधरी (सितार) श्री अहमद हुसैन और श्री मोहम्मद हुसैन (गजल) के कार्यक्रमों को प्रायोजित किया।

परिषद द्वारा उत्कृष्ट कलाकारों के समन्वित नृत्य समूह- जिसमें उस्ताद अली अहमद हुसैन खान (शहनाई), सुश्री मोम गांगुली (मोहिनीअट्टम), सुश्री बाम्बे जयश्री रामनाथ (कर्नाटक गायन), श्री टी.एम. कृष्णा (कर्नाटक गायन), विश्व भारती विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल के गायक मंडल, सुश्री दक्ष सेठ नृत्य कंपनी आदि के कार्यक्रमों को प्रायोजित किया।

विदेश प्रचार

विदेश मंत्रालय के विदेश प्रचार प्रभाग ने भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया के साथ तालमेल के माध्यम से विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत सरकार दृष्टिकोण/पक्ष को रखने का कार्य जारी रखा। यह नियमित एवं विशेष प्रेस ब्रीफिंग, वक्तव्यों, पृष्ठभूमि और विदेश मंत्रालय की वेबसाइट पर पोस्टिंग के माध्यम से किया गया। प्रभाग के मुख्य कार्यकलाप अपने पड़ोसी देशों के साथ-साथ विश्व के प्रमुख देशों के साथ भारत के संबंधों पर सूचना के प्रचार-प्रसार पर केंद्रित रहे। मुंबई में 26-11 के बर्बरतापूर्ण आतंकी हमलों के बाद हमारी सीमापार से उभरते आतंकवाद पर भारत की चिंताएं व्यक्त करने के लिए स्थायी प्रचार अभियान चलाया गया था। इसके अतिरिक्त, हमारी नई पहलों के एक भाग के रूप में अफ्रीकी देशों में कई नई परियोजनाएं पहुंचाने का कार्य प्रारंभ किया गया था जिसमें फ्लैगशिप 'इंडिया अफ्रीका कनेक्ट' बेवसाइट शामिल है जिसे विदेश मंत्रालय द्वारा प्रारंभ किया गया। प्रभाग ने उर्दू और अन्य गैर-हिन्दी मीडिया तक पहुंचने के अलावा अपने आउटरीच कार्यक्रम के एक भाग के रूप में अनेक विदेशी पत्रकारों के समूह की मेजबानी भी की।

भारत आने वाले अति विशिष्ट व्यक्तियों के दौरों का प्रेस कवरेज

अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ भारत के ठोस क्रिया-कलापों का प्रमाण विदेशों से गणमान्य व्यक्तियों के भारत दौरों की संख्या से मिला। दौरा करने वाले गणमान्य व्यक्तियों में उल्लेखनीय थे: भूटान, रूसी परिसंघ, डेनमार्क, अर्जेन्टीना, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जापान, बांग्लादेश, कोरिया लोकतांत्रिक गणराज्य मलेशिया, टर्की, जर्मनी और नेपाल के राज्याध्यक्ष/शासनाध्यक्ष। प्रभाग ने इन यात्राओं से मिले अवसरों का उपयोग महत्वपूर्ण द्विपक्षीय, क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत के दृष्टिकोणों का प्रचार प्रसार करने में किया। प्रभाग ने आने वाले गणमान्य व्यक्तियों के साथ संयुक्त प्रेस बातचीत का आयोजन भी किया। मंत्रालय के प्रवक्ता और अन्य वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों द्वारा विशेष ब्रीफिंग का भी नियमित रूप से आयोजन किया गया ताकि मीडिया को अवगत करवाया जा सके।

टिप्पणी

भारत के गणमान्य लोगों के विदेश दौरों की प्रेस कवरेज

राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और विदेशमंत्री के विदेश दौरे के साथ जाने वाले भारतीय प्रतिनिधिमंडल को भी संभारतंत्रीय व्यवस्था, जिसमें कि पत्रकारों द्वारा कवरेज को फाइल करने की सुविधा से पूर्ण सुसज्जित मीडिया केन्द्र स्थापित कर उसे प्रकार्यात्मक बनाना शामिल है, मीडिया ब्रीफिंग और अन्य व्यवस्था करना ताकि कार्यक्रम का समय पर मीडिया का कवरेज सुनिश्चित हो सके- प्रभाग के कार्य का महत्वपूर्ण भाग बन गया है। वर्ष 2009 के दौरान राष्ट्रपति की स्पेन, पोलैंड, रूस, ताजिकिस्तान, यू के और साइप्रस की यात्रा; प्रधानमंत्री की यू के (जी-20 शिखर बैठक), रूस (बी आर आई सी एवं एस सी ओ शिखर बैठक), यू एस ए (जी-20 शिखर बैठक), थाईलैंड (एसोसिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेशन्स एण्ड ईस्ट एशियन सम्मिट्स), यू एस ए (राजकीय दौरा) और पोर्ट आफ स्पेन (कामनवेल्थ हेड्स ऑफ गवर्नमेंट मीट सम्मिट) की यात्रा; उप राष्ट्रपति की कुवैत और साउथ अफ्रीका की यात्रा और विदेश मंत्री की जापान, भूटान, थाईलैण्ड, नेपाल, आस्ट्रेलिया, कुवैत और अफगानिस्तान की यात्रा के दौरान मीडिया के लोग साथ गए।

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मीडिया के साथ संपर्क

सरकारी प्रवक्ता के कार्यालय ने भारतीय विदेश नीति पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख घटनाक्रमों, आने और जाने वाली उच्च स्तरीय यात्राओं और दिन-प्रतिदिन के महत्वपूर्ण घटनाक्रमों पर नियमित ब्रीफिंग आयोजित कर पूरे वर्ष के दौरान भारतीय और विदेशी मीडिया के साथ संपर्क बनाए रखा। वर्ष के दौरान विभिन्न विचारणीय मुद्दों पर 187 प्रेस विज्ञप्तियां, 63 प्रेस ब्रीफिंग और 34 संयुक्त प्रेस वक्तव्य और 60 मीडिया परामर्शी प्रभाग द्वारा जारी किए गए। भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय समाचार पत्रों और टी.वी. संगठनों के साथ प्रधानमंत्री, विदेशमंत्री और अन्य गणमान्य व्यक्तियों के साक्षात्कार आयोजित किए गए। ये मंत्रालय की वेबसाइट पर भी रखे गए हैं।

सरकारी प्रवक्ता का कार्यालय

सरकारी प्रवक्ता का कार्यालय भारतीय विदेश नीति के संचालन से संबंधित दिन-प्रतिदिन के घटनाक्रमों पर सूचना का प्रचार-प्रसार करने के केंद्र के रूप में कार्य करता रहा। कार्यालय ने प्रवक्ता द्वारा नियमित मीडिया ब्रीफिंग आयोजित की जिसे प्रेस विज्ञप्तियों, ब्रीफिंग मुद्दे एवं वक्तव्यों द्वारा संपूरित किया गया। अप्रैल-नवंबर के दौरान सरकारी प्रवक्ता के कार्यालय द्वारा लगभग 91 प्रेस ब्रीफिंग आयोजित की गई। इसके अलावा, इस अवधि के दौरान 200 से अधिक प्रेस विज्ञप्तियां और वक्तव्य जारी किए गए। इन्हें ई-मेल के माध्यम से मीडिया में परिचालित किया गया और साथ-साथ मंत्रालय की वेबसाइट पर भी डाला गया।

भारतीय विश्व कार्य परिषद

1 अप्रैल, 2009 से 31 मार्च 2010 की अवधि के दौरान भारतीय विश्व कार्य परिषद द्वारा आयोजित और नियोजित किए गए कार्यक्रम निम्नानुसार है:

1 अप्रैल, 2009 से 29 जनवरी, 2010 के बीच आयोजित किए गए कार्यक्रम:

1.	व्याख्यान	7
2.	संगोष्ठियां	15
3.	द्विपक्षीय नीतिगत वार्ताएं	13
4.	समूह चर्चाएं/ पृष्ठभूमि सार	3
5.	अन्य कार्यक्रम (पुस्तक विमोचन आदि)	2
	कुल	40

कुछ प्रमुख कार्यक्रम निम्नलिखित हैं

1. पूर्व विदेश सचिव श्री शिव संकर मेनन की अध्यक्षता में 'भारत और चीन: अतीत और भविष्य' विषय पर सुप्रसिद्ध चीनी विद्वान प्रोफेसर वी.पी. दत्त द्वारा व्याख्यान।
2. विदेश राज्य मंत्री श्रीमती प्रनीत कौर द्वारा 'भारत-यूरोपीय संघ मंच: प्रभावी बहुपक्षवाद के परिप्रेक्ष्य में' विषय पर मूल-सिद्धांत भाषण (8-9 अक्टूबर, 2009)।
3. अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन : 'उभरता हुआ चीन: एशिया में भागीदारी की संभावनाएं' विषय पर एशियाई संबंध सम्मेलनश्रृंखला-उद्घाटन भाषण भारत के उप राष्ट्रपति श्री एम. हामिद अंसारी द्वारा समापन भाषण विदेश राज्य मंत्री डॉ. शशि थरूर द्वारा दिया गया। इस सम्मेलन में 25 विदेशी विद्वानों द्वारा संबोधन किया गया और शिक्षाविदों, राजनयिकों, अधिकारियों आदि सहित 300 से अधिक व्यक्तियों द्वारा हिस्सा लिया गया।
4. आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री श्री केविन रुड द्वारा रणनीतिक मामलों पर प्रमुख भाषण- युवा मामले और खेल मंत्री डॉ. एम.एस. गिल द्वारा अध्यक्षता की गई।
5. लोवी इंस्टीट्यूट, आस्ट्रेलिया के साथ विश्व कार्य परिषद का द्वितीय भारत-आस्ट्रेलिया गोलमेज।
6. थाईलैण्ड के विदेश मंत्री श्री कैसिट पिरोम्या के साथ वार्ता।
7. भारतीय विश्व कार्य परिषद द्वारा आयोजित और नियोजित कार्यक्रमों की सूची संलग्न है (अनुबंध XVI)।

भारत के भीतर अंतर्राष्ट्रीय मामलों के लिए विश्वविद्यालयों तथा केंद्रों के साथ आउटरीच कार्यक्रम

इस अवधि के दौरान विश्व कार्य परिषद द्वारा निम्नलिखित के साथ द्विपक्षीय सहयोग हेतु समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर किए गए।

1. मनिपाल उच्च अनुसंधान समूह, मनिपाल विश्वविद्यालय।
2. राजनीति शास्त्र विभाग, कला और सामाजिक विज्ञान विश्वविद्यालय कालेज, उस्मानिया विश्वविद्यालय।

भारत के बाहर अंतर्राष्ट्रीय मामलों के लिए विश्वविद्यालयों तथा केंद्रों के साथ आउटरीच कार्यक्रम

1. अर्जेन्टीना अंतर्राष्ट्रीय संबंध परिषद
2. यूरोपीय संघ सुरक्षा अध्ययन संस्थान (ईयूआईएसएस)।

भारतीय विदेश सेवा का परिचय

टिप्पणी

सिंहावलोकन

भारतीय विदेश सेवा की बुनियाद, ब्रिटिश शासन के दौरान उस समय रखी गई जब विदेशी यूरोपीय शक्तियों के साथ कार्य संचालन के लिए विदेश विभाग का सृजन किया गया था। वस्तुत: 13 सितंबर, 1783 को ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक मंडल ने फोर्ट विलियम, कलकत्ता (अब कोलकाता) में एक ऐसे विभाग के सृजन हेतु संकल्प पारित किया जो वारेन हेस्टिंग्स प्रशासन पर अपने गुप्त और राजनैतिक कार्य संचालन पर पड़ रहे दबाव को कम करने में सहायक हो। तदुपरांत 'भारतीय विदेश विभाग' नामक इस विभग ने ब्रिटिश हितों की रक्षा हेतु, जहां आवश्यक हुआ राजनयिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया। 1843 में गवर्नर जनरल एलनबारो ने प्रशासनिक सुधार किया जिसके तहत सरकार के सचिवालय को चार विभागों विदेश, गृह, वित्त और सैन्य में व्यवस्थित किया गया। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष सचिव स्तर का अधिकारी था। विदेश विभाग के सचिव को सरकार के विदेशी और आंतरिक राजनयिक संबंधों के बारे में हर प्रकार का पत्राचार करने का कार्य सौंपा गया था।

आरंभ से ही विदेश मंत्रालय के विदेशी और राजनैतिक प्रकार्यों के बीच अंतर रखा गया। एशियाई शक्तियों (ब्रिटिश राज के दौरान भारत के रजवाड़ों सहित) के साथ संबंधों को राजनैतिक और सारी यूरोपीय शक्तियों के साथ संबंधों को विदेशी माना गया। यद्यपि भारत सरकार अधिनियम, 1935 में विदेश विभाग के 'विदेशी' और राजनैतिक स्कन्धों के प्रकार्यों को काफी स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया था तथापि शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि विदेश विभाग को पूरी तरह दो भागों में बांटना प्रशासनिक रूप से अत्यावश्यक था। तदनुसार, गवर्नर जनरल के सीधे प्रभार में पृथक विदेश विभाग का गठन किया गया। भारत सरकार के विदेश संबंधी क्रियाकलापों को अंजाम देने के लिए पृथक राजनयिक सेवा स्थापित करने का विचार मूलत: सरकार के योजना और विकास विभाग के सचिव ले. जन. टी. जे. हटन द्वारा दिनांक 30 सितंबर, 1944 को लिखित नोट में व्यक्त किया गया था। इस नोट को टिप्पणियों के लिए विदेश विभाग को भेजे जाने पर श्री ओलफ कैरो, विदेश सचिव ने प्रस्तावित सेवा के कार्य क्षेत्र, संघटन और प्रकार्यों का वर्णन करते हुए एक विस्तृत नोट में अपनी टिप्पणियां दर्ज कीं। श्री कैरो ने यह उल्लेख किया कि चूंकि भारत का स्वाधीनता और राष्ट्रीय संचेतना की अवस्थिति में अवतरण हुआ है, विदेश में प्रतिनिधित्व की एक ऐसी व्यवस्था निर्मित करना अत्यावश्यक है जो भावी सरकार के उद्देश्यों के अनुरूप हो। सितंबर, 1946 में भारत सरकार ने विदेशों में भारत के राजनयिक, कौंसली और वाणिज्यिक प्रतिनिधित्व के लिए भारतीय विदेश सेवा नामक एक सेवा के सृजन का निर्णय लिया था।

1947 में ब्रिटिश भारत सरकार के विदेश और राजनीतिक विभाग का लगभग पूर्ण रूप से विदेश और राष्ट्रमंडल संबंध नामक नए मंत्रालय में रूपांतरण हुआ और 1948 में संघ लोक सेवा आयोग की संयुक्त सिविल सेवा परीक्षा प्रणाली के तहत नियुक्त प्रथम बैच ने सेवा आरंभ की। भारतीय विदेश सेवा में प्रविष्टि की यह प्रणाली आज भी भर्ती का मुख्य माध्यम है।

प्रशिक्षण

संयुक्त सिविल सेवा परीक्षा के माध्यम से भारतीय विदेश सेवा में चयन के उपरांत नव नियुक्तों को बहुमुखी और विस्तृत प्रशिक्षण दिया जाता है। जिसका उद्देश्य उन्हें राजनयिक गुण-विशेषताएं और कौशल प्रदान करना है। परीवीक्षार्थी अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के अपने सहयोगियों के साथ लाल बहादुर शास्त्री नेशनल एकेडमी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, मसूरी में प्रशिक्षण आरंभ करते हैं। उसके पश्चात् परीवीक्षार्थी नई दिल्ली स्थित विदेश सेवा संस्थान में उन विभिन्न विषयों में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं जिसकी जानकारी एक वृत्तिक राजनयिक को होनी आवश्यक है। विदेश सेवा संस्थान के पाठ्यक्रम में व्याख्यान, सरकार के विभिन्न स्कंधों के साथ कार्य में लगाना और देश के भीतर और विदेश दोनों में सुपरिचयन यात्राएं शामिल हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य राजनयिक नियुक्तों को इतिहास की बारीकियों, राजनय के ज्ञान और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से अवगत कराना और सामान्य आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांतों का बोध कराना है। प्रशिक्षण कार्यक्रम के सम्पन्न होने पर अधिकारी को उसकी अनिवार्य विदेशी भाषा आबंटित की जाती है। विदेश मंत्रालय में डेस्क अटैचमेंट की अल्प अवधि के उपरांत अधिकारी को ऐसे देश में स्थित भारतीय मिशन में नियुक्त किया जाता है जहां उसे आबंटित अनिवार्य विदेशी भाषा उस देश की स्थानीय भाषा हो और उसका दाखिला भाषा पाठ्यक्रम में कराया जाता है। उस अधिकारी से अपेक्षा की जाती है कि वह आबंटित अनिवार्य विदेशी भाषा में दक्षता हासिल करेगा और सेवा में स्थायी होने से पूर्व आवश्यक परीक्षा उत्तीर्ण करेगा।

प्रकार्य

वृत्तिक राजनयिक के तौर पर विदेश सेवा अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विभन्न मुद्दों पर देश-विदेश दोनों में भारत के हितों को आगे रखेगा। इनमें द्विपक्षीय राजनैतिक और आर्थिक सहयोग, व्यापार और निवेश संवर्धन, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, प्रेस और मीडिया संपर्क तथा सभी बहुपक्षीय मुद्दे शामिल हैं। भारतीय राजनयिक के प्रकार्य संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित हैं-

अपने दूतावासों, उच्चायोगों, कौंसलावासों और संयुक्त राष्ट्र जैसे बहुपक्षीय संगठनों के स्थायी मिशनों में भारत का प्रतिनिधित्व करना;

अपनी नियुक्ति के देश में भारत के राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करना;

अनिवासी भारतीयों/भारतीय मूल के व्यक्तियों सहित मेजबान राष्ट्र और उसकी जनता के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बढ़ाना;

नियुक्ति के देश में उन घटनाक्रमों की सही-सही जानकारी देना जो भारत के नीति-निर्माण को प्रभावित कर सकते हों;

मेजबान राष्ट्र के प्राधिकारियों के साथ विभिन्न मुद्दों पर समझौता-वार्ता करना; और

विदेश स्थित भारतीय राष्ट्र को और विदेशियों को कौंसली सुविधाएं प्रदान करना।

देश के भीतर विदेश मंत्रालय, विदेशों के साथ संबंधों से जुड़े सभी पहलुओं के लिए उत्तरदायी है। क्षेत्रीय प्रभाग, द्विपक्षीय राजनैतिक और आर्थिक कार्य देखते हैं जबकि क्रियात्मक प्रभाग नीति नियोजना, बहुपक्षीय संगठनों, क्षेत्रीय दलों, विधिक मामलों,

निशस्त्रीकरण, नयाचार, कौंसली, भारतीय डायसपोरा, प्रेस और प्रचार, प्रशासन और अन्य कार्यों को देखते हैं।

टिप्पणी

कार्यरत अधिकारी

हाल के वर्षों में भारतीय विदेश सेवा में प्रतिवर्ष औसतन 8 से 15 अधिकारी नियुक्त किए गए हैं। इस सेवा संवर्ग में इस समय 600 अधिकारी हैं जो लगभग 162 भारतीय मिशनों और विदेशों में स्थित पदों तथा देश में स्थित मंत्रालय में विभिन्न पदों पर कार्य कर रहे हैं।

भारत की विदेश नीति की मुख्य विशेषताएं

हमारी सरकार विदेशी मामलों को लेकर असाधारण रूप से सक्रिय रही है। प्रधानमंत्री द्विपक्षीय और बहुपक्षीय बैठकों के लिए न केवल अनेक पड़ोसी और अन्य देशों की यात्रा पर गए, बल्कि भारत को आज की विश्व राजनीति में सही स्थान पर खड़ा करने के लिए उन्होंने विदेशी प्रतिनिधियों को भी कई बार आमंत्रित किया। हालांकि, यह प्रश्न हमारे मन में उठता रहा है कि इस विदेश नीति का प्रेरक बल क्या है और क्या इस तरह की विदेश नीति क्या केवल इसी सरकार तक सीमित है या भविष्य में भी यह इसी तरह का आकार ग्रहण करेगी?

भारत को आज उभरती हुई विश्वशक्ति माना जाता है। कई सालों की टिकाऊ उच्च वृद्धि दर और 2007-2008 के वित्तीय संकट से उबरकर, भारत ने न केवल अपने संभ्रांत वर्ग का ध्यान अपनी ओर खींचा है, बल्कि एक उभरती विश्व शक्ति के रूप में दुनिया का ध्यान भी अपनी ओर खींचा है। भारत की वृद्धि की बात करें तो हम इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकते हैं कि भारत की आबादी बढ़ रही है और माना जा रहा है कि जल्द ही इस मामले में वह चीन को पीछे छोड़ देगा, और इसीलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि भारत इसी आर्थिक वृद्धि को कायम रख पाएगा या नहीं, जो कि भारत के सुपर पॉवर के रूप में उभरने के लिए जरूरी शर्त है। भारत की बढ़ती परमाणु और आर्थिक क्षमताओं के साथ, इसका दुनिया की महानतम बड़ी शक्तियों में से एक के रूप में इसका उभरना निश्चित ही है। आर्थिक विकास के साथ भी, भारत अब प्रतिरक्षा पर और ज्यादा खर्चा कर रहा है और भारत में सेना को आधुनिक बनाने के व्यवस्थित प्रयास को भी देखा जा सकता है। हालांकि, भारत आज विश्व शक्ति के तौर पर कहां खड़ा है, यह दुनिया के महानतम देशों के साथ इसकी तुलना करके ही परखा जा सकता है।

शक्ति नापने और शक्तियों की तुलना करने के मानक तरीकों में सैन्य, आर्थिक और ताकत के अन्य रूपों के संकेतक गिनना शामिल होता है। सैन्य शक्ति के लिए, परमाणु अस्त्र, और वितरकवाहन, थलसेना, वायुसेना और नौसेना का आकार, विदेशी ठिकानों की संख्या और शक्ति प्रक्षेपण क्षमताएं, अंतरिक्ष स्थित संपत्तियां और साइबरस्पेस क्षमताएं; आर्थिक शक्ति के लिए, शुद्ध और तुलनात्मक जीडीपी, विश्व व्यापार में हिस्सा, विदेशी मुद्रा भंडार, कर राजस्व, सैन्य बजट, औद्योगिक उत्पादन, महत्वपूर्ण ऊर्जा तथा नर्म ऊर्जा के अन्य स्रोतों का स्वामित्व, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय, बौद्धिक, वैचारिक और सांस्कृतिक कौशल, अंतरराष्ट्रीय संगठनों में उपस्थिति और अधिकार की स्थिति, सांस्थानिक शक्ति वगैरह शामिल होते हैं।

उक्त मानदंड के आधार पर, देशों को अतिशक्तिशाली (सुपर पावर), महाशक्ति (ग्रेट पावर) और उभरती हुई शक्ति की श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। लेखक बैरी बुजान और ओले वीवर ने सुपर पावर को परिभाषित करते हुए कहा है- 'एक ऐसा राष्ट्र, जिसमें सबसे पहले तो सैन्य, आर्थिक आदि क्षमताओं का व्यापक विस्तार हो, जो कि व्यापक वैश्विक पहुंच की शक्ति हो; और, दूसरा, जो, दूसरों के इस तरह के हिसाब में मान्य किया जाता हो'। अमेरिकी राजनीति शास्त्री जॉन मीयरशीमर जोर देकर कहते हैं कि व्यापक सैन्य क्षमताओं और उनके अंतर्निहित आर्थिक और प्रौद्योगिकीय आधार के अतिरिक्त, किसी सुपर पावर को अपने स्वयं के क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रभावी होने भर की जरूरत नहीं होती, बल्कि अपनी पहुंच और प्रभाव के किसी भी क्षेत्र से परे भी इसका विस्तार करने की जरूरत होती है।

महाशक्ति वाला देश वह होता है जिसके पास महान क्षमताएं तो होती हैं, लेकिन प्रभाव के सभी क्षेत्रों में नहीं। क्षेत्रीय शक्ति का देश वह होता है जिसकी शक्ति उसके गृह क्षेत्र में होती है और क्षेत्रीय शक्ति का दर्जा बुनियादी तौर पर आर्थिक क्षमता के बजाय सैन्य शक्ति पर निर्भर करता है। मध्यम शक्ति के देश की अवधारणा तुलनात्मक रूप से अस्पष्ट है। मध्यम शक्ति के देश को ऐसे देश के तौर पर देखा जा सकता है जिसके अंदर क्षमताओं को आकार देने और परिभाषित करने के तंत्र का अभाव होता है, लेकिन उसकी अनदेखी नहीं की जा सकती है; मध्यम शक्ति के देश महाशक्ति के देश से आगे नहीं निकल सकते लेकिन उनके अंदर महाशक्तियों की मनमानी का विरोध करने की क्षमताएं होती हैं।

विद्वान कहते हैं कि समय के साथ-साथ सत्ता का संक्रमण हो सकता है और होता है जिसका मतलब होता है कि उभरती शक्ति मध्यम शक्ति बन सकती है और मध्यम शक्ति भी महाशक्ति बन सकती है। विद्वानों के अनुसार, यह संक्रमण औद्योगिकीकरण, बढ़ती सैन्य और प्रौद्योगिकीय शक्ति, और राज्यों तथा देशों के अंदर सत्ता संतुलन बदलने से होता है। इसके अलावा, सत्ता संक्रमण दुनिया के देशों के बीच युद्ध का भी संभावित कारण हो सकता है।

भारत की बात करें, तो यह कहा जा सकता है कि भारत अतिशक्तिशाली या सुपर पावर तो कतई नहीं है। परमाणु हथियार और इंटरमीडियेट रेंज की बैलेस्टिक मिसाइलें (अग्नि-5) रखते हुए भी इसके अंदर वैश्विक प्रहार की क्षमता, गंभीर अतिरिक्त-क्षेत्रीय शक्ति प्रक्षेपण का अभाव है, अपने क्षेत्र में निर्णायक रूप से प्रभावी नहीं है, और न ही आर्थिक या सैन्य संतुलन के हिसाब से इसके पास तंत्र को आकार देने की शक्ति है। वहीं दूसरी तरफ, भारत कोई छोटी शक्ति भी नहीं है, और विश्व राजनीति और अर्थव्यवस्था में इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

भारत सही अर्थों में मध्यम शक्ति के देश की परिभाषा में फिट बैठता है। आज का भारत एक उभरती शक्ति है- मध्यम शक्ति है जो वैश्विक सत्ता पदानुक्रम में ऊपर की ओर बढ़ रहा है। दूसरे शब्दों में, भारत सत्ता संक्रमण के दौर से गुजर रहा है जिसमें वह ऐसी क्षमताओं का विकास कर सकता है जिनसे वह महाशक्ति बन सकता है। अभी भारत एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में सीमित है क्योंकि पड़ोसी देश चीन और पाकिस्तान के पास परमाणु हथियार हैं। इसलिए, भारत डर पैदा करने वाले हथियारों के व्यवस्थित उपयोग को रोकने में असमर्थ माना जाता है, यहां तक कि पाकिस्तान के सामने भी ऐसा

नहीं कर सकता। इसके अलावा, भारत अभी अपनी सैन्य शक्ति के आधुनिकीकरण का काम भी कर ही रहा है। दक्षिण में, हिंद महासागर के व्यापक विस्तार के कारण, भारत सत्ता प्रक्षेपण क्षमताओं के विकास में भी अक्षम है। ऐसे में, भारत दक्षिण एशिया में सीमित शक्ति है। भारत को अन्य देश दक्षिण एशिया का स्वाभाविक नेता भी नहीं मानते और अन्य देशों पर इसका किसी तरह से दबदबा भी नहीं है। तो, जबकि भारत का क्षेत्रीय महत्व और प्रभाव तो है, लेकिन यह दक्षिण एशिया की प्रभुत्वशाली शक्ति नहीं है, जिससे इसकी क्षेत्रीय शक्ति के दर्जे पर भी प्रश्न खड़ा होता है। भारत की उभरती आर्थिक शक्ति निश्चित ही इसे उभरती मध्यम शक्ति के देश के रूप में पेश करती है।

हालांकि, इस उभरती शक्ति होने के अलावा भी भारत के सामने कई अन्य बाध्यताएं हैं। यह ऊर्जा तथा संसाधन आयात के मामले में काफी आश्रित है। भारत का निर्माण और प्रौद्योगिकीय आधार भी कमजोर है। यह हथियार आयातक भी है, और सभी प्रमुख मंचों-लड़ाकू विमान, मैदानी जहाजों, पनडुब्बियों, टैंकों और तोपखाने पर ये बाहरी आपूर्ति पर काफी ज्यादा निर्भर है, और परमाणु शस्त्रागार भी इसका गुणात्मक रूप से और संख्यात्मक रूप से सीमित है।

एक उभरते मध्यम शक्ति के देश के तौर पर, भारत की किसी भी भावी विदेश नीति के तत्व निम्नलिखित होंगे–

- **निरंतरता के तत्व :** कई दशकों से भारत के लिए निरंतरता के तत्व, चीन और पाकिस्तान के साथ तनावपूर्ण संबंध हैं। इन देशों के साथ अनेक अनसुलझे विवाद हैं, और परमाणु निरस्त्रीकरण के साथ-साथ सीमा और क्षेत्रीय विवाद भी बाधक बने हुए हैं। भारत चीन के साथ-साथ पाकिस्तान के साथ भी सशस्त्र टकराव में शामिल रहा है। ये सशस्त्र टकराव इन देशों के साथ भारत की विदेश नीति में बाधक हैं।

  भविष्य की ओर देखें, तो यह स्थिति बदलती नहीं दिख रही है क्योंकि विवाद तो अनसुलझे ही हैं। पाकिस्तान की तरफ से बढ़ती आतंकवादी गतिविधियों के कारण उसके साथ संबंधों में तकरीबन गतिरोध बना हुआ है। चीन के साथ भी वास्तविक नियंत्रण रेखा पर बार-बार टकराव होता रहता है और चीन के साथ बढ़ते व्यापारिक संबंधों के बावजूद, उसके साथ सुरक्षा संबंध तनावपूर्ण बने हुए हैं।

  चीन अपनी बढ़ती सैन्य क्षमताओं के साथ तो खतरा बना ही हुआ है, साथ ही उससे एक और खतरा तिब्बत में ब्रह्मपुत्र के पानी को पूर्व और उत्तर की ओर मोड़ने का है जो भारत के पूर्वोत्तर के प्रांतों पर असर डालेगा। अफगानिस्तान और म्यांमार समेत भारत के पड़ोसी देशों को भी चीन लुभा रहा है, और इन सभी देशों में उसने कूटनीतिक घुसपैठ कर ली है। चीन गल्फ की खाड़ी के मुहाने के पास ग्वादर के पाकिस्तानी बंदरगाह पर भी नियंत्रण करने में सक्षम हो चुका है। चीन पाकिस्तान में चश्मा में दो अतिरिक्त नाभिकीय रिएक्टर बना रहा है। तो, भारत और चीन के संबंध मृदु होने की संभावना बहुत दूर है। बांग्लादेश ही एकमात्र ऐसा देश है जिसके साथ भारत अपना सीमा-विवाद सुलझाने में सफल हुआ है। पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंधों में सुधार विदेश नीति की भावी संभावनाओं के लिहाज से बहुत जरूरी है।

टिप्पणी

- **परिवर्तन के तत्व :** शीतयुद्ध के दौर से ही, भारत की विदेश नीति में परिवर्तन के कुछ तत्व देखे जा सकते हैं। भारत इजराइल के साथ अपने संबंधों में बदलाव करने में सफल हुआ है। ये संबंध निरंतर मजबूत हो रहे हैं और प्रतिरक्षा उपकरणों के आयात पर आधारित हैं। हालांकि, भारतीय विदेश नीति फिलिस्तीन के मामले में अब तक अपरिवर्तित रही है। 2000 के दशक में इजराइल भारत को हथियारों की आपूर्ति करने वाला दूसरा सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता रहा।

लुक ईस्ट पॉलिसी निश्चित ही परिवर्तन का तत्व है जिसे भारत की विदेश नीति में देखा जा सकता है। इसे अब एक्ट ईस्ट पॉलिसी कहा जाने लगा है। शीतयुद्ध के दिनों में भारत की विदेश नीति में दक्षिण पूर्व एशियाई क्षेत्र की अनदेखी की गई थी। विदेश नीति में इन परिवर्तनों के साथ, भारत अब दक्षिण-पूर्व राष्ट्र संघ (आसियान), आसियान मंच, और ईस्ट इंडिया समिट का सदस्य बन चुका है।

विदेश नीति में बदलाव से आसियान देशों के साथ मुक्त व्यापार के द्वार खुले और आज यह व्यापार चीन के व्यापार की तुलना में भारत के व्यापार का बहुत बड़ा हिस्सा है। भारत की इन मंचों पर, साथ ही आसियान देशों के रक्षामंत्रियों की बैठक में सक्रियता के साथ भागीदारी की है, और आसियान समुद्री मंच का विस्तार उसने किया है। भारत ने जापान के साथ भी संबंधों में विकास किया है जापान अब भारत को दोहरे उद्देश्य वाली, थल-जल विमान प्रौद्योगिकी बेचने के लिए प्रतिबद्ध हो रहा है।

भारत अफ्रीका के साथ भी दीर्घकालीन संबंध बनाने की कोशिश कर रहा है जो कि तेल और गैस समेत प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न महाद्वीप है। 2008 से ही, मैत्रीपूर्ण और टिकाऊ संबंध विकसित करने के लिए चार भारत-अफ्रीका सम्मेलन हो चुके हैं। मौजूदा सरकार सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात से भी निवेश जुटाने में सफल हुई है। भारत अधोसंरचना और ऊर्जा विकास के लिए इन देशों से सहयोग चाहता है।

विदेश नीति में परिवर्तन का ये तत्व भविष्य के लिए बेहतर माना जाता है जबकि भारत विदेशी निवेश की अपेक्षा करता है। सरकार भारत के आर्थिक विकास में विदेशी निवेश के महत्व को महसूस करती है। निवेश और वृद्धि भारत की घरेलू और वैश्विक स्थिरता के लिए तथा विश्व बाजार में भारत को नेता बनाने के लिए अनिवार्य है।

विदेश नीति में परिवर्तन के मामले में, भारत परमाणु और प्रतिरक्षा प्रौद्योगिकी भी हासिल करने की कोशिश कर रहा है। भारत ने अमेरिकी कंपनियों को लुभाने के लिए असैनिक परमाणु ऊर्जा उत्पादन में निवेश के लिए अपने असैनिक परमाणु दायित्व कानून में बदलाव किया है। भारत ने एनएसजी में शामिल होने के लिए भी आवेदन किया है जिसमें उसे 2016 के मध्य में परमाणु निरस्त्रीकरण से मजबूती से जुड़े होने के कारण चीन और अन्य देशों के कारण उसे असफलता मिली थी। हालांकि, भारत मिसाइल टेक्नॉलजी कंट्रोल रेजीम (एमटीसीआर) में जून 2016 में शामिल किया जा चुका है और वासेनार अरेंजमेंट तथा ऑस्ट्रेलिया ग्रुप में भी शामिल होना चाहता है। प्रतिरक्षा प्रौद्योगिकी के मामले में, भारत ने

टिप्पणी

अप्रत्याशित कदम उठाते हुए अपने प्रतिरक्षा उद्योगों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की अनुमति देते हुए इसे 100 प्रतिशत विदेशी स्वामित्व तक की अनुमति दे दी। अमेरिका के साथ प्रतिरक्षा व्यापार और प्रौद्योगिकी पहल के हिस्से के तौर पर भारत उन्नत अमेरिकी प्रतिरक्षा उपकरण और प्रौद्योगिकियां हासिल करने की दिशा में भी निरंतर आगे बढ़ रहा है।

भारत की विदेश नीति में परिवर्तन का एक और तत्व भारत की अनेक आर्थिक और सुरक्षा सरोकारों के बहुपक्षीय मंचों में भागीदारी में देखा जा सकता है। भारत शंघाई सहयोग संगठन में शामिल हो चुका है। भारत चीन द्वारा प्रोत्साहित, एशियाई अधोसंरचना बैंक में भी शामिल हो चुका है जिसका मुख्यालय शंघाई में है, और ब्रिक्स द्वारा प्रोत्साहित न्यू डेवलपमेंट बैंक में भी शामिल हो चुका है। उसने दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) में तथा बे ऑफ बंगाल इनीशिएटिव फॉर मल्टी सेक्टॉरल टेक्नीकल एंड इकॉनॉमिक कोऑपरेशन (बिमस्टेक) में भी अहम भूमिका निभाई है।

भारत ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए भी दबाव बनाया है जिससे कि उसकी मध्यम शक्ति के देश से उठकर महाशक्ति का देश बनने की इच्छा जाहिर होती है।

- **भारत-अमेरिका संबंध :** भविष्य की संभावना के हिसाब से, भारत की विदेश नीति में हुए परिवर्तनों में से एक अमेरिका के साथ उसके संबंधों में सुधार भी है। 1990 के आरंभ में, अमेरिका-पाकिस्तान सहयोग तथा परमाणु निरस्त्रीकरण पर अमेरिकी नीति में सख्ती तथा कश्मीर मसले पर पाकिस्तान के साथ अमेरिकी सहानुभूति के कारण भारत और अमेरिका के संबंधों में तनाव आ गया था। हालांकि 1990 के दशक के अंत-अंत तक और 2000 के दशक के आरंभ में भारत-अमेरिका संबंधों में एक बदलाव दिखा जिसका कारण सोवियत संघ की गिरती शक्ति था। तुलनात्मक तौर पर रूस के कमजोर होने के बाद अमेरिका को इस बात से ज्यादा परेशानी नहीं रही कि भारत को रूस से हथियारों की आपूर्ति होती है। अमेरिका-पाकिस्तान संबंध भी 9/11 के बाद बिगड़े। भारत और अमेरिका ने एक परमाणु समझौते पर भी हस्ताक्षर किए जिससे अमेरिका को भारत के परमाणु हथियारों के इस्तेमाल को लेकर जो डर था, वह काफी हद तक दूर हो गया। हालांकि, भारत की विदेश नीति में ये परिवर्तन अमेरिकी विदेश नीति से प्रभावित रहा है। अमेरिका एशिया में चीन की बढ़ती ताकत से चिंतित रहा है और भारत को हरसंभव सहायता करके अमेरिका ने एशिया में सत्ता संतुलन बनाने की कोशिश की है। अमेरिका तथा एशिया के अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने की भारतीय विदेश नीति से उसे कई फायदे, लाभ और अवसर मिले हैं जो भविष्य की विदेश नीति की संभावनाओं पर भी असर डालते रहेंगे।

भारतीय विदेश नीति में इन परिवर्तनों के साथ, भारतीय विदेश नीति की भावी दिशाओं के संदर्भ में तीन व्यापक परिदृश्य देखे जा सकते हैं:

- **अमेरिका का प्रभुत्व :** अगर अमेरिका एशिया में चीन की बढ़ती ताकत को संतुलित करने में सफल रहता है तो अमेरिका का पूर्ण दबदबा कायम हो सकता

टिप्पणी

है। रूस की ताकत कम हो चुकी है और वह अमेरिका की बढ़ती ताकत को संतुलित करने के लिए चीन के साथ सहयोग कर सकता है। ऐसी सूरत में भारत अमेरिका और उसके एशिया तथा अन्य जगहों के मित्रों के संघबद्ध नेटवर्क के साथ गठबंधन कर सकता है। हालांकि, ऐसी स्थिति में अमेरिका के साथ सहयोग की सीमाएं भी रहेंगी। यहां तक कि मंदी के दौर में भी चीन भारत और पश्चिमी देशों की तुलना में काफी तेज गति से आगे बढ़ रहा है। भारत के लिए चीन को एकदम अलग-थलग कर पाना संभव नहीं है क्योंकि चीन तकरीबन सभी अन्य एशियाई देशों का व्यापारिक भागीदार है। जहां तक भारत का सवाल है, चीन के पास सिंधु और ब्रह्मपुत्र नदियों के उद्‌गमों पर नियंत्रण तब भी रहेगा और उसके पास ब्रह्मपुत्र का पानी मोड़ने की क्षमता है। चीन पाकिस्तान के साथ परमाणु संबंध भी जारी रखेगा। साथ ही, चीन भारत का व्यापारिक भागीदार और पूंजी का सशक्त स्रोत रहेगा। चीन के साथ सीमा युद्ध होने पर अमेरिका किसी भी तरह से भारत की रक्षा नहीं कर पाएगा। तो बुनियादी तौर पर भारत चीन को किनारे करके अमेरिका के साथ भागीदारी नहीं कर सकता। जहां तक रूस का संबंध है, वह भारत को सैन्य प्रौद्योगिकी का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता है और इसलिए भारत रूस के साथ भी अपने संबंधों में एकदम कोई बड़ा बदलाव नहीं कर सकता। इसलिए, जहां तक भारत की विदेश नीति का संबंध है, भविष्य में भारत पूरी तरह से अमेरिका के साथ नहीं हो सकता, भले ही अमेरिका सबसे प्रभुत्वशाली शक्ति के रूप में उभर आए।

- **यथास्थिति बनाए रखना :** भारत की भावी विदेश नीति का दूसरा परिदृश्य यथास्थिति बनाए रखने का है। ऐसी सूरत में भारत अमेरिका तथा उसके सभी एशियाई सहयोगियों के साथ पुनर्मेल जारी रख सकता है। भारत हथियार तथा प्रतिरक्षा प्रौद्योगिकी रूस के बजाय अमेरिका से हासिल करने की दिशा में भी लगातार लेकिन आंशिक प्रयास करता रह सकता है। भारत अफ्रीका, मध्य-पूर्व और अन्य देशों के साथ निवेश और प्रौद्योगिकी के बढ़े मिश्रण के लिए दीर्घकालीन संबंधों को जारी रख सकता है और उन्हें कायम करने की कोशिश जारी रख सकता है।
- **चीन का बढ़ा प्रभुत्व :** अगर ऐसा परिदृश्य बनता है जिसमें चीन अमेरिका से ज्यादा ताकतवर शक्ति बन जाए तो चीन न केवल भारत के लिए, बल्कि दुनिया के सभी देशों के लिए मुख्य सुरक्षा और आर्थिक खतरा बन जाएगा। इस परिदृश्य का नतीजा चीन और रूस के बेहतर संबंध होंगे जो फिर से भारत के लिए बड़ा सुरक्षा खतरा होंगे। ऐसी सूरत में अनेक दक्षिण एशियाई देश चीन की तरफ झुकेंगे, और निश्चित ही चीन-पाकिस्तान संबंध भी हैं जिसका मतलब होगा कि भारत पर किसी भी सीमा क्षेत्र से हमला हो सकता है। चीन के बढ़ते दबदबे के सामने भारत केवल उस स्थिति में डटा रह सकता है जब भारत चीन की तुलना में ज्यादा तेजी से वृद्धि करे।

विदेश नीति से संबंधित अनेक क्षेत्रों की चर्चा के बाद हम कह सकते हैं कि भारत की विदेश नीति का निर्धारण केंद्र सरकार के लिए बहुत कठिन काम है। हालांकि, भारत

टिप्पणी

के संघीय और लोकतांत्रिक स्वरूप के कारण केंद्र सरकार के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह विदेश नीति तय करते समय सभी राज्यों से सुझाव और उनकी मांगें आमंत्रित करे। भारतीय विदेश नीति आजादी के बाद से ही कई परिवर्तनों से गुजरी है। इन परिवर्तनों का मुख्य कारण मुख्य तौर पर चीन, पाकिस्तान और अमेरिका के साथ उसके बदलते संबंध रहे हैं। अगर हम भारतीय विदेश नीति की भावी दिशाओं पर विचार करें तो विदेश नीति निर्धारण को यह तथ्य ध्यान में रखना पड़ेगा कि भारत एक उभरती मध्यम शक्ति का देश है जिसे अपने सभी पड़ोसी देशों के साथ, और दुनिया के अन्य सभी देशों के साथ अच्छे संबंध रखने की जरूरत है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. कांग्रेस ने अपने किस अधिवेशन में ब्रिटिश सरकार से अपनी विदेश नीति स्वयं बनाने तथा संचालन करने की मांग की?

   (क) 1938, हरिपुरा अधिवेशन (ख) 1932, त्रिपुरा अधिवेशन

   (ग) 1940, रामगढ़ अधिवेशन (घ) 1946, मेरठ अधिवेशन

4. भारतीय सांस्कृतिक परिषद की स्थापना किस वर्ष हुई?

   (क) 1947 (ख) 1948

   (ग) 1949 (घ) 1950

1.4 भारत की विदेश नीति के सिद्धांत एवं निर्धारक तत्व

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत के रूप में भारत की विदेश नीति के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

1. **साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद (नस्ली) नीति का विरोध–**राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कांग्रेस ने उत्तरी बर्मा को भारत में मिलाने की निंदा की और स्वयं को ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीतियों से स्वतंत्र घोषित किया और आयरलैंड के राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन किया। 1927 में साम्राज्यवाद के विरुद्ध आयोजित ब्रुसैल्स सम्मेलन में भी भारत ने पराधीन व पिछड़े देशों के विरुद्ध साम्राज्यवादियों के शोषण की निंदा की। दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद की नीति का विरोध किया।

   भारत ने विश्व के उन सभी पराधीन देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों का समर्थन किया जो कभी उपनिवेशवाद के शिकार रह चुके थे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधीन भारत दासता के दुष्परिणामों से परिचित रहा। अत: उसके लिए साम्राज्यवाद का विरोध करना स्वाभाविक था। साम्राज्यवाद से त्रस्त सभी देशों; जैसे- इण्डोनेशिया, लीबिया, ट्यूनीशिया, अल्जीरिया, मोरक्को, अंगोला इत्यादि में उपनिवेशीय शासन से छुटकारा पाने के लिए किए जाने वाले संघर्ष में भारत ने भरपूर समर्थन किया। पश्चिम एशिया में डालर साम्राज्यवाद का सदैव विरोध और अरब राष्ट्रों का साथ दिया।

   भारत फिलिस्तीनी जनता को अपने अधिकार दिलाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा। भारत सैनिक गुटों, नाटो, सीटो, वारसा पैक्ट का विरोधी रहा है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दौरान भारत ने भेदभाव की नीति का दर्द झेला था। स्वतंत्रता पश्चात् भारत ने अपनी ब्रिटिश नीति के सिद्धांतों में इसे शामिल किया। भारत तथा अन्य गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के प्रयासों से श्री नेल्सन मण्डेला ने अपने 27 वर्षों के लंबे कारावास के पश्चात् 11 फरवरी 1990 को स्वतंत्रता प्राप्त की।

भारत ने स्वतंत्रता के बाद अपनी विदेश नीति में साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति के विरोध के सिद्धांत को शामिल किया और यह सिद्धांत आज भी भारत की विदेश नीति की महान ऐतिहासिक विरासत है जो राष्ट्रीय आंदोलन से प्राप्त हुई है।

2. **गुटनिरपेक्षता अथवा असंलग्नता की नीति**—कांग्रेस ने अंग्रेजों की अनेक नीतियों को भारत के संदर्भ में असंबद्ध किया था। कांग्रेस ने 1921 में घोषणा की कि वह ब्रिटिश सरकार की किसी भी नीति का प्रतिनिधित्व नहीं करती। आगे चलकर कांग्रेस की यह नीति विश्व स्तर पर गुटनिरपेक्ष आंदोलन का आधार बनी।

   गुटनिरपेक्षता या असंलग्नता भारत की विदेश नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण और विलक्षण सिद्धांत है। जिस समय अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ, ये दोनों महाशक्तियों के बीच शीतयुद्ध की नीति चल रही थी तथा दोनों पूंजीवादी और साम्यवादी गुट अपनी-अपनी स्थितियों को दृढ़ बनाने के लिए विभिन्न शब्दों के साथ गठजोड़ कर रहे थे, तब भारतीय नीति निर्माताओं विशेषतया पं. नेहरू ने विश्व शांति तथा भारतीय सुरक्षा तथा आवश्यकताओं के हित में यही उचित समझा था कि भारत को इस शक्ति राजनीति से पृथक ही रखा जाए।

   सकारात्मक रूप से गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य है- एक स्वतंत्र विदेश नीति, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में सक्रिय योगदान, प्रत्येक मामले को उसके गुण-दोषों के आधार पर जांचना तथा भारत के राष्ट्रीय हितों के आधार पर निर्णय लेना। नकारात्मक रूप से उसका तात्पर्य है शीतयुद्ध संधियों तथा शक्ति राजनीति से दूर रहना।

3. **शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धांत**—स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कांग्रेस की नरम विचारधारा वाला गुट अपने उद्देश्य के लिए शांतिपूर्ण ढंग से लड़ रहा था। महात्मा गांधी की अहिंसावादी नीति ही आगे चलकर शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत के रूप में भारत की विदेश नीति का सिद्धांत बनी। शांतिवादी गुट का 'जीओ और जीने दो' का सिद्धांत आज भी भारत विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धांत है।

4. **विश्व शांति व अंतर्राष्ट्रीयवाद का समर्थन**—भारत का हमेशा यही उद्देश्य रहा है कि विश्व शांति के किसी भी कदम का भरपूर स्वागत किया जाना चाहिए। आज भी भारत की विदेश नीति के प्रमुख सिद्धांत के रूप में विश्व शांति के किसी भी विचार को प्रमुखता दी जाती है।

   भारत में विश्व शांति का विचार आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना महात्मा बुद्ध व महात्मा गांधी के समय में था।

5. **अरब समर्थक नीति**—प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश सरकर द्वारा तुर्की के विरुद्ध उठाए गए कठोर कदम की भारत ने निंदा की। इस दौरान चलने वाले

खिलाफत आंदोलन का भारतीय कांग्रेस ने समर्थन किया। मुसलमानों के प्रति भारत का सहयोगपूर्ण रवैया और सकारात्मक रवैया आधुनिक विदेश नीति की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विरासत है।

टिप्पणी

6. **पड़ोसी देशों से सौहार्दपूर्ण संबंध**–स्वतंत्रता आंदोलन के समय कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया था कि भारत को पड़ोसी देशों से कोई खतरा नहीं है। इसके पीछे निहित विचार यही था कि भारत की नीति प्रारंभ से ही पड़ोसी देशों के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने की रही है। भारत आज भी पड़ोसी देशों से मधुर संबंध स्थापित करने को प्राथमिकता देता है।

भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्व

किसी भी देश की विदेश नीति को वहां का भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवेश बहुत प्रभावित करता है। विदेश नीति को कोई एक तत्व ही निर्धारित नहीं करता बल्कि विदेश नीति कई तत्वों के पारस्परिक समन्वय का परिणाम होती है। इनमें से कुछ तत्व ऐसे होते हैं जो स्थायी प्रकृति के होते हैं तथा नीति-नियंता उन तत्वों को परिवर्तित नहीं कर सकते। इन तत्वों को विदेश नीति के मूल निर्धारक तत्व कहा जा सकता है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि अन्य परिवर्तनशील तत्व; जैसे कि नेतृत्व तथा संस्थागत कारकों का योगदान कम होता है। ये तत्व भी विदेश नीति के निर्धारण में अहम भूमिका निभाते हैं।

विश्व की चार बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में अपना स्थान बना लेने के बाद विश्व का कोई भी आर्थिक अथवा व्यापार संगठन भारत की भागीदारी का महत्व समझता है। विकासशील देशों के नेता के रूप में भारतीय विदेश नीति नव-उपनिवेशवाद, संरक्षणवाद तथा विकसित देशों की दादागीरी के विरुद्ध अब और भी संघर्षशील बन रही है।

यद्यपि विदेश नीति के मूल निर्धारक तत्व भी समय के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए कुछ ऐसे सामान्य नियमों को खोजना मुश्किल होता है कि कौन-सा तत्व अन्य तत्वों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है। परंतु यह साफतौर पर कहा जा सकता है कि कुछ तत्व अपने आप में अहम होते हैं। इन तत्वों का उल्लेख निम्नानुसार है:

भूगोल

भौगोलिक एवं राजनैतिक स्थितियों को प्राचीन काल से ही महत्त्वपूर्ण कारक माना गया है। कौटिल्य एवं अरस्तू ने अपनी पुस्तकों में इन तत्वों का उल्लेख किया है। परन्तु इस तत्व की स्पष्ट व्याख्या 19वीं सदी में आकर होती है जब फ्रांसीसी विचारक विक्टर कोसिन ने भौगोलिक निर्धारकों की व्याख्या की। परंतु 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कुछ विचारकों जैसे कि फ्रैड्रिक रेटजेल; कप्तान अल्फ्रैड महान, इ.सी. सैम्पल तथा अमेरिका में हंटीगटन; हॉलफोर्ड व काइन्डर ने इंग्लैण्ड में इन तत्वों की व्याख्या की तथा भूगोल के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर प्रभाव को समझाया। परंतु बदलते समय में तकनीकी विकास, संचार साधनों में आई क्रांति तथा परमाणु शस्त्रों के निर्माण ने भूराजनैतिक तत्वों के महत्व को कम कर दिया है। फिर भी मुख्यत: दो कारणों से भू-राजनैतिक स्थिति का अहम स्थान है। भारतीय विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में इन तत्वों की भूमिका साफ तौर पर देखी जा सकती है। प्रथमत: भूगोल संबंधित कई तत्व भारतीय

टिप्पणी

विदेश-नीति को स्पष्ट तौर पर प्रभावित करते हैं। तथा द्वितीयत:, भारत तथा अन्य पड़ोसी राष्ट्रों को अभी भी उस तकनीकी विकास की दरकार है जिससे भूराजनैतिक तत्वों का महत्व गौण हो जाए। अत: भारत के लिए अभी भी अपनी भूराजनैतिक स्थिति को अनदेखा करना असंभव है।

भूगोल अथवा भूराजनैतिक स्थिति के तत्वों; जैसे कि स्थिति, आकार, संरचना, राज्य सीमाएं, जनसंख्या, मौसम, मिट्टी आदि का सम्मिश्रण होती है। ये सभी तत्व भारत की विदेश नीति के निर्माण एवं विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। चूंकि यहां हम भूगोलशास्त्री की दृष्टि से नहीं अपितु राजनीति विज्ञानी की दृष्टि से समझने का प्रयास कर रहे हैं अत: हम कुछ मुख्य तत्वों का अध्ययन ही करेंगे-

(क) स्थिति-अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का इतिहास बताता है कि किसी देश की विश्व मानचित्र पर स्थिति उसके अन्य देशों के साथ संबंधों को गहराई से प्रभावित करती है। जैसा कि हमने पहले के उल्लेख में देखा कि ब्रिटेन व अमेरिका की स्थिति ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना प्रभाव बढ़ाने में काफी मदद की है। इसी प्रकार रूप की भौगोलिक स्थिति ने नेपोलियन तथा हिटलर को मात देने में प्रमुख भूमिका निभाई।

भारत के परिप्रेक्ष्य में विश्व की सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखला का उत्तर में होना तथा विश्व के तीन महासागरों का दक्षिण में होना भारत की विदेश नीति के लिए महत्त्वपूर्ण रहा है। हिमालय पर्वत श्रृंखला ने भारत को अपने पड़ोसी राष्ट्रों से सैनिक, राजनैतिक तथा वाणिज्यिक तौर पर अलग-थलग रखा है। इसी प्रकार पूर्वी भारत में निम्न हिमालय की श्रृंखला भारत को वर्मा से अलग करती है। उत्तर-पश्चिम में पर्वत-श्रृंखला से मैदान को जोड़ने वाला एक मात्र दर्रा खैबर दर्रा है, जो कि अब पाकिस्तान में है। इसी प्रकार हिंद महासागर भी भारत को अन्य राष्ट्रों से पृथक करता है।

इसी प्रकार एशिया महाद्वीप में भारत की स्थिति ने उसे अदना से टोकियो तक में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने पर विवश किया है। ऐतिहासिक काल से भारत हिंद महासागर में एक सक्रिय शक्ति रहा है। इन आक्रमणों का प्रमुख रास्ता खैबर दर्रा ही रहा है। इसी प्रकार भारतीय सभ्यता और संस्कृति भी प्रचलित और प्रसारित हुई। इधर पूर्व में बर्मा तक, उत्तर में तिब्बत एवं चीन तथा पश्चिम में मध्य एशिया, ईरान तथा रोमन साम्राज्य पर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव पड़ा। भारतीयों के यूरोप, सिलोन, बर्मा, चीन, मध्य एशिया तक वाणिज्यिक संबंध रहे हैं। मध्य युग में इस्लाम के बढ़ते प्रभाव का असर भारत पर सीधे तौर पर पड़ा। उत्तर-पश्चिम से तुर्की-अफगानों तथा बाद में मुगलों ने भारत पर आक्रमण किए। इन आक्रमणों का भारत की सभ्यता एवं संस्कृति, रहन-सहन, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था पर व्यापक एवं दूरगामी प्रभाव पड़े।

आधुनिक युग में यूरोपीय राष्ट्रों ने समुद्र के रास्ते भारत पर अपना प्रभाव जमाया। इसका भी भारत की राजनीति, अर्थ व्यवस्था एवं संस्कृति पर गहरा असर हुआ।

भारत की महत्वपूर्ण भू-राजनैतिक स्थिति ने उसे ब्रिटिश साम्राज्य का सबसे महत्वपूर्ण स्थान बना दिया। पूर्व में तथा हांगकांग तक अपने प्रभाव को विस्तृत करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत का उपयोग किया। इसी कारण ब्रिटेन पूरे एशिया में अपनी सैन्य ताकत बनाए रखने एवं अफ्रीका तक अपना प्रभाव जमाए रखने में कामयाब रहा।

टिप्पणी

भारत की वर्तमान में इसी स्थिति ने उसे एक महत्वपूर्ण राष्ट्र बनाया है। विश्व के सभी मुख्य जल एवं वायुमार्ग भारत से होकर ही गुजरते हैं। भारत तथा हिंद महासागर दोनों ही विश्व व्यापार एवं वाणिज्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। भौगोलिक स्थिति के कारण भारत की महत्वपूर्ण स्थिति के लिए पंडित नेहरू कहते थे कि- "भारत पूर्व एवं पश्चिम के बीच एक पुल की भांति है तथा इसी कारण विश्वमामलों में सक्रियता उसकी विवशता है।"

भारत की इसी महत्ता के कारण दोनों महाशक्तियों अमेरिका व सोवियत संघ ने भारत की स्वतंत्रता के बाद उसे अपने खेमे में शामिल करने के भरसक प्रयत्न किये। इसी कारण भारत शीतयुद्ध के दौरान प्रत्येक मसले पर अहम भूमिका अदा करता रहा। भारत की इसी भू-राजनैतिक स्थिति ने उसे गुटनिरपेक्ष आंदोलन में अहम सहभागी बनाया। अन्य शब्दों में, भारत के राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं वाणिज्यिक संबंधों का आधार हिंद महासागर तथा अन्य सागरों के बीच की उसकी स्थिति रही है।

भारत की भौगोलिक स्थिति ने संस्कृतियों पर भी अहम प्रभाव डाला है। हिंदू एवं बौद्ध धर्म, जैन धर्म का अभ्युदय एवं विस्तार इसी का परिणाम है। भारत में एक बड़ी जनसंख्या इस्लाम एवं ईसाई धर्म को मानने वाली है। 19वीं सदी के अंत में स्वामी विवेकानंद की अमेरिका तथा यूरोप की यात्रा तथा सार्वभौमिक धर्म की अपील जैसे विचारों का अभ्युदय एवं प्रसार भारत जैसे देश में ही संभव था।

(ख) आकार– रैटजेल के शब्दों में, "आकार की जागरूकता" किसी राष्ट्र के अपने भविष्य के लिए महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। एक बड़े राष्ट्र के लोग वृहत् सोच वाले होते हैं तथा छोटे राष्ट्र के लोग संकुचित विचारधारा के होते हैं। यद्यपि विश्व इतिहास इस कथन की सत्यता को झुठलाता है परंतु इससे आकार की किसी देश के लिए महत्ता का अवश्य पता चलता है। वर्तमान समय में विश्व अर्थव्यवस्था एवं राजनीति में उसके अभ्युदय का प्रमुख कारण उसका आकार एवं अन्य भौगोलिक विशेषताएं हैं। सामान्यतः एक बड़ा राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण होता है। यही कारण है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस दोनों ही विश्व के सबसे बड़े देश हैं तथा साथ ही खनिज सम्पदा से परिपूर्ण भी। इसी कारण दोनों राष्ट्र विश्व की दो महाशक्तियां रहे। इसी प्रकार भारत और चीन के अभ्युदय का प्रमुख कारण उनका आकार तथा प्राकृतिक संसाधनों में उनकी प्रचुरता ही है। इस कारण दोनों विश्व राजनीति में अहम भूमिका रखते हैं। ब्राजील के अभ्युदय के पीछे भी यही प्रमुख कारण है।

इसी प्रकार भारत के आकार का प्रभाव उसकी बाह्य सुरक्षा पर भी पड़ता है। अगर किन्हीं दो राष्ट्रों में सैन्य क्षमता में बहुत अधिक अंतर नहीं हो, किसी अन्य राष्ट्र पर इतने बड़े देश पर कब्जा करने की संभावनाएं नहीं होतीं। नेपोलियन तथा हिटलर पूरे यूरोप को रौंदने के बाद भी रूस पर अपना नियंत्रण नहीं स्थापित कर पाए। रूस के आकार ने उसकी सुरक्षा में अहम भूमिका अदा की है।

यही कारण रहा कि आरंभ से ही प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में एक जागरूक राष्ट्र के रूप में रखी न कि छोटे, कम जनसंख्या वाले, शांत एवं निष्क्रिय राष्ट्र जैसी। उनका कहना था कि, "मैं कुछ छोटे

एशियाई एवं यूरोपीय राष्ट्रों के विश्व महाशक्तियों के दबाव के आगे झुकने की विवशता को समझ सकता हूं क्योंकि उनके पास इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं था। उनकी विरोधी शक्तियां बहुत शक्तिशाली हैं तथा उनके लिए उनके बचने का कोई स्थान नहीं। परंतु मुझे नहीं लगता कि यह बात भारत के संबंध में लागू होती है। भारत इतना विशाल है कि किसी अन्य राष्ट्र की विशालता उसे झुकाने के लिए अपर्याप्त है।'' भारत विश्व में इसी कारण अहम भूमिका निभाने के लिए बाध्य है।

टिप्पणी

(ग) हिमालय फ्रन्टियर- 1963 में पंडित नेहरू ने हिमालय की महत्ता के बारे में कहा कि अगर हिमालय पर किसी बाहरी शक्ति का नियंत्रण होता है तो यह भारत के मैदानों तथा सागरों को विश्व के लिए खोल देगा। ऐसे में भारत के लिए खतरा पूरे दक्षिण पूर्वी तथा दक्षिण एशियाई राष्ट्रों के लिए खतरा बन जाता है। अर्थात् भारत की आक्रमणकारियों के रोकने की प्रतिबद्धता तथा अपनी संप्रभुता को बनाए रखने की आकांक्षा पूरे क्षेत्र की शांति एवं स्थिरता के लिए आवश्यक है।

उत्तरी क्षेत्र के सुदूर पश्चिम में भारत-पाक उपमहाद्वीप में पाक-अधिकृत कश्मीर है, जो कि चीन के सिक्यांग क्षेत्र के साथ लगा हुआ है। काराकोरम पर्वत शृंखला में करीब आठ ऐसे स्थान हैं जो इस क्षेत्र को सिन क्यांग से जोड़ते हैं। ये सभी दर्रे प्राचीन समय में अंतर-महाद्वीपीय व्यापार का साधन रहे हैं तथा आज गिलगित व सिनक्यांग को जोड़ते हैं। सैन्य क्षेत्र में वर्तमान में एक बड़ी चुनौती इन रास्तों की सुरक्षा है। वास्तव में सुरक्षा की ये समस्या सैन्य समस्या की बजाए राजनैतिक अधिक है। इसी क्षेत्र के पूर्व में लद्दाख क्षेत्र है जहां चीन के प्रभुत्त्व को लेकर बार-बार आंदोलन होते रहे हैं। वर्तमान में ये सभी दस रास्ते चीन के नियंत्रण में हैं तथा चीन यहां सड़क निर्माण में लगा हुआ है। इस प्रकार यांग सिक्यांग तथा अन्य क्षेत्रों को सड़कों द्वारा जोड़ दिया गया है। इन रास्तों पर नियंत्रण से चीन ने अपनी सुरक्षा स्थिति मजबूत कर ली है। अब तो चीनी सेना की उपस्थिति ने भारत की उत्तरी सीमांत प्रदेश के लिए चुनौतियां खड़ी कर दी हैं।

चीन के अधिकृत क्षेत्र के बाद भारत के नियंत्रण में लद्दाख-तिब्बत क्षेत्र हैं जिसमें सुरक्षात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण रास्ते नहीं हैं। इसके बाद पंजाब (अब उत्तरांचल)-तिब्बत क्षेत्र है जिसमें स्थीती-पास पड़ता है। इसी के बाद हिमाचल प्रदेश का शिपकी पास है जो प्राचीन समय से ही व्यापार का साधन रहा है। इसके बाद उत्तर-प्रदेश के रास्ते जाते हैं जिसमें करीब ग्यारह पास हैं। ये सभी रास्ते सिनक्योंग तिब्बत हाइवे के कारण सुरक्षा दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र हैं।

इसी प्रकार भारत-नेपाल सीमा भी हिमालय फ्रंटियर पर पड़ती है। यद्यपि भारत नेपाल के साथ बेहतर संबंध बनाने को सदैव इच्छुक रहता है परन्तु चीन के साथ बढ़ती नेपाल की प्रगाढ़ता ने उसे काफी हद तक प्रभावित किया है। नेपाल की सीमा सुरक्षा सीधे-सीधे उत्तर प्रदेश एवं बिहार के गंगा के मैदान की सुरक्षा से जुड़ी है। दूसरी तरफ एक मजबूत और मैत्रेयीपूर्ण नेपाल चीन की ओर से आने वाले किसी भी ऐसे खतरे को रोक सकता है।

सिक्किम एवं भूटान के बीच दार्जिलिंग एवं जलपाइगुड़ी जिले स्थित हैं जो पश्चिम बंगाल का भाग है तथा यहीं पर चुम्बी घाटी स्थित है, जहां चीन ने अपनी सैन्य क्षमता का व्यापक विस्तार किया है। इसी स्थान पर बाग्लादेश और नेपाल के बीच जलपाइगुड़ी

जिले की एक संकरी पट्टी है जिसकी चौड़ाई करीब चुम्बी घाटी के करीब 150 मील है। अगर इस पट्टी को बांग्लादेश, नेपाल या चीन इनमें से कोई भी अलग-अलग या एक साथ भारत से काट देता है तो भारत के सभी पूर्वी राज्य (आसाम, सिक्किम, मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मिजोरम) भारत से अलग हो जाएंगे।

नेपाल तथा भूटान इस पर्वत शृंखला पर स्थित छोटे राज्य होने के बावजूद भारत की सुरक्षा की दृष्टि से अहम हैं तथा भारत एवं चीन के बीच स्थित होने के कारण सुरक्षा की दृष्टि से संवेदनशील भी हैं।

इस संदर्भ में यह कहना समाचीन भी होगा कि नेपाल के स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में अभ्युदय से चीन लगातार इस देश पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास करता रहा है। 1950 एवं 60 के दशक के बाद से चीन की तरफ नेपाल का झुकाव लगातार बढ़ता चला गया है।

अंत में भारत और चीन के बीच हिमालय फ्रंटियर पर भारतीय राज्य अरुणाचल प्रदेश पर पड़ता है। भूटान से लगा हुआ अरुणाचल का कामेंग जिला है जो तिब्बत-भूटान सीमा के निकट है तथा प्राचीन समय से व्यापार रास्ते रहे। थ्यांग-पास तथा बम-पास जो कि खोजेमेन तथा तवांग को तिब्बत से जोड़ता है। चीनी सेना ने 1962 में यहीं से आक्रमण किया था।

उत्तरी बर्मा की तिब्बत से लगने वाली सीमा भी विवादों में रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इसी सीमा पर जापानी सैनिकों व ब्रिटिश सैनिकों के बीच लड़ाई हुई थी। जंगली क्षेत्र होने के कारण ये क्षेत्र गुरिल्ला युद्ध के लिए उपयुक्त है।

इस प्रकार भारत की पूर्वी, उत्तर पूर्वी एवं उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा हिमालय की सुरक्षा से सीधे-सीधे जुड़ी है। भारत की विदेश नीति बहुत हद तक इसी क्षेत्र की सुरक्षा पर केंद्रित रही है। आज भी भारत और चीन के बीच तनाव की स्थिति बरकरार है। हालांकि सिक्किम को चीन ने भारत का राज्य स्वीकार कर लिया है परंतु अरुणाचल प्रदेश तथा उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में विवाद अभी भी है। सीमा क्षेत्रों के रेखांकन के क्षेत्र में कुछ खास प्रगति नहीं हुई है। इस बीच चीन ने अपनी सैन्य क्षमता का अपूर्व विस्तार किया है।

(घ) हिन्द महासागर– भूगोल भारत के वैदेशिक संबंधों का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। इसी कारण हिन्द महासागर हमारे बाहरी राजनैतिक तथा आर्थिक संबंधों के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। ऐसा ऐतिहासिक समय से रहा है। प्राचीन एवं मध्य युग में हिन्द महासागर के रास्ते से भारत तथा अरब-राष्ट्रों, दक्षिण पूर्व एशिया एवं चीन के मध्या व्यापार का महत्वपूर्ण मार्ग रहा है। वर्तमान समय में भी हिन्द महासागर ने भारत के भविष्य को कई मायनों में प्रभावित किया है। पूर्व से मसालों का व्यापार तथा मिशनरी प्रभाव के चलते भारत पश्चिम के लिए आकर्षण का केन्द्र बना तथा इसी ने पश्चिमी देशों को हिंद महासागर में आने का बहाना भी दिया। इसी के बाद धीरे-धीरे पश्चिम और पूर्व के बीच सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक संबंधों तथा सैन संघर्षों का सिलसिला आरंभ हुआ।

टिप्पणी

वर्तमान समय में स्वतंत्र भारत की सुरक्षा से लेकर उसके आर्थिक विकास में हिन्द महासागर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हमारा तटीय व्यापार हिंद महासागर की सुरक्षा पर पूरी तरह निर्भर करता है। वर्तमान में भारत की बंदरगाह क्षमता ऑस्ट्रेलिया, चीन तथा इंडोनेशिया को मिलाकर बनने से भी बड़ी है तथा अभी इसके और विस्तार के प्रयास भी जारी हैं। भारत तथा अन्य पड़ोसी राष्ट्रों के बीच आवागमन एवं संचार का सबसे सरल साधन हिंद महासागर ही है। क्षेत्रीय व्यापार की दृष्टि से इसका महत्त्व और अधिक व्यापक है।

राजनैतिक दृष्टि से हिंद महासागर क्षेत्र में भारत की केंद्रीय एवं प्रभुत्वशाली स्थिति ने इसे विश्व में एक महत्वपूर्ण कारक बना दिया है। अटलांटिक तथा प्रशांत महासागर को जोड़ने के कारण ये अमेरिका तथा यूरोप की विदेश नीतियों को भी एशियाई राष्ट्रों के साथ-साथ प्रभावित करता है। अन्य शब्दों में हिन्द महासागर की सुरक्षा भारत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। हिंद महासागर में मैत्री देश का अभाव भारत के विश्व व्यापार को प्रभावित कर सकता है।

अल्बरकुक की हिंद महासागर को जोड़ने वाले सभी रास्तों– फारस की खाड़ी और भुज से, सोकोटरा से लालसागर तथा अफ्रीकन तट से दक्षिण अफ्रीकी मार्ग तथा मल्लका से मल्लका की खाड़ी तक की रखवाली की नीति को ब्रिटिश ने अपनी विदेश नीति में कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार किया। सैद्धांतिक तौर पर हिन्द महासागर की सुरक्षा के लिए यह नीति आज भी कारगर है परन्तु दो परिवर्तनों ने हिंद महासागर की स्थिति को वृहत्तर प्रभावित किया है।- प्रथमत: आमूलचूल परिवर्तनों सहित अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा समुद्री नौवहन एवं युद्ध प्रणाली में हुए व्यापक परिवर्तन। भारत से ब्रिटेन के जाने के बाद भी हिंद महासागर की सुरक्षा को कोई खतरा उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि ब्रिटेन ने स्वेज नहर, फारस की खाड़ी क्षेत्रों तथा दक्षिण अफ्रीकी तटों पर अपना नियंत्रण कायम रखा। जापान तथा चीन की समुद्री क्षमता तब तक विकसित नहीं हुई थी। इसी प्रकार दक्षिणी प्रशांत महासागर की रक्षा अमेरिका कर रहा था तथा सोवियत संघ की प्रशांत महासागर में ऐसी कोई भूमिका नहीं थी।

1950 के दशक के अंत में स्वेजनहर से ब्रिटिश समुद्री सेना का जाना तथा 1970 के दशक में सिंगापुर से पलायन के बाद हिंद महासागर में एक 'शक्ति निर्वात' पैदा हो गया था। पाश्चात्य राष्ट्रों को यह भय था कि इससे हिंद महासागर में सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो सकता है। तभी से दक्षिणी प्रशांत महासागर में अमेरिका समुद्री ताकत के रूप में उभर कर सामने आया है।

इसी के बाद सीएटो (SEATO) तथा अनजस (ANZUS) की राजनीति शुरू हुई। अब अमेरिका का सातवां बेड़ा हिंद महासागर की रक्षा के लिए तैनात है। परंतु इसके बाद 1970 के दशक में अमेरिका व सोवियत संघ के बीच हिंद महासागर पर नियंत्रण की होड़ आरंभ होती है। गौरतलब है कि यूरोप की तेल आयात की बड़ी मात्रा पश्चिम एशिया से होकर आती है। इसी प्रकार जापान की आपूर्ति भी हिंद महासागर से होकर आती है। अत: इन राष्ट्रों के व्यापारिक हित एवं अर्थव्यवस्थाएं हिंद महासागर में नौवहन सुरक्षा से जुड़ी हैं।

अब धीरे-धीरे चीन के अभ्युदय ने भी हिंद महासागर के सामरिक महत्त्व को प्रभावित किया है। चीन श्रीलंका के साथ मिलकर अपने सैनिक अड्डों के निर्माण एवं विस्तार को प्रयासरत है। अब धीरे-धीरे भारत भी हिंद महासागर में अपने प्रभाव को बढ़ाने को प्रयासरत हो रहा है। परंतु अमेरिका अभी भी हिंद महासागर में सबसे मजबूत स्थिति में है। अमेरिकी बेस जापान, फिलीपाइन्स तथा थाइलैण्ड में है। भारत सदैव से ही हिन्द महासागर को परमाणु राज्यों से मुक्तक्षेत्र घोषित करने का पक्षधर रहा है। 1970 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के लुसाका सम्मेलन में भारत ने हिंद महासागर को शांति क्षेत्र घोषित करने की मांग की। 1971 में संयुक्त राष्ट्र महासभा सम्मेलन में हिंद महासागर को शांति-क्षेत्र घोषित किया गया।

(ङ) भारत-पाकिस्तान सीमा– भारत की विदेश नीति में एक महत्त्वपूर्ण तत्व भारत-पाक सीमा पर बार-बार उठने वाले विवाद हैं। यह सीमा दोनों देशों के बीच दो युद्धों का कारण बन चुका है। इसके अलावा सीमा पार मुठभेड़ एवं आतंकवादी गतिविधियों के अनुसार भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। 1971 के युद्ध के बाद पश्चिम पाकिस्तान से पूर्वी पाकिस्तान के अलग होने के बाद बांग्लादेश के अभ्युदय से अब ये विवाद केवल पश्चिमी पाकिस्तान तक ही सीमित रह गया है।

धीरे-धीरे दोनों राष्ट्रों ने सीमा विवाद की जटिलता को अपने द्विपक्षीय संबंधों का आधार मानना समाप्तप्राय कर दिया है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह सीमाओं को अप्रासंगिक बनाने की वकालत करते हुए व्यापार वृद्धि एवं आवागमन को बढ़ाने की बात अलग-अलग मंचों पर की है।

परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत की सुरक्षा की दृष्टि से पाकिस्तान से लगने वाली उसकी सीमा अत्यंत महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि दोनों देशों ने बार-बार प्रयास किया है कि सीमा विवाद को शांतिपूर्ण साधनों से सुलझाया जाए। अब धीरे-धीरे दोनों देशों को जोड़ने वाले तेल पाइपलाइन परियोजना तथा अंतर्राष्ट्रीय राजमार्गों संबंधी योजनाओं के आने से यह अपेक्षा की जा सकती है कि निकट भविष्य में दोनों राष्ट्रों के बीच सीमाएं असुरक्षा का साधन नहीं रहेंगी।

आर्थिक विकास की चुनौतियां

1947 में स्वतंत्रता के पश्चात् भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपना आर्थिक विकास था। शताब्दियों का साम्राज्यवादी शासन, साम्राज्यवादी ब्रिटेन के हाथों आर्थिक शोषण तथा तकनीक एवं विज्ञान के निम्न स्तर ने इसे आर्थिक रूप से पिछड़ा राष्ट्र बना दिया। विश्व राजनीति में सक्रिय भूमिका हेतु जहां एक ओर भारत को अपने आर्थिक विकास की आवश्यकता थी वहीं दूसरी ओर अपने आर्थिक विकास एवं तकनीकी उन्नति के लिए वह दूसरों पर निर्भर हैं। इन्हीं परिस्थितियों ने भारत को अन्य राष्ट्रों के साथ गुटनिरपेक्ष नीति अपनाने को विवश किया।

भारत के शीतयुद्ध तथा सुरक्षा संधियों से दूर रहने का विदेश नीति-निर्माताओं का निर्णय भी आर्थिक विकास की निरंतर बनी रखने वाली समस्या पर केन्द्रित होने की इच्छा पर ही आधारित थी। परंतु इसके साथ-साथ भारत दोनों ही राष्ट्रों से आवश्यक आर्थिक तथा आर्थिक तथा तकनीकी सहायता प्राप्त करना चाहता था। शुरुआत के दशकों में भारत

टिप्पणी

का व्यापार केवल ब्रिटेन, अमेरिका तथा गैर साम्यवादी यूरोपीय देशों के साथ था। उसके आयातों का कुल 34.7% केवल अमेरिका से आता था। ब्रिटेन से 7.4% तथा जर्मनी से 7% । अतः भारत के लिए यह आवश्यक था कि वह इन देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखे। परंतु इसके साथ ही (भूतपूर्व) सोवियत संघ, चीन, यूरोप तथा एशिया के साम्यवादी देशों के साथ व्यापारिक संबंधों की स्थापना करना एक आवश्यकता थी। गुटनिरपेक्षता की नीति भी इसलिए अपनाई गई ताकि साम्यवादी तथ गैर साम्यवादी दोनों राष्ट्रों के साथ व्यापार संबंध कायम किये जा सकें। सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत रूस भूतपूर्व सोवियत संघ के गणराज्यों, केन्द्रीय एशिया के देशों तथा यूरोपीय देशों के साथ आर्थिक सहयोग तथा संबंध स्थापित करने में संलग्न हैं। व्यापार, अर्थव्यवस्था तथा उद्योग के क्षेत्र में दक्षिण-दक्षिण सहयोग करने का निर्णय भी, भारतीय वस्तुओं के निर्यात द्वारा आर्थिक विकास करने की अपेक्षा से ही प्रभावित है। भारत का जी-20, जी-77, जी-24 गुटनिरपेक्ष आंदोलन तथा सार्क, एसियान इत्यादि क्षेत्रीय संगठनों के सक्रिय सदस्य के रूप में भूमिका का भी वही कारण है।

भारतीय अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक नीतियों में जो उदारीकरण, विकेंद्रीकरण, निजीकरण तथा लोकतंत्रीकरण के लिए परिवर्तन 1991 से लेकर अब तक किए गए हैं। ये निश्चय ही अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में आर्थिक संबंधों में हुए परिवर्तनों पर आधारित हैं। उत्तर शीत-युद्ध तथा उत्तर समाजवादी खेमे के वर्तमान युग में विश्व राजनीति में आर्थिक संबंधों का महत्त्व अत्यंत बढ़ गया है। इनके स्वरूप में गहरे परिवर्तन हुए हैं। इससे भारतीय विदेश नीति भी प्रभावित हुई है।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अब अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संबंध तथा वित्तीय कूटनीति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। भारतीय विदेश नीति भी अब आर्थिक हितों तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अब सक्रियता से कार्य कर रही है। विश्व व्यापार संगठन तथा वैश्विकीकरण की प्रक्रिया के वातावरण में भारतीय आर्थिक हितों की सुरक्षा भारतीय विदेश नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है। पूर्व की ओर देखो इत्यादि विदेश नीतियां भी आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों के व्यापक एवं तीव्र विकास के उद्देश्य से प्रभावित है।

आज अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों द्वारा निर्देशित हो रही है और भारतीय विदेश नीति के द्वारा व्यवहार से भी अब आर्थिक तत्व अधिक प्रभावशाली भूमिका निभा रहे हैं। अब कारोबारी समुदाय, विशेषकर आर्थिक और वाणिज्यिक संगठनों जैसे फिक्की आदि ने भी भारतीय विदेशी आर्थिक संबंधों पर अधिक प्रभाव डालना आरंभ कर दिया है।

आर्थिक विकास के आधारभूत तत्व

(क) **जनसंख्या**—भारत की तीव्र होती जनसंख्या वृद्धि ने इसकी विदेश नीति को भी प्रभावित किया है। इससे जहां एक ओर हमारी अर्थव्यवस्था का विकास प्रभावित हुआ है वहीं संसाधनों पर दबाव भी बढ़ा है। जनसंख्या का आकार ही प्रति व्यक्ति भूमि उपलब्धता तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का निर्धारण करता है। अन्य शर्तो के समान रहने पर, बड़ी जनसंख्या का राज्य कम जनसंख्या वाले राज्य की तुलना में कमजोर स्थिति में रहता है। यही कारण है कि भारत अपने आकार एवं जनसंख्या के अनुपात में अमेरिका, रूस एवं चीन से पीछे है।

टिप्पणी

मुख्य मुद्दा जनसंख्या वृद्धि की दर का है जो अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को सीधे-सीधे प्रभावित करती है। इसी से प्रति व्यक्ति आय का पैमाना भी सीधे-सीधे प्रभावित होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक विकासशील समाज में जनसंख्या वृद्धि तीन चरणों से होकर गुजरती है। प्रथम चरण में राष्ट्रीय आय जनसंख्या वृद्धि की से कम होती है। द्वितीय चरण में दोनों परंतु जनसंख्या वृद्धि अधिक तीव्र गति से बढ़ती है। इसका प्रमुख कारण मृत्यु दर में कमी का होना है। मृत्यु दर में कमी स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार तथा अन्य विकास का परिणाम होती है। इसी प्रकार तृतीय चरण में जनसंख्या वृद्धि की दर घटती है तथा राष्ट्रीय आय की दर अधिक होती है।

द्वितीय चरण किसी विकासशील राष्ट्र के लिए मुख्य चुनौती होता है। भारत में जनसंख्या वृद्धि अभी द्वितीय चरण से गुजर रही है। यही कारण है कि भारत के प्राकृतिक संसाधनों आय के साधनों तथा रोजगार के अवसरों पर जनसंख्या वृद्धि का भारी दबाव पड़ रहा है।

हमारी अर्थव्यवस्था के विकास का एक मुख्य पहलू अब कृषि की वृद्धि दर में लगातार होती कमी है। यद्यपि 1960 के दशक की हरित क्रांति के बाद भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हुआ है परंतु 2000 के बाद कृषि में वृद्धि दर या तो स्थायी रही है अथवा कम होती गई है। हैन्स जे मॉर्गेन्ज्याऊ ने खाद्यान्न समस्या को विदेश नीति की एक मुख्य चुनौती माना है। 1950 के बाद से हमारी खाद्यान्न पर विदेशी निर्भरता ने भारत की विदेश नीति को मुख्य तौर पर प्रभावित किया है। इसी प्रकार अब धीरे-धीरे तकनीकी विकास एवं उपभोक्ता वस्तुओं की बढ़ती मांग को ध्यान में रखते हुए भी भारत का झुकाव अमेरिका व यूरोप की तरफ हुआ है।

भारत में जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ पलायन का मुद्दा भी जुड़ा है। बड़ी संख्या में भारतीय विद्यार्थी, साफ्टवेयर इंजीनियर, डॉक्टर व अन्य व्यवसायी खाड़ी देशों, विकसित देशों; जैसे अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में पलायन करते जा रहे हैं।

यद्यपि इन सब पक्षों के बारे में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अब धीरे-धीरे भारत की जनसंख्या को एक बोझ न समझकर एक सकारात्मक पक्ष के रूप में देखा जा रहा है। जहां विश्व के अधिकांश विकसित एवं विकासशील देशों में जनसंख्या नियंत्रण कानूनों अथवा सामाजिक ढांचे के कारण जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आई है, जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा वृद्धावस्था की दशा में है वहीं दूसरी ओर चूंकि भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर सीमित रही है, यहां जनसंख्या का बड़ा भाग युवाओं का है। यही कारण है कि अब ये शिक्षित युवा वर्ग ही भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास एवं विश्व भर में उसकी पहचान का मुख्य स्रोत है। अब धीरे-धीरे भारत मानव संसाधन का एक प्रमख स्रोत विश्व में बन गया है। इसी नवोदित वर्ग ने भारत और अमेरिका तथा भारत और यूरोप के संबंधों को मजबूत करने का कार्य किया है।

टिप्पणी

(ख) **प्राकृतिक संसाधन**—उन्नत औद्योगिक तथा तकनीकी विकास के आधुनिक युग में प्राकृतिक संसाधन आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है। साधारणतः भारत के प्राकृतिक संसाधन भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं तथा दूसरे देशों की तुलना में यहां कोयला, कच्चा लोहा अधिक मात्रा में होते हैं। 1991 में उदारीकरण की नीति को अपनाने के बाद भारत विश्व में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए एक प्रमुख आकर्षण स्थल है। इसका प्रमुख कारण यहां प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले प्राकृतिक संसाधन हैं। जहां पूर्वी भारत में लकड़ी तथा कच्चे तेल के भंडार हैं, वहीं उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, उत्तराखण्ड कोयले के प्रचुर भंडारों के लिए प्रसिद्ध हैं। दक्षिण भारत में यूरेनियम के भंडारों के पाए जाने की उम्मीद है। वहीं पश्चिमी राजस्थान में कच्चे तेल के भंडार हैं। राजस्थान में तांबा, जिप्सम, जास्पर तथा ऐस्बेस्टास के भंडार प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। दक्षिण भारत में तमिलनाडु तथा कर्नाटक में भी प्राकृतिक संसाधनों के प्रचुर भंडार हैं। उत्तरी भारत में गंगा, यमुना तथा अन्य नदियां पानी के प्रचुर साधन हैं। परंतु इन सबके बीच हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर भी जनसंख्या वृद्धि का दबाव लगातार बढ़ रहा है। हमारे यहां प्रौद्योगिकी विकास न होने के कारण इन संसाधनों का समुचित उपभोग नहीं हो पा रहा है

(ग) **प्रौद्योगिकी तथा टेक्नोलॉजी**-प्रौद्योगिकी के इस युग में प्रौद्योगिकी विकास का स्तर किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति को काफी हद तक प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। स्वतंत्रता के समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश था जो प्रौद्योगिक रूप से अविकसित तथा औद्योगिक रूप से निम्न स्तरीय था। इसे तकनीकी ज्ञान तथा आधारभूत उद्योगों की स्थापना जैसे स्टील प्लांटों की स्थापना के लिए भारी मशीनों के आयात के लिए दूसरे राष्ट्रों पर निर्भर रहना पड़ता था।

यद्यपि अब भारत ने तकनीकी तथा औद्योगिक विकास में काफी प्रगति की है। आज प्रौद्योगिक तथा औद्योगिक ज्ञान को भारत निर्यात कर सकता है तथा तीसरे विश्व के साम्राज्य रूप से अविकसित राष्ट्रों को तकनीकी ज्ञान देकर उनका सहायक बन सकता है। रॉकेट तकनीक, उपग्रह एवं मिसाइल तकनीक, परमाणु तकनीक तथा बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन के कारण भारत का अंतर्राष्ट्रीय मामलों में पहले से कहीं अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाने के आधार बन गए हैं। भारत समन्वित प्रक्षेपास्त्र तकनीक के विकास की ओर अग्रसर है। आज भारत ने नाग, त्रिशूल, अग्नि तथा आकाश प्रक्षेपास्त्र और अपने बहुउद्देशीय उपग्रह बनाने की योग्यता प्राप्त कर ली है। भारत ने अंतरिक्ष एवं उपग्रह टेक्नॉलाजी काफी उच्च स्तर में विकसित कर ली है। APLSV, INSAT अंतरिक्ष में उपग्रह भेजने तथा स्थापित करने की क्षमता आदि इसी विकास के प्रमाण हैं और ये भारत के तकनीकी विकास के चिह्न हैं। 11-13 मई, 1998 के परमाणु परीक्षणों तथा अपने सुपर कम्प्यूटर के निर्माण के बाद भारत की छवि और भी ऊंची हुई है।

आर्थिक वृद्धि की दिशा

आर्थिक विकास कई विरोधाभाषी विचारधाराओं तथा राज्य व्यवस्थाओं का परिणाम हो सकता है। जहां अमेरिका व इंग्लैण्ड में खुली अर्थव्यवस्था तथा लोकतांत्रिक राजव्यवस्था

टिप्पणी

के अभ्युदय का परिणाम था वहीं जर्मनी में ये खुली अर्थव्यवस्था एवं फासीवाद विचारधारा के कारण हुआ। जापान में ये राज्य उन्मुक्त अर्थव्यवस्था का परिणाम था वहीं सोवियत संघ और चीन में इसका प्रमुख कारण राज्य-नियंत्रण तथा बंद आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था थी। अर्थात् आर्थिक वृद्धि के लिए अलग-अलग राजव्यवस्थाएं तथा अर्थव्यवस्थाएं अलग-अलग विचारधाराओं से संचालित हो सकती हैं। यही विकास की दिशा राज्य की अर्थवयवस्था का स्वरूप, अन्य देशों पर उसकी निर्भरता तथा राज्य की राजनैतिक व आर्थिक स्थायित्व का स्वरूप निर्धारित करती है। अन्य शब्दों में विकास की दिशा भारत की विदेश नीति के निर्धारण में एक प्रमुख तत्व है। इस पर संविधान के प्रावधान, राज्य की भूमिका तथा विकास की विचारधारा का प्रभाव मुख्य रूप से पड़ता है।

(अ) **संवैधानिक सीमाएं**-एक दल द्वारा नियंत्रित राजनैतिक व्यवस्था में मानव संसाधनों को विकास की मनचाही दिशा में काम करने के लिए विवश किया जा सकता है। इसी प्रकार कीमतों पर कड़ा नियंत्रण लगाकर तथा अर्थव्यवस्था के कुछ वर्गों को दूसरों की तुलना में अधिक महत्त्व देकर, एक सर्वसत्तावादी राज्य अधिक शेषांक को सैन्य ताकत बढ़ाने में उपयोग में ला सकता है। कई बार इस प्रकार की विचारधारा विदेश मदद पर निर्भरता को कम करने में मददगार साबित होती है।

भारतीय संविधान राज्य के इस रूप में व्यवहार को प्रतिबंधित करता है। ये भारत की सरकार के लिए एक लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रावधान करता है। संविधान में नागरिकों के कुछ मूल-अधिकारों को राज्य से ऊपर रखा गया है। इसी प्रकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, दल बनाने की स्वतंत्रता, एक स्वतंत्र चुनाव आयोग इत्यादि प्रावधान राज्य को सर्वसत्तावादी बनने से रोकते हैं। इसी प्रकार लोककल्याणकारी राज्य के लिए प्रावधान संविधान में ही किए गए हैं। अन्य शब्दों में, राज्य एक सर्व सत्तावादी राज्य के रूप में अर्थव्यवस्था का स्वरूप निर्धारित नहीं कर सकता। इस प्रकार आर्थिक विदेश नीति का निर्धारण इन्हीं प्रावधानों के तहत हो सकता है।

(ब) **राज्य की भूमिका**-एक ऐसा समाज जो सदियों से पिछड़ापन, अशिक्षा एवं गरीबी का शिकार रहा हो, विकास की दिशा में बढ़ना एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। ऐसे राष्ट्र में राज्य पर कई उत्तरदायित्व होते हैं। राज्य परिवर्तन का मुख्य वाहक होता है। इसी प्रकार उस पर विज्ञान, खोज, ज्ञान, वितरण, विकास के उत्तरदायित्व भी होते हैं। इसी क्रम में राज्य पर सामाजिक एवं आर्थिक न्याय एवं समानता स्थापित करने के उत्तरदायित्व भी होते हैं। इन सब उत्तरदायित्वों का बोझ 21वीं सदी में उदित होने वाले राज्यों पर अधिक हैं। पश्चिम के राष्ट्रों पर, जब वे विकास की प्रथम सीढ़ी पर थे, ये सभी उत्तरदायित्व नहीं थे। चूंकि भारत ने अपने विकास की डगर पर पग देर से रखा उस पर कई उत्तरदायित्वों का निर्वहन आ पड़े। राज्य की इसी भूमिका के मद्देनजर विदेश नीति का एक मुख्य उद्देश्य इन आर्थिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन होता है। अन्य शब्दों में आर्थिक नीति एवं विदेश नीति में सामंजस्य आवश्यक है।

टिप्पणी

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश

देश की विदेश नीति का निर्धारण करने में देश की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश की विशेष भूमिका निभाती है। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है–

(क) ऐतिहासिक परिवेश

किसी राष्ट्र की विदेश नीति मनुष्यों के एक समूह द्वारा बनाई जाती है। जिसमें नेता, राजनेता तथा कूटनीतिज्ञ होते हैं इसलिए इसमें उनके मूल्यों, प्रतिभाओं, अवगमों, पसंदों, नापसंदों, विचारों, क्षमताओं, ज्ञान तथा विश्व दृष्टिकोण का प्रभाव होता है।

पं. जवाहरलाल नेहरू, भारतीय विदेश नीति के मुख्य निर्माता थे। कुछ विशेष बातों को छोड़कर कोई भी व्यक्ति इस निर्धारक को भारतीय विदेश नीति का नेहरू कारक का नाम दे सकता है।

एक धनी परिवार से संबंध रखने वाले, कैम्ब्रिज तथा हैरो में हुई शिक्षा तथा देश के बड़े नेता जैसे महत्मा गांधी, पिता मोती लाल नेहरू तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं का समर्थन इत्यादि के कारक थे जिन्होंने पं. नेहरू को देश का प्रधानमंत्री बनने के लिए भूमिका तैयार की। 1927 में मद्रास कांग्रेस के अधिवेशन में पंडित नेहरू को कांग्रेस कार्यकारिणी का विदेशी मामलों का प्रवक्ता नियुक्त किया गया। इसका प्रमुख कारण पंडित नेहरू की विदेश नीति मामलों में कुछ अधिक अभिरुचि थी। 1936 में कांग्रेस के बुजुर्ग नेताओं के विरोध के बावजूद विदेश नीति विभाग कांग्रेस पार्टी में खोला गया तथा एक युवा नेता राममनोहर लोहिया को इसका सचिव बनाया गया। 1942 में आल इंडिया कांग्रेस कमेटी की बैठक में गांधी जी ने नेहरू को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। गांधी ने बार-बार नेहरू का पक्ष लेते हुए पटेल तथा अन्य किसी उम्मीदवार को दरकिनार करते हुए नेहरू का पलड़ा मजबूत किया। अंतरिम सरकार के गठन के समय भी पटेल की बजाय नेहरू को प्रमुखता दी गई। यद्यपि नेहरू को पटेल की बुद्धिमत्ता से सदैव खतरा रहा पर 1950 में पटेल की मृत्यु के बाद वे भारतीय राजनीति के बेताज बादशाह बने। इसके पश्चात् विदेश नीति मामलों पर नेहरू का वर्चस्व सा ही स्थापित हो गया। जो थोड़ी बहुत चुनौती कांग्रेस के पुराने नेताओं से मिल सकती थी उसे पं. नेहरू ने चालाकी से सुलझा लिया। अन्य शब्दों में अब नेहरू विदेश नीति में बिना किसी दबाव के निर्णय ले सकते थे।

इसी प्रकार भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय 6 में कश्मीर मुद्दे को उठाया गया। इस अध्याय में अंतर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान बातचीत (Negotiation) तथा मध्यस्थता (Mediation) के तहत होता है। वहीं अध्याय 7 में शक्ति प्रयोग की बात की गई है। संयुक्त राष्ट्र इस प्रस्ताव के बाद पाकिस्तान को कश्मीर से अपनी सेनाएं हटाने के लिए मजबूर नहीं कर पाया। इस अध्याय के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र दोनों पक्षों को केवल बातचीत हेतु साथ लाने का कार्य करता है। अनुच्छेद 35 के अंतर्गत संयुक्त राष्ट्र ने कश्मीर को एक राजनीतिक मसला माना। उस समय के अंतर्राष्ट्रीय वातावरण को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र से ये अपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी कि वह इस मुद्दे का कोई तुरंत समाधान निकालेगा।

कुछ विचारकों का तर्क है कि चूंकि स्वतंत्रता से पूर्व भारत ने धार्मिक उन्माद एवं दंगों का वीभत्स रूप देखा था। अतः वह पाकिस्तान से अपने संबंधों को खराब नहीं करना

चाहता था। इसी कारण इस मुद्दे को अध्याय 6 के तहत उठाया गया। इसी प्रकार अध्याय 7 के बाद पश्चिमी राष्ट्रों को भारतीय उपमहाद्वीप में संयुक्त राष्ट्र की सेना के नाम पर हस्तक्षेप का मौका मिला होता। परंतु शायद पंडित नेहरू इस पक्ष की दूरदर्शिता को नहीं समझ पाए। इसी कारण संयुक्त राष्ट्र में ये मसला रखने के कुछ ही समय बाद उन्होंने संयुक्त राष्ट्र महासभा की आलोचना की।

जे. बंदोपाध्याय का कहना है कि अगर भारत ने इस मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र में उठाया भी तो उसे अपनी तरफ से अन्य वायदे नहीं करने चाहिए थे। जैसा कि भारत के संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रतिनिधि अयंगर ने एकतरफा जनमत की बात कही। परंतु कुछ समय बाद ही भारत को अहसास हुआ कि ऐसा करना उसके हितों के विरुद्ध था। 1954 में इसी कारण पंडित नेहरू ने इस प्रस्ताव की वैधता को नकार दिया।

पंडित नेहरू ने बार-बार कश्मीर मुद्दे पर आदर्शवाद व यथार्थवाद को लेकर ढुलमुल रवैया अपनाया। परंतु इसी के कारण भारत कश्मीर में अपने हितों की रक्षा ठीक से नहीं कर पाया।

तिब्बत एवं चीन का मुद्दा

शुरुआती दौर में नेहरू ने तिब्बत और चीन के प्रति दूरदर्शी नीति को अपनाया। यह महसूस किया कि गया कि चीन भविष्य में एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर सकता है। चीन के साथ संबंधों पर भारत की सुरक्षा टिकी है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत ने चीन की नई सरकार को तुरंत मान्यता दी। इसी प्रकार भारत ने यह भी समझा कि 1950 में तिब्बत को चीन के विरुद्ध सहायता देना समझदारी नहीं होगी। भारत सैन्य रूप से भी इतना मजबूत नहीं था कि तिब्बत को सहायता दे सकता। इसी प्रकार पाकिस्तान के विरुद्ध भी संघर्ष जारी था। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए नेहरू ने एक मित्र-चीन की नीति अपनाई।

परंतु जे. बंदोपाध्याय के अनुसार नेहरू की चीन के प्रति यथार्थवाद की यह नीति भी आदर्शवाद से अछूती नही थी। चीन को शायद पंडित नेहरू उतनी तवज्जो नहीं दे रहे थे जितनी वास्तव में उसे देना चाहिए था। नेहरू की अपेक्षाओं के विपरीत चीन ने भारत की गुटनिरपेक्षता को एक छलावा बताया। पंडित नेहरू को 'कमजोर' तथा "आंग्ल-अमेरिकी साम्राज्यवाद का दौड़ता कुत्ता" कहा गया।

माउत्से तुंग ने तो भारत को एक स्वतंत्र राष्ट्र मानने से ही इंकार कर दिया। उसने भारत में कम्युनिस्ट क्रांति की आवश्यकता बताई तथा पिछली सरकार द्वारा स्वीकार किए गए सभी संधियों एवं दस्तावेजों को मानने से इंकार कर दिया। भारत के बहुत सारे हिस्सों को चीन ने अपने नक्शे पर दिखाना आरंभ कर दिया। तिब्बत को पांच उंगलियां- सिक्किम, भूटान, नेपाल तथा लद्दाख का हिस्सा बताया। इन सबके बावजूद पंडित नेहरू का विश्वास था कि चीन भारत के प्रति कोई विद्वेष की भावना नहीं रखता। अगर चीन को विद्वेष की भावना है भी तो भारत उसे शांतिपूर्ण साधनों से नियंत्रित कर सकता है। 1954 के पंचशील समझौते का नेहरू ने दोनों देशों के बीच शांति का आधार माना।

चीन के इरादों को नेहरू ने इस कारण भी महत्व नहीं दिया कि एक ऐसे इलाके में कोई नियंत्रण क्यों करेगा जहां घास का एक पत्ता भी नहीं उगता। इसी कारण भारतीय

टिप्पणी

संसद को चीन द्वारा लद्दाख में किए गए कब्जे से तब तक अनभिज्ञ रखा गया जब तक चीन ने अक्साई चिन को सड़क मार्ग द्वारा जोड़ नहीं दिया।

पंडित नेहरू द्वारा चीन के प्रति नीति में कई गलतियां की गई। प्रथमत: 1950 में भारत ने तिब्बत पर चीन के नियंत्रण (Suzerainty)को माना तथा उसे संप्रभुता (Sovereignty) से अलग रखा। तिब्बत को "चीन का तिब्बत प्रदेश" कहकर संबोधित किया गया। ऐसा करने में अंतर्राष्ट्रीय कानूनों एवं दस्तावेजों में चीन की स्थिति का उचित जायजा नहीं लिया गया। अंतर्राष्ट्रीय सीमा आयोग के अनुसार 1950 से पहले पिछले 40 वर्षों तक तिब्बत एक स्वतंत्र प्रदेश था जिसके मामलों में किसी का आंतरिक अथवा बाह्य हस्तक्षेप नहीं था। अत: भारत के लिए तिब्बत को चीन का हिस्सा मानने का कोई अधिकार नहीं था।

इस पूरी प्रक्रिया में पंडित नेहरू ने तिब्बत को भारत की सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्व को नजरअंदाज किया। यद्यपि भारत चीन द्वारा तिब्बत पर नियंत्रण को रोकने के लिए कुछ करने की स्थिति में नहीं था परंतु तिब्बत को पूरी तरह चीन का हिस्सा मानने का भी कोई आधार नहीं था।

इसी प्रकार 1950 में चीनी सेनाओं की तिब्बत में गतिविधियों का विरोध करते हुए एल-सल्वाडोर ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में एक प्रस्ताव रखा। भारत ने इस प्रस्ताव का विरोध यह कहते हुए किया कि चीन ने भारत को आश्वासन दिया है कि इस मुद्दे को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझा लिया जाएगा।

इन सब घटनाओं के बीच भी भारत ने अपने सुरक्षा इंतजामों को मजबूत नहीं किया। इसी कारण 1962 के चीनी आक्रमण के समय भारतीय सेनाओं को चीनी सेनाओं, जो पर्वत युद्ध कला में निपुण थी, से मुंह की खानी पड़ी। भारतीय सीमाओं में न तो सड़कें थीं और न ही अन्य कोई सुविधाएं। इसी प्रकार नेहरू की गुटनिरपेक्षता नीति की भी आलोचना की गई कि यह नीति भारत के सामरिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नहीं बनाई गई थी।

राज्य-निर्माण

राज्य निर्माण का कार्य राजनैतिक, सैन्य, प्रशासनिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढांचे का निर्माण करना है। रियासतों के विलीनीकरण, एक लोकतांत्रिक संविधान का सफल निर्माण व उसे लागू करना, एक स्थायी प्रशासनिक ढांचे का निर्माण, एक बड़े पैमाने पर औद्योगिक आधारभूत ढांचे का आर्थिक योजना के माध्यम से निर्माण इत्यादि कुछ मुद्दे थे जिनकी सफलता भारत के राज्य निर्माण के प्रथम चरण में रही। वास्तव में इन सफलताओं का ही परिणाम था कि भारत अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण राष्ट्र बनकर उभरा। परंतु आर्थिक एवं क्षेत्रीय असमानताएं, गरीबी कुछ क्षेत्रों में व्याप्त असंतोष इत्यादि आज भी कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन्हें ध्यान में रखना विदेश नीति निर्माण में आवश्यक हो जाता है।

(ख) सांस्कृतिक परिवेश

भारत सांस्कृतिक रूप से विविधताओं भरा राष्ट्र रहा है। यद्यपि भारत को एक राज्य के रूप में एक सूत्र में पिरोने का कार्य ब्रिटिश ने किया परंतु एक सम्प्रभु एवं स्वतंत्र भारत का निर्माण स्वतंत्रता के बाद ही हुआ। कुछ संस्कृतियों एवं समूहों को ब्रिटिश काल के

दौरान या तो अनदेखा किया गया था या फिर सैन्य शक्ति की मदद से दबा दिया गया। परंतु स्वतंत्रता के बाद इन समूहों के स्वतंत्रत विकास एवं समानता की अपेक्षाओं ने बल पकड़ना शुरू किया। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में इन अपेक्षाओं को लोकतांत्रिक ढंग से ही समायोजित किया जा सकता था। पंडित नेहरू के प्रधानमंत्री बने रहने तक लोकतांत्रिक साधनों को ही इन मुद्दों को सुलझाने में प्राथमिकता दी गई। परंतु उनके बाद सैन्य शक्ति तथा राजनीतिक चालों ने बल पकड़ा। इस सब प्रवृत्तियों ने राज्य में विरोध की भावना पनपने लगी। खासतौर पर उत्तर-पूर्व के राज्यों में विरोध की भावना प्रबल होने लगी।

इसी प्रकार वाम दलों में माओवादियों के प्रभाव ने भी देश के एक बड़े हिस्से में अस्थिरता और हिंसा को बढ़ावा दिया। इन सब प्रवृत्तियों से केंद्र सरकार लगातार कमजोर होती चली गई। इससे भारत के एक बड़े हिस्से में केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के सम्मुख प्रमुख चुनौती अपनी नीतियों को समुचित रूप से लागू करना है। इन सब घटनाओं का प्रभाव विश्व में भारत की छवि पर पड़ता है। इससे विदेश नीति की ताकत या कमजोरी भी परिलक्षित होती है। इसी प्रकार ऐसे राज्य के लिए विदेश नीति की सफलता पर भी प्रश्नचिह्न लगते हैं वहीं दूसरी ओर एक एकीकृत एवं मजबूत राज्य की विदेश नीति को दुनिया भर में सम्मान दिया जाता है।

इसी प्रकार बढ़ती सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं ने भी विभिन्न वर्गों में असंतोष को बढ़ावा दिया। अमीर और गरीब के बीच की खाई पिछले बीस वर्षों में लगातार बढ़ती चली गई है। इसने भी देश के गरीब एवं पिछड़े वर्गों में राज्य के प्रति असंतोष को उत्पन्न किया है। इससे भारत की प्रभुसत्ता को लगातार चुनौतियां मिल रही हैं।

कई बार ऐसी ही प्रवृत्तियों का लाभ विदेशी ताकतें उठाती हैं। भारत के लिहाज से पाकिस्तान ने ऐसे असंतोष को सदैव बढ़ावा देने का प्रयास किया है। इसी की एक परिणति सीमा-पार का बढ़ता आतंकवाद है। भारतीय राज्य के आंतरिक क्षेत्र में वितरणात्मक नीतियों को न लागू कर पाना, गांवों तथा छोटे कस्बों में विकास की लहर का न पहुंच पाना, नागरिकों के लिए आधारभूत सुविधाओं का अभाव इत्यादि कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन्होंने भारत को विदेश नीति क्षेत्र में भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कमजोर बनाया है। इसका एक अन्य परिणाम भारी संख्या में नवयुवक व नवयुवतियों का देश से लगातार होता पलायन भी है। भारत में जाति एवं धर्म के नाम पर भेदभाव आज भी बड़े स्तर पर प्रचलित हैं। सरकार इन भेदभावों को मिटाने तथा नागरिकों के लिए सामाजिक समानता एवं न्याय की प्राप्ति में विफल रही है। इसी विफलता ने पढ़े-लिखे नवोदित वर्ग की भारतीय राज्य की क्षमता से मोहभंग कर दिया है। बड़ी संख्या में खाड़ी देशों तथा खास तौर पर पश्चिमी शब्दों में पलायन इसी का परिणाम है।

कुछ वर्ष पहले गुजरात में हुए साम्प्रदायिक दंगों तथा सरकार की इन दंगों में भूमिका की कड़ी आलोचना अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर की गई। इससे भारत की छवि पर भी असर पड़ा। इसी प्रकार कश्मीर में तथा उत्तर-पूर्वी भारत में भारतीय सेनाओं द्वारा मानवाधिकार हनन की निंदा बार-बार अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर होती रही है। इससे विदेश नीति में भारत कमजोर पड़ा है। इन मुद्दों का लाभ विकसित देश भारत पर लगातार अंतर्राष्ट्रीय दबाव बनाने हेतु करते आए हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश

भारत की विदेश नीति में सामाजिक तथा राजनैतिक के परिप्रेक्ष्य को समझना भी बहुत आवश्यक है–

(1) सामाजिक परिवेश

(क) **सामाजिक संरचना** –राष्ट्रीय हित के उद्देश्यों की प्रकृति, जिन्हें कोई भी देश अपनी विदेश नीति द्वारा प्राप्त करने की कोशिश करता है, सदैव आन्तरिक कारकों से भी निर्धारित होती है और इन्हीं अर्थों में यह कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति के लिए घरेलू वातावरण भारत की विदेश नीति का प्रमुख निर्धारक तत्व है। पहला, कुछ वर्गों की बेहतर शिक्षा, ऊंचा रहन-सहन, दूसरा, एक बड़ा मध्य वर्ग तथा तीसरा, एक बड़ी जनसंख्या जो दो वक्त के भोजन के लिए भी तरसती है इत्यादि सामाजिक तत्व निश्चित तौर पर ही विदेश नीति पर प्रभाव डालते हैं। भारत की इसी सामाजिक विविधता का परिणाम था कि उसने गुट-निरपेक्षता की नीति अपनाई। न तो भारत एक ऐसा पूंजीवाद समाज बनाने की सोच रख सकता था जिसमें भारी आर्थिक विषमताएं व्याप्त हों। इसी प्रकार सोवियत संघ का अलोकतांत्रिक अनुभव भी भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप नहीं होता। अतः भारत ने विविध सामाजिक वर्गों के समायोजन को ध्यान में रखते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा गुट निरपेक्षता की नीति अपनाई।

(ख) **सत्ताधारी अभिजन–** डॉ. जे. बंदोपाध्याय के अनुसार स्वतंत्रता के समय भारत में त्रि-स्तरीय अभिजन संरचना थी- प्रथम कांग्रेस का राजनैतिक नेतृत्व, दूसरा सिविल सेवा (भारतीय सिविल सेवा) तथा पुलिस व विदेश सेवाएं तथा तीसरा सेनाओं के अधिकारी। इन तीनों स्तरों में केवल कांग्रेस का राजनैतिक नेतृत्व कुछ मायनों में भारतीय था तथा उनकी विदेश नीति संबंधी मामलों पर समझ थी।

महात्मा गांधी द्वारा आरंभ की गई जन-राजनीति ने कांग्रेस को विभिन्न वर्गों का मंच बना दिया था। कांग्रेस नेतृत्व की विविधता इसी कारण विभिन्न सामाजिक समुदायों से आती थी। इन्हें विविध सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक वर्गों की मांगों को समायोजित करने की शिक्षा दी जाती थी। कांग्रेस नेताओं ने अपने इसी विविधतापरक दृष्टिकोण के साथ आम राय तथा सहमति के आधार पर काम करना सीखा था तथा विदेश नीति के उनके दृष्टिकोण ने इन्हीं तत्वों ने प्रभावित किया। अपने आरंभ से ही कांग्रेस ने विदेश नीति संबंधी मसलों में गहरी दिलचस्पी दिखाई।

अन्य शब्दों में राजनैतिक सभ्रांत वर्ग विभिन्न सामाजिक वर्गों का नेतृत्व करता था तथा राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर बन्द सोच के विरुद्ध था। इसने विचारधारापरक सोच का भी विरोध किया तथा भारत का अपना एक विश्व मत बनाने की वकालत की।

सिविल सेवा तथा सैन्य अधिकारियों का वर्ग इसके पूरी तरह विपरीत तथा युवा समूह था जिसे ब्रिटिश अधिकारियों ने चुना तथा शिक्षित किया था। अपना रहन-सहन, खान-पान तथा अन्य आदतों के क्रम में ये समुदाय विदेशी ही था। हालांकि ब्रिटिश मालिकों ने इनके साथ भी कभी समानता का वर्ताव नहीं किया। इनकी कोई विचारधारा नहीं थी ना ही आजाद भारत की कोई तस्वीर। ये भारत को ब्रिटेन जैसा ही बनाना चाहते

थे। स्वतंत्रता के बाद इसी समूह ने भारत की सुरक्षा, विदेशी मामलों, प्रशासन को डोर संभाली।

यद्यपि पंडित नेहरू के व्यक्तित्व एवं प्रभाव के कारण प्रारंभिक चरण में ये समूह विदेश नीति निर्माण के हाशिए पर ही रहा। परंतु धीरे–धीरे इस नीति में परिवर्तन होने लगा तथा सही समूह विदेश नीति निर्माण के चरणों पर हावी होने लगा। वर्तमान में इस वर्ग का विदेश नीति पर गहरा प्रभुत्व है।

(2) राजनैतिक परिवेश

किसी भी देश की विदेश नीति का मुख्य निर्धारक तत्व राजनैतिक परिवेश होता है। राजनैतिक परिवेश के अंतर्गत कुछ परंपराओं का मुख्य उद्गम हमारा स्वतंत्रता आंदोलन तथा उससे पूर्व 19वीं शताब्दी में आरंभ हुए पुनर्जागरण में देखा जा सकता है।

(क) राजनीति एवं शक्ति का आदर्शवादी दृष्टिकोण

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में दो तरह की विचारधाराओं को देखा जा सकता है– प्रथम यथार्थवादी दृष्टिकोण जिसे कौटिल्य ने प्रतिपादित किया तथा द्वितीय अशोक द्वारा प्रतिपादित आदर्शवादी दृष्टिकोण। यद्यपि प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में विदेश नीति पर चाणक्य द्वारा प्रतिपादित विचारों का प्रभाव अधिक पड़ा। परंतु भारतीय पुनर्जागरण के काल में अशोक द्वारा प्रतिपादित विचारों को चाणक्य के विचारों पर प्रमुखता मिली।

प्राचीन भारत के अहिंसावादी दृष्टिकोण, जिसका प्रतिपादन जैन एवं बौद्ध धर्म में किया गया था तथा बाद में अशोक द्वारा स्थापित परंपराएं, उनका परिणाम स्वतंत्रता संग्राम में महत्मा गांधी द्वारा संपादित स्वतंत्रता संघर्ष पर पड़ा। महात्मा गांधी ने शक्ति को दूसरों की इच्छाओं को परिवर्तित करने तथा सत्ता हथियाने के रूप में न देखकर "सामाजिक संबंधों के आमूलचूल परिवर्तन" के रूप में देखा। महात्मा गांधी सत्ता एवं शक्ति के राजनीति के सख्त खिलाफ थे। उनके अनुसार सामाजिक परिवर्तन का आधार अहिंसात्मक मार्ग हो। शक्ति का एकमात्र स्वरूप, जिसे पाने की चेष्टा करनी चाहिए। अहिंसा एवं नैतिकता की शक्ति है, जिसके तहत व्यक्ति अपने विरोधी का हृदय परिवर्तन करता है। एक सच्चा अहिंसक व्यक्ति एक बड़े साम्राज्य के भविष्य को बदल सकता है तथा उसकी शक्ति एक परमाणु बम से भी अधिक होती है। इसलिए महात्मा गांधी ने ऐसी राष्ट्रीय शक्तियों का सत्याग्रह द्वारा विरोध करने को उचित रास्ता बताया। इसी तर्क को महात्मा गांधी ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को लागू करने की वकालत की। उन्होंने विदेशी आक्रमण का विरोध करने के लिए सत्याग्रह को राष्ट्रीय स्तर पर फैलाने की अपील की। उन्होंने ब्रिटेन तथा अन्य राष्ट्रों को जो हिटलर की सेनाओं से लड़ रहे थे, से सैन्य शक्ति से नहीं अपितु अहिंसात्मक सत्याग्रह से जर्मनी का मुकाबला करने की अपील की।

अहिंसक साधनों तथा शांति पूर्ण साधनों की वकालत करने वाले गांधी अकेले ही नहीं थे। श्री अरविन्द घोष के विचारों में भी इसी प्रकार की बातें कही गईं। अरविंदो के अनुसार नैतिक एवं धार्मिक विकास ही मनुष्यता का विकास है। एक वैश्विक धर्म जिसमें सभी राष्ट्रों के मूल्यों को समाहित किया जाए तथा मानव जाति का एक मुक्त संस्कारी समूह ही उत्थान का मार्ग प्रशस्त करेगा।

इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी इसी प्रकार के विचारों को प्रतिपादित किया। उनके अनुसार राष्ट्र की प्रगति अमीर तथा हथियारों द्वारा ताकतवर होने में नहीं बल्कि सबसे कमजोर व्यक्ति के विकास में है।

इन्हीं विचारों का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा उनकी विदेश नीति की सोच पर पड़ा। उसने बार-बार राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए शांतिपूर्ण साधनों की वकालत की। भारतीय संविधान के नीतिनिर्देशक तत्वों में इसी कारण अंतर्राष्ट्रीय मामलों के शांतिपूर्ण समाधान की बात कही गई है।

(ख) साम्राज्यवाद एवं रंगभेद विरोध

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कटु अनुभवों से ही भारत की साम्राज्यवाद विरोधी नीति का उद्भव हुआ। फ्रांसीसी एवं अंग्रेजी आधुनिक विचारों के प्रसार तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति बढ़ते सम्मान ने भारत के युवाओं में साम्राज्यवाद के प्रति विरोध की भावना को प्रबल किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का निर्माण भी भारत में साम्राज्यवाद के प्रति बढ़ते असंतोष का प्रतीक था। धीरे-धीरे इसी सोच का विस्तार भारत के अन्य वर्गों में भी होता चला गया। इसे और बढ़ाने का काम गांधी के स्वदेशी, स्वराज्य तथा असहयोग आंदोलनों ने किया।

प्रारंभिक चरण में साम्राज्यवाद विरोध की भारतीय नीति राष्ट्रीय स्तर तक ही सीमित थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आरंभ से ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति जिसमें ब्रिटेन के हितों की रक्षा हेतु भारतीय संसाधनों का दोहन तथा सैन्य क्षमता पर बढ़ता खर्च सम्मिलित था, का पुरजोर विरोध किया। परंतु प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कांग्रेस ने साम्राज्यवाद का विरोध अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रारंभ किया। इसका प्रमुख कारण ब्रिटेन द्वारा भारत पर लादा गया ब्रिटिश सैन्य खर्चों का बोझ था। यही वह समय था जब साम्राज्यवाद को एक विश्वव्यापी समस्या के रूप में देखना आरंभ किया गया।

1928 में कांग्रेस ने पारित किया कि, "भारतीय लोगों को साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष विश्वव्यापी है।" इसी प्रकार विभिन्न कांग्रेसी नेताओं के भाषणों में भी बार-बार साम्राज्यवाद विरोध की बात कही गयी।

इसी प्रकार ब्रिटेन की भारत में भेदभाव की नीति का भी कांग्रेस ने विरोध किया। इसका आरंभ यूं तो ब्रिटिश के भारत आगमन के साथ ही होता है परंतु इसकी चरम परिणति जलियांवाला बाग के हत्याकांड में हुई। इसी प्रकार विभिन्न ब्रिटिश मिशनों से भारतीयों को बार-बार बाहर रखा गया। महात्मा गांधी के दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों ने भी भारत की भेदभाव विरोधी नीति को मजबूत बनाने का काम किया।

(ग) राजनीतिक दलों का प्रभाव

सत्ताधारी दलों की नीतियां- स्वतंत्र भारत की विदेश नीति निर्माण में पं. नेहरू की भूमिका प्रमुख रही। उनके द्वारा निर्मित विदेश नीति आज तक भारतीय विदेश नीति का अंग है। सरकारों के परिवर्तन का इन पर प्रभाव कम ही पड़ा है। 17 मई 1996 का जब भाजपा की पहली केन्द्रीय सरकार स्थापित हुई तो इसके प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में भारतीय विदेश नीति की इन मुख्य विशेषताओं को स्वीकार किया। लेकिन इसके साथ ही अपनी प्राथमिकताओं में समय-समय पर स्वाभाविक परिवर्तन आए हैं। जून 1996 को स्थापित संयुक्त मोर्चे की सरकार ने भी

भारतीय विदेश नीति की विद्यमान सभी विशेषताओं को स्वीकार किया था तथा पड़ोसियों के साथ मित्रता और सहयोग को और दृढ़ करने की प्राथमिकता स्वीकार की थी।

टिप्पणी

1997 में बनी प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार गुजराल की सरकार ने भारतीय विदेश नीति को एक नई सक्रियता प्रदान की। परन्तु इसके बाद पैदा हुए राजनीतिक उथल-पुथल के वातावरण विशेषकर 11वीं लोकसभा भंग होने के बाद उत्पन्न उथल-पुथल के वातावरण ने भारतीय विदेश नीति की सक्रियता पर अंकुश लगा दिया। मार्च, 1998 में बनी भाजपा गठबंधन सरकार भी समस्याओं से घिरी रही, परन्तु विदेश नीति के क्षेत्र में कुछ विशिष्ट परिवर्तन किए गए जैसे कि परमाणु शस्त्रों और मिसाइल कार्यक्रमों को दृढ़ता से लागू करना। 1998 के परमाणु परीक्षणों के बाद लगे आर्थिक प्रतिबन्धों का दृढ़ता से सामना करना आदि। भारतीय विदेश नीति अब इस्रायल, मध्य एशिया, एशियान तथा यूरोपीय संघ के देशों के साथ अधिक व्यापक संबंध स्थापित करने का प्रयास करती रही। मई 2004 से भारत में कांग्रेस के नेतृत्व में बनी सरकार की नीतियां तथा वामदलों की विचारधारा भारतीय विदेश नीति को प्रभावित कर रही है।

हित समूह

भारत में विद्यमान हित समूह तथा राजनीतिक दल भी भारत की विदेश नीति विशेषकर गुटनिरपेक्ष रहने की नीति को आकार देने का साधन रहे हैं। कुछ मुख्य हित समूह जैसे कि INTUC वामपंथी अथवा समाजवादी विचारधारा के समर्थक रहे हैं जबकि वाणिज्यमंडल (CII, FICCI) दक्षिणपंथी रहे हैं। इसी कारक ने भारत को विश्व के वामपंथी तथा दक्षिणपंथी दोनों गुटों से एक समान अंतर बनाए रखने के लिए गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करने की प्रेरणा दी तथा इसके समस्त राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण सहयोग का विकास करने को प्रेरित किया। दलगत राजनीति की प्रकृति तथा सभी राजनीतिक दलों द्वारा लोकतांत्रिक सामाजवाद-उदारवाद को स्वीकार करना, इन्हीं दो तत्वों द्वारा भारतीय विदेश नीति को सम्यक रूप से निरंतरता बनाए रखने में सहायता मिली है, चाहे कभी-कभार छोटे-मोटे परिवर्तन भी करने पड़े हों।

अंतर्राष्ट्रीय निर्धारक

द्वितीय विश्वयुद्ध ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्ति ढांचे को अत्यधिक प्रभावित किया। पहले की महाशक्तियों तथा यूरोपीय देशों की शक्ति का पतन, अमेरिका तथा (भू. पू.) सोवियत संघ के दो महाशक्तियों के रूप में उदय शीतयुद्ध तथा सन्धियों का प्रादुर्भाव, परमाणु बमों का आगमन, संयुक्त राष्ट्र के निर्माण आदि ने संयुक्त रूप से युद्धोत्तर काल में अंतर्राष्ट्रीय वातावरण को एक नया स्वरूप प्रदान किया। 1947 में भारत का एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र के रूप में उदय होने तथा 1949 में चीन में सफल साम्यवादी क्रांति ने एशिया की जागृति के संकेत दिए। इसी प्रकार के वातावरण में भारत ने अपनी विदेश नीति के निर्माण का कार्य आरंभ किया। प्रमुख कारणों की विवेचना इस प्रकार की जा सकती है–

(क) **महाशक्तियों की प्रतिद्वंद्विता तथा भारतीय विदेश नीति** -अमेरिका तथा सोवियत संघ के महाशक्तियों के रूप में उभरने तथा अपने शिविर के देशों के साथ सुरक्षा सन्धियों द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने से अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में द्विध्रुवीयता का प्रादुर्भाव हो गया। इस युग में दोनों महाशक्तियों ने अपने-अपने गुट को सुदृढ़

करने के लिए नए स्वतंत्र हुए भारत को अपनी तरफ मिलाने के भरसक प्रयत्न किए। भारत के लिए इस प्रकार का अंतर्राष्ट्रीय वातावरण उलझनपूर्ण था तथा भारत के नियंत्रण से बाहर था। भारत की विदेश नीति का निर्माण इस प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में किया जाना था। भारत के पास केवल दो ही विकल्प थे–

प्रथम, दोनों में से किसी एक गुट का सदस्य बनकर शीतयुद्ध में सहायक बनना या द्वितीय शक्ति गुटों तथा शक्ति राजनीति से दूर रहना।

दूसरा, विकल्प भारत के राष्ट्रीय हितों के लिए कहीं अधिक उपयुक्त था। गुटनिरपेक्षता को अपनाने का निर्णय शक्तिगुटों तथा सैनिक संधियों से दूर रहने तथा साम्यवादी एवं गैर-साम्यवादी दोनों देशों के साथ मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक संबंध कायम करने के लिए किया गया है। शीतयुद्ध तथा शक्ति-राजनीति में शामिल हुए बिना अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में प्रभावशाली ढंग से भाग लेने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इसे उपयुक्त तथा न्यायपूर्ण नीति माना गया।

(ख) **अंतराष्ट्रीय मुद्दों पर भारतीय विदेश नीति–**दूसरे देशों के साथ संबंधों, विशेषतया चीन जैसे पड़ोसी राष्ट्रों के साथ संबंधों को स्थापित करने तथा दक्षिण एशिया के वातावरण से पंचशील को अपनाने का निर्णय निर्धारित हुआ। 1949 में साम्यवादी चीन के उदय, 1954 में पाकिस्तान द्वारा अमेरिका की सैनिक संधियों में शामिल होने का निर्णय तथा एशिया में महाशक्तियों के बढ़ते हस्तक्षेप के कारण भारत के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह गुटनिरपेक्ष का अनुसरण करे तथा इसके साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे सुदृढ़ करे। 1960 में भारतीय प्रयासों के कारण विश्व में गुटनिरपेक्ष आंदोलन आरंभ हुआ तथा शीघ्र ही यह आंदोलन काफी व्यापक हो गया।

इस आंदोलन ने द्विध्रुवीकरण को शिथिल बनाकर बहुकेंद्रवाद की उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त किया। विश्व में विकासशील देशों के हितों की रक्षा के लिए उत्तर-दक्षिण वार्तालाप तथा नीओ (नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था NIEO) के पक्ष में विश्व जनमत को प्रभावित किया। दक्षिण-दक्षिण सहयोग के उद्देश्य को दिशा और गति प्रदान की। विकास के लिए क्षेत्रीय सहयोग के मार्ग को सशक्त बनाया। विश्व में बढ़ रही परमाणु शस्त्र दौड़ को कम करने के लिए प्रयास किया तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यों में सक्रिया भागीदारी निभाता आया है।

इन सब सक्रियाओं के बावजूद भारत पर विश्व की परमाणुशक्तियों ने परमाणु अप्रसार संधि (NPT) और व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डाला। परन्तु अपने हितों तथा अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा की चुनौतियों को समझते हुए भारत ने इन दोनों ही संधियों पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया।

विश्व व्यवस्था को बहुकेंद्रीय स्वरूप में विकसित करने की आवश्यकता भारतीय विदेश नीति को आज प्रभावित कर रही है। आज भारत अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध विश्व जनमत तथा विश्व एकता को संगठित करने के लिए दृढ़ प्रयत्न कर रहा है। अन्य देशों विशेष तथा पड़ोसी देशों की नीतियों तथा वहां होने वाले राजनीतिक परिवर्तन भारतीय विदेश नीति के तत्व रहे हैं।

टिप्पणी

(ग) **अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का भारतीय विदेश नीति पर प्रभाव–** विकासशील देशों की विकसित देशों पर निर्भरता तथा विदेशी सहायता, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद, विश्व बैंक जैसी अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे महत्त्वपूर्ण साधनों द्वारा नव-उपनिवेशवाद के बने रहने को भारत के विदेश नीति नियंताओं ने अत्यंत हानिकारक समझा। इससे प्रभावी रूप से लड़ने के लिए तीसरी दुनिया अथवा विकासशील देशों की एकता को अपरिहार्य समझा गया। उत्तर-दक्षिण के बीच झगड़े को निपटाने की प्रक्रिया में भारतीय विदेश नीति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी तथा आज भी इस दिशा में ये प्रयासरत है। भारत ने विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता हासिल की। इसने वैश्वीकरण की प्रक्रिया का समर्थन किया है परंतु वैश्वीकरण की इस होड़ में विकासशील देशों के हितों की सुरक्षा के लिए भी दृढ़ कदम उठाए जाने का यह प्रबल समर्थक भी है।

इसके साथ ही भारतीय विदेश नीति नव-उपनिवेशवाद, संरक्षणवाद तथा विकसित राज्यों की दादागिरी के विरुद्ध अब और भी संघर्षशील बन रही है। भारत आसियान का क्षेत्रीय भागीदार है, जी-15 जैसे समूह का सक्रिय सदस्य है तथा विश्व आर्थिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद से ही भारत अपने तथा अन्य सभी विकासशील देशों के आर्थिक हितों की सुरक्षा के लिए प्रयत्न कर रहा है। इसी प्रकार अन्य आर्थिक मंचों पर भी भारत अब सक्रिय भागीदार के रूप में उभर कर आया है। विश्व की चार सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में अपना स्थान बना लेने के बाद विश्व का कोई भी आर्थिक अथवा व्यापार संगठन भारत की भागीदारी के बिना नहीं रह सकता।

अपनी प्रगति जांचिए

5. भारत की विदेश नीति के निर्धारण में प्रमुख सिद्धांत है-
   (क) साम्राज्यवाद का विरोध (ख) गुटनिरपेक्षता
   (ग) सह-अस्तित्व का सिद्धांत (घ) उपरोक्त सभी
6. संयुक्त राष्ट्र महासभा ने किस वर्ष हिन्द महासागर को शांति क्षेत्र घोषित किया?
   (क) 1970 (ख) 1971
   (ग) 1972 (घ) 1973

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (ख)
4. (घ)

5. (घ)
6. (ख)

टिप्पणी

1.6 सारांश

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपने व्यवहार को अर्थ देने के लिए प्रत्येक राष्ट्र कुछ सिद्धांत तय करता है तथा उसी आधार पर वह अन्य राष्ट्रों के साथ अपने संबंधों को निर्धारित करता है। पर स्पष्ट निर्भरता के अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में प्रत्येक राष्ट्र अपनी विदेश नीति के द्वारा ही अपने राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों और अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है जो अन्य राष्ट्रों से संबंधित होते हैं। वास्तव में विदेश नीति ही उन लक्ष्यों तथा राष्ट्रीय हितों को परिभाषित करती है जो राष्ट्र प्राप्त करना चाहता है।

एक संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में विदेश नीति निर्माण पर राजनैतिक कार्यपालिका का नियंत्रण होता है। विदेश नीति कार्यालय, राजनैतिक कार्यपालिका द्वारा लिए गए निर्णयों को लागू करने का कार्य करता है। वर्तमान में विश्व व्यवस्था में आए व्यापक परिवर्तन सूचना एवं तकनीक के क्षेत्र में हुए विकास के कारण विदेश नीति निर्माण का कार्य और भी जटिल हो गया है। विदेश नीति संबंधी मामलों पर विदेशमंत्री तथा विदेश सेवा कार्यालय के अतिरिक्त प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमंडल भी उत्तरदायी होती है। इन संस्थानों का प्रमुख कार्य विदेश नीति के मुख्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **गैर मानवीय :** मानवीय प्रभावों से मुक्त।
- **सापेक्ष :** समानुपातिक।
- **द्विध्रुवीय :** दो छोरों में बंटी हुई।
- **प्रकार्य :** कार्य करने की विधि।

1.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. विदेश नीति से आप क्या समझते हैं?
2. किसी राष्ट्र की विदेश नीति निर्धारण में किन आंतरिक तत्वों पर चर्चा की जाती है?
3. संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय 6 के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान किस प्रकार करने की वकालत की गई है?
4. भारत ने किस वर्ष तिब्बत पर चीन के नियंत्रण को मान्यता दी?
5. किसी देश को महाशक्ति कब कहा जाता है?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. विदेश नीति की परिभाषा स्पष्ट करते हुए उसके निर्धारण में आंतरिक एवं बाह्य तत्वों की समीक्षा करें।

टिप्पणी

2. भारतीय विदेश नीति के अधुनातन स्वरूप पर स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभावों का अन्वेषण कीजिए।
3. पं. जवाहरलाल नेहरू के विदेश नीति संबंधी दृष्टिकोण की आलोचनात्मक विवेचना करें।
4. भारतीय विदेश नीति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. भारतीय विदेश सेवा का परिचय देते हुए इसके उद्देश्यों, प्रकार्य व प्रशिक्षण की पद्धतियों की विवेचना कीजिए।

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Khanna, V. N. and Leslie K. Kumar. 2018. *Foreign Policy of India*, 7th Edition. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Ganguly, Sumit. 2011. *India's Foreign Policy.* New Delhi: Oxford University Press.

Reddy, K. Raja. 2012. *Foreign Policy of India and Asia-Pacific.* New Delhi: New Century Publications.

Balakrishan, T.K. 2010. *Foreign Policy of India: Problems and Paradoxes*. New Delhi: Mohini Publishers and Distributors.

Muni, S.D. 2009. *India's Foreign Policy: The Democracy Dimension*. Foundation Books.

इकाई 2 पड़ोसी देशों के साथ भारत के संबंध

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 पाकिस्तान के साथ संबंध
2.3 बांग्लादेश के साथ संबंध
2.4 श्रीलंका के साथ संबंध
2.5 भूटान के साथ संबंध
2.6 अफगानिस्तान के साथ संबंध
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

भारत की विदेश नीति में पाकिस्तान पड़ोसी राष्ट्र होने के नाते एक महत्वपूर्ण कारक रहा है । भारत-पाक विभाजन तथा बड़ी संख्या में जनसंख्या का स्थानांतरण विश्व इतिहास की सबसे दर्दनाक घटनाओं में से एक है। इसी प्रकार एक उभरती विश्व शक्ति के रूप में चीन भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इन दोनों देशों ने अपनी नीतियों से हमेशा भारत को चिंतित किया है।

भारत-बांग्लादेश की बात करें तो साझा इतिहास, साझी भाषा संस्कृति, स्वाधीनता संघर्ष एवं स्वतंत्रता की साझी विरासत दोनों देशों को आपस में जोड़ती है। भारत के प्रयासों द्वारा 1971 में बांग्लादेश देश को स्वतंत्र राष्ट्र की संप्रभुता हासिल हुई। ये भारत के ही प्रयास थे कि बांग्लादेश को 1974 में संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्राप्त हुई।

भारत और श्रीलंका के संबंध 2,500 वर्ष के अधिक समय पुराने हैं। दोनों देशों की बौद्धिक, सांस्कृतिक धार्मिक और परस्पर भाषाई संबंधों की एक विरासत है। हाल ही के वर्षों में, सभी स्तरों पर इन संबंधों में प्रगाढ़ता आई है। व्यापार और निवेश बढ़ा है तथा विकास, शिक्षा, संस्कृति और रक्षा के क्षेत्रों में सहयोग किया जाता है।

भारत विश्व का सातवां सबसे बड़े आकार वाला तथा दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला राष्ट्र है। इसकी विदेश नीति न केवल इसके पड़ोसियों अपितु अन्य राष्ट्रों को भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। अत: भारत के अपने कुछ पड़ोसी एवं अन्य राष्ट्रों के साथ द्विपक्षीय संबंधों पर चर्चा करना आवश्यक है।

इस इकाई में पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, भूटान तथा अफगानिस्तान के साथ भारत के संबंधों की विवेचना की गई है।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारत और पाकिस्तान के परस्पर संबंधों की जटिलता को समझ पाएंगे;
- बांग्लादेश के उदय व भारत के साथ उसके संबंधों को जान पाएंगे;
- भारत और श्रीलंका के आपसी संबंधों की समीक्षा कर पाएंगे;
- भूटान और अफगानिस्तान के भारत के साथ संबंधों की गहराई से परिचित हो पाएंगे।

2.2 पाकिस्तान के साथ संबंध

भारत-पाकिस्तान संबंध भारतीय विदेश नीति के लिए सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण मुद्दा रहा है। नार्मन डी. पामन के शब्दों में, "भारत के पाकिस्तान के साथ संबंधों ने भारत की समस्त विदेश नीति के प्राय: सभी पक्षों तथा इस के सारे अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को प्रभावित कर रखा है।" इन दोनों के बीच संबंधों में कड़वाहट का आरंभ 1947 ई. में भारत के विभाजन तथा पाकिस्तान के एक अलग राज्य के रूप में अभ्युदय से ही हो जाता है। भारत का यह विभाजन सांप्रदायिकता तथा मुस्लिम लीग के दो राष्ट्रों के सिद्धांत का परिणाम था। इसके परिणामस्वरूप स्वतंत्रता से पूर्व ही दोनों गुटों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जो विभाजन की विरोधी थी तथा मुस्लिम लीग जो स्वयं को मुसलमानों की प्रतिनिधि मानती थी तथा विभाजन की मांग कर रही थी, में कटुता अपने चरम पर पहुंच गई थी। कीथ कालर्ड के शब्दों में– "यह कहना गलत होगा कि भारत के प्रति पाकिस्तान की भावना मात्र घृणा की भावना है। उनका रवैया गहरी प्रतिद्वंद्विता लिए हुए अत्यंत द्वेष से भरपूर है।" आरंभ से ही पाकिस्तान का रवैया भारत के प्रति शंका और द्वेष से भरपूर रहा है। पाकिस्तान का उद्देश्य भारत से खतरे के विरुद्ध पाकिस्तान की सुरक्षा तथा अखंडता को निश्चित बनाना था। इसके लिए पाकिस्तान के शासक पाकिस्तान को सैनिक रूप से सुदृढ़ करने लगे तथा भारत की ओर से किसी भी प्रकार के संभावित खतरे को चुनौती देने के लिए तैयार होने लगे। अमेरिका की संधि व्यवस्था सिएटो, सेन्टो में पाकिस्तान के शामिल होने का प्रमुख कारण भी यही था कि वे गुट-निरपेक्ष भारत के विरुद्ध पश्चिमी शस्त्र तथा समर्थन प्राप्त करना चाहता था। भारत यद्यपि 1947 के बंटवारे को अप्राकृतिक समझता था पर परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भारत ने बंटवारे को स्वीकार कर लिया था।

भारत-पाक संबंध (1947-65)

यह चरण दोनों देशों के बीच तनाव का आरंभिक समय था। दोनों देशों के बीच तनाव के विविध मुद्दे निम्नलिखित थे–

जनसंख्या के स्थानांतरण से उत्पन्न समस्या

भारत-पाक विभाजन तथा एक बड़ी संख्या में जनसंख्या का स्थानांतरण विश्व इतिहास की सबसे दर्दनाक घटनाओं में से एक है। 1947 में दोनों और से आने-जाने वालों की संख्या लगभग 120 लाख थी। इतनी बड़ी संख्या में स्थानांतरण के बाद भी धार्मिक अल्पसंख्यकों की समस्या किसी भी राज्य में हल नहीं हो सकी, करीब 4 करोड़

टिप्पणी

मुसलमान भारत में ही रहे तथा 1 करोड़ हिंदू पाकिस्तान में। जब दोनों देशों की जनसंख्या एक हिस्से से दूसरे हिस्से में स्थानांतरित हो रही थी, कई बार इस बीच दंगों ने व्यापक रूप ले लिया। इन दंगों की विभीषिका विश्व इतिहास में आज भी एक दर्दनाक हादसे के रूप में याद की जाती है। इन्हीं दंगों से निपटने के लिए प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू तथा पाकिस्तानी प्रधान मंत्री लियाकत अली खान के बीच समझौता हुआ। इसे 1950 का नेहरू-लियाकत समझौता कहा जाता है।

इस समझौते के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को संवैधानिक आश्वासन दिया गया तथा यह वायदा किया गया कि शरणार्थियों की संपत्तियों को या तो वापिस किया जाएगा या फिर स्थानांतरण दिया जाएगा और उनकी अपहृत औरतों को भी वापिस किया जाएगा। इसमें प्रवासियों के जान-माल की रक्षा का भी वायदा किया गया। इस समझौते में यह भी कहा गया कि पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल में अल्पसंख्यकों की समस्याओं को सुलझाने के लिए अल्पसंख्यक आयोग स्थापित किए जाएंगे ताकि प्रवासियों के लिए की गई व्यवस्था का ध्यान रखा जा सके।

इस समझौते में कुछ समय तक शरणार्थियों का आना जाना कम हुआ परंतु यह 1951 में पुनः प्रारंभ हो गया। खासतौर पर पूर्वी पाकिस्तान से हिंदुओं का बड़ी संख्या में पश्चिमी बंगाल में आना शुरू हो गया। गैरकानूनी प्रवास की समस्या बहुत गंभीर हो गई परंतु दोनों देशों ने एक दूसरे के विरुद्ध अंतर्राष्ट्रीय मामलों पर इतनी भिन्न-भिन्न स्थितियां अपना ली थीं कि वे यहां तक कि नेहरू-लियाकत समझौते का भी पूर्णतया पालन न कर सके। छठे दशक के अंत तक तथा सातवें दशक के शुरू तक पाकिस्तान से भारत आने वाले शरणार्थियों की बड़ी संख्या ने भारत तथा पाकिस्तान दोनों के संबंधों के लिए ही समस्या पैदा कर रखी थी। यहां तक कि 1971 में भी जब पाकिस्तान की सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान में सेना को भेज दिया तथा वहां बड़ी संख्या में सेना द्वारा नरसंहार होने लगा तो बड़ी संख्या में वहां से हिंदू तथा मुस्लिम शरणार्थी भारत आने शुरू हो गए। 1971 में भारत-पाक युद्ध का कारण भी यही बना। अन्य शब्दों में विभाजन की समस्या ने भारत-पाकिस्तान के संबंधों को लगातार प्रभावित किया है।

शरणार्थियों की छोड़ी हुई संपत्तियों की क्षतिपूर्ति अथवा वसूली मुद्दा

स्थानांतरण के साथ ही साथ एक अन्य गंभीर समस्या शरणार्थियों द्वारा छोड़ी गई संपत्ति की वसूली तथा क्षतिपूर्ति की थी। विभाजन के परिणामस्वरूप करीब एक करोड़ गैर मुस्लिम पाकिस्तान से भारत तथा करीब 25 लाख मुस्लिम भारत से पाकिस्तान गए। सांप्रदायिक दंगों के कारण स्थानांतरण के समय लोगों को अपनी चल-अचल संपत्ति अपने-अपने पैतृक देश में ही छोड़ देनी पड़ी। गैर मुस्लिमों ने करीब 50,000 लाख रुपए की अचल संपत्ति पाकिस्तान में छोड़ी तथा भारत छोड़ने वाले मुसलमान शरणार्थियों ने करीब 10,000 लाख रुपए की जायदाद छोड़ी। स्थानांतरित संपत्ति के संबंध में बातचीत 29 अगस्त, 1941 को शुरू हो गई परंतु समस्या के जटिल स्वरूप के कारण तथा दोनों सरकारों के दृष्टिकोणों में भिन्नता के कारण इस बातचीत का कोई परिणाम न निकला। भारत चाहता था कि दोनों देशों की सरकारें स्थानांतरित संपत्ति अपने अधिकार में ले तथा उसके बाद शरणार्थियों द्वारा किए गए दावों के आधार पर क्षतिपूर्ति निश्चित कर दें। पाकिस्तान ने यह सुझाव दिया कि इस समस्या को एक-एक कर हाथ में लिया जाए तथा छोड़ी हुई संपत्ति को या तो स्थानांतरित कर दिया जाए या बेच दिया जाए। इस

सुझाव को भारत ने नहीं माना। जब 1954 तक इस प्रकार गतिरोध जारी रहा तो भारत सरकार ने यह निर्णय लिया कि वह इस प्रकार की संपत्ति उन शरणार्थियों के लाभ के लिए प्रयोग कर ले जो भारत में आए थे। इस कार्य को शरणार्थी व्यक्ति अधिनियम 1954 में पास किया गया था। अप्रैल 1955 में कराची में भारत तथा पाकिस्तान में एक समझौता हुआ तथा अचल संपत्ति के बारे में झगड़े का हल ढूंढा गया। जनवरी 1956 में दोनों सरकारों ने शरणार्थियों द्वारा छोड़े गए बैंक खातों, लॉकरों तथा सुरक्षित जमा खातों का स्थानांतरण करना स्वीकार कर लिया।

राजकीय संपत्ति के बंटवारे की समस्या

भारत की संपत्ति के भारत तथा पाकिस्तान के बीच बंटवारे की समस्या ने भी दोनों देशों के बीच संबंधों को तनावग्रस्त बनाए रखा। 14 अगस्त, 1947 को भारत के पास नकद 40,000 लाख रुपया था, जिसमें पाकिस्तान 10,000 लाख रुपया चाहता था। भारत पाकिस्तान को इतनी बड़ी राशि नहीं देना चाहता था। इसलिए इस समस्या को एक मध्यस्थ न्यायाधिकरण के सामने पेश किया गया जिसने यह निर्णय दिया कि 7,500 लाख रुपया पाकिस्तान को उसके हिस्से के रूप में दिया जाए। कुछ हिचकिचाहट के बाद भारत इस समझौते को मानने को तैयार हो गया तथापि पाकिस्तान ने 55 करोड़ रुपए का हिस्सा देने से इंकार कर दिया जो स्वतंत्रता से पहले भारत पर ऋण था। बंटवारे के समय यह निर्णय किया गया था कि भारत समस्त विदेशी ऋणों का भुगतान करेगा तथा पाकिस्तान अपने हिस्से की रकम तीन या बराबर हिस्से में भारत को देगा। पाकिस्तान द्वारा अपना हिस्सा देने से इंकार करने के कारण दोनों के बीच कटुता बढ़ गई। इसी प्रकार सैनिक भंडारों के विभाजन की समस्या तथा बैंकों की सेवाओं को समाप्त करने के कारण भी दोनों देशों के बीच संबंध कटु हो गए। व्यापार तथा आर्थिक संबंध स्थापित करने की समस्या ने भी तनाव पैदा कर दिया। वे क्षेत्र जो पाकिस्तान के हिस्से में गए थे, गेहूं तथा कपास के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे तथा भारत के दूसरे भागों को इन चीजों की पूर्ति करते थे। इसी प्रकार भारत को विभाजन के बाद गन्ना, कोयला, कच्चा लोहा उत्पादन करने वाले क्षेत्र मिल गए। विभाजन ने आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों की पूरकता को समाप्त कर दिया।

1947 ई. में दोनों देशों के बीच एक यथास्थिति समझौता हुआ जिसके अनुसार दोनों देशों के बीच वस्तुओं के मुक्त प्रवाह की अनुमति दी गई। यह समझौता अधिक समय तक काम नहीं कर सका क्योंकि दोनों के बीच पटसन पर लगने वाले कर तथा ऐसी अन्य वस्तुओं पर लगने वाले आयकरों में हिस्सा देने तथा इकट्ठा करने वाले मामले पर झगड़ा खड़ा हो गया। परिणामस्वरूप मई 1948 को एक अन्य व्यापार समझौता किया गया परंतु इस समझौते के बाद भी समस्या हल नहीं हो सकी। जून 24, 1949 को एक तीसरा समझौता किया गया परंतु भारत के रुपए के मूल्य के अवमूल्यन से तथा पाकिस्तान द्वारा अपने रुपए के अवमूल्यन से इंकार कर देने के कारण इस समझौते को लागू करना कठिन हो गया।

जल विवाद

पंजाब का पश्चिमी भाग जो 1947 के बाद पाकिस्तान में चला गया तथा पूर्वी भाग जो भारत में रह गया, इनके बंटवारे ने दोनों देशों के बीच विवाद को जन्म दिया। यह समस्या पंजाब के अप्राकृतिक विभाजन के कारण पैदा हुई।

भारत स्थित पूर्वी पंजाब सिंचाई कार्यों में अविकसित था जबकि पश्चिमी पंजाब में सिंध के मैदान में विभाजन से पूर्व ही अधिक बेहतर नहर व्यवस्था थी। परंतु इनमें से बहुत सी नहरें भारत स्थित नदियों से निकलती थीं तथा पतन भी भारत में स्थापित तथा नियंत्रित थे। 1947 में दोनों ही देशों ने 1947 से पूर्व की स्थिति को बनाए रखना स्वीकार किया।

पाकिस्तान ने भारत को सतलुज तथा रावी नदियों में से आने वाले पानी के लिए मुआवजा देना स्वीकार कर लिया था। अप्रैल 1948 को इस समझौते के समाप्त होने के बाद भारतीय पंजाब की सरकार ने पाकिस्तान को पानी की आपूर्ति बंद कर दी। पाकिस्तान के किसानों ने पानी के प्रश्न को सुलझा पाने की अपनी सरकार की असफलता के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करनी शुरू कर दी। इससे पाकिस्तान की सरकार पर दबाव बढ़ा। फलतः 4 मई, 1948 को मंत्री–स्तरीय बातचीत के बाद भारत तथा पाकिस्तान में एक नया समझौता किया गया। इस समझौते के अंतर्गत भारत ने पाकिस्तान को पानी देना स्वीकार तो कर लिया किंतु पाकिस्तान को अपने सिंचाई संसाधन विकसित करने को भी कहा। इस बात पर सहमति हो गई कि भारत पाकिस्तान को धीरे–धीरे पानी की अपूर्ति कम करता जाएगा तथा अंत में पानी आपूर्ति बिलकुल बंद कर देगा। बाद में पाकिस्तान ने इस समझौते का उल्लंघन किया तथा कहा कि यह पाकिस्तान का अधिकार है कि वह भारत की नदियों से बिना किसी बाधा के लगातार पानी प्राप्त करे। इसने भारत के उन नए बांधों तथा नहरों के निर्माण की योजनाओं को चुनौती देना शुरू कर दिया जिनके द्वारा राजस्थान तथा पूर्वी पंजाब को सिंचाई सुविधाओं को प्रदान किया जाना था।

मार्च 1952 में विश्व बैंक के अध्यक्ष मि. युजेन ब्लैक ने नहर–पानी के झगड़े के निपटारे के लिए भारत तथा पाक के बीच अपनी मध्यस्थता पेश की। छह वर्षों की कठिन बातचीत के बाद दोनों देशों ने 1959 ई. में एक संधि के प्रारूप को स्वीकार किया। किंतु सिंधु पानी संधि को अंतिम रूप देने में और 16 महीने का समय लग गया, जिस पर आखिरकार 11 सितंबर, 1960 को नेहरू तथा अयूब ने कराची में हस्ताक्षर किए। उस संधि ने भारत को तीन नदियों–सतलुज, ब्यास, रावी के पानी के पूर्ण उपयोग का अधिकार दे दिया तथा पाकिस्तान को यह अधिकार दिया कि वह झेलम, चिनाब तथा सिंध नदी के पानी का पूर्णतया उपयोग कर सकता है।

इस संधि के अंतर्गत यह भी प्रावधान किया गया कि एक स्थायी सिंधु नदी आयोग तथा सिंधु नदी घाटी विकास निधि की भी स्थापना की जाएगी। इस निधि द्वारा पाकिस्तान में 400 मील लंबी नहरें तथा दो बड़े बांधों के निर्माण का अधिकतर व्यय किया जाना स्वीकार किया गया। भारत को भी विश्व बैंक तथा अमेरिका द्वारा ब्यास बांध के निर्माण के लिए आर्थिक सहायता मिली।

सीमा विवाद

विभाजन के बाद दोनों देशों ने गंभीरतापूर्वक रैड क्लिफ एवार्ड के आधार पर अपनी सीमा निर्धारण करने का कार्य शुरू किया। सुसंगत समझौते के द्वारा दोनों देशों के बीच बातचीत हुई। दोनों देशों ने इस कार्य को करीब 25 वर्षों के समय में पूरा किया। पूर्वी पंजाब तथा पाकिस्तान के बीच सीमा का निर्धारण कार्य जून 1960 में पूरा हो गया तथा राजस्थान–पाकिस्तान सीमा का निर्धारण 1963 में पूरा हुआ। परंतु दोनों देश कच्छ–सिंध सीमा निर्धारण में असफल रहे। भारत का विचार था कि मुंबई की सरकार ने फरवरी 1914 ई. के प्रस्ताव

टिप्पणी

द्वारा इस विषय को अंतिम रूप दे दिया था। पाकिस्तान ने इसे नहीं माना तथा यह मत दिया कि इन मामलों पर अभी भी झगड़ा चल रहा है तथा यह कि कच्छ-सिंध सीमा का निर्धारण कभी नहीं किया गया। 1964 के शुरू में पाकिस्तान ने रन ऑफ कच्छ के उत्तर में बड़े क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए अपनी सेनाएं भेजीं परंतु भारतीय सेनाओं की जवाबी कार्यवाही के बाद पाकिस्तानी सेना पीछे हट गई। अप्रैल 1965 में भारत तथा पाकिस्तान के बीच रन ऑफ कच्छ के स्वामित्व के प्रश्न पर युद्ध शुरू हो गया। परंतु जून 1965 में दोनों के बीच युद्ध विराम हो गया। इसके बाद यह बात स्वीकार की गई कि यह मामला न्यायाधीशों वाले न्यायाधिकरण के सामने उठाया जाएगा जिसका निर्णय दोनों देशों को मानना पड़ेगा। इस न्यायाधिकरण ने जून 1968 में अपना निर्णय दिया तथा पाकिस्तान के विरुद्ध इस मत का निर्णय दिया कि रन कच्छ की अंतर्राष्ट्रीय सीमा इसके मध्य से गुजरती है। फिर भी इस विवादास्पद क्षेत्र का 350 वर्ग मील का क्षेत्र पाकिस्तान को दे दिया गया। यद्यपि भारत को यह फैसला न्यायपूर्ण नहीं लगा फिर भी उसने इसे स्वीकार कर लिया क्योंकि जून, 1965 के समझौते की यही शर्त थी।

रियासतों के एकीकरण की समस्या

विभाजन समझौते के एक भाग के रूप में यह बात स्वीकार की गई कि 15 अगस्त, 1947 को भारतीय राजाओं द्वारा शासित रियासतों पर ब्रिटिश सरकार की प्रभुता समाप्त हो जाएगी तथा ये रियासतें अपनी इच्छा से पाकिस्तान या भारत में शामिल हो सकती हैं या फिर स्वतंत्र रह सकती थीं। सभी रियासत में जूनागढ़, हैदराबाद, तथा कश्मीर अर्थात तीन को छोड़कर, ने अपने-अपने भाग्य का निर्णय अपनी इच्छा से कर लिया। लेकिन इन तीनों रियासतों के किसी देश में शामिल होने की समस्या ने दोनों देशों के बीच के संबंधों को तनावूपर्ण बना दिया।

जूनागढ़—जूनागढ़ की रियासत में हिन्दुओं का बहुमत था, जिस पर सर मुहब्बत खान नामक शासक का राज्य था। इसका पाकिस्तान के साथ कोई भौगोलिक संपर्क नहीं था तथापि मुसलमान शासक ने 15 अगस्त, 1947 को अपने आपको पाकिस्तान के साथ शामिल करने की घोषणा कर दी। इस निर्णय से जूनागढ़ में गंभीर आंतरिक अव्यवस्था फैल गई जिसके कारण जूनागढ़ के दिवान मा. शाहनवाज भुट्टो को भारत सरकार को निमंत्रण देकर बुलाना पड़ा ताकि वह जूनागढ़ का प्रशासन अपने हाथों में ले ले। नवंबर, 1947 को भारत ने जूनागढ़ का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया। पाकिस्तान में भारत की इस कार्यवाही के विरुद्ध कड़ा प्रदर्शन किया गया तथा नवाब को दोबारा पदासीन करने को कहा। 20 फरवरी, 1948 को जूनागढ़ में मत संग्रह करवाया गया ताकि इसके भविष्य का फैसला किया जा सके। लोगों ने भारत के पक्ष में अपना फैसला दिया। केवल 91 लोगों ने पाकिस्तान के हक में वोट दिया। इस निर्णय के बाद जूनागढ़ भारत का एक अटूट अंग बन गया।

हैदराबाद—हैदराबाद की रियासत में भी हिंदुओं का बहुमत था, जिस पर एक मुसलमान नवाब का शासन था। इसकी भी समस्त सीमाएं भारत के साथ लगती थीं। हैदराबाद के निजाम ने स्वतंत्र रहने का निर्णय किया तथा इस संबंध में एक फरमान जारी कर दिया। नवंबर 1947 में उसने भारत के साथ एक यथास्थिति समझौता किया। हैदराबाद की आंतरिक स्थिति, रजाकारों तथा मुस्लिम गुट के समर्थकों द्वारा हिंदुओं पर किए जाने वाले अत्याचारों के कारण बिगड़ गई। परिस्थितियां इतनी बिगड़ गईं कि भारत की सरकार

टिप्पणी

को निजाम के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी। भारतीय पुलिस कार्यवाही के बाद निजाम ने भारत के साथ मिल जाने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप 23 सितम्बर, 1948 को उसने सुरक्षा परिषद को एक तार भेजा जिसमें भारत की कार्यवाही के विरुद्ध हैदराबाद की शिकायत को वापस ले लिया।

कश्मीर की समस्या–भारत-पाक संबंधों में विवाद का सबसे बड़ा मुद्दा कश्मीर का रहा है। विभाजन होने तथा ब्रिटेन की प्रभुसत्ता के समाप्त होने के बाद कश्मीर के महराजा हरिसिंह ने भारत तथा पाकिस्तान के साथ मिलने के निर्णय को टालने का निर्णय लिया। इसलिए पाकिस्तान ने कबायलियों की सहायता से कश्मीर पर आक्रमण करवा दिया ताकि कश्मीर में उथल-पुथल मच जाए। आक्रमणकारियों को पाकिस्तानी सेना की पूर्ण सहायता तथा समर्थन प्राप्त था। परंतु पाकिस्तान की यह चाल सफल नहीं हुई। 26 अक्टूबर, 1947 को कश्मीर के राजा हरिसिंह ने आक्रमणकारियों को खदेड़ने के लिए भारत सरकार की सहायता लेने के लिए भारत में शामिल हो जाने का निर्णय किया। भारत की सरकार ने कश्मीर के लोगों को यह आश्वासन दिया कि कश्मीर के भाग्य का निर्णय करने के लिए मत संग्रह करवाया जाएगा। पाकिस्तान की सरकार ने कश्मीर का भारत में शामिल होना अस्वीकार कर दिया तथा इससे पाकिस्तान तथा भारत में कश्मीर का झगड़ा खड़ा हो गया।

नवंबर, 1947 में लॉर्ड माउंटबेटन ने कश्मीर पर भारत-पाक विवाद को हल करने का प्रयत्न किया तथा इस उद्देश्य के लिए उसने पाकिस्तान नेताओं के साथ बातचीत भी की। परंतु इन प्रयत्नों का कोई परिणाम न निकला तथा दिसंबर, 1947 में यह स्पष्ट हो गया कि बातचीत द्वारा इस समस्या का हल नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप 1 जनवरी, 1948 को भारत ने यह समस्या संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद के सामने रख दी। उसी समय से कश्मीर का मामला सुरक्षा परिषद में लटका पड़ा है।

पहले पहल सुरक्षा परिषद ने भारत तथा पाकिस्तान में कश्मीर समस्या को हल करने के लिए एक 5 सदस्यीय आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने दिसंबर, 1948 को कश्मीर में युद्ध विराम की घोषणा कर दी, जिसे 1 जनवरी 1948 को लागू होना था, बाद में इसने तीन अंतिम रिपोर्टें भी प्रस्तुत कीं। इसकी सिफारिशों पर सुरक्षा परिषद ने कश्मीर पर मध्यस्थ के रूप में एम.सी. नोटन की नियुक्ति की। वे इस समस्या को सुलझा न सके। 1 अप्रैल, 1950 को सुरक्षा परिषद ने ओवन ब्रिक्सन को नियुक्त किया, जिसे एम.सी. नोटन की रिपोर्टों को लागू करना था। वे भी सफल न हो सके। उसने अपनी रिपोर्ट में भारत तथा पाकिस्तान के बीच कश्मीर के बंटवारे का सुझाव दिया। दोनों ही देशों ने इस सुझाव को रद्द कर दिया। इसके बाद सुरक्षा परिषद द्वारा एफ.पी. ग्राहम को संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में भारत तथा पाकिस्तान के लिए नियुक्त किया गया तथा उसने यह सुझाव दिया कि दोनों ही देशों के बीच कश्मीर समस्या को हल करने के लिए सीधी बातचीत होनी चाहिए। 1953-56 तक भारत तथा पाकिस्तान दोनों देशों ने ही कश्मीर पर कई बार आपसी बातचीत की परंतु किसी भी परिणाम पर नहीं पहुंच सके।

इसी बीच स्थिति काफी परिवर्तित हो गई। कश्मीर के लोगों ने अपनी नेशनल कांफ्रेंस, अपनी संविधान सभा, चुनावों के परिणामों तथा जम्मू-कश्मीर की विधान सभा के प्रस्तावों द्वारा कश्मीर के भारत में विलय को पूर्ण स्वीकृति दे दी। इसलिए भारत ने पाकिस्तान की इस मांग को रद्द कर दिया कि कश्मीर में मत संग्रह करवाया जाए।

टिप्पणी

1954 में पाकिस्तान अमेरिका के नेतृत्व में बनी सुरक्षा संधि सीएटो का सदस्य बन गया तथा अपनी गुट की स्थिति के कारण भारत को पश्चिमी दबावों द्वारा कश्मीर की समस्या का समाधान करने के लिए प्रयोग करना शुरू कर दिया। पाकिस्तान के इस कार्य के प्रति भारत ने कड़ा रवैया अपनाया तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में सोवियत संघ का समर्थन प्राप्त किया। परिणामस्वरूप सुरक्षा परिषद झगड़े का निपटारा न कर सकी। 1955 तक सुरक्षा परिषद की कश्मीर समस्या को हल कर पाने की असफलता स्पष्ट हो गई तब पाकिस्तान ने अमेरिका तथा ब्रिटिश दबावों को कश्मीर समस्या पर बातचीत करने के लिए भारत को बाध्य करने के लिए प्रयोग करने का निर्णय किया। विशेषतया 1962 में चीनी आक्रमण के बाद पाकिस्तान कश्मीर समस्या को सुलझाने के लिए काफी उत्सुक हो गया। इस समय तक भारत ने यह बात दृढ़ता से कहनी शुरू कर दी थी कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। किंतु 1962 के बाद भारत ने कश्मीर पर बातचीत करने की पाकिस्तान की मांग को मान लिया। दोनों देशों के बीच कश्मीर पर छह बार बातचीत हुई। इस बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकला।

1965 में पाकिस्तान ने सेना की सहायता से कश्मीर समस्या सुलझाने का प्रयत्न किया। प्रशिक्षित घुसपैठियों की सहायता से इसने कश्मीर में गड़बड़ी फैलाने के प्रयत्न किए। सितंबर, 1965 को इसी की प्राप्ति के लिए भारत पर आक्रमण कर दिया। भारत ने इसका उचित उत्तर दिया तथा कश्मीर देने की अपेक्षा कश्मीर के कई हिस्सों को अपने अधिकार में कर लिया जो अवैध रूप से पाकिस्तान ने अपने अधिकार में रखे हुए थे।

ताशकंद समझौता

1966 में दोनों देशों ने ताशकंद समझौता किया तथा यह बात स्वीकार की कि वे सभी आपसी मामलों का हल द्विपक्षीय बातचीत से ढूंढेंगे। परंतु इस समझौते से भी दोनों देशों के बीच अच्छे पड़ोसियों जैसे मधुर संबंध नहीं बन सके। कश्मीर की समस्या भी सुलझ न सकी। सातवें दशक के अंतिम वर्षों में भी भारत तथा पाकिस्तान के संबंध बांग्लादेश समस्या के कारण एक बार फिर तनावपूर्ण हो गए। दिसंबर, 1971 में बांग्लादेश युद्ध शुरू हो गया तथा इस बार भारत ने पाकिस्तान पर निर्णयक विजय प्राप्त की।

पाकिस्तान, पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में बुरी तरह पराजित हुआ। भारत पाकिस्तान के कुछ अत्यधिक महत्व तथा सामरिक महत्व के स्थान जीतने तथा बड़ी संख्या में युद्ध कैदी पकड़े जाने की स्थिति में आ गया। तथापि भारत-पाक संबंधों में सामान्यता लाने के लिए भारत ने पाकिस्तान के साथ शिमला शिखर सम्मेलन करने का तथा 1972 का शिमला समझौता करने का निर्णय लिया। यह समझौता भारत-पाक संबंधों को सामान्य बनाने के लिए द्विपक्षीय बातचीत का उदार प्रयास था।

1972 के शिमला सम्मेलन में प्रधानमंत्री भुट्टो ने कश्मीर का प्रश्न उठाया था परंतु नितांत सतही तौर पर। शिमला समझौते की धारा IX में एक उपधारा भी शामिल थी तथा इसमें कहा गया था, "जम्मू एवं कश्मीर में, 17 दिसंबर 1971 के युद्ध विराम के परिणामस्वरूप नियंत्रण रेखा का दोनों ही देश सम्मान करेंगे और इसमें किसी की ओर की पूर्व मान्य स्थिति का ध्यान नहीं रखा जाएगा। कोई भी देश इसे एकतरफा रूप में नहीं बदल सकेगा चाहे उनमें कितने ही परस्पर मतभेद तथा कानूनी व्याख्याएं हों। दोनों ही देशों ने यह मत भी स्वीकार किया कि वे एक-दूसरे को धमकी नहीं देंगे तथा न ही उस सीमा रेखा का उल्लंघन करने के लिए शक्ति का प्रयोग करेंगे।

टिप्पणी

इसके बाद भी पाकिस्तान, कश्मीर तथा वहां के लोगों के आत्मनिर्णय के अधिकार का राग अलापता रहा। इसके शासक कश्मीर समस्या को सुलझाने की आवश्यकता के बारे में बात करते रहे। यहां तक कि भारत के साथ 'आक्रमण संधि' तथा शांति तथा मैत्री संधि करते समय या किसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था को संबोधित करते समय पाकिस्तान के नेता सदैव ही कश्मीर की समस्या तथा इसे हल करने की आवश्यकता का हवाला देने से पीछे नहीं रहे। राष्ट्रपति जिया उल हक ने बार-बार कहा कि भारत के साथ 'अनाक्रमण संधि कश्मीर पर उनके देश की स्थिति को परिवर्तित नहीं करेगी।' पाकिस्तान ने चीन के साथ कुछ समझौते कश्मीर के उस भू-भाग के विषय में किए जिस पर उसका गैर-कानूनी अधिकार था। पाकिस्तान ने कराकोरम महामार्ग को खोलने तथा खुंजेरम के संबंध में संलेख पर हस्ताक्षर किया, जो भारत के अनुसार अवैध तथा गुप्त समझौते थे, क्योंकि इनके अनुसार चीन पाकिस्तान की तरफ से कश्मीर में रुचि रखने वाला देश बन जाता था तथा इसमें वे क्षेत्र भी आते थे जिन पर पाकिस्तान ने अवैध रूप से अधिकार कर रखा था। पाकिस्तान ने अब यह दावा करना आरंभ कर दिया था कि गिलित, हूंजा, नगर, मैस्यिन, पोनियल, चित्राल तथा सकारदा कभी भी जम्मू एवं कश्मीर राज्य के भाग नहीं रहे। भारत ने पाकिस्तान के इस दावे की कड़ी आलोचना की। 1988 में पाकिस्तान ने लद्दाख में सियाचिन ग्लेशियर पर नियंत्रण करने का प्रयास आरंभ कर दिया।

1972 के बाद 1989 तक शिमला समझौते के अंतर्गत भारत पाकिस्तान संबंधों को एक दिशा देने का प्रयास किया गया। पाकिस्तान ने भारत के साथ एक अनाक्रमण संधि का प्रस्ताव रखा जो भारत ने एक विस्तृत शांति, मित्रता तथा सहयोगी संधि का मसविदा पेश किया। दोनों में से कोई भी प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। पाकिस्तान अफगानिस्तान के झगड़े में उलझ गया तथा अमेरिका से शस्त्र प्राप्त करने की होड़ में लग गया। भारत अपनी आंतरिक समस्याओं तथा सामाजिक, आर्थिक पुनर्निर्माण तथा बढ़ रहे आतंकवाद विशेषकर पंजाब में आतंकवादी गतिविधियों का सामना करने में लगा रहा। कश्मीर का मुद्दा 17 वर्षों (1972-89) तक एक मुद्दा ही बना रहा तथा यह लगने लगा कि वास्तविक नियंत्रण रेखा ही वास्तव में मूल सीमा मान ली जाएगी, परंतु 1989 के वर्ष में कई एक परिवर्तन हुए तथा कश्मीर का मुद्दा फिर से एक गंभीर समस्या बन गया।

1989 के बाद भारतीय राजनीति में गहन परिवर्तन हुए। नवंबर, 1989 में जनता दल की अल्पसंख्यक सरकार बनी, जिसे भारतीय जनता पार्टी तथा वाम मोर्चा का समर्थन प्राप्त था, परंतु यह सरकार अस्थिर तथा अकुशलता का शिकार रही। नवंबर 1990 में कांग्रेस समर्थित जनता दल (स) की अल्पसंख्यक सरकार बनी और यह भी समस्याओं से घिरी रही। भारत में केंद्र सरकार की कमजोर स्थिति देखते हुए अपनी आंतरिक राजनीतिक आवश्यकताओं के प्रभावहीन पाकिस्तान ने कश्मीर में गड़बड़ फैलाने की अपनी नीति को फिर से लागू करना शुरू कर दिया। पाकिस्तान दिसंबर, 1989 से कश्मीर के उग्रवादियों तथा अलगाववादी आंतकवादियों को शस्त्र तथा अन्य सहायता देकर भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने लगा। खुले रूप से भारतीय कश्मीर के विरुद्ध 'जिहाद' की बातें करने लगे। इस मन्तव्य से कि भारतीय सुरक्षा बलों को दबाव में रखा जाए तथा जम्मू एवं कश्मीर के राज्य में सशस्त्र विद्रोह जैसी स्थिति उत्पन्न करने हेतु पाकिस्तान ने सशस्त्र तथा प्रशिक्षित घुसपैठिए कश्मीर घाटी में भेजने शुरू कर दिए। पंजाब के उग्रवादियों को शरण, शस्त्र तथा समर्थन देने की अपनी नीति भी उसने जारी रखी।

टिप्पणी

1971-80 के मध्य भारत-पाक संबंध

देश के विभाजन के फलस्वरूप जो समस्याएं तथा झगड़े पैदा हुए कश्मीर के प्रश्न पर उठा झगड़ा, चीनी तत्व तथा दोनों देशों की विदेश नीति 'अवधारणाओं में मतभेद' आदि भारत और पाकिस्तान के बीच एक प्रकार के शीतयुद्ध के मुख्य तत्व रहे हैं। तीन विभिन्न अवसरों पर अर्थात 1948, 1965, 1971 में यह शीतयुद्ध सशस्त्र संघर्षों का स्वरूप धारण कर गया। 1971 के युद्ध के बड़े दूरगामी परिणाम उपमहाद्वीप पर पड़े। इस युद्ध में भारत की पाकिस्तान पर विजय निर्णायक थी। इसके बाद बांग्लादेश का उदय हुआ।

1971 के युद्ध के कारण–1965 के युद्ध के बाद भारत तथा पाकिस्तान दोनों ने ही सोवियत संघ की मध्यस्थता के अंतर्गत कार्य करते हुए यह बात स्वीकार की थी कि वे अपने झगड़ों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाएंगे तथा अच्छे पड़ोसियों की तरह रहेंगे तथापि ताशकंद समझौता, अपनी निहित कमजोरी के कारण तथा जिस वातावरण में इसको लागू करना पड़ा उसके स्वस्थकर न होने के कारण भारत तथा पाकिस्तान संबंधों के सामान्यीकरण तथा मित्रता को सुदृढ़ आधार प्रदान करने में असफल रहा। पाकिस्तान प्रैस द्वारा शत्रुतापूर्ण प्रचार अभियान, कश्मीर पर लगातार मतभेद, अगतला षड्यंत्र के परिणाम, फरक्का विवाद, कूटनीतिज्ञों का निष्कासन, पाकिस्तान द्वारा भारतीय संपत्ति की नीलामी तथा भारत विरोधी चीन-पाक धुरी का जोर पकड़ना, ताशंकद के सिद्धांतों पर आधारित भारत-पाक संबंधों के विकास के लिए 1966 से 1971 तक के समय में स्थितियों को और अधिक बिगाड़ दिया। 31 मार्च, 1967 को पाकिस्तान में शासन परिवर्तन, जो कि दृढ़ जनमत के फलस्वरूप अयूब के त्यागपत्र देने के कारण हुआ तथा इसके साथ ही याहिया खान के सत्ता में आने से ताशकंद घोषणा पत्र के सिद्धांतों पर अमल करने में अवरोध पैदा हो गया।

30 जनवरी, 1971 को भारत का एक हवाई जहाज अपहरण करके लाहौर ले जाया गया। इन अपहरणकर्ताओं को लाहौर में राजनीतिक शरण मिली क्योंकि उन्होंने अपने आपको कश्मीर मुक्ति मोर्चे का समर्थक बताया। पाकिस्तान की सरकार ने भारत सरकार की इस इच्छा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया कि वे इन अपहरणकर्ताओं को गिरफ्तार करके उनके हवाले कर दे तथा हवाई जहाज वापस कर दे। 2 फरवरी, 1971 को अपहरणकर्ताओं ने पाकिस्तानी अधिकारियों, प्रैस तथा टेलीविजन के सामने हवाई जहाज को आग लगा दी। इस घटना से भारत-पाक संबंधों को गहरा धक्का लगा। भारत ने इन अपहरणकर्ताओं के नाटक के लिए पाकिस्तान को उत्तरदायी ठहराया तथा प्रतिरोध के रूप में यह निर्णय लिया कि पाकिस्तानी हवाई जहाजों को भारतीय क्षेत्र के ऊपर से उड़ान पर प्रतिबंध लगा दिया जाए। इस घटना ने एक बार फिर भारत तथा पाकिस्तान के आपसी संबंधों के वातावरण को तनावपूर्ण तथा मनमुटाव वाला बना दिया। मार्च 1971 में पूर्वी पाकिस्तान में संकट पैदा होने से तथा भारत पर इसके दबाव से स्थिति और भी खराब हो गई। ताशकंद की भावना समाप्त हो गई। पाकिस्तान ने एक बार फिर भारत के विरुद्ध युद्ध के बारे में सोचना शुरू कर दिया। इसकी प्रेस ने भी 'भारत कुचलो' का नारा बुलंद किया। परंतु इस प्रक्रिया में पाकिस्तान को शर्मनाक हार तथा पूर्वी पाकिस्तान को गंवा देने का दु:ख सहन करना पड़ा।

टिप्पणी

तात्कालिक घटनाक्रम

याहिया खां के प्रशासन के निर्णय के अंतर्गत दिसंबर, 1970 में पाकिस्तान की राष्ट्रीय विधानसभा तथा प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव हुए। इस चुनाव में पूर्वी पाकिस्तान में मुजीब की अवामी पार्टी को शानदार विजय मिली। राष्ट्रीय विधान सभा की पूर्वी पाकिस्तान की कुल स्थानों में इसे 167 स्थान मिले जबकि भुट्टो की पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी को केवल 84 स्थान मिले। पूर्वी पाकिस्तान की प्रांतीय विधान सभा में भी आवामी लीग को शानदार विजय मिली जबकि पश्चिमी पाकिस्तान में भुट्टो की पाकिस्तानी पीपुल्स पार्टी को प्रभावशाली विजय मिली। यह परिणाम पाकिस्तान के सत्ताधारियों की इच्छाओं के विपरीत था। इस चुनाव ने मि. भुट्टो के पाकिस्तान के प्रधान मंत्री बनने के सपनों को चूर-चूर कर दिया। पाकिस्तान का प्रशासन पूर्वी पाकिस्तान के किसी व्यक्ति द्वारा चलाने की बात उनके गले नहीं उतरी। वे मुजीब के छः सूत्रीय कार्यक्रम को संदेह तथा अविश्वास की दृष्टि से देखते थे, जो अवामी लीग के चुनाव घोषणा पत्र का केंद्रीय बिंदु था। वे इसे पाकिस्तान के विरुद्ध राजद्रोह तथा विश्वासघात का चार्टर मानते थे। परिणामस्वरूप पहले तो विलंब के लिए पग उठाए गए तथा फिर बाद में मुजीब के नेतृत्व वाली अवामी पार्टी को सत्ता के हस्तांतरण की संभावनाओं से इंकार करने की प्रक्रिया शुरू हो गई। चुनाव के बाद पाकिस्तानी पीपुल्स पार्टी के अध्यक्ष ने घोषणा की कि वह राष्ट्रीय विधान सभा के उस सत्र का बहिष्कार करेंगे जो 3 मार्च, 1971 को ढाका में होना निश्चित हुआ था। इसका कारण था कि आवामी लीग को पाकिस्तान के भविष्य के संविधान निर्माण का अवसर न मिल सके। राष्ट्रपति याहिया खान ने भी इसे तुरंत मंजूरी दे दी। आवामी लीग जो इस समय तक पाकिस्तान की अखंडता बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध थी, ने इस निर्णय को पाकिस्तान के शासक दल द्वारा इसको इसका वैध अवसर प्रदान करने से जान-बूझ कर इनकार करने का निर्णय माना तथा इसने पूर्वी पाकिस्तान में हड़ताल की घोषण कर दी। 3 मार्च, 1971 की हड़ताल संपूर्ण रही। इसके बाद पूर्वी पाकिस्तान में नियमित हड़तालों का सिलसिला शुरू हो गया। प्रशासन ने सैनिक शक्ति सहित हर प्रकार की शक्ति का प्रयोग हड़तालों को दबाने के लिए किया।

3 मार्च को पूर्वी पाकिस्तान में अवामी लीग द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर दिया। सभी वर्गों के बंगालियों ने (पूर्वी पाकिस्तान अथवा पूर्वी बंगाल तथा इसके अधिकतर निवासी बंगाली ही थे) इस आंदोलन का भरपूर समर्थन किया। पूर्वी पाकिस्तान के मार्शल लॉ प्रशासक जनरल रिक्का खान ने कर्फ्यू लगा कर तथा शक्ति प्रयोग करके जनता में इस जागृति को दबाने की कोशिश की परंतु इसका कोई प्रभाव न पड़ा। 15 मार्च को मुजीब ने बांग्लादेश की स्वतंत्रता की घोषण कर दी तथा सत्ता की बागडोर संभाल ली। 25 मार्च की रात को मुजीब को गिरफ्तार कर पश्चिमी पाकिस्तान ले जाया गया। पाकिस्तानी सैनिकों ने बंगालियों का सुनियोजित नरसंहार शुरू कर दिया। पूर्वी पाकिस्तान में स्थिति इतनी खराब तथा अमानवीय हो गई कि हजारों की संख्या में बंगालियों ने भारत आना तथा भारत की भूमि में शरण लेना आरंभ कर दिया। थोड़े ही समय में उनकी संख्या एक करोड़ तक हो गई।

अक्टूबर, 1971 में पूर्वी बंगाल में विद्रोह और अधिक शक्तिशाली तथा तीव्र हो गया क्योंकि बंगालियों ने मुक्तिवाहिनी नाम का एक छापामार संगठन बना लिया था। मुक्तिवाहिनी द्वारा छापामार आक्रमण पूर्वी पाकिस्तान में स्थित पाकिस्तान की सेनाओं के लिए शीघ्र ही तनाव तथा हानि का कारण बन गए। पाकिस्तान ने यह निर्णय किया कि

भारत के साथ लगती अपनी सीमा के साथ-साथ अपनी सेनाओं को केंद्रित कर दे क्योंकि उसे संदेह था कि मुक्तिवाहिनी को वास्तव में भारत से निर्देश प्राप्त हो रहे थे तथा उसे उसका समर्थन प्राप्त था। भारत तथा पाकिस्तान के बीच युद्ध निश्चित लगने लगा। श्रीमती गांधी ने इस संकट को शांतिपूर्वक तथा विश्व नेताओं की सहायता से हल करने के प्रयत्न शुरू कर दिए। उन्होंने अनेक पश्चिमी राष्ट्रों का दौरा किया तथा उनके नेताओं का दक्षिण एशिया में पनप रही इस भयानक स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया।

1971 का युद्ध—नवंबर, 1971 तक स्थिति और भी गंभीर हो गई। पाकिस्तानी सेनाओं ने सीमा का उल्लंघन शुरू कर दिया तथा 22 नवंबर 1971 का जब पाकिस्तान के चार सैबर जैट विमानों ने भारत के वायु मार्ग का पांच मील तक उल्लंघन किया तब स्थिति विस्फोटक रूप धारण कर गई। 25 नवंबर को जनरल याहिया खां ने शेखी बघारी कि वह 10 दिनों के अंदर अंदर भारत पर आक्रमण कर देगा तथा वास्तव में ही इस घोषणा के ठीक नौ दिन बाद अर्थात 3 दिसंबर को करीब 6 बजे शाम पाकिस्तानी वायु सेना के हवाई जहाजों ने भारत के कई सैनिक हवाई अड्डों पर आक्रमण कर दिया। इस अचानक आक्रमण का उद्देश्य भारतीय वायुसेना को पंगु बनाना था। भारत की सतर्कता ने इसको विफल बना दिया तथा आधी रात को भारतीय वायुसेना पाकिस्तानी सैनिक अड्डों पर प्रत्याक्रमण करने में सक्रिय हो उठी। 4 दिसंबर 1971 को पाकिस्तान के राजपत्र में यह छापा कि पाकिस्तान भारत के साथ युद्धरत है। इस प्रकार पाकिस्तान के आंतरिक गृह युद्ध ने दिसंबर 1971 में भारत पर युद्ध थोप दिया। परंतु 14 दिनों के कम समय में ही भारत इस स्थिति में हो गया कि (1) मुक्तिवाहिनी की सहायता से बांग्लादेश को मुक्त करवा सके तथा (2) पश्चिमी मोर्चे पर बड़ी विजय प्राप्त कर सके।

1971 के युद्ध के प्रभाव—16 दिसंबर, 1971 के दिन जनरल नियाजी जो बांग्लादेश में पाकिस्तानी सेनाओं का सेनापति था, ने भारत के लैफ्टिनेंट जनरल जे.एस. अरोड़ा के आगे आत्म समर्पण कर दिया। उसी दिन भारत ने आधी रात से युद्ध विराम की घोषणा कर दी। पाकिस्तान ने स्वीकार कर लिया तथा इस प्रकार 1971 को युद्ध समाप्त हो गया। यह युद्ध निश्चय ही छोटा परंतु निर्णायक था तथा इसका दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप में शक्ति ढांचे पर गहरा प्रभाव पड़ा। पाकिस्तान का काफी भू-भाग छिन गया। उपमहाद्वीप में दो के स्थान पर तीन स्वतंत्र प्रभुसत्ता संपन्न राज्य बन गए। इसने दो राष्ट्रों के सिद्धांत को तथा राष्ट्र के मुख्य तथ्य के रूप में धर्म के सिद्धांत को करारी चोट पहुंचाई। राजनीतिक रूप से पाकिस्तान 14 वर्षों बाद असैनिक शासन के अधीन आया। आर्थिक रूप से इसकी स्थिति काफी गिर गई।

इस स्थिति को कुछ लाभ भी हुए। पाकिस्तान भौगोलिक रूप से और अधिक संबद्ध तथा आर्थिक रूप से एकरूप राज्य हो गया तथा उर्दू इसकी राष्ट्रीय भाषा बन गई। पाकिस्तान को अब अपने घरेलू मामलों पर अधिक ध्यान देना पड़ा तथा भारत की ओर से धमकी को गौण स्थान दिया गया। इन परिस्थितियों के अंतर्गत पाकिस्तान के नये प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो को अपना कार्य कठिन लगा परंतु सैनिक प्रशासनों द्वारा जो निराशा उनके हाथ लगी उसके परिणामस्वरूप उसके आस-पास जो समर्थन घेरे का विकास हुआ उसके कारण वह पाकिस्तान को इस विषम स्थिति से निकाल पाने के लिए कुछ आर्थिक तथा नए सैनिक पगों की योजना बनाने तथा उन्हें सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के योग्य हो गए। विदेशी मामलों के संबंध में उसने अमेरिका तथा चीन के साथ

टिप्पणी

वही पुराने वाले मैत्रीपूर्ण अच्छे संबंध कायम करने की नीति अपनाई। परंतु इसके साथ युद्ध के बाद जो नई वास्तविकताएं उसके सामने आईं उसने उन्हें भी स्वीकार कर लिया इसलिए भारत के साथ शिमला समझौता करने में तथा इसके द्वारा भारत तथा पाक के बीच हितों की प्रक्रिया प्रारंभ करने में यह बिल्कुल नहीं झिझका।

शिमला सम्मेलन तथा शिमला समझौता

प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी तथा राष्ट्रपति श्री भुट्टो के बीच 28 जून, 1972 को शिमला शिखर सम्मेलन हुआ तथा पांच दिनों की बातचीत के बाद भारत तथा पाकिस्तान के बीच 3 जुलाई 1972 को शिमला समझौता हुआ।

शिमला समझौते में यह कहा गया कि भारत तथा पाकिस्तान की सरकारों ने यह तय किया है कि वे अब तक के संबंधों के बीच जो झगड़े या विरोध बन रहे थे, उसे वे समाप्त कर देंगे तथा उपमहाद्वीप में शांति की स्थापना करेंगे ताकि दोनों ही देश अपने देश की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा उनके कल्याण की ओर अपना पूरा ध्यान दे सकें। इस समझौते द्वारा संयुक्त राष्ट्र की चार्टर के उद्देश्यों तथा सिद्धांतों में पूर्ण विश्वास प्रकट किया गया तथा यह घोषणा की गई कि दोनों देश अपने मतभेदों को परस्पर बातचीत द्वारा शांतिपूर्ण साधनों से निपटाएंगे। इसके अतिरिक्त उनके बीच किसी भी पुरानी समस्या के समाधान के लिए दोनों में से कोई देश स्वयमेव, स्थिति परिवर्तन नहीं करेगा तथा दोनों ही देश शांति की स्थापना तथा सद्भावपूर्ण संबंधों के बीच रुकावट बनाने वाले सभी कार्यों को हत्सोत्साहित करेंगे तथा उन्हें रोकेंगे। दोनों ही देश इस बात पर सहमत हो गए कि वे एक दूसरे के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण प्रचार रोकेंगे तथा ऐसी सभी सूचनाओं का आदान-प्रदान करेंगे जिनसे उनके बीच मित्रता को बढ़ावा मिले। यह भी तय हुआ कि दोनों देशों के बीच सामाजिक, सांस्कृति, व्यापारिक तथा आर्थिक संबंधों को सामान्य बनाया जाएगा। दोनों ही देश अपनी-अपनी सेनाओं को अंतर्राष्ट्रीय सीमा तक वापस ले जाने के लिए मान गए।

शिमला समझौते के बाद भारत-पाक संबंध

प्रारंभिक संबंधों के संचालन के लिए दोनों देशों, भारत तथा पाकिस्तान ने शिमला समझौता स्वीकार किया। दोनों ही देशों ने इसकी पुष्टि की तथा सामान्यीकरण की प्रक्रिया अगस्त 1972 से शुरू हो गई। शुरू-शुरू में सेनाओं की वापसी का कार्य शुरू हुआ तथा बिना किसी गड़बड़ के संपूर्ण हो गया। केवल वाक-चक पर नियंत्रण के प्रश्न पर कुछ विवाद उठा। यह रुकावट भी 7 दिसंबर, 1972 को दूर कर ली गई। चार दिन बाद जम्मू तथा कश्मीर में नियंत्रण रेखा दिखाने वाले मानचित्र, जैसे 17 दिसंबर, 1971 के बाद निश्चित हुआ था, हस्ताक्षरित हुए तथा उसका आदान-प्रदान हुआ। नियंत्रण की इस नई रेखा ने जम्मू तथा कश्मीर में भारतीय सेनाओं की स्थिति निश्चित रूप से पहले से बेहतर बना दी।

दिल्ली समझौता–1973 ई. में दोनों देश युद्धबंदियों के प्रत्यावर्तन की समस्या को सुलझाने में सफल रहे तथा बंगालियों के पाकिस्तान से बांग्लादेश तथा बिहारी मुसलमानों को बांग्लादेश से पाकिस्तान वापस भेजने की समस्या भी सुलझ गई। 195 पाकिस्तानी युद्धबंदियों जिन पर युद्ध अपराधों तथा नरसंहार का दोष था, उनपर मुकदमे चलाने की समस्या को बुद्धिमत्ता से सुलझा लिया गया। इस दिशा में शुरुआत भारत तथा पाकिस्तान के बीच 28 अगस्त, 1973 में दिल्ली समझौते के अंतर्गत हुई, जिसे बांग्लादेश ने भी स्वीकार कर लिया।

टिप्पणी

पाकिस्तान की सरकार ने बांग्लादेश के लोगों में से गैर-बंगालियों को, जिन्होंने देश प्रत्यावर्तन की इच्छा व्यक्त की थी, उन्हें पाकिस्तान में रखना स्वीकार किया। बांग्लादेश ने तय किया कि जब तक देश प्रत्यावर्तन का यह सिलसिला चलता रहेगा, 195 युद्धबंदियों पर मुकद्दमा नहीं चलाया जाएगा तथा किसी समझौते पर पहुंचने तक ये युद्धबंदी भारत में ही रहेंगे। फरवरी 1974 में लाहौर में इस्लामी शिखर सम्मेलन के दौरान पाकिस्तान ने मुस्लिम राष्ट्रों की सलाह मानकर 2 फरवरी, 1974 को बांग्लादेश को मान्यता दे दी। इस बात से 195 युद्ध बंदियों की समस्या को सुलझाने के लिए बातचीत का कार्य संभव हो गया।

1974 ई. के आसपास पाकिस्तान ने तथाकथित आजाद कश्मीर के पाकिस्तान के साथ राजनीतिक एकीकरण के लिए कदम उठाने शुरू कर दिए। पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी को आजाद कश्मीर में भड़काऊ कार्यवाही के लिए उत्तेजित किया गया तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्री की अध्यक्षता तथा आजाद कश्मीर के पदेन अध्यक्ष की उपाध्यक्षता में एक 14 सदस्यीय समन्वयन कमेटी का गठन किया गया। यह कदम तथाकथित 'आजाद कश्मीर' के गुप्त रूप से पाकिस्तान में विलय के लिए उठाए गए। श्रीमती गांधी ने अपनी तरफ से यह उचित समझा कि वह शेख अब्दुल्ला के साथ समझौता करके कश्मीर समस्या का कांटा निकाल फेंके। फरवरी 1975 में इंदिरा-शेख समझौता 20 वर्ष पुराना गतिरोध समाप्त करने के लिए किया गया। पाकिस्तान ने समझौते पर कड़ी प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त की।

1972 से 77 तक के काल में पाकिस्तान तथा भारत के बीच संबंधों का सामान्यीकरण धीरे-धीरे किंतु क्रमिक रूप से होता रहा, उतार-चढ़ाव आते रहे। फरवरी 1975 को अमेरिका द्वारा भारत तथा पाकिस्तान पर से शस्त्र प्रतिरोध को उठा लेने से यह संभावना एक बार फिर बढ़ गई कि अमेरिका पाकिस्तान को बड़ी संख्या में हथियार बेचेगा। उधर चीन तथा पाकिस्तान की भारत विरोधी धुरी की निरंतर प्रगति ने भारत तथा पाकिस्तान के संबंधों को तनावूपर्ण बना दिया। सिक्किम के भारत में विलय के विरुद्ध चीन तथा पाकिस्तान की कड़ी प्रतिक्रिया, पकिस्तान द्वारा अधिक से अधिक शस्त्रों की प्राप्ति की इच्छा, भुट्टो द्वारा इस्लामीपन की बात, बांग्लादेश में अगस्त 1975 में आकस्मिक शासन परिवर्तन के परिणामस्वरूप शेख मुजीब की हत्या तथा भारत तथा सोवियत संघ के बढ़ते सहयोग के कारण उत्पन्न पाकिस्तान के भय आदि ने भारत तथा पाकिस्तान के संबंधों को धीमा तथा अनिश्चित कर दिया।

भारत-पाक संबंध (1984-90)

तात्कालिक भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने अपने पड़ोसी देशों विशेषकर पाकिस्तान के साथ मित्रतापूर्ण तथा सहयोगात्मक संबंध बनाने का प्रयास किया।

राजीव गांधी दक्षिण एशिया में शस्त्र दौड़ को परमाणु अस्त्र दौड़ में बदले जाने के खतरों के प्रति पूरी तरह सचेत थे। दक्षिण एशिया के मामलों में महाशक्तियों के हस्तक्षेप के कारण विशेषतया दक्षिण-पश्चिम एशिया तथा खाड़ी क्षेत्रों में अमेरिका के बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप तथा सोवियत संघ की अफगानिस्तान में उपस्थिति के परिणामस्वरूप एशिया के इस क्षेत्र में शांति में अस्थिरता आ जाने का खतरा बढ़ गया था। भारत-पाक संबंधों के इतिहास—तीन युद्ध, सीमित संबंध तथा संदेहजनक वातावरण— के कारण दोनों देशों के

टिप्पणी

लिए यह आवश्यक माना गया कि वे अपने बीच लाभदायक मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक द्विपक्षीय संबंध स्थापित करने के लिए प्रयास करें। इसी उद्देश्य को सामने रख कर श्री गांधी ने और अधिक आपसी सूझबूझ, मित्रता तथा सहयोग की स्थापना के लिए, जो कि 1985 से अब तक भारत तथा पाकिस्तान के बीच संदेह तथा मतभेदों के कारण तथा पंजाब में उग्रवादियों को पाकिस्तान के समर्थन तथा उसके द्वारा अमेरिकी हथियारों की बड़ी संख्या में असंगत प्राप्ति के कारण शिथिल पड़ गया था, भारत तथा पाकिस्तान के द्विपक्षीय बातचीत की प्रक्रिया को शीघ्र ही शुरू करने का निर्णय लिया गया।

भारत के तत्कालीन विदेश सचिव ने 3 अप्रैल से 5 अप्रैल 1985 तक इस्लामाबाद की यात्रा की तथा अपने पाकिस्तानी समकक्ष तथा जनरल जिया से बातचीत की। इस बातचीत का परिणाम यह निकला कि दोनों देशों के बीच आपसी सूझबूझ तथा सहयोग की समीक्षा करने तथा इन्हें बढ़ावा देने के बारे में एक सामान्य समझौता किया गया परंतु अब तक अधर में रही द्विपक्षीय समस्याओं के लिए कोई ठोस पग नहीं उठाया जा सका। इस यात्रा का एक मात्र परिणाम, तनाव तथा शत्रुतापूर्ण पुराने वातावरण को धीरे-धीरे बदलने का निर्णय था।

भारत-पाक संयुक्त आयोग की तीन दिवसीय दूसरी बैठक नई दिल्ली में 2-3 तथा 4 जुलाई 1985 को हुई। यह बैठक बड़े मैत्रीपूर्ण, रचनात्मक सहयोग तथा पारस्परिक सौजन्य पूर्ण वातावरण में हुई तथा कई प्रस्तावों पर विचार-विमर्श हुआ तथा जिन क्षेत्रों में समझौता नहीं हो पाया उनमें वैचारिक आदान-प्रदान को जारी रखने का निर्णय लिया गया।

जुलाई 1985 के अंतिम सप्ताह में भारत तथा पाकिस्तान के विदेश सचिवों ने दोनों देशों के संबंधों पर बातचीत का एक दौर पूर्ण किया। परंतु यहां भी बातचीत की प्रक्रिया का कोई ठोस परिणाम नहीं निकला।

मालदीव से इस्लामाबाद जाते हुए नई दिल्ली में राष्ट्रपति जिया के छः घंटों के पड़ाव के दौरान श्री राजीव गांधी तथा श्री जिया में एक बात तय हुई कि दोनों देश एक-दूसरे के परमाणु प्रतिष्ठानों पर आक्रमण नहीं करेंगे।

दोनों देशों के बीच आर्थिक संबंधों के विकास की संभावना को उस समय कुछ बल मिला जब जनवरी 1986 में दोनों देशों के वित्तमंत्रियों ने द्विपक्षीय निजी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए एक आपसी मेल-मिलाप ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते से पाकिस्तान के निजी क्षेत्र को यह आज्ञा मिल गई कि वह भारत से 42 वस्तुओं का आयात कर सकता था। सार्वजनिक क्षेत्र में दोनों ही देशों ने यह तय किया कि वे 1986-87 के दौरान व्यापार की मात्रा को दुगना कर देंगे। यह व्यापार समझौता दोनों देशों के बीच उपयोगी द्विपक्षवाद का एक ढांचा तैयार करने की और महत्वपूर्ण कदम था।

नए तनाव तथा फरवरी 1987 का सैनिक हटाओ समझौता

अपने द्विपक्षीय संबंधों को मैत्रीपूर्ण बनाने में असफलता तथा इसके साथ-साथ दक्षिण एशिया में पाकिस्तान की भारत-विरोधी नीतियों ने एक ऐसा वातावरण पैदा किया जिससे संबंधों में वास्तविक रूप से संकट पैदा हो गया। सैनिक वादे और अधिक मजबूत हो गए। पाकिस्तान ने भारतीय सेनाओं द्वारा पैदा किए गए खतरे का सामना करने की आड़ में, सीमाओं पर अपनी सेनाओं को इकट्ठा करना शुरू कर दिया। वास्तव में तब भारत अपनी सुरक्षा क्षमता का परीक्षण करने के लिए सीमाओं पर बड़े पैमाने पर त्रै-वार्षिक युद्धाभ्यास

कर रहा था तथा इसकी पाकिस्तान को बराबर सूचना भी दी गई थी। पाकिस्तान की सेनाओं को सभी सामरिक महत्व के स्थानों पर तैनात कर दिया गया। भारत ने भी अपनी रक्षा के लिए प्रतिरोधी कार्यवाही की तथा अपनी सेनाओं को सीमा पर जाने का आदेश दिया। स्थिति गंभीर हो गई। विदेश स्तरीय वार्ता का प्रस्ताव रखा गया जो 1987 में फरवरी के शुरू में नई दिल्ली में हुई।

पांच दिन की उत्तेजक बातचीत के बाद दोनों विदेश सचिवों ने एक रूप रेखा तैयार की। इस बात पर सहमति हुई कि–

- वे एक–दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे।
- दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि वे अधिक से अधिक संयम रखेंगे तथा सीमा के साथ सभी प्रकार की भड़काने वाली कार्यवाहियों पर नियंत्रण करेंगे।
- दोनों ही पक्ष इस बात पर सहमत हो गए कि क्षेत्र दर क्षेत्र के आधार पर सैनिकों की वापसी की जाएगी तथा इस तरह का पहला क्षेत्र रावी तथा चिनाब का क्षेत्र होगा।

इस्लामाबाद में सार्क शिखर सम्मेलन

दिसंबर 1988 में चौथा सार्क शिखर सम्मेलन इस्लामाबाद में हुआ। तात्कालिक प्रधानमंत्री राजीव गांधी तथा तात्कालिक पाकिस्तानी प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो ने भारत–पाक संबंधों को सकारात्मक दिशा तथा स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए अत्यधिक सद्‌भावना भरे वातावरण में अत्यंत लाभदायक बातचीत के फलस्वरूप तीन समझौते हुए–

प्रथम समझौते के अनुसार एक–दूसरे के परमाणु प्रतिष्ठानों पर आक्रमण करने की मनाही की गई तथा उन मौखिक समस्याओं को औपचारिक रूप दिया गया जो कि दिसंबर 1985 में किया गया था। इस समझौते के अनुसार यह अनुबंध किया गया कि दोनों देश प्रत्येक वर्ष एक जनवरी को अपने परमाणु प्रतिष्ठानों के भौगोलिक निर्देशकों तथा सुविधाओं के विषय में सूचित करेंगे।

कला, संस्कृति, पुरातत्व, शिक्षा, जन–संचार माध्यम तथा खेलों के क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग को प्रोत्साहन देने के लिए दोनों देशों ने एक त्रिवर्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किए।

भारत–पाक संयुक्त आयोग को यह दायित्व सौंपा गया कि वह सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक आदान–प्रदान के प्राग्रामों को बनाए तथा समझौते को लागू करने के कार्य का पर्यवेक्षण करे। इस समझौते में यह भी प्रावधान था कि यदि दोनों देशों में से कोई पक्ष इसे समाप्त नहीं करना चाहता तो इसका नवीनीकरण स्वयमेव तीन वर्ष के पश्चात् हो जाएगा। तीसरा समझौता भारत तथा पाकिस्तान में द्विपक्षीय व्यापार से संबंधित था जिसके अंतर्गत दोहरा कर न लगाने से बचने के लिए प्रावधान किया गया।

इन तीन समझौतों के द्वारा शिमला भावना पुनः लौट आई तथा भारत तथा पाकिस्तान के मध्य लाभदायक द्विपक्षवाद का सिद्धांत पुनः क्रियाशील हो गया। इन समझौतों द्वारा नए पाकिस्तानी नेतृत्व द्वारा भारत की इस मांग के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी प्रकट हुआ कि पारस्परिक संदेह एवं अविश्वास को समाप्त करने के विषय में हुआ था जिसने भूतकाल में भारत–पाक संबंधों के सामान्यीकरण के मार्ग में अवरोध उत्पन्न किए थे। श्रीमती बेनजीर भुट्टो के नेतृत्व में पाकिस्तान में पुनः लोकतंत्र की वापसी पर भारत ने प्रसन्नता व्यत की।

1989 में भारत-पाक शिखर सम्मेलन

16 जुलाई, 1989 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी पाकिस्तान की यात्रा पर गए तथा प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो के साथ बहुआयामी विषयों पर बातचीत की। इस यात्रा के दौरान, जो कि भारत तथा पाकिस्तान के बीच प्रथम शिखर स्तरीय सरकारी सम्मेलन था, भारत-पाक संबंधों पर विचार-विमर्श किया गया। शिमला भावना को पुनः जीवित किया गया तथा सियाचीन पर विचार-विमर्श का स्वागत किया गया। लाभदायक द्विपक्षवाद के आधार पर अच्छे पड़ोसियों के संबंधों को पुनः स्थापित करने का आह्वान किया गया। जनता के बहुपक्षीय संबंधों को सशक्त बनाने की बात कही गई। समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं के आदान-प्रदान की बात स्वीकार कर ली गई।

1989-90 में भारत-पाक संबंध

नवंबर 1989 के चुनाव में भारत में कांग्रेस की पराजय हुई तथा राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने अपने दक्षिण एशियाई पड़ोसियों विशेषतया पाकिस्तान के साथ भारत के स्वस्थ संबंधों को गतिशील बनाने की आवश्यकता पर बल से शुभारंभ किया गया किंतु दो महीने के समय में ही उसे कश्मीर घाटी में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित उग्रवाद का सामना करना पड़ा। इसके साथ पाकिस्तान की ओर से कश्मीर की वास्तविक सीमा नियंत्रण रेखा के साथ सैनिक गतिविधियां इस आशय से तेज कर दी गईं ताकि सशस्त्र तथा प्रशिक्षित आतंकवादियों की भारतीय कश्मीर में घुसपैठ करने में सहायता की जाए जिससे वे अपनी आतंकवादी गतिविधियों से कश्मीर में कानून व्यवस्था को नष्ट कर दें तथा भारत के विरुद्ध जन विद्रोह को भड़का सकें। इसने पंजाब के आतंकवादियों को सुरक्षित आश्रय तथा शस्त्र प्रदान करने की प्रक्रिया को भी गति प्रदान की। शिमला समझौते में जो प्रावधान था उसके अनुसार लाभदायक द्विपक्षवाद के सिद्धांत पर आधारित मित्रता तथा सहयोग की प्रक्रिया का विकास किया जाना था, लेकिन इस पाकिस्तानी कार्य से उसे गहरा आघात पहुंचा। इसने भारत-पाक संबंधों को धक्का पहुंचाया।

दिसंबर 1989 से पाकिस्तान एक बार फिर कश्मीर तथा पंजाब में गड़बड़ उत्पन्न करने में लग गया। विशेष रूप से यह कश्मीर में खुले रूप से आतंकवादियों को समर्थन देने लगा। शिमला समझौते के प्रति लेशमात्र भी आदर की भावना दर्शाए बिना इसने कश्मीर पर अपने परंपरागत दृष्टिकोण को दोहरा दिया। अब यह पुनः कश्मीर के लोगों के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की प्राप्ति के लिए जेहाद की बातें करने लगा। आंतरिक घरेलू विविशताओं ने इसे कश्मीर पर कठोर तथा अतर्कसंगत स्थिति अपनाने के लिए बाध्य किया। प्रारंभ में श्रीमती बेनजीर भुट्टो ने अपने शासन के लिए सहायता प्राप्त करने के लिए कश्मीर के मुसलमान बंधुओं के साथ भी शांतिपूर्ण संबंध स्थापित करने के प्रयत्न करने चाहे। बाद में जब राष्ट्रपति गुलाम इसहाक द्वारा उसकी सरकार को पदच्युत कर दिया गया तथा एक काम-चलाऊ सरकार सेना तथा धार्मिक कट्टरपंथियों के समर्थन में अस्तित्व में आई। उसने भी जनता का विश्वास तथा समर्थन प्राप्त करने के लिए कश्मीर तथा भारत विरोधी चाल का सहारा लिया।

पाकिस्तान में सरकार परिवर्तन का प्रभाव भारत-पाक संबंधों पर नकारात्मक ही पड़ता रहा क्योंकि भारत विरोधी प्रचार, घोषणपत्रों तथा नीतियों के द्वारा ही प्रत्येक नया शासक अपनी सत्ता के औचित्य, स्थिरता और विश्सनीयता को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे। जब नवाज शरीफ के बाद श्रीमती बेनजीर ने सत्ता की बागडोर संभाली तो उन्होंने भी

टिप्पणी

कठोर से कठोर तथा कड़वी से कड़वी भारत विरोधी घोषणाएं करके अपनी सरकार की विश्वसनीयता बढ़ाने का प्रयास किया।

पाकिस्तान में 1990 के चुनावों के बाद प्रधानमंत्री श्री नवाज शरीफ की सरकार बनने के बाद भी पाकिस्तान ने कश्मीर में अव्यवस्था फैलाने वाले आतंकवादियों की सहायता करने की नीति के अपनाए रखा जो कि आज तक जारी है।

जून 1991 में जब भारत में पुनः कांग्रेस (आई) की सरकार बनी तथा श्री पी. वी. नरसिम्हा राव प्रधानमंत्री बने तो एक बार फिर से भारत पाकिस्तान संबंधों को सामान्य बनाने पर बल दिया गया। इसके लिए दोनों देशों में प्रधानमंत्रियों की छह बार अलग-अलग स्थानों पर तथा अलग-अलग अवसरों पर बैठकें हुईं परंतु कोई विशेष सफलता प्राप्त न की जा सकी।

1991-98 के समय भारतीय नेताओं के साथ बैठकों में पाकिस्तानी अधिकारियों ने नम्रतापूर्वक बातचीत की परंतु उसे शांतिपूर्ण बात करने की धारण गलत सिद्ध होती रही। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों में बताचीत के कई दौर तथा फिर सचिव स्तर की बातचीत के भी कई दौर इसी ढंग के बने रहे। हरारे में राष्ट्रकुल शिखर सम्मेलन में दोनों प्रधानमंत्रियों ने भविष्य में परिपक्व राजनीतिक संबंधों तथा सूझ-बूझ के साथ काम करना स्वीकार कर लिया। परंतु नवाज शरीफ की पाकिस्तान वापसी पर कश्मीरियों द्वारा वास्तविक नियंत्रण रेखा पार करने का समर्थन किया।

भारत में जून 1996 में जब संयुक्त मोर्चा सरकार बनी तथा श्री गुजराल विदेश मंत्री बने तो भारत-पाकिस्तान मित्रता एवं सहयोग के विकास उद्देश्य को एक प्राथमिकता बनाया गया। गुजराल सिद्धांत के आधार पर भारत ने अपने पड़ोसियों से अपने संबंधों को अधिक बेहतर बनाने की नीति अपनाई तथा भारत से इस ओर पहल करने की बात भी की।

सचिव स्तर पर भारत-पाकिस्तान के वार्तालाप के तीन दौर हुए तथा संयुक्त कार्य समूहों की स्थापना के निर्णय भी किए गए परंतु वास्तविक प्रगति कम हुई। 1997 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने अधिवेशन में प्रधानमंत्री श्री नवाज शरीफ ने कश्मीर के मुद्दे को खूब उछाला तथा भारत की आलोचना की।

इस वातावरण में भारत-पाकिस्तान शिखर वार्ता के फिर से शुरू होने की प्रक्रिया को धक्का लगा। पाकिस्तान की विदेश नीति ने एक पलटा लिया तथा पाकिस्तान ने अफगानिस्तान में विद्यमान तालिबान शासन के विरुद्ध आरंभ की गई कार्यवाही कूटनीतिक-आर्थिक-सैनिक में अमेरिका का साथ देना आरंभ कर दिया तथा उसने इससे पहले भारत-पाकिस्तान पर लगे प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया।

1997 को एक नई आशा की किरण उस समय दिखाई दी थी जब पाकिस्तान में श्री नवाज शरीफ के नेतृत्व में पाकिस्तान मुस्लिम लीग की सरकार बनी तो इसने भारत के साथ संबंधों को सुधारने की नीति पर चलने की घोषणा की। ऐसी परिवर्तित नीति के कुछ प्रमुख कारण थे–

(क) पाकिस्तान की बिगड़ी हुई अर्थव्यवस्था।

(ख) पाकिस्तान का राजनीतिक वातावरण।

(ग) पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में उभर रहा पाकिस्तान विरोधी रुख।

(घ) भारतीय जम्मू तथा कश्मीर में लोक सभा तथा राज्य विधान सभा चुनावों का सफल संगठन।

(ङ) भारत को NPT तथा TST के पक्ष में प्रभावित करके अपने ऊपर अमेरिकी दबाव कम करना।

उधर भारत में श्री आई.के. गुजराल जून 1996 में बनी संयुक्त मोर्चा सरकार में विदेश मंत्री बने तथा फिर अप्रैल 1997 में बनी दूसरी संयुक्त मोर्चा सरकार के प्रधानमंत्री बने तथा इसके साथ-साथ विदेश नीति के कर्णधार भी रहे। उन्होंने भी भारत के साथ संबंधों में सुधार के लिए अच्छे प्रयास प्रारंभ किए।

टिप्पणी

मार्च 1998 से लेकर 2001 तक की स्थिति

मार्च 1998 में बी.जे.पी. के नेतृत्व में बनी गठबंधन सरकार की स्थापना के बाद से लेकर 2001 तक यानी लगभग तीन वर्षों के समय में, भारत-पाक संबंधों में कई प्रकार के उतार-चढ़ाव आए। परमाणु परीक्षण, बस कूटनीति, लाहौर घोषणा, कारगिल युद्ध, कारगिल युद्ध में पाकिस्तान की असफलता, पाकिस्तान में सैनिक सत्तावादी शासन की स्थापना, भारत में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की नई साझा सरकार की स्थापना, अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की भारत यात्रा से उत्पन्न स्थिति आदि प्रमुख घटनाओं ने भारत-पाकिस्तान संबंधों का निर्धारण किया और दुर्भाग्यवश यह निर्धारण नकारात्मक दिशा की ओर ही हुआ तथा आज 21वीं शताब्दी में भी यह वातावरण नकारात्मक ही बना हुआ है।

मार्च 1998 में सत्ता में आने के बाद बी.जे.पी. के नेतृत्व वाली साझा सरकार ने भारत की विदेश नीति को गुट-निरपेक्षता, पंचशील, अच्छा पड़ोसीपन, लाभकारी द्विपक्षीय वाद, विकास के लिए क्षेत्रीय सहयोग, भारत की सुरक्षा के लिए अधिक सतत प्रयास तथा परमाणु विकल्प अपनाने के सिद्धांतों पर आधारित किया। पाकिस्तान के साथ भी अच्छे संबंधों की कामना की गई।

नई सरकार ने भारतीय परमाणु नीति में परिवर्तन करने का निर्णय किया तथा 11 और 13 मई 1998 को पांच परमाणु परीक्षण करके भारत के परामणु शस्त्रधारक देश घोषित कर दिया।

भारत द्वारा परमाणु परीक्षण किए जाने के विरुद्ध पाकिस्तान की तेज प्रतिक्रिया हुई तथा 28 मई 1998 को इसने भी छः परमाणु परीक्षण करके अपने आपको परमाणु शस्त्रधारक देश घोषित कर दिया।

बस कूटनीति—भारत-पाकिस्तान संबंधों को सुधारने की दिशा में एक नई पहल बस कूटनीति के द्वारा आरंभ हुई जब 19 फरवरी 1999 को भारत के प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने बाघा बॉर्डर के सड़क मार्ग से पाकिस्तान की यात्रा की तथा प्रधानमंत्री श्री नवाज शरीफ से मुलाकात की। एक अच्छे वातावरण में वार्तालापों तथा बैठकों के बाद दोनों देशों ने तीन महत्वपूर्ण दस्तावेजों—लाहौर घोषणा, संयुक्त वक्तव्य तथा आपसी समझ के स्मरण पत्र पर हस्ताक्षर किए तथा द्विपक्षीय संबंधों को एक अच्छा आधार देने का प्रयास किया। दोनों देश के नेताओं ने आपसी संबंधों, शांति तथा सुरक्षा के मुद्दे, परमाणु विषय से संबंधित मुद्दों पर बातचीत की तथा यह सहमति बनाई कि क्षेत्र में शस्त्र-दौड़ न चलाई जाए तथा परमाणु तथा परंपरागत विश्वास निर्माण पत्रों को उठाया जाए ताकि परमाणु क्षेत्र में संयम तथा स्थायित्व पैदा किया जा सके।

आगरा-शिखर सम्मेलन—कारगिल युद्ध तथा पाकिस्तान में सैनिक तानाशाही की स्थापना (अक्टूबर 1999) के बाद भारत-पाक संबंधों में जो ठंडापन और रुकावट आ गई थी, उसको दूर करने तथा द्विपक्षीय संबंधों को एक सकारात्मक मोड़ देने के लिए

प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने मई, 2001 में पाकिस्तान के मुख्य कार्यकारी अधिकारी जनरल परवेज मुशर्रफ को भारत आने का निमंत्रण दिया ताकि एक शिखर वार्ता के द्वारा दोनों देशों के संबंधों तथा सहयोग को आगे बढ़ाया जा सके।

टिप्पणी

14 जुलाई 2001 के दिन जब परवेज मुशर्रफ भारत पहुंचे तो उनका गर्मजोशी से स्वागत किया गया तथा 15 जुलाई से शिखर वार्ता आरंभ हुई। पहले दिन वार्तालाप काफी सकारात्मक एवं सुखद वातावरण में हुआ, तथा यह आशा बनी कि दोनों देश अपने संबंधों को सामान्य तथा सहयोगी बनाने में सफल रहेंगे। परंतु दूसरे दिन एक गतिरोधपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई जब जनरल मुशर्रफ ने पाकिस्तान की जहां जानी-पहचानी विदेश नीति (कश्मीर नीति) को काफी कठोर ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान कश्मीर को भारत-पाकिस्तान संबंधों का प्रमुख झगड़ा मानता है जिसके समाधान के बिना दोनों के संबंधों में कोई प्रगति नहीं हो सकती।

भारत ने यह स्पष्ट घोषित किया कि वह कश्मीर को भारत-पाकिस्तान संबंधों का एक मुद्दा तो मानता है, परंतु इसे एकमात्र मुद्दा नहीं मानता। कश्मीर में विद्यमान वर्तमान स्थिति में बढ़ रहे संकट का प्रमुख कारण सीमा पार आतंकवाद अर्थात पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद था।

दोनों देशों के ऐसे मतभेदों तथा पाकिस्तान के कश्मीर पर अड़ियल विचारों ने शिखर वार्ता की असफलता को यकीनी ही बना दिया। इसकी असफलता इस बात से स्पष्ट हुई कि शिखर वार्ता के बाद न तो कोई संयुक्त घोषण जारी की गई और न ही किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गए। यहां तक कि कोई साझी प्रेस कांफ्रेंस भी नहीं की गई। 16 जुलाई 2001 को जनरल मुशर्रफ पाकिस्तान वापस चले गए।

आगरा के बाद भारत-पाक संबंध–आगरा शिखर सम्मेलन के एकदम बाद तो भारत तथा पाकिस्तान में एक प्रकार से वाक् युद्ध ही आरंभ हो गया तथा प्रत्येक ने दूसरे को असफलता के लिए दोषी कहना आरंभ कर दिया। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद दोनों देशों ने द्विपक्षीय वार्तालाप को आरंभ होने को एक सफलता कहना आरंभ कर दिया तथा इस प्रक्रिया को आगे चलाने का निश्चय प्रकट किया।

फिर 11 सितंबर 2001 के दिन अमेरिका में हुए भयानक आतंकवादी कार्यवाहियों के बाद अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में तेज परिवर्तन आया। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के संकट का सामना करने, जिसका केंद्र अफगानिस्तान था, के लिए अमेरिका के नेतृत्व में एक अंतर्राष्ट्रीय साझा प्रयास किया गया।

पाकिस्तान में हुए चुनावों के बाद जब प्रधानमंत्री नवाज शरीफ की सरकार बनी तो उसने भी कश्मीर में उग्रवादियों की सहायता पर विश्व राजनीति में भारत का जमकर विरोध तथा आलोचना करने की नीति अपनाए रखी।

जब भारत में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार बनी, इसकी इस प्रतिबद्धता के बावजूद कि उसने पड़ोसियों के साथ विशेष कर पाकिस्तान के साथ सहयोग तथा मित्रता का ताना-बाना बुनने की दिशा में साहिसक तथा सृजनात्मक उपक्रम किए, पाकिस्तान की सरकार से उसे परंपरागत भारत-विरोधी उत्तर मिला जब वह 'कश्मीर मुक्त' करवाने की अपनी नीति पर चल पड़ा। कश्मीर में पाकिस्तान समर्थित विघटनकारी तथा भारत विरोधी शक्तियों के उदय ने उच्च ताप वाले दबाव को जन्म दिया।

नवंबर 2006 में भारत पाकिस्तान विदेश सचिवों की एक बैठक नई दिल्ली में संपन्न हुई जिसमें यह निर्णय लिया गया कि एक तीन सदस्यीय सरकारी आतंकवाद विरोधी तंत्र स्थापित किया गया जो कि आतंकवाद के विरुद्ध द्विपक्षीय सहयोग को विकसित करने एवं सफल बनाने के लिए एक केंद्र की तरह कार्य करेगा।

12 फरवरी 2007 को बगलिहार बांध के संबंध में विश्व बैंक द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ का यह निर्णय आया कि इस बांध के निर्माण में भारत ने 1960 की इंडस वाटर संधि का उल्लंघन नहीं किया। इससे भारतीय पक्ष को मजबूती मिली तथा दोनों देशों ने विशेषज्ञ के निर्णय को स्वीकार कर लिया।

अप्रैल 2007 के प्रथम सप्ताह में 14वें सार्क शिखर सम्मेलन के अवसर पर भारत तथा पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों ने नई दिल्ली में आपसी संबंधों के सभी मुद्दों पर व्यापक द्विपक्षीय वार्तालाप किया तथा सभी मुद्दों के संबंध में वार्तालाप के द्वारा हल ढूंढे जाने के संबंध में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया।

भारत पाकिस्तान के साथ एक शांतिपूर्ण संबंध चाहता है। अप्रैल, 2010 में थिम्पू में आयोजित बैठक में दोनों प्रधानमंत्रियों द्वारा दिए गए एवं विश्वास का संवर्द्धन करने हेतु कदमों पर चर्चा करने के लिए दोनों देशों के विदेश मंत्रियों ने मुलाकात की। फरवरी 6,2011 को थिम्पू में दोनों के विदेश सचिवों ने बैठक की तथा सभी मुद्दों पर संवाद प्रारंभ करने के लिए सहमत हुए।

अपनी प्रगति जांचिए

1. नेहरू-लियाकत समझौता कब हुआ?

   (क) 1947 (ख) 1948

   (ग) 1949 (घ) 1950

2. किस समझौते के तहत भारत-पाक ने यह किया कि दोनों सभी मतभेदों के हल द्विपक्षीय तरीके से ढूंढेगा?

   (क) सिंधु जल समझौता (ख) ताशकंत समझौता

   (ग) शिमला समझौता (घ) इनमें से कोई नहीं

2.3 बांग्लादेश के साथ संबंध

भारत बांग्लादेश केवल पड़ोसी राष्ट्र ही नहीं हैं बल्कि कहा जा सकता है कि बांग्लादेश की उत्पत्ति की वजह भारत ही है। भारत ने बांग्लादेश को पूर्ण आजादी से पहले ही 6 दिसंबर, 1971 को मान्यता प्रदान कर दी थी। साथ ही 10 दिसंबर, 1971 को एक समझौता कर भारतीय सेना व मुक्तिवाहिनी की एक संयुक्त कमान भी बना दी। यह दुर्भाग्य की बात है कि थोड़े समय बाद शेख मुजीबुर्रहमान की हत्या के साथ स्थिति बदल गई। इस प्रकार दोनों के संबंधों में कई मुद्दों विशेषकर गंगा जल के बंटवारे को लेकर मतभेद उभर कर आए। इन दोनों के संबंधों का स्पष्ट अध्ययन प्रमुख चरणों के आधार इस प्रकार किया जा सकता है–

भारत ने राजनीतिक रूप से बांग्लादेश को आजाद कराने के साथ-साथ बाद में सहयोग भी जारी रखा। 1972 में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों के यहां सद्भावनाएं यात्राएं कीं। 19 मार्च, 1972 को दोनों के बीच 25 वर्षीय मित्रता व सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर हुए। विदेश नीति के सिद्धांतों के संदर्भ में भी दोनों के दृष्टिकोणों में बहुत समानताएं देखने को मिलीं। भारत-पाक शिमला वार्ताओं में भी बांग्लादेश के साथ पूर्ण सहयोग करते हुए सभी कार्यवाहियों से अवगत रखा। युद्ध बंदियों के संदर्भ में भारत पाक समझौते (1973) व भारत पाक बांग्लादेश समझौते (1974) के द्वारा भी बांग्लादेश में सामान्य स्थिति बहाली के दोस्ताना प्रयास किए। आर्थिक रूप से स्वतंत्र होते हुए भी बांग्लादेश को 25 करोड़ रुपए के माल व सेवाएं प्रदान करने के वचन के साथ साथ 50 लाख पौंड की विदेशी मुद्रा का ऋण दिया जिसकी अदायगी 5 वर्ष बाद 15 किस्तों में देने का प्रावधान किया। 1974 में भारत ने बांग्लादेश को 41 करोड़ रुपए के कर्ज दिए। संयुक्त जुट आयोग की स्थापना व तस्करी रोकने के उपाय पर दोनों देशों के बीच सहमति की गई।

1972 को एक समझौते के माध्यम से शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान व प्रौद्योगिकी के आदान-प्रदान के लिए सहमति बनी। शिक्षण सामग्री, पुस्तक पुस्तिकाओं, पत्रिकाओं आदि के प्रकाशन में सहयोग को बढ़ाने का प्रोत्साहन दे कर सांस्कृतिक सहयोग को पुख्ता आयाम दिए गए।

उतार-चढ़ाव का दौर (1975-1995)

20 वर्षों का यह दौर दोनों देशों के लिए मतभेदों का काल रहा। इसका प्रमुख कारण था कि इस काल में अधिकांश सरकारें मुजीबुर्रहमान के विरोधी गुटों की रहीं। विदेश नीति भी विरोधी गुटों की रही इसलिए उनकी विदेश नीति का भी विरोधी स्वरूप वाली रही। इस काल में बांग्लादेश की सरकारों का झुकाव पाकिस्तान से संबंध सुधारने पर भी लगा रहा। 1970-1980 के दशकों में भारत की बढ़ती हुई सैन्य शक्ति के कारण भी वह इसे खतरे में देखने लगा। यानी देश की आंतरिक राजनैतिक गतिविधियों के संदर्भ में कई बार सरकारें को भारत विरोधी नीतियां अपनानी पड़ीं।

गंगा के जल के बंटवारे को लेकर फरक्का बांध दोनों देशों के मतभेदों का अहम कारण बना। इसी को लेकर 1975 में दोनों देशों के मध्य एक अल्पकालीन समझौता हुआ। एक और दीर्घकालीन समझौता 29 सितंबर, 1977 को हुआ। 1982 तक यह स्थिति चली। इसके बाद बांग्लादेश द्वारा आपत्ति करने पर इस समझौते का संशोधित रूप लागू हुआ। परंतु 1988 में मतभेदों के चलते दोनों देशों के 1996 तक कोई समझौता नहीं रहा।

दाहा ग्राम व अंगरपोटा विवादास्पद अंत: क्षेत्र की समस्या भी करीब 10 वर्षों तक बनी रहने के बाद 26 जून, 1992 को भारत सरकार द्वारा बांग्लादेश को सौंपने के बाद हल हुई। इसके अलावा चकमा शरणार्थियों, तस्करी, अवैध नागरिकों का भारत में रहना आदि ऐसे कई मुद्दे रहे जिस वजह से दोनों के संबंध सामान्य नहीं बन पाए। दिसंबर, 1992 में बाबरी मस्जिद ध्वंस की प्रतिक्रिया भी बांग्लादेश में बड़ी तीव्र हुई। दक्षेस की स्थापना 1985 में होने से लगा कि दोनों के रिश्तों को नजदीक आने का अवसर मिलेगा पर यह सामीप्य भी रिश्तों को मित्रता में बदलने के लिए नाकाफी साबित हुआ।

टिप्पणी

नई शुरुआत (1996-2003)

राजनीतिक परिदृश्यों में आए परिवर्तन दोनों देशों के लिए खासे उपयोगी साबित हुए। 1996 में शेख हसीना वाजिद (मुजीबुर्रहमान की बेटी) की सरकार तथा भारत में संयुक्त मोर्चा की सरकार कार्यरत थी। दोनों देश की प्रधान समस्या फरक्का का जल विवाद का निपटारा इस दौरान हो गया। 12 दिसंबर, 1996 को हस्ताक्षरित हुई एक संधि में प्रावधान किया गया कि पानी का बहाव यदि 70,000 क्यूसैक या इससे कम होने पर दोनों देश बराबर बंटवारा करेंगे। यदि बहाव 70,000 से 75,000 क्यूसैक या अधिक होने पर 40,000 क्यूसैक पानी भारत तथा बचा हुआ पानी बांग्लादेश को देगा।

इसी समय में गुजराल सिद्धांत व दक्षिण एशिया व दक्षिण पूर्व में बांग्लादेश, श्रीलंका व भारत के रास्ते म्यांमार व थाईलैंड की ओर बढ़ते सहयोग से इन देशों में और नजदीकियां विकसित हुईं। लेकिन कुछ मुद्दों पर मतभेद आज भी बरकरार हैं। सबसे बड़ा मुद्दा अवैध रूप से भारत में रह रहे बांग्ला देशियों का है। उग्रवाद के मुद्दे पर भी दोनों के रुख में अंतर है विशेषकर मुसलिम कट्टरवाद को लेकर।

दोनों देशों के बीच मधुर संबंधों हेतु इन्हें संकीर्ण दृष्टिकोणों को त्याग कर सकारात्मक रुख अपनाना होगा। वर्तमान आर्थिक सहयोग की जरूरतों को समझना होगा। दोनों देशों के जनमानस को करीब लाना होगा। इस दृष्टि से कलकत्ता, ढाका बस योजना एक कारगर कदम है। संबंध सुधारने की राह में कोई महत्वपूर्ण निरोधक तत्व यहीं हैं तथापि वर्तमान संबंधों को सही परिप्रेक्ष्य में ढालने की आवश्यकता है।

भारत ने बांग्लादेश सहित अल्पविकसित देशों के निर्यात पर 1 जनवरी, 2008 से निर्यात शुल्क मुक्त प्रदान करना प्रारंभ किया है। इसके अतिरिक्त बांग्लादेश की जमीन पर भारत के विघटनकारी गुटों की गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए दोनों देशों ने संयुक्त कार्यदल को बहाल किया।

परस्पर हित के क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग का दायरा बढ़ाने एवं मजबूत करने के प्रयास जारी रहे तथा सितंबर, 2011 में प्रधाानमंत्री की बांग्लादेश यात्रा के दौरान यह उच्चतम स्तर पर पहुंच गए। जनवरी, 2010 में जारी संयुक्त वक्तव्य के अनुपालन के जरिए सहयोग की प्रक्रिया दोनों प्रधाानमत्रियों द्वारा समीक्षा की गई तथा संयुक्त कथन में प्रधानमंत्री की यात्रा के नए आवेग प्रदर्शित हुए। भारत ने तीन बीघा क्षेत्र से दादाग्राम एवं अंगोरपोटा एनक्लेव के जरिए बांग्लादेश को 24 घंटे अधिगम्यता में सहायक हुआ तथा बांग्लादेश के अनुरोध पर 46 टेक्सटाइल मदों (वृद्धि में सभी मदों तक विस्तार किया गया, 25 को छोड़कर) के ड्यूटी फ्री आयात की अनुमति दी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 25 वर्षीय मित्रता संधि किन देशों के बीच हुई?

   (क) भारत-बांग्लादेश (ख) भारत-नेपाल

   (ग) भारत-भूटान (घ) कोई नहीं

4. शेख हसीना पहली बार बांग्लादेश की प्रधानमंत्री कब बनीं?

   (क) 1994 (ख) 1995

   (ग) 1996 (घ) 1997

टिप्पणी

2.4 श्रीलंका के साथ संबंध

भारत और श्रीलंका के संबंधों में सहयोग और संघर्ष का मिला-जुला अंश देखने को मिलता है। एक ही क्षेत्र में स्थित होने के बावजूद दोनों देशों की भौगोलिक, सामरिक, आर्थिक व राजनीतिक विभिन्नताएं हैं। इन्हीं का असर शायद संबंधों पर भी पड़ता है। अध्ययन की सुविधा हेतु इनके संबंधों को 4 प्रमुख चरणों में रखा जा सकता है–

मतभेदपूर्ण संबंध (1948-1956)

दोनों देशों की विरोधी विदेश नीति के कारण मतभेद बने रहे। श्रीलंका सैन्य गठबंधन का हिस्सा रहा और इंग्लैंड को अपने नौ सैनिक व हवाई अड्डों को प्रयोग हेतु देता रहा। भारत गुट-निरपेक्षता व सैन्य गठबंधनों से दूरी का हिमायती था। साथ ही साथ चीन व पाकिस्तान से श्रीलंका की दोस्ती, सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में हिस्सेदारी, सोवियत उपनिवेशवाद की परिभाषा, साम्यवाद के बारे में विचार वगैरह मुद्दों पर भी विचार मतैक्य न होने के कारण भी मतभेद रहना भी स्वाभाविक ही थे।

इसका मतलब यह नहीं कि दोनों देशों के मध्य हर विषय पर मतभेद थे। कुछ विषयों जैसे उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष, गुट-निरपेक्षता में आस्था, इंडोनेशिया की स्वतंत्रता, प्रवासी भारतीयों की समस्या, सैन्य गठबंधनों में शामिल होने आदि पर दोनों देशों की समान राय थी। 1954 में श्रीलंका में बसे तमिल भारतीयों की समस्या के हल हेतु नेहरू कोटेलवाला समझौता हुआ। शुरूआती दौर मैत्रीपूर्ण नहीं था तो इसे वैमनस्य पूर्ण संबंधों से भी नहीं नवाजा जा सकता।

मित्रतापूर्ण संबंध (1956-1976)

श्रीलंका में श्री एस.डब्ल्यू. आर.डी. भंडारनायके (1956-1959) तथा श्रीमती भंडारनायके (1960-1965) के शासन काल के दौरान नौसैनिक व हवाई अड्डों पर बाह्य शक्तियों के प्रयोग की मनाही को लागू कर दिया। भारत की गुट-निरपेक्षता की नीति का सम्मान किया और उन्हें व्यावहारिक रूप में उतारा भी। स्वेडा संकट, तिब्बत मामला जैसे विषयों पर भारत के रुख का समर्थन किया। लालबहादुर शास्त्री और श्रीमती भंडारनायके के बीच समझौता हुआ जिसमें प्रवासी भारतीयों के विषय पर बचे हुए पहलुओं को हल करने का प्रयास पर विचार किया गया।

दोनों देशों के बीच संबंधों को मजबूत बनाने के उद्देश्य से नेहरू ने मई, 1957 में परस्पर एक दूसरे के यहां यात्राएं कीं। कई विषयों पर श्रीलंका के साथ की बदौलत ही सहयोग की प्रक्रिया आगे बढ़ी। प्रवासियों की समस्या के समाधान हेतु 1964 में दोबारा श्रीलंका व भारत के बीच समझौता हुआ।

चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करने पर उसे आक्रमणकारी घोषित करने पर दोनों देशों के बीच मतभेद उभरे लेकिन आक्रमण के पश्चात श्रीलंका ने छह गुट-निरपेक्ष देशों का कोलंबो में सम्मेलन बुला कर इस समस्या का समाधान ढूंढने का प्रयास किया। यह बात अलग है कि समस्या का समाधान नहीं निकला पर श्रीलंका ने सकारात्मक पहल तो की उसकी इस भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

1965-70 में श्रीमती भंडारनायके की सरकार की शिकस्त के बाद डुडले सेना नायके सरकार का गठन हुआ परंतु दोबारा श्रीमती भंडारनायके सत्ता में आ गईं।

टिप्पणी

1970-1977 के इस कार्यकाल में दोनों के मध्य सहयोग बढ़ा। दिसंबर, 1971 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा हिंद महासागर को 'शांति क्षेत्र' घोषित कर दिया। भारत ने श्रीलंका की सरकार विरोधी गतिविधियों को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1974 में उदारता दिखाते हुए भारत ने कच्छद्वीप का टापू श्रीलंका को सौंप दिया। 1971 के भारत पाक युद्ध में श्रीलंका ने तटस्थता का रुख अपनाया। 1974 में इंदिरा गांधी व भंडारनायके के संयुक्त प्रयासों द्वारा अंततः जातीय समस्या को हल करने के प्रयास किए गए।

तनावपूर्ण संबंध (1977-1994)

तमिल प्रवासियों की समस्या ने जयावर्द्धने (1977-87) एवं प्रेमदासा (1988-93) की सरकारों ने अपना रंग दिखाया और भारत और श्रीलंका के मध्य सुमधुर संबंधों ने तनाव व कटु संबंधों की शक्ल अख्तियार कर ली। 1981-1983 के तमिल सिंहली दंगों ने 1958 व 1977 में हुए दंगों को दोहराया ही नहीं बल्कि उसके निराशावादी स्वरूप का प्रदर्शन किया। तमिलवासियों द्वारा अलग तमिल राज्य की मांग को लेकर श्रीलंका में काफी खून बहा। भारत भी इसके अप्रत्यक्ष प्रभाव से बच नहीं सका, इसीलिए श्रीलंका एवं भारत सरकार के मध्य हमेशा तनाव की स्थिति बनी रही।

समस्या को सुलझाने दोनों देशों के बीच 26 मई, 1987 को राजीव गांधी जयवर्द्धने समझौता संपन्न हुआ। भारत ने श्रीलंका में शांति सेना भेज दी। इसका विरोध करते हुए प्रधानमंत्री प्रेमदासा ने बार-बार मांग उठाई कि शांति सेना को वापस लिया जाए। तमिल संगठनों जैसे एल.टी.टी.ई. आदि ने भी इसका विरोध किया क्योंकि भारतीय सेना श्रीलका के सैनिकों के साथ इसके विरुद्ध लड़ाई लड़ रही थी। श्रीलंका के आम नागरिकों में भी यह रोष देखने को मिला। इसका पुख्ता उदाहरण 30 जुलाई, 1987 को राजीव गांधी की राजकीय यात्रा के दौरान मिला। सलामी गारद के एक सिपाही ने राजीव गांधी पर जानलेवा हमला कर दिया। अतः प्रेमदास के राष्ट्रपति बनते ही भारत द्वारा बिना कार्य संपन्न किए अपनी शांति सेना को वापस बुलाना पड़ा।

भारत की छवि धूमिल होने के साथ-साथ दोनों के संबंधों पर भी प्रतिकूल असर पड़ा। राजीव गांधी की हत्या में एल.टी.टी.ई. के उग्रवादियों का हाथ होने के कारण भारत ने उन लोगों की समस्याओं के बारे में सोचना छोड़ दिया।

मधुर संबंधों की वापसी (1994-2003)

1994 में श्रीलंका में सत्ता परिवर्तन के बाद शासन की बागडोर श्रीमती चंद्रिका कुमार तुंगा के हाथों में आते ही दोनों देशों के रिश्तों में सुधार होने लगा।

1994 में श्रीलंका के विदेश मंत्री की भारत यात्रा के और 1995, 1996 में श्रीमती चंद्रिका कुमार तुंगा की भारत यात्राओं ने दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय सहयोग को गति प्रदान की। इसी समय भारत द्वारा भी 'गुजराल सिद्धांत' के द्वारा पड़ोसियों से वरीयता के आधार पर संबंध सुधारों की बात हो रही थी। अतः दोनों के संबंधों में सुधार हुआ।

भारत में 1998 में राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक गठबंधन की सरकार आने के बाद भी इनके संबंधों में सुधार जारी रहा क्योंकि यह सरकार भी पड़ोसियों से मधुर संबंधों की पक्षधर है। संबंध पोखरन-II (1998) से भी अप्रभावित रहे इसका प्रयास श्रीमती कुमारतुंगा द्वारा दिसंबर, 1998 में की गई भारत यात्रा है। इस यात्रा के दौरान हुए समझौते ने वस्तुओं के आयात निर्यात पर कर मुक्त का सुझाव रख कर मुक्त व्यापार की संभावनाओं को बढ़ा

दिया। जून 2000 में विदेश मंत्री जसवंत सिंह की श्रीलंका यात्रा से पूर्व श्रीलंका के विदेश मंत्री लक्ष्मण काविरगमार ने 2000 में भारत यात्रा की। इन यात्राओं के दौरान आर्थिक संबंधों में सुधार को आगे बढ़ाने के प्रयासों पर विचार हुआ।

टिप्पणी

श्रीलंका के नए प्रधानमंत्री बने रानिल विक्रम सिंघे ने जून 2002 में भारत की चार दिवसीय यात्रा की। इस समय दोनों देशों ने एक ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए जिसके द्वारा भारतीय तेल कॉरपोरेशन (आई.ओ.सी.) को श्रीलंका के त्रिणकोमली बंदरगाह पर तेल सुविधाओं के प्रयोग करने के साथ-साथ वहां के बाजारों में 100 खुदरा केंद्र खोलने की अनुमति मिल गई। भारत श्रीलंका को 100 मिलियन डॉलर का नरम शर्तों वाला ऋण देने को तैयार हो गया। दोनों देश तमिलनाडु और उत्तरी श्रीलंका से जोड़ने वाले जमीनी पुल बनाने की संभावनाओं का पता लगाने हेतु एक अध्ययन दल के गठन पर सहमत हो गए।

अभी भी कुछ विषय हैं जिन पर दोनों को विचार विमर्श करना अनिवार्य है। आर्थिक संबंधों में संतुलन बनाए रखना है। दोनों देशों के मध्य तस्करी भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। दोनों देशों के मध्य संबंधों का ग्राफ सकारात्मक परिवर्तन की ओर बढ़ रहा है।

लंबे समय से श्रीलंका, भारत से प्रत्यक्ष निवेश हेतु, अग्रतापूर्ण गंतव्य रहा है। श्रीलंका सार्क देशों में दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। भारत भी श्रीलंका का सबसे बड़ा वैश्किक व्यापारिक भागीदार है। दोनों देशों के बीच व्यापार बढ़ा है, विशेषकर मार्च, 2000 में भारत श्रीलंका मुक्त व्यापार करार लागू होने के बाद तेजी से बढ़ा है।

भारत, वर्ष 2003 से 1 बिलियन अमेरीकी डॉलर से अधिक के निवेश सहित श्रीलंका में सर्वोच्च चार निवेशकों में है। पेट्रोलियम रिटेल, सूचना प्रौद्योगिकी, वित्तीय सेवाएं, रियल स्टेट, दूर संचार, पर्यटन, बैंकिंग और खाद्य प्रसंस्करण (चाय और फलों का रस) वनस्पति, तांबा और अन्य धातु उद्योग, टायर, सीमेंट, ग्लास विनिर्माण और अवसंरचना विकास (रेलवे, विद्युत, जलापूर्ति) सहित विवधि क्षेत्रों में भारत का निवेश है।

2010 में श्रीलंका के राष्ट्रपति की भारत यात्रा के दौरान, भारत ने श्रीलंका को विकासात्मक सहायता देने का वचन दिया और भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने श्रीलंका को विकास संबंधी पैकेज की घोषणा की। इस सहायता में 50,000 आवास इकाइयों का निर्माण, उत्तरी रेलवे लाइनों की बहाली, पोतावशेष हटाना और के.के.एस. हार्बर की बहाली, व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, जाफना में सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना, सामपुर में 500 मेगावाट कोयला विद्युत संयंत्र की स्थापना, थिरूकेथीस्वरम मंदिर की बहाली, उत्तरी प्रांत में कृषि अनुसंधान संस्थान की स्थापना, श्रीलंकाई विद्यार्थियों द्वारा भारत में उच्चतर अध्ययन करने के लिए उनके छात्रवृत्ति कार्यक्रम में विस्तार करना, अंग्रेजी भाषा प्रशिक्षण हेतु केन्द्रों की स्थापना और त्रिभाषी श्रीलंका के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना के वास्ते तकनीकी सहायता प्रदान करना शामिल था।

पर्यटन, भारत और श्रीलंका के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है। वर्ष 2014 में, कुल 1,527,153 पर्यटकों में से, 242,734 पर्यटक भारत से आए थे जो श्रीलंका आने वाले कुल पर्यटकों की संख्या का 15.89 प्रतिशत बनता है। श्रीलंकाई पर्यटक भी भारतीय पर्यटन बाजार के लिए सर्वोच्च दस स्रोतों में से एक स्रोत है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. राजीव गांधी-जयवर्द्धने समझौता किस विवाद को लेकर हुआ था?

(क) सीमा विवाद (ख) तमिल-सिंहली विवाद

(ग) सैन्य विवाद (घ) इनमें से कोई नहीं

6. भारत-श्रीलंका मुक्त व्यापार करार कब हुआ?

(क) मार्च, 2000 (ख) फरवरी, 2000

(ग) अप्रैल, 2000 (घ) मई, 2000

2.5 भूटान के साथ संबंध

भूटान की बौद्ध राजशाही ने 1947 के पहले ब्रिटिश-भारत के साथ मैत्रीपूर्ण लेकिन सावधानीपूर्वक दूरी बरतते हुए संबंध कायम रखे थे। चीन गणराज्य ने जब 1950-51 में तिब्बत पर कब्जा जमाया तो भारत और भूटान दोनों में कुछ शुरुआती चिंताएं उठीं थी। 1960 के दशक के अंत में, भातर भूटान का प्रमुख विदेशी मददकर्ता बन गया। 1962-63 में चीन-भारत युद्ध के संदर्भ में भूटान भारत से बड़े पैमाने पर सैन्य सहायता हासिल करने वाला देश बना। दोनों ही राष्ट्रों के बीच मधुर संबंध रहे हैं और भूटान सुरक्षा, राजनीति और आर्थिक मसलों पर पूरी तरह से भारत के साथ है। भारत ने भूटान को संयुक्त राष्ट्र में शामिल होने का समर्थन किया और अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में शामिल होने में मदद की।

भारत और भूटान के मजबूत ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध हैं। भारत बड़ी शक्ति है और भूटान चारों तरफ से घिरा छोटा-सा देश है, लेकिन दोनों के द्विपक्षीय संबंध, आर्थिक और राजनीतिक, दोनों काफी सौहार्दपूर्ण हैं। वास्तव में दोनों देशों के संबंध आठवीं सदी से हैं जबकि गुरु पद्म संभव और अन्य बौद्ध गुरु भारत से भूटान गए थे। उनकी जीवनियां भूटान के इतिहास के बारे में जानकारी का समृद्ध कोष हैं।

दोनों देशों के बीच पहली प्रमुख संधि सिंचुला की संधि थी जिस पर 1865 में हस्ताक्षर हुए थे। इसमें दोनों देशों के बीच चिरस्थायी शांति का जिक्र है। भूटान में राजशाही की स्थापना 1909 में हुई थी और उसी समय ब्रिटिश भारत ने उसे मान्यता दे दी थी। बाद में, 1910 में पुनाखा संधि के जरिए भूटान की विदेश नीति को ब्रिटिश भारत की सरकार की निगरानी में रखा गया। हालांकि उसी संधि में यह भी है कि भूटान के राष्ट्रीय मामलों में बाहरी शक्तियों का कोई दखल नहीं होगा।

उक्त दोनों संधियां 1949 की संधि का आधार बनीं। भारत-भूटान संधि के अनुच्छेद 2 के अनुसार, भूटान अपने विदेशी मामलों के बारे में भारत से सलाह लेगा, लेकिन उस सलाह को मानना या न मानना उसके हाथ में होगा। यह संधि दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों का बुनियादी ढांचा आज भी है और उनके परंपरागत सौहार्दपूर्ण और मैत्रीपूर्ण संबंधों में कोई बड़ी अड़चन कभी नहीं आई।

दोनों देशों के बीच संबंध भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद और घनिष्ठ हुए। भूटान की तीसरे नरेश जिग्मे दोरजी वांगचुक 1954 में भारत आए थे, और भारत के

टिप्पणी

प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू 1958 में भूटान गए थे। नेहरू की यात्रा भारत-भूटान संबंधों का प्रमुख पड़ाव थी। 1958-59 में चीन ने न केवल भारतीय भूमि पर दावा किया, बल्कि भूटान की भी 2200 वर्ग मील पर दावा किया; इसके बाद अहम घटना के तहत नेहरू ने संसद में घोषणा की कि भूटान पर किसी भी तरह का हमला भारत पर हमला माना जाएगा। हालांकि 1949 की संधि में प्रतिरक्षा का कोई प्रावधान नहीं था, लेकिन भारत ने भूटान की भी सुरक्षा सुनिश्चित की थी।

दोनों देशों ने 1949 में मैत्री संधि पर हस्ताक्षर किए थे जिसमें कहा गया था कि भारत भूटान के विदेशी मामलों में उसकी मदद करेगा। 8 फरवरी 2007 को एक बार फिर भारत-भूटान मैत्री संधि को भूटान नरेश जिग्मे वांगचुक के शासन में पर्याप्त तरीके से पुनरीक्षित किया गया। संधि के अनुच्छेद 2 में कहा गया है- 'भारत सरकार घोषणा करती है कि वह भूटान के आंतरिक प्रशासन में कोई दखल नहीं करेगी। भूटान सरकार ने भी सहमति जताई थी कि वह अपने वैदेशिक संबंधों के मामले में भारत सरकार की सलाह से चलेगी।'

पुनरीक्षित संधि के अनुसार, अब कहा गया- 'भूटान और भारत के बीच निकट मैत्री और सहयोग को बरकरार रखते हुए, भूटान राज्य की सरकार और भारत गणराज्य की सरकार उनके राष्ट्रीय हितों से संबंधित मुद्दों पर एक दूसरे के साथ निकट सहयोग करेंगी। कोई भी सरकार ऐसी किसी गतिविधि को अपनी जमीन पर नहीं होने देगी जो दूसरे की राष्ट्रीय सुरक्षा और हितों के लिए नुकसानदेह हो।' संशोधित संधि की प्रस्तावना में - 'एक दूसरे की स्वतंत्रता, संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के प्रति सम्मान दोहराते हुए' भी शामिल किया गया जो कि पूर्व की संधि में नहीं था। इस तरह से, भारत-भूटान मैत्री संधी 2007 से भूटान का स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र के रूप में दर्जा मजबूत हुआ।

भारत और भूटान के बीच राजनयिक संबंध 1968 में स्थापित हुए और थिंफू में भारत के स्थानीय प्रतिनिधि की नियुक्ति हुई। इसके पहले भारत के भूटान के संबंध सिक्किम में रहने वाला राजनीतिक अधिकारी करता था। भारत-भूटान द्विपक्षीय संबंधों का बुनियादी ढांचा दोनों देशों के बीच 1949 में हुई मैत्री और सहयोग संधि है जिसे फरवरी 2007 में नवीनीकृत किया गया और उस पर हस्ताक्षर किए गए।

1963 में कोलंबो योजना में भूटान की सदस्यता भारत ने प्रायोजित की जो कि अंतराष्ट्रीय यात्रा में भूटान का पहला कदम थी। बाद में, 1969 में भूटान का यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन में प्रवेश भी भारत ने प्रायोजित किया था। 1971 में भूटान को भारत के ही पूर्ण प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र में शामिल किया गया और 1985 में वह सार्क का सदस्य भी बना। इस तरह से, सहायता करते हुए भारत ने साफ कर दिया कि भूटान की अंतरराष्ट्रीय भूमिका की खोज 1949 की संधि के अनुच्छेद 2 के विपरीत नहीं है।

भारत और भूटान के बीच पूर्ण मुक्त व्यापार व्यवस्था कायम है। भारत भूटान के उत्पादों का सबसे बड़ा बाजार है। तकरीबन 94 फीसदी भूटानी निर्यात भारत को होता है और उसका 78 फीसदी आयात भारत से होता है। 1970 के दशक तक भूटान में किसी तीसरे देश का आयात-निर्यात बिलकुल नहीं था। भारत-भूटान व्यापार संधि पर 1972 में हस्ताक्षर हुए थे, और हर दस साल में इसे नवीनीकृत किया जाता है।

भूटान चारों ओर से घिरा हुआ है, साथ ही सबसे कम विकसित देश है जो अपने विकास कार्यों और स्थापना लागत के लिए पूरी तरह से विदेशी वित्तीय मदद पर निर्भर है। भारत भूटान को सर्वाधिक बाहरी मदद देने वाला देश है।

टाटा पावर ने रोजगार के अवसर देकर और भारत की सदा बढ़ती रहने वाली ऊर्जा जरूरतों को पूरा करके, भूटान में एक पनबिजली बांध बनाया था।

भारत सरकार वर्तमान में कई भूटानी परियोजनाओं में शामिल है जिनमें पनबिजली संयंत्र, सीमेंट उद्योग, सड़क आदि शामिल हैं। भूटान का 40 प्रतिशत बाहरी राजस्व भारत को बिजली बेचने से मिलता है।

भारत ने भूटान में सभी मुख्य परियोजनाओं के लिए धन दिया है। इनमें शामिल हैं:

- **पेंडेन सीमेंट परियोजना :** 142 मिलियन एनयू की लागत से बनी इस परियोजना का पूरा धन भारत ने दिया है।
- **चुक्खा पनबिजली परियोजना :** इस परियोजना का निर्माण भारत ने किया था और 1991 को इसे भूटान सरकार को सौंपा गया था।
- **पारो हवाईअड्डा :** भूटान के एकमात्र हवाईअड्डे पारों के निर्माण के लिए भारत ने वित्तीय और प्रौद्योगिकीय सहायता दी थी।
- **टाटा पनबिजली परियोजना :** इस परियोजना की लागत का 60 फीसदी अनुदान के रूप में, और 40 फीसदी 9 प्रतिशत के ब्याज पर भारत ने दिया था। भारत की बी.एच.ई.एल. इस परियोजना के उत्पादन संयंत्र के लिए आपूर्तिकर्ता है।
- **कुरिछू पनबिजली परियोजना :** इसके लिए भारत से धन दिया जाता है, और भारत की एनएचपीसी इस परियोजना का मुख्य कांट्रेक्टर है।
- **दुनसम सीमेंट परियोजना :** यह एसीसी इंडिया लिमिटेड और भूटान की शाही सरकार का संयुक्त उपक्रम है और इसे हर साल 5,00,000 टन के उत्पादन के लिए बनाया गया है।
- **सड़क और राजमार्ग :** भारती सीमा सड़क संगठन की दांतक परियोजना भूटान में 1961 में शुरू की गई थी। भूटान में कठिन पहाड़ी भौगोलिक स्थिति में सभी मुख्य राजमार्ग, हलीपैड और 15000 किलोमीटर की सड़कें इस परियोजना के तहत बनाई गई।

भारत सरकार अपने यहां के विभिन्न संस्थानों में करीब 50 भूटानी छात्र-छात्राओं को वार्षिक छात्रवृत्ति देती है। भारत भूटान को विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञ और प्रौद्योगिकीय विशेषज्ञ प्रदान करता है। भूटान का एकमात्र डिग्री कॉलेज शेरूब्तसे कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त है। अनेक भारतीय शिक्षक भी इस कॉलेज में नियुक्त हैं।

भारत-भूटान सीमा

भारत-भूटान की सीमा 200 किलोमीटर लंबी, और टेढ़ी-मेढ़ी है तथा उग्रवादी आसानी से दर्रों के जरिए भारत के कोकराझार, बोनगईगांव, बारपेटा और नलबारी जिलों में आ सकते हैं। तीन उग्रवादी संगठन, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (उल्फा), नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड (एनडीएफबी) और कामतापुरी लिबरेशन ऑर्गनाइजेशन

(केएलओ) भूटान में स्थित अपने ठिकानों से ही भारतीय सुरक्षा बलों से लड़ रहे हैं। ये उग्रवादी संगठन करीब एक दशक से भारत से स्वतंत्रता और अलगाव की मांग करते आ रहे हैं।

वास्तव में, भारत इन उग्रवादियों के खिलाफ भारत-भूटान सेना के संयुक्त अभियान शुरू करने के लिए लगातार जोर देता रहा है। हालांकि, भूटान इस तरह का कदम उठाने में सावधानी बरत रहा है क्योंकि उसे डर है कि ये उग्रवादी अपने शिविरों के पास स्थित करीब 304 गांवों के निर्दोष भूटानी नागरिकों पर बदले की कार्रवाई कर सकते हैं।

इस बीच, भूटान ने भी इन उग्रवादी संगठनों के साथ शांतिपूर्ण बातचीत की कोशिश की थी। जुलाई 2003 में भूटान के गृहमंत्री ने ऐलान किया था कि उग्रवादी संगठनों ने पिछले दो सालों से ताजा एक्जिट वार्ताओं के अनुरोध का जवाब नहीं दिया है। हालांकि, भूटान की शाही सरकार ने तीन भारतीय अलगाववादी संगठनों को थिंफू में बातचीत का जो लिखित आमंत्रण दिया था, उसको आगे बढ़ा दिया है ताकि भूटान के में इन संगठनों द्वारा जबरन कब्जाए इलाकों से उनके शांतिपूर्वक हटने के सवाल को अंतिम रूप दिया जा सके।

अगस्त 2003 में, भूटान की राष्ट्रीय संसद ने अलगाववादी नेताओं को उनके शिविर हटाने या सैन्य कार्रवाई का सामना करने के लिए समझाने के वास्ते अंतिम कोशिश करने पर सहमति जताई थी। हालांकि, उग्रवादियों के अपने ठिकाने हटाने में नाकाम रहने पर जिग्मे सिंग्ये वांगचुक की भूटानी सरकार ने इस हिमालयी राज्य से उग्रवादियों को हटाने के ताजा आदेश जारी कर दिए। भूटानी सेना ने फूकातोंग में उल्फा के ठिकाने पर कब्जा कर लिया। उल्फा के पास शांतिपूर्ण युद्धविराम के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था लेकिन भूटानी सरकार ने उसके प्रस्ताव को खारिज कर दिया और सभी उग्रवादियों को बंदी बना लिया। बाद में उन सबको भारत के हवाले कर दिया गया। भूटान की यह कार्रवाई क्षेत्रीय सहयोग की मिसाल के रूप में उभरा जिसे अन्य देशों के साथ भी प्रोत्साहित करने की जरूरत है।

भूटान नरेश वांगचुक सितंबर 2003 में भारत की यात्रा पर आए थे। 15 सितंबर 2003 को 870 मेगावाट की पुनतसांगचू पनबिजलीपरियोजना की विस्तृत रिपोर्ट के लिए एक समझौता-पत्र पर हस्ताक्षर किए गए थे। उग्रवादियों और उनकी भारत विरोधी गतिविधियों की समस्या पर बातचीत भी हुई थी। हालांकि, भूटान की भू-सामरिक स्थिति ने दोनों देशों के रिश्तों को बहुत महत्वपूर्ण रिश्तों में तब्दील कर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि इस निकट मित्रता के मूल में सुरक्षा के उद्देश्य ही हैं। वैसे हम कह सकते हैं कि आज की तारीख तक भारत-भूटान संबंध स्थिर नहीं रहे हैं, और दोनों देशों के आपसी हितों की सुरक्षा करते रहे हैं।

भूटान के साथ हुए चार समझौते अमोचू भंडार (620 मेगावाट), कुरी गोंगरी (1800 मेगावाट) और खोलोंगछू (486 मेगावाट) की पनबिजली परियोजनाओं के लिए विस्तृत परियोजना रिपोर्ट तैयार कर रहे हैं। इसके अलावा, एक 4,000-मेगावाट की संकोश परियोजना पर भी बातचीत चल रही है। भारत और भूटान ने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में 205 करोड़ रुपए की एक अहम परियोजना पर हस्ताक्षर किए हैं। इस परियोजना के तहत हजारों सरकारी कर्मचारियों, शिक्षकों, उद्यमियों और ग्रामीण बच्चों को कंप्यूटर प्रशिक्षण दिया जाएगा। शिक्षा के क्षेत्र में भारत एक बड़ा अंडरग्रेजुएट मेडिकल कॉलेज

स्थापित करेगा और अवैध नशीली दवाओं की तस्करी पर रोकने समेत अन्य समझौते हुए। इन वार्ताओं में तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह ने नरेश वांगचुक को मजबूती से आश्वस्त किया कि भारत भूटान में लोकतांत्रिक प्रयोग को सफल देखना चाहता है।

भूटान की जनता राजा के प्रति निष्ठावान है और भारत, तथा अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देश भूटान से राजशाही खत्म करने को प्राथमिकता देते हैं, लेकिन वहां की जनता राजा के शासन से संतुष्ट है।

चूंकि भूटान तीन तरफ से भारत से घिरा है और समुद्री पहुंच के लिए पूरी तरह से भारत पर निर्भर है, इसलिए ऐसा माना जाता है कि इसे भारत का हिस्सा होना चाहिए। हालांकि, भूटान की सीमा चीन से भी लगती है, लेकिन भारत का दावा है कि चीन समर्थक नीति भूटान के लिए व्यावहारिक नहीं है।

नरेश जिग्मे वांगचुक और भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के बीच वार्ताओं में यह बात सामने आई कि भारत भूटान के साथ सुरक्षा और प्रतिरक्षा सहयोग में दिलचस्पी रखता है।

1949 में हुई दोनों देशों की संधि के जरिए भारत भूटान के विदेशी संबंधों को नियंत्रित करता है। संधि के अनुच्छेद 2 में कहा गया है कि भूटान अपने विदेशी संबंधों के पालन में भारत की सलाह से निर्देशित होगा, जबकि अनुच्छेद 6 के तहत भूटान पर पाबंदी लगाई गई है कि वह बिना भारत की सहायता और मंजूरी के हथियारों, गोला-बारूद, मशीनों और युद्ध सामग्री या भंडार का आयात नहीं करेगा। हालांकि, इस समझौते के बारे बहुत सारी समीक्षाएं और विचार-विमर्श हुए, लेकिन भूटान अब भी अपनी स्वतंत्र नीतियां निर्धारित करने में सक्षम नहीं है। भारत ने भूटान को संप्रभु राष्ट्र के रूप में मान्यता दी है और 1949 की संधि की भाषा में बदलाव करना उचित नहीं होगा। घातक और गैर-घातक हथियार खरीदने का निर्णय भारत सरकार नहीं, बल्कि भूटान नरेश को करना चाहिए। विडंबना यह है कि भूटान केवल गैरघातक सैन्य भंडार और उपकरण ही खरीद सकता है, और बाकी हथियारों की खरीदी के लिए भारत सरकार की मंजूरी जरूरी है।

वह समय बिलकुल आ चुका है जब भूटान को अपने निर्णय खुद लेना शुरू करना चाहिए और उसके साथ दुनिया के अन्य देशों की तरह ही व्यवहार किया जाना चाहिए। सार्क में शामिल होने और दक्षिण एशियाई राष्ट्रों को एक साथ लाने में योगदान करने का बिलकुल सही समय है।

विश्वास और समझ पर आधारित परंपरागत अद्वितीय द्विपक्षीय संबंध सालों में परिपक्व हुए हैं। आज आर्थिक विकास, खासकर पारस्परिक रूप से लाभदायक पनबिजली क्षेत्र में गहन सहयोग है।

उच्चस्तरीय यात्राएं

ये विशिष्ट रिश्ता दोनों देशों के बीच सर्वोच्च स्तर की यात्राओं और गहन विचार-विमर्श की परंपरा से टिके हैं। 2013 में भूटान नरेश महामहिम जिग्मे खेसर नामग्याल वांगचुक की 64वें गणतंत्र दिवस समारोह में मुख्य अतिथि के तौर पर भारत की यात्रा के साथ उच्चस्तरीय विचार-विमर्श देखा गया। इसके पहले विदेश मंत्री सलमान खुर्शीद ने 14-15 जनवरी 2013 को भूटान की यात्रा की थी। भारत के राष्ट्रपति के आमंत्रण पर महामहिम

भूटान नरेश और रानी से 6 से 10 जनवरी 2014 को भारत की सरकारी यात्रा की थी। शाही दंपति ने इस बात की सराहना की थी कि राष्ट्रपति ने राष्ट्रपति भवन की नवीनीकृत अतिथि शाखा का प्रथम मेहमान बनने के लिए उन्हें आमंत्रित किया।

प्रधानमंत्री निर्वाचित होने के बाद ल्योनछेन शेरिंग तोबगेय ने पहली विदेश यात्रा भारत की ही 30 अगस्त से 4 सितंबर 2013 के बीच की थी। यह उनकी भारत की पहली सरकारी यात्रा थी। उनके साथ उनकी पत्नी और भूटानी शाही सरकार के विदेश मंत्री और वरिष्ठ अधिकारी थे। प्रधानमंत्री ल्योनछेन शेरिंग ने राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रियों और गणमान्य व्यक्तियों से मुलाकात की थी। इस यात्रा में भारत सरकार के भूटान की 11वीं पंचवर्षीय योजना के लिए सहायता पैकेज पर सहमति हुई थी। प्रधानमंत्री ल्योनछेन शेरिंग इस यात्रा के दौरान हैदराबाद की भी यात्रा की थी।

हालिया अतीत में भारत-भूटान संबंध

भारत के प्रधानमंत्री के आमंत्रण पर, प्रधानमंत्री ल्योनछेन शेरिंग ने 10–18 जनवरी 2015 को भारत की सरकारी यात्रा की थी। उन्होंने अहमदाबाद में वाइब्रेंट गुजरात सम्मेलन के उद्‍घाटन सत्र को संबोधित किया था और गुजरात में अनेक सफल परियोजनाओं का भ्रमण किया था। उन्होंने भारत के प्रधानमंत्री से मुलाकात की थी और अनेक द्विपक्षीय मुद्दों पर विचार-विमर्श किया था। उन्होंने दिल्ली में भारत के राष्ट्रपति से बात की और अनेक मंत्रियों और वरिष्ठ अधिकारियों के साथ मुलाकात की थी। उन्होंने बोधगया भी गए थे जहां उन्हें महा बोधि वृक्ष की पौध भेंट की गई थी।

प्रधानमंत्री ल्योनछेन शेरिंग तोबगेय गोवा में 13 से 17 नवंबर 2015 को "लर्निंग फ्रॉम सिविलाइजेशन" विषय पर हुई द्वितीय इंडिया आइडियाज कॉनक्लेव में मुख्य अतिथि थे। जनवरी 2016 में (द्वितीय बंगाल ग्लोबल बिजनेस समिट में भाग लेने के लिए), मई 2016 में (पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने) कोलकाता गए थे, और अक्टूबर 2016 में बिमस्टेक-ब्रिक्स आउटरीच सम्मेलन में भाग लेने गोवा गए थे। प्रधानमंत्री ल्योनछेन शेरिंग तोबगेय 31 मार्च 2017 को गुवाहाटी, असम में "नमामि ब्रह्मपुत्र" नदी महोत्सव के उद्‍घाटन में गेस्ट ऑफ ऑनर के रूप में शामिल हुए थे।

भारतीय प्रधानमंत्री ने 15–16 जून 2014 को भूटान की सरकारी यात्रा की थी। उनके साथ विदेश मंत्री, राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार, विदेश सचिव और अन्य वरिष्ठ अधिकारी भी थे। पदभार संभालने के बाद यह उनकी पहली विदेश यात्रा थी। इस यात्रा ने दोनों देशों के बीच नियमित उच्चस्तरीय विचार-विमर्श की परंपरा मजबूत हुई। उन्होंने 16 जून 2014 को भूटानी संसद के संयुक्त सत्र को संबोधित किया था। इस यात्रा के दौरान उन्होंने 600 मेगावाट की खोलोंगछू पनबिजली परियोजना का शिलान्यास किया था और भारत सरकार की सहायता से बनी उच्चतम न्यायालय की इमारत का उद्‍घाटन किया था। विचार विनिमय और द्विपक्षीय संबंधों और आर्थिक सहयोग पर विचार-विमर्श के अलावा, भारतीय प्रधानमंत्री ने नेहरू-वांगचुक स्कॉलरशिप को दुगुना करके 2 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष करने का ऐलान भी किया था। उन्होंने भूटान के सभी 20 जिलों को कवर करने वाली एक ई-लाइब्रेरी स्थापित करने के लिए भारत सरकार की मदद का भी ऐलान किया था।

भूटान नरेश के आमंत्रण पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने 7–8 नवंबर 2014 की सरकारी यात्रा की थी। इस यात्रा के दौरान, उन्होंने महामहिम भूटान

टिप्पणी

नरेश के साथ द्विपक्षीय और क्षेत्रीय मुद्दों समेत कई सारे व्यापक मुद्दों पर बातचीत की थी। इस यात्रा के दौरान, राष्ट्रपति ने "भारत-भूटान संबंध" पर भाषण दिया था और भारत सरकार की सहायता वाली तीन परियोजनाओं का लोकार्पण/विमोचन किया था, जो स्कूल सुधार कार्यक्रम, पूर्व-पश्चिम राजमार्ग अपग्रेडेशन और पावर ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट थे। उन्होंने एंबेस्डर स्कॉलरशिप प्रोग्राम को भी एक करोड़ से बढ़ाकर दुगुना करते हुए 2 करोड़ रुपए प्रतिवर्ष करने का ऐलान किया था। शिक्षा के क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग पर तीन समझौता पत्रों पर, और नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए एक समझौता पत्र पर हस्ताक्षर उसी यात्रा के दौरान किए गए थे।

पनबिजली सहयोग

अब तक भारत सरकार ने भूटान में कुल 1416 मेगावॉट (336 मेगावाट की चुक्खा पनबिजली परियोजना, 60 मेगावॉट की कुरिछू पनबिजली परियोजना और 1020 मेगावॉट की ताला पनबिजली परियोजना) की तीन पनबिजली परियोजनाओं का निर्माण किया है, जो कि काम कर रही हैं, और अतिरिक्त बिजली का निर्यात भारत को कर रही हैं। बनने वाली करीब तीन चौथाई बिजली का निर्यात किया जाता है और बाकी घरेलू खपत में इस्तेमाल की जाती है।

अप्रैल 2014 को भारत और भूटान के बीच संयुक्त उपक्रम मॉडल की 2120 मेगावाट की चार और पनबिजली परियोजनाओं (600 मेगावॉट की खोलोंगछू परियोजना, 180 मेगावॉट की बुनाखा परियोजना, 570 मेगावॉट की वांगछू परियोजना और 770 मेगावघ्ट की चामखरछू परियोजना) के विकास के लिए एक अंतर-सरकारी समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इन परियोजनाओं में से हरेक में दोनों संयुक्त उपक्रम भागीदारों का 50:50 का शेयर होगा। इसके अलावा, विदेश मंत्रालय ड्रुंक ग्रीन पावर कॉरपोरेशन (भूटानी) का इक्विटी शेयर भी अनुदान के रूप में देगा।

द्विपक्षीय व्यापार

भारत भूटान का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। 2016 में दोनों देशों के बीच कुल द्विपक्षीय व्यापार 8723 करोड़ रुपए का था जिसमें कुल आयात 5528.5 करोड़ रुपए (भूटान के कुल आयात का 82%) और निर्यात 3205.2 करोड़ रुपए (भूटान के कुल निर्यात का 90%) था।

भारत से भूटान को होने वाले मुख्य निर्यातों में खनिज उत्पाद, मशीनरी और यांत्रिक उपकरण, विद्युत उपकरण, आधार धातुएं, वाहन, वनस्पति उत्पाद, प्लास्टिक्स और सामग्री हैं। भूटान से होने वाले मुख्य आयातों में बिजली, फेरो-सिलिकन, पोर्टलैंड सीमेंट, डोलोमाइट, कैल्शियम कार्बाइड, सिलिकॉन कार्बाइड, सीमेंट की तलछट, इमारती लकड़ी और लकड़ियों के उत्पाद, आलू, इलायची और फल-उत्पाद हैं।

दोनों देशों के बीच व्यापार भारत-भूटान व्यापार और पारगमन समझौता 1972 से नियंत्रित होता है जिसका पिछला नवीनीकरण नवंबर 2016 में हुआ था। इस समझौते के तहत दोनों देशों के बीच मुक्त व्यापार व्यवस्था कायम हुई। द्विपक्षीय व्यापार समझौते के प्रावधानों के तहत, लेनदेन भूटानी नोंगट्रुम और भारतीय रुपए में होता है। इस समझौते के तहत तीसरे देशों को भूटानी निर्यात को शुल्क मुक्त पारगमन की सुविधा है।

टिप्पणी

सीमा प्रबंधन

सीमा प्रबंधन और सुरक्षा से संबंधित मामलों के लिए सचिव-स्तर का तंत्र है। इस विषय पर पिछली बैठक नई दिल्ली में नवंबर 2016 को हुई थी। सीमा प्रबंधन और इससे जुड़े मामलों में समन्वय की सुविधा के लिए सीमांत प्रदेशों और भूटान की शाही सरकार के बीच एक सीमा जिला समन्वय बैठक तंत्र भी है।

जल संसाधन

भूटान की दक्षिणी तराई में और उससे लगे भारत के मैदानी इलाकों में बार-बार आने वाली बाढ़ और भू-क्षरण के संभावित कारणों और प्रभावों पर चर्चा/आकलन के लिए भारत और भूटान के बीच बाढ़ प्रबंधन पर संयुक्त विशेषज्ञ समूह भी हैं। जो दोनों सरकारों को उचित उपाय सुझाता है। संयुक्त विशेषज्ञ समूह की पिछली बैठक भूटान के थिंफू में अप्रैल 2017 को हुई थी।

भारतीय प्रौद्योगिकीय एवं आर्थिक सहयोग (आईटेक) प्रशिक्षण कार्यक्रम योजना

भारत सरकार भूटानी नागरिकों को विभिन्न क्षेत्रों में उनके प्रशासनिक और प्रौद्योगिकीय कौशल को सुधारने के लिए हर साल आईटेक कार्यक्रम के तहत 300 प्रशिक्षण स्लॉट और टीसीएस कोलंबो योजना के तहत 60 अन्य स्लॉट उपलब्ध कराती है। इस योजना के तहत प्रशिक्षुओं को हवाई किराया, ट्यूशन फीस, आवास, और रिहाइश भत्ता भारत सरकार देती है। इस मिशन की मध्यावधि समीक्षा के दौरान पिछले साल 40 अतिरिक्त स्लॉट्स की भी मंजूरी दी गई और इस मिशन में इस योजना के तहत 282 स्लॉट हो गए हैं। इन नियमित स्लॉट्स के अतिरिक्त, अनेक भारतीय संस्थानों में भूटानी विद्यार्थियों के लिए अनेक विशेष पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं।

भारत-भूटान फाउंडेशन

अगस्त 2003 में भूटान के महामहिम युवराज की भारत यात्रा के दौरान भारत-भूटान फाउंडेशन की स्थापना की गई थी जिसका उद्देश्य शिक्षा, संस्कृति, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय अनुसंधान तथा पर्यावरण संरक्षण के मुख्य क्षेत्रों में जन-संवाद को मजबूत करना था। भूटान और भारत के राजदूत इस फाउंडेशन के सह-अध्यक्ष हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

7. भारत-भूटान के मधय प्रथम प्रमुख संधि कौन-सी हुई थी?
   (क) पुनाखा संधि (ख) सिंचुला संधि
   (ग) मैत्री संधि (घ) कोई नहीं
8. 1949 के मैत्री संधि के किस अनुच्छेद के आधार पर यह सुनिश्चित किया गया था कि भारत-भूटान के विदेशी मामलों में उसकी सहायता करेगा?
   (क) अनुच्छेद 3 (ख) अनुच्छेद 4
   (ग) अनुच्छेद 2 (घ) अनुच्छेद 5

टिप्पणी

2.6 अफगानिस्तान के साथ संबंध

भारतीय गणराज्य ने इस्लामिक देश अफगानिस्तान के साथ द्विपक्षीय संबंध विकसित किए हैं और दोनों देशों के बीच संबंध मैत्रीपूर्ण और मजबूत माने जाते हैं। 1980 के दशक में सोवितय समर्थित लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान को मान्यता देने वाला एकमात्र दक्षिण एशियाई देश भारत ही था।

हालांकि, भारत और अफगानिस्तान के बीच संबंध 1990 के दशक में अफगान गृहयुद्ध और इस्लामी तालिबान की हुकूमत के दौरान खराब होना शुरू हुए। भारत ने तालिबानी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का समर्थन किया था। वास्तव में, उसने उदारतापूर्वक मानवीय और निर्माण सहायता देकर अपना समर्थन जताया।

2008 में काबुल में भारतीय दूतावास पर बमबारी के बाद अफगानिस्तान के विदेश मंत्रालय ने कहा था कि भारत 'बिरादर देश' है और दोनों देशों के संबंध कोई शत्रु खराब नहीं कर सकता। वखान की सीमा से लगा कश्मीर के गिलगिट-बाल्टिस्तान का नियंत्रण पाकिस्तान के पास है लेकिन भारत का दावा है कि यह अफगानिस्तान से लगने वाली उसकी सीमा है।

अफगानिस्तान की सीमा नॉर्थ-वेस्ट फ्रंटियर प्रांत (एनडब्ल्यूएफपी) से लगी हुई है जो कि 1947 के पहले ब्रिटिश भारत का हिस्सा था, और भारतीय कांग्रेस पार्टी का प्रभाव क्षेत्र था। इस क्षेत्र की आबादी का एक बड़ा हिस्सा पख्तूनों का है जो कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी कर रहे थे। हालांकि, 1947 के विभाजन के बाद परिस्थितियों में जबरदस्त परिवर्तन हुआ और एनडब्ल्यूएफपी पाकिस्तान का हिस्सा बन गया। हालांकि, भारतीय गणराज्य और आज के अफगानिस्तान के बीच सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध बने रहे। भारतीय फिल्में और संगीत अफगानिस्तान में बहुत लोकप्रिय हैं, और भारत में अफगानी ड्राई फ्रूट और कालीन बहुत पसंद किए जाते हैं। अपनी आजादी के इतिहास में दोनों ही देश एक दूसरे से मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए हुए हैं। पाकिस्तान के साथ एक दूसरे के टकरावों में भी दोनों देश एक दूसरे को सहयोग करते रहे हैं। भारत ने अफगानिस्तान को सार्क का पूर्ण सदस्य बनने का समर्थन किया और अप्रैल 2007 में वह सार्क में आठवें सदस्य के तौर पर शामिल हुआ।

सौर क्रांति

1979 में अफगानिस्तान में कई घटनाक्रम हुए और सोवियत सेनाओं ने सौर क्रांति के समर्थन में अफगानिस्तान में घुस आई। अफगानिस्तान में ये क्रांति आंतरिक रूप से दो धड़ों, खलक और परचम के बीच सत्ता संघर्ष में विभाजित हो गई जिसमें एक तरफ एम आमिन थे और दूसरी तरफ उनके विरोधी थे। इसके अलावा, मुल्लों, काजियों, जमींदारों और कबायली नेताओं के नेतृत्व में भी बगावत हुई जिसने अफगानिस्तान के पाकिस्तानी सीमा से लगे विभिन्न हिस्सों को चपेट में ले लिया। सत्तारूढ़ राष्ट्रपति तराकी को आमिन ने मरवा दिया और बाबरक करमाल के हाथों खुद भी मार दिए गए। इस भ्रम के कारण सोवियत सेना अफगानिस्तान में घुसी और उसने दावा किया कि अफगानिस्तान सरकार ने ही उसे आमंत्रित किया है।

पड़ोसी इलाकों से उग्रवादियों को हथियार और साजो-सामान की पर्याप्त मदद मिलने से स्थिति और भी जटिल हो गई थी। इस जटिल स्थिति के परिणामस्वरूप, बड़ी

संख्या में अफगानी शरणार्थी पाकिस्तान पलायन कर गए। पाकिस्तान में स्थापित किए गए शिविर केवल शरणार्थी शिविर नहीं थे, बल्कि अफगानिस्तान में सशस्त्र सेनाओं को आगे बढ़ाने वाले ठिकाने भी थे।

टिप्पणी

भारत पहली बार बड़ी शक्तियों से घिरा था और देश के लिए गंभीर खतरे की स्थिति पैदा हो गई थी। बांग्लादेश संकट को छोड़ दें तो आजादी के बाद के वर्षों की तुलना में ये ज्यादा खतरनाक स्थिति थी। भारत का रवैया पूर्व के रवैयों और परंपराओं के अनुसार, शालीन, जटिल और एकरूपता वाला होना था। भारत की मूल नीतियों के अनुसार, इसके सर्वोच्च राष्ट्रीय हित को प्रोत्साहन दिया गया जो कि तकरीबन नामुमकिन काम था।

जब तीन साल सत्ता से बाहर रहने के बाद इंदिरा गांधी की सरकार फिर से सत्ता में आई और जब वे कई तरह की आंतरिक और बाहरी समस्याओं से घिरी थीं, तब सत्ता परिवर्तन के भ्रम का शिकार भारत हुई तो अफगानिस्तान की नीति कमजोर दिखी। तुरंत प्रतिक्रिया अनिवार्य रूप से सबसे बेहतर उपाय नहीं था। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में नवगठित सरकार के पहले बयान में कुछ आशंका भरा उत्साह प्रकट हुआ और वह यह प्रभाव देना चाहती थी कि भारत को अफगानिस्तान में सोवियत सेना के प्रवेश से कोई आपत्ति नहीं है। सत्ता परिवर्तन के कारण पैदा हुए भ्रम से भी काफी गलतफहमी पैदा हुई, हालांकि तुरंत बाद ही इस क्षेत्र में नीति का आकार अधिक महत्वपूर्ण हो गया था।

भारत इस बात को लेकर दुविधा में रहा कि अफगानिस्तान से विदेशी सेना को कैसे बाहर निकलवाया जाए, साथ ही, अन्य क्षेत्रों से भी विदेशी दखल को कैसे रोका जाए जो कि अफगानिस्तान में विद्रोहियों को हथियार और साज-सामान की आपूर्ति के रूप में था। स्वाभाविक रूप से आभिजात्य वर्ग की राय बँटी हुई थी और कई लोगों का विचार था कि एकमात्र उपाय सोवियत सेना की वापसी है और इसलिए बाकी सारी बातें गौण हैं। समाज के कुछ तबकों का मानना था कि भारत की ऐसी स्थिति में काम करने में दिलचस्पी नहीं है जिसमें काबुल सरकार पाकिस्तान के समर्थन वाली किसी कट्टरपंथी सरकार या अतिवादी सांप्रदायिक तत्वों के द्वारा हटा दी जाए। यह पहले से पाकिस्तान समर्थक, अमेरिका समर्थक या चीन समर्थक सरकार के विकल्प पर विचार नहीं कर सकता। जमींदारों, मुल्लों और काजियों के गठबंधन की सत्ता बहुत आकर्षक विकल्प नहीं था।

इसमें कोई शक नहीं कि अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं की वापसी होनी चाहिए थी। भारत किसी भी अन्य देश में विदेशी सेना के प्रवेश का कड़ा विरोधी था। हालांकि, भारत ने इस घोषणा को माना था कि काबुल की सरकार ने ही विद्रोही सेनाओं से निपटने के लिए सोवियत संघ से सेना भेजने का अनुरोध किया था। भारत का मानना था कि मदद मांगना हर देश का अधिकार है। हालांकि, भारत ने बार-बार जोर देकर यह भी कहा कि सोवियत सेना का अफगानिस्तान में बने रहना अवांछनीय है। भारत ने यह भी मांग की कि बाहर से होने वाली हर तरह की दखलंदाजी भी तुरंत बंद होनी चाहिए।

12 जून 1980 को, लोकसभा में तत्कालीन विदेश मंत्री पीवी नरसिंह राव ने कहा था, 'अफगानिस्तान के मसले पर हमारी स्थिति जानी-मानी है। हम किसी अन्य देश में विदेशी सेना या उसके ठिकानों की मौजूदगी को मंजूर नहीं करते। वैसे हम महसूस करते हैं कि अफगानिस्तान को अपनी संप्रभुता, स्वतंत्रता और गुटनिरपेक्ष स्थिति कायम

टिप्पणी

रखनी चाहिए। अफगानिस्तान को यह भी आश्वासन मिलना चाहिए कि बाहरी दखलंदाजी बंद होगी और जारी नहीं रहेगी।' गहन राजनीतिक व्यवस्था के बिना यह हासिल नहीं हो सकता था। भारत की कोशिश ऐसी व्यवस्था को साकार करने की दिशा में होने चाहिए थे।

शायद ये कोई मनमानी बात नहीं है कि इसी के बाद भारत ने एक अलग रुख घोषित किया कि दक्षिण पश्चिम एशिया की इस जटिल स्थिति के एकमात्र संभावित समाधान राजनीतिक समाधान ही हो सकता है। आगे के महीनों में राजनीतिक समाधान पर ही जोर दिया गया जिसके तहत भारत की कई उच्च स्तरीय यात्राएं हुईं। ये उच्च स्तरीय यात्राएं फ्रांस के तत्कालीन राष्ट्रपति गिसकार्ड डी एसटेंग की जनवरी 1980 में भारत यात्रा से शुरू हुईं। भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने स्थिति के तर्क से परे उनका समर्थन किया और राजनीतिक समाधान के लिए समर्थन व्यक्त किया। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र के तत्कालीन महासचिव कुर्ट वाल्ढाइम ने इंदिरा गांधी से बात की और तनाव कम करने तथा बेरोकटोक प्रतिक्रियाओं पर रोक लगाने को कहा ताकि आरोप-प्रत्यारोप के लक्षण से बचा जा सके क्योंकि इसका नतीजा बड़ी ताकतों की प्रतिद्वंद्विता के रूप में सामने आ सकता था।

एक सार्वजनिक भाषण में इंदिरा गांधी ने कहा था कि भारत सोवियत संघ के साथ सेना की वापसी के बारे में पहले ही चर्चा कर चुका है। सोवितय संघ ने यह कहते हुए जवाब दिया था कि अगर पाकिस्तान उग्रवादियों को प्रशिक्षण देना और उन्हें अफगानिस्तान भेजना बंद कर दे तो सेना की वापसी जल्द से जल्द संभव हो जाएगी। सोवियत संघ ने बार-बार ये दावा किया कि उसकी सेना अफगानिस्तान की तत्कालीन सरकार के अनुरोध पर ही वहां आई थी। हालांकि, ये अनुरोध उग्रवादियों की हरकतों और बाहरी खतरों के बढ़ने के बाद किया गया था। सोवियत सेना की वापसी के बारे में भारत की स्थिति सातवें गुट निरपेक्ष सम्मेलन समेत अनेक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर बार-बार रखी गई।

यहां तक कि पाकिस्तान ने भी इस बात की पुष्टि की कि वह राजनीतिक समाधान के रास्ते पर चलने के लिए तैयार है और धीरे-धीरे राजनीतिक समाधान तकरीबन स्वीकार कर लिया गया। इसके बाद संयुक्त राष्ट्र महासचिव की देखरेख में वार्ताएं शुरू हुईं। यह बात भी स्वीकार की गई कि समाधान खोज पाना इतना सरल और आसान नहीं होगा क्योंकि ये मसला बहुत ही जटिल है। हालांकि तब भी भारत के विदेश सचिव आरडी साठे ने मीडिया के सामने दिए बयान में कहा था कि अफगानिस्तान से लौटने के बाद वहां की स्थिति के समाधान की प्रक्रिया पहले ही शुरू हो चुकी है और यह 'समाधान के बहुत करीब' है, लेकिन,बड़ी शक्तियों और पाकिस्तान, चीन, अमेरिका, सोवियत संघ तथा अन्य संबंधित देशों के उद्देश्यों में किसी तरह का तीव्र विकास नहीं देखा गया। दिसंबर, 1980 में इंदिरा गांधी ने एक विदेशी संवाददाता से कहा था कि वे किसी तत्काल समाधान की भविष्यवाणी नहीं कर सकतीं। अगर इतनी हायतौबा न मचाई गई होती तो सोवियत सेना अफगानिस्तान से नहीं जातीं।

लोकतांत्रिक तरीके से नवनिर्वाचित अफगानिस्तान सरकार ने पाकिस्तान के साथ लगातार तनावों और समस्याओं के कारण भारत के साथ अपने संबंध मजबूत किए। यह संदेह किया गया कि पाकिस्तान तालिबान को शरण और समर्थन देता था। भारत अब अफगानिस्तान को क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभारने और इसके विरोधी पाकिस्तान को दबाने

के लिए अफगानिस्तान के साथ निकट सहयोग की नीति अपनाता है। पाकिस्तान भी कश्मीर घाटी और भारत के अन्य हिस्सों में इस्लामी उग्रवादियों को समर्थन देता है। इसके अलावा, भारत अफगानिस्तान में सर्वाधिक निवेश करने वाला देश है जिसने पुनर्निर्माण के कामों के लिए 2 अरब 20 करोड़ अमेरिकी डॉलर देने की प्रतिबद्धता की है।

1989 में अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी के बाद भारत और अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने सत्ता संभालने वाली गठबंधन सरकार का समर्थन किया, लेकिन वहां एक और गृहयुद्ध छिड़ जाने के कारण ये संबंध और संपर्क खत्म हो गए। अफगानिस्तान में तालिबान की हुकूमत सत्ता में आ गई जो कि पाकिस्तान के समर्थन वाला इस्लामी मिलीशिया था। तालिबान की सरकार को केवल पाकिस्तान, सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात ने मान्यता दी थी। अफगानिस्तान में इस्लाम का उभार और भारत प्रशासित कश्मीर में उग्रवाद में अफगान मुजाहिदीन के बढ़ने से तालिबान और अफगानिस्तान भारत सरकार की सुरक्षा के लिए खतरा बन गए। तालिबान ने बौद्ध धर्म का जन्मस्थान माने जाने वाले बामियान में बौद्ध स्मारक को नष्ट कर दिया जिसके बाद भारत में उग्र और तेज प्रदर्शन हुए। 1999 में, इंडियन एयरलाइंस के विमान 814 का पाकिस्तानी मुस्लिम आईएसआई एजेंटों ने अपहरण कर लिया और उसे अफगानिस्तान में कंदार में ले गए थे। तालिबान और पाकिस्तान की आईएसआई पर अहरणकर्ताओं की मदद का संदेह था। भारत एंटी तालिबान नॉर्दर्न एलायंस के मुख्य समर्थकों में से एक बन गया। तालिबान शासन के दौरान भारत के अफगानिस्तान के संबंध बहुत अधिक तनावपूर्ण हो गए थे। भारत इस तरह की सरकार का समर्थन कभी नहीं करेगा।

तालिबानी हुकूमत के पतन के बाद भारत और अफगानिस्तान के संबंध

2001 में अफगानिस्तान में अमेरिकी नेतृत्व की सेना के घुसने पर भारत ने गठबंधन सेना को इंटेलीजेंस और अन्य रूपों में समर्थन का प्रस्ताव किया था। तालिबान की हुकूमत उखाड़ फेंके जाने के बाद भारत ने नई लोकतांत्रिक सरकार के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किए और सहायता मुहैया कराई तथा पुनर्निर्माण के प्रयासों में भी भागीदारी की। भारत अब तक 650-750 मिलियन डॉलर की मानवीय और आर्थिक सहायता दे चुका है। अफगान के दूर-दराज के प्रांत निमरोज में भारतीय सेना के सीमा सड़क संगठन ने एक सड़क बनाई है। भारत का सहयोग और मदद हवाई संपर्कों, ऊर्जा संयंत्रों के पुनर्निर्माण में फैला है, और वह शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में निवेश करने के साथ-साथ अफगानी सरकारी कर्मचारियों, राजनयिकों और पुलिस को प्रशिक्षण में भी मदद कर रहा है। भारत अफगानिस्तान में बिजली, तेल और प्राकृतिक गैस की आपूर्ति लाइनों के विकास में भी दिलचस्पी रखताहै। अफगान छात्र-छात्राओं को भारत सरकार स्कॉलरशिप भी देती है।

भारत और अफगानिस्तान, दोनों ने इस्लामी आतंकवादियों के खिलाफ सामरिक और सैन्य सहयोग भी विकसित किया है। नवंबर 2005 में तालिबान के आतंकवादियों ने एक भारतीय नागरिक की हत्या कर दी थी, जिसके बाद भारत ने भारतीय नागरिकों की हिफाजत के लिए भारत-तिब्बत सीमा पुलिस के 200 सैनिक तैनात किए।

हामिद करजई की भारत की 9-13 अप्रैल 2006 की यात्रा के दौरान भारत और अफगानिस्तान के बीच ग्रामीण विकास, शिक्षा और भारतीय मानक ब्यूरो (बीआईएस) तथा अफगान राष्ट्रीय मानकीकरण प्राधिकरण (एएनएसए) के बीच मानकीकरण को बारे

टिप्पणी

में तीन समझौता पत्रों पर हस्ताक्षर किए गए थे। जब अफगानिस्तान के विदेश मंत्री डॉ स्पांटा 29 जून और 1 जुलाई 2006 के बीच भारत की यात्रा पर आए थे तब भारत और अफगानिस्तान ने द्विपक्षीय व्यापारों को बढ़ावा देने के लिए 50 मिलियन अमेरिकी डॉलर मुहैया कराने के समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। उसी साल भारत ने अफगानिस्तान को दिया जाने वाला अपना सहायता पैकेज 150 मिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़ाकर 750 मिलियन अमेरिकी डॉलर कर दिया। भारत ने अफगानिस्तान के सार्क सदस्य बनने के दावे का भी समर्थन किया था।

7 जुलाई 2008 को काबुल में भारतीय दूतावास पर एक आत्मघाती कार बम ने हमला किया था, जो कि काबुल में हुआ सबसे भयंकर हमला था और 2001 में तालिबानी हुकूमत के पतन के बाद का पहला हमला था। इस बम हमले में 58 लोग मारे गए थे और 141 लोग घायल हो गए थे। यह हमला उस समय हुआ था जब भारतीय थल सेना के ब्रिगेडियर रविदत्त मेहता राजनीतिक सलाहकार वी वेंकटेश्वर राव के साथ कार से दूतावास के गेट से अंदर आ रहे थे। दुर्भाग्य से दोनों उस हमले में मारे गए थे। अफगान सरकार ने दावा किया था कि इस हमले में पाकिस्तान की आईएसआई शामिल थी।

कोलंबो में 15वें सार्क सम्मेलन में भारत ने अफगानिस्तान में चल रही और भावी परियोजनाओं के लिए 450 मिलियन डॉलर की सहायता का वादा किया था। अगस्त 2008 में अफगान राष्ट्रपति हामिद करजई भारत आए थे। इस यात्रा से दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंध और मजबूत हुए और भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने अफगानिस्तान को और ज्यादा सहायता देने का वादा किया था।

काबुल में भारतीय दूतावास पर 18 अक्टूबर 2009 को एक बार फिर से कार बम का हमला हुआ, जबकि पिछले साल के हमले का एक साल बीते कुछ ही समय हुआ था। इस हमले में कम से कम 17 लोग मारे गए थे।,

अमेरिका और उसके सहयोगियों ने अपनी नीति पलट दी और उन्होंने तालिबान को शांति का प्रस्ताव दिया, और यह मान लिया कि सैन्य विजय की संभावना नहीं है। इससे भारत के आगे बड़ी चुनौतियां आ गई। 'काबुल में तालिबान की संभावित वापसी के साथ ही भारत के पास विकल्प सीमित हो जाएंगे जबकि उसने करजई सरकार का समर्थन करते हुए अपना राजनीतिक निवेश किया था,' इंस्टीट्यूट ऑफ पीस एंड कनफ्लिक्ट स्टडीज (आईपीसीएस) नई दिल्ली की प्रकाशित एक विशेष रिपोर्ट में उसके रिसर्च ऑफीसर ने कहा था।

शर्मा के मुताबिक, भारत के सामने तात्कालिक चुनौतियां सही संतुलन बनाने की है। पाकिस्तान की सरकारी मशीनरी के उसके सीमांत क्षेत्र में पतन से अफगानिस्तान में सीमा पर संकट बढ़ गया और उग्रवादियों की खतरा उसके घर के ज्यादा निकट आ गया।

शर्मा महसूस करते हैं कि प्रभावकारी सरकारी नीति सुनिश्चित करने के लिए भारत को सुनिश्चित करना चाहिए कि ताजिक प्रभाव वाले नॉर्दर्न एलायंस का पख्तून प्रभाव वाले तालिबान के खिलाफ इसके अतीत का समर्थन उसके हितों के विपरीत प्रचार साधन का काम नहीं करता।

शर्मा का सुझाव था कि भारत को राज्य शासन क्षमता मजबूत करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए । इसे ज्ञान और जमीनी स्तर के अनुभवों, मसलन, लोक अदालतें

और पंचायती राज व्यवस्था आदि के बारे में साझा करके अफगानी नागरिकों का विश्वास जीतने की कोशिश करनी चाहिए। उनका मत था कि देशी खेती और सिंचाई तकनीक के संदर्भ में सहयोग देकर भारत अफगानिस्तान की मदद कर सकता है और उसके कृषि क्षेत्र को पुनर्जीवित कर सकता है, जो कि सूखे के प्रभाव से गुजर रहा है। रिपोर्ट में उन्होंने कहा कि भारत को अफीम के अवैध व्यापार पर लगाम लगाने के लिए 'औषधियों के लिए अफीम' कार्यक्रम में सेनसिल काउंसिल को समर्थन देना चाहिए। इससे अफीम की लाइसेंसी खेती के उसके खुद के अनुभव को साझा करने का भी भारत को मौका मिलेगा।

दोनों पक्षों के बीच सामरिक भागीदारी समझौता(एसपीए) अन्य बातों के साथ-साथ, अफगानिस्तान की अधोसंरचना और शिक्षण संस्थाओं के पुनर्निर्ममाण में मदद करता है, शिक्षा और विभिन्न क्षेत्रों में अफगानिस्तान की स्वदेशी क्षमता के पुनर्निर्माण में प्रौद्योगिकीय सहायता देता है, अफगानिस्तान के ग्रामीण संसाधनों में निवेश को प्रोत्साहन देता है, अफगान नेतृत्व वाले, अफगान स्वामित्व वाले अफगानिस्तान के निर्यात के लिए भारतीय बाजार में शुल्क मुक्त पहुंच का प्रावधान करता है, शांति और सुलह की व्यापक आध ार वाली और समावेशी प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है, और अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा अफगानिस्तान को टिकाऊ और दीर्घकालीन प्रतिबद्धता की वकालत करता है।

हाल के अतीत में भारत-अफगानिस्तान संबंध

हाल के अतीत में भारत-अफगानिस्तान संबंध सामरिक भागीदारी समझौते (एसपीए) के जरिए और ज्यादा मजबूत हुए हैं जिस पर अक्टूबर 2011 में दोनों देशों ने हस्ताक्षर किए थे। दोनों पक्षों के बीच सामरिक भागीदारी समझौता(एसपीए) अन्य बातों के साथ-साथ, अफगानिस्तान की अधोसंरचना और शिक्षण संस्थाओं के पुनर्निर्ममाण में मदद करता है, शिक्षा और विभिन्न क्षेत्रों में अफगानिस्तान की स्वदेशी क्षमता के पुनर्निर्माण में प्रौद्योगिकीय सहायता देता है, अफगानिस्तान के ग्रामीण संसाधनों में निवेश को प्रोत्साहन देता है, अफगान नेतृत्व वाले, अफगान स्वामित्व वाले अफगानिस्तान के निर्यात के लिए भारतीय बाजार में शुल्क मुक्त पहुंच का प्रावधान करता है, शांति और सुलह की व्यापक आधार वाली और समावेशी प्रक्रिया को प्रोत्साहित करता है, और अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा अफगानिस्तान को टिकाऊ और दीर्घकालीन प्रतिबद्धता की वकालत करता है।

भारत-अफगानिस्तान संबंधों की विशेषता नियमित उच्चस्तरीय विनिमय है। हमारे नेता एक दूसरे से द्विपक्षीय यात्राओं के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रमों के दौरान मिलते रहते हैं। 25 दिसंबर 2016 को भारतीय प्रधानमंत्री ने उच्चस्तरीय प्रतिनिधिमंडल के साथ अफगानिस्तान की यात्रा की थी। इस यात्रा के दौरान उन्होंने राष्ट्रपति अशरफ गनी अहमदजई से मुलाकात की थी; उन्होंने चीफ एक्जीक्यूटिव डॉ अब्दुल्ला और पूर्व राष्ट्रपति हामिद करजई से भी मुलाकात की थी। इस यात्रा के दौरान उन्होंने नवनिर्मित अफगानी संसद का उद्घाटन किया था; अफगानी सुरक्षा बलों के शहीदों के बच्चों के लिए 500 छात्रवृत्तियों की घोषणा की थी और अफगान वायुसेना को चार एमआई-25 अटैक हेलीकॉप्टर भेंट किए थे। इस यात्रा के दौरान यह भी फैसला किया गया था कि दोनों देशों के विदेश मंत्रियों की अध्यक्षता वाली द्वितीय सामरिक भागीदारी परिषद की बैठक 2016 की पहली तिमाही में चार संयुक्त कार्यदलों की बैठकों के साथ आयोजित की जाएगी।

टिप्पणी

इस्लामी गणराज्य अफगानिस्तान के मुख्य कार्याधिकारी(सीईओ) डॉ अब्दुल्ला अब्लदुला 31 जनवरी-4 फरवरी 2016 तक भारत की यात्रा पर आए थे। इस यात्रा के दौरान उन्होंने एक फरवरी 2016 को भारत के प्रधानमंत्री से मुलाकात की थी और अफगानिस्तान में शांति, सुरक्षा और सुलह समेत द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और आपसी हितों के वैश्विक मुद्दों पर बातचीत की थी। विदेश मंत्री और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ने भी सीईओ से क्रमशः 1 और 4 फरवरी को मुलाकात की थी। अफगानिस्तान को भारत की विकास सहायता जारी रखते हुए, भारत सरकार ने 92 परियोजनाओं वाली लघु विकास परियोजनाओं के तीसरे चरण को मंजूरी दी। डिप्लोमैटिक पासपोर्ट रखने वालों को वीजा से छूट देने के समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। 3 फरवरी को सीईओ ने भारत के वाणिज्य और उद्योग के तीन अग्रणी चौंबरों-एसोचौम, सीआईआई और फिक्की के संयुक्त संवाद कार्यक्रम को संबोधित किया। सीईओ ने जयपुर में 2 फरवरी को इंडिया फाउंडेशन के आतंकवाद निरोधी सम्मेलन में मुख्य भाषण दिया। इस सम्मेलन में उद्घाटन भाषण भारत के राष्ट्रपति ने दिया था।

4 जून 2016 को भारत के प्रधानमंत्री ने पश्चिमी अफगानिस्तान में हेरत की यात्रा की और राष्ट्रपति गनी के साथ संयुक्त रूप से अफगान-भारत बांध का उद्घाटन किया जिसे पहले सलमा बांध कहा जाता था। बांध परियोजना का पूरा होना करीब 1500 भारतीय और अफगानी इंजीनियरों तथा अन्य कर्मचारियों के बेहद कठिन हालात में सालों की गई कड़ी मेहनत का नतीजा है। यह अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण और विकास के प्रति भारत की निरंतर प्रतिबद्धता को भी दर्शाता है।

बाद में 22 अगस्त 2016 को प्रधानमंत्री ने राष्ट्रपति गनी के साथ संयुक्त रूप से, पुनर्स्थापित स्टोर पैलेस का वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए उद्घाटन किया। अपने भाषण में प्रधानमंत्री ने कहा कि सवा अरब भारतीय जनता शांति और समृद्धि सुनिश्चित करने में "हमेशा" अफगानिस्तान के साथ खड़ी रहेगी।

राष्ट्रपति गनी 14-15 सितंबर 2016 को भारत की यात्रा पर आए थे। इस यात्रा से दोनों पड़ोसी मित्रों के बीच निकट और बारंबार विचार-विमर्श जारी रखने का मौका मिला। इस यात्रा के दौरान, प्रत्यर्पण संधि, नागरिक और वाणिज्यिक मामलों में सहयोग पर समझौता, तथा बाह्य अंतरिक्ष के शांतिपूर्ण उपयोग में सहयोग पर समझौता-पत्र पर हस्ताक्षर किए गए। ईरान के साथ मई 2016 में जिस त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर हुए थे, उस पर भी तेजी से अमल पर जोर दिया गया था। ये समझौता क्षेत्र में कनेक्टिविटी बढ़ाने के लिए चाहबहार बंदरगाह के इस्तेमाल को लेकर था। भारत ने अफगानिस्तान में शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, कृषि, महिला सशक्तिकरण, ऊर्जा, अधोसंरचना, और लोकतांत्रिक संस्थाओं की मजबूती जैसे क्षेत्रों में क्षमता निर्माण के लिए 1 अरब डॉलर की अतिरिक्त सहायता देने का भी ऐलान किया।

द्वितीय सामरिक भागीदारी परिषद की बैठक 11 सितंबर, 2017 को नई दिल्ली में हुई। अफगानी सरकार के वरिष्ठ सदस्यों वाले अफगान प्रतिनिधिमंडल की अगुवाई विदेश मंत्री एचई सलाहउद्दीन ने की थी। प्रधानमंत्री ने जो ताजा एक अरब डॉलर की सहायता का ऐलान किया था, उसका इस्तेमाल करके एक नव विकास भागीदारी शुरू की गई। भारत सरकार ने अफगानिस्तान सरकार के साथ मिलकर उन प्राथमिकताओं और परियोजनाओं की पहचान की जिनमें अफगानिस्तान को भारतीय सहायता की जरूरत थी।

टिप्पणी

भारत ने शहतूत बांध और काबुल के लिए पेयजल परियोजना जैसी कुछ नई अहम परियोजनाओं के क्रियान्वयन पर भी सहमति जताई जिनसे सिंचाई, चरीकर सिटी में जलापूर्ति, बामयान प्रांत में बंद-ए-आमिर की रोड कनेक्टिविटी की सुविधा मिलेगी जिससे पर्यटन बढ़ेगा, नांगरहार प्रांत में वापस लौटने वाले अफगान शरणार्थियों के लिए सस्ते आवास के जरिए उनके पुनर्वास की व्यवस्था होगी, मूल्य संवर्धित स्थानीय उद्योग को प्रोत्साहन देने और आयात विकल्प के लिए काबुल में एक जिप्सम बोर्ड निर्माण संयंत्र होगा, और मजार-ए-शरीफ में एक पॉलिटेक्निक की स्थापना होगी।

इसके अतिरिक्त, भारत अफगानिस्तान के 31 प्रांतों में 116 हाई इंपेक्ट कम्युनिटी डेवलपमेंट परियोजनाएं भी शुरू करेगा। ये महत्वपूर्ण निवेश शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, पेयजल, नवीनीकरण योग्य ऊर्जा, बाढ़ नियंत्रण, सूक्ष्म-पनबिजली, खेल और प्रशासनिक अधोसंरचना के क्षेत्रों में होंगे।

भारत ने यह भी ऐलान किया कि अफगानिस्तान में शिक्षा, क्षमता निर्माण, कौशल और मानव संसाधन विकास के जारी कार्यक्रम पांच साल की एक अवधि, 2017 से 2022 तक जारी रहेंगे, जो कि दुनिया के इस तरह के सबसे बड़े कार्यक्रमों में से एक हैं।

बैठक के दौरान तीन महत्वपूर्ण दस्तावेजों का विनिमय हुआ:

(अ) यात्री परिवहन, निजी परिवहन और माल ढुलाई परिवहन के नियमितिकरण के लिए मोटर वाहन समझौता।

(ब) इस्लामी गणराज्य अफगानिस्तान के अफगानिस्तानी राष्ट्रीय औषधि एवं स्वास्थ्य देखभाल उत्पाद नियामक प्राधिकरण और, स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय के महानिदेशालय, स्वास्थ्य सेवाओं के केंद्रीय ड्रग्स मानक नियंत्रण संगठन के बीच औषधि उत्पाद नियामन के बीच समझौता ज्ञापन।

(स) दक्षिण एशिया उपग्रह पर भारत और अफगानिस्तान के बीच कक्षीय आवृत्ति समन्वय समझौता

डॉ अब्दुल्ला ने सितंबर 2018 में अपनी यात्रा के दौरान भारत-अफगानिस्तान व्यापार एवं निवेश शो का उदघाटन किया। इस प्रभावशाली समारोह का आयोजन भारत, अफगानिस्तान और अमेरिका ने संयुक्त रूप से किया था। डॉ अब्दुल्ला ने प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री के साथ भी बैठकें की थीं और द्विपक्षीय सरोकारों के विभिन्न मसलों पर चर्चा की थी। डॉ अब्दुल्ला ने अपनी यात्रा के दौरान भारत के राष्ट्रपति से भी मुलाकात की थी। उनकी सफल यात्रा के दौरान भारत और अफगानिस्तान ने सहयोग के क्षेत्रों के और विस्तार के लिए पुलिस प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी समझौते पर हस्ताक्षर किए थे।

वाणिज्यिक संबंध

2016-17 में द्विपक्षीय व्यापार तकरीबन 800 मिलियन अमेरिकी डॉलर था और इसके आगे बढ़ने की भारी संभावना है। हालांकि, द्विपक्षीय व्यापार के लिए वाघा-अटारी मार्ग एक बार खुल जाए, तो व्यापारिक संबंधों की वास्तविक संभावनाओं का पता चलेगा। अब तक अफगानिस्तान पारगमन व्यापार समझौता (एपीटीटीए) इस हिसाब से बाधक रहा है। इस क्षेत्र में भारत अफगानी उत्पादों का सबसे बड़ा बाजार है और पारगमन बंद करने से

माल की मुक्त आवाजाही पर असर पड़ा है। भारत द्वारा बनाए गए जरांज-देलारम मार्ग का एक उद्देश्य द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों को प्रोत्साहित करना था, साथ ही अफगानिस्तान को समुद्री बंदरहार का एक और आउटलेट देना भी था। ईरान में चाबहार बंदरगाह का सफल संचालन इस मार्ग का फायदा उठाएगा और भारत के लिए नया मार्ग खुलने से अफगानी उत्पादों को भारत और बाकी दुनिया के लिए, मध्य एशिया के साथ व्यापार के वास्ते नया पारगमन मार्ग मिलेगा।

जून 2017 में काबुल-दिल्ली और कंधार-दिल्ली के बीच पृथक हवाई आर्थिक गलियारे के उद्घाटन ने द्विपक्षीय व्यापार को ताजा प्रोत्साहन दिया है। पाकिस्तान के पारगमन से इन्कार करने से पैदा हुई बाधाओं के बावजूद इस हवाई गलियारे ने माल की मुक्त आवाजाही सुनिश्चित की है। सामरिक भागीदारी रणनीति परिषद की बैठक के दौरान यह तय किया गया था कि इस गलियारे को और मजबूत किया जाए और इसका विस्तार भारत के अन्य शहरों तक भी किया जाए। इस गलियारे के आरंभ होने के बाद से ही 1000 टन से ज्यादा माल का परिवहन पहले ही हो चुका है।

28 सितंबर 2017 को डॉ अब्दुल्ला ने भारत-अफगानिस्तान व्यापार एवं निवेश शो का उद्घाटन किया था। इसमें अफगानिस्तान में व्यापार और निवेश के अवसरों को दिखाने का बहुमूल्य मंच मिला। इस शो ने 250 मिलियन डॉलर का बिजनेस पैदा किया और भारत तथा अफगानिस्तान के बीच बिजनेस-टू-बिजनेस संपर्क मजबूत के। इस शो ने द्विपक्षीय व्यापार में भारी संभावनाओं को सामने लाया और भारत तथा अफगानिस्तान के बीच वाणिज्यिक संबंधों को और मजबूत किया।

अफगानिस्तान में व्यापार करने वाली प्रमुख भारतीय कंपनियाँ निम्नानुसार हैं:

- केईसी – इलेक्ट्रिल ट्रांसमीशन लाइनें
- फीनिक्स – विद्युत वितरण में सलाहकार
- एआईपीएल – हेलमंड प्रांत में पनबिजली परियोजना की स्थापना
- एपटेक – कंप्यूटर और प्रबंधन शिक्षा
- गेमन इंडिया – विद्युत वितरण लाइन और विद्युत सबस्टेशन
- केपीटीएल – पावर ट्रांसमीशन लाइन
- अनार ग्रुप (एयर इंडिया सामान्य सेवा प्रशासन)
- स्पाइस जेट अफगान

सांस्कृतिक संबंध

अफगानिस्तान 2000 से भी ज्यादा सालों से फारस, मध्य एशिया की संस्कृतियों को भारत से जोड़ने वाला महत्वपूर्ण व्यापार और शिल्प केंद्र रहा है। हालांकि,तीन दशकों के युद्ध ने अफगानिस्तान की कला और वास्तुशिल्प की अनोखी परंपराओं को कमजोर किया है। आज अफगानिस्तान के सामने सबसे बड़ी चुनौती अपनी प्राचीन कला और वास्तुशिल्प के ज्ञान की पुनर्खोज और उसे कायम रखने की है। भारत और अफगानिस्तान के बीच संगीत, कला, वास्तुशिल्प, भाषा और पाक कला के क्षेत्र में मजबूत और गहरे संपर्कों की सैकड़ों साल पुरानी साझा सांस्कृतिक विरासत है। संगीत के क्षेत्र में, खासतौर पर ज्यादातर

टिप्पणी

अफगानिस्तानी संगीतज्ञ पटियाला घराने में प्रशिक्षित थे। आज भारतीय फिल्में, गीत और टीवी सीरियल जनता के बीच लोकप्रिय हैं, और हिंदी को लोकप्रिय बनाने में, भारतीय सामाजिक-सांस्कृति मूल्य व्यवस्था को आम जनमानस से परिचित कराने में अहम भूमिका निभा रही हैं। अफगानिस्तान के लिए भारत के पुनर्निर्माण कार्यक्रम में भारत का नियमित रूप से यही लक्ष्य रहता है कि ऐसी परियोजनाएं हाथ में ले जो अफगानिस्तान की सांस्कृतिक विरासत को टिकाऊ बना दें। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र भी एक साझा सांस्कृतिक विरासत बनाने की दिशा में काम करता आ रहा है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. अप्रैल 2007 में अफगानिस्तान किस संगठन का आठवां सदस्य बना?
   (क) सार्क (ख) ब्रिक्स
   (ग) आसियान (घ) जी-20
10. भारत-अफगानिस्तान सामरिक भागीदारी समझौता किस वर्ष हुआ?
   (क) 2010 (ख) 2011
   (ग) 2012 (घ) 2013

2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (ग)
5. (ख)
6. (क)
7. (ख)
8. (ग)
9. (क)
10. (ख)

2.8 सारांश

भारत-पाकिस्तान संबंध भारतीय विदेश नीति के लिए सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण मुद्दा रहा है। इन दोनों के बीच संबंधों में कड़वाहट का आरंभ 1947 ई. में भारत के विभाजन तथा पाकिस्तान के एक अलग राज्य के रूप में अभ्युदय से ही हो जाता है। भारत का यह विभाजन सांप्रदायिकता तथा मुस्लिम लीग के दो राष्ट्रों के सिद्धांत का परिणाम था।

भारत बांग्लादेश केवल पड़ोसी राष्ट्र ही नहीं हैं बल्कि कहा जा सकता है कि बांग्लादेश की उत्पत्ति की वजह भारत ही है। भारत ने बांग्लादेश को पूर्ण आजादी से पहले ही 6 दिसंबर, 1971 को मान्यता प्रदान कर दी थी।

भारत और श्रीलंका के संबंधों में सहयोग और संघर्ष का मिला-जुला अंश देखने को मिलता है। एक ही क्षेत्र में स्थित होने के बावजूद दोनों देशों की भौगोलिक, सामरिक, आर्थिक व राजनीतिक विभिन्नताएं हैं। इन्हीं का असर शायद संबंधों पर भी पड़ता है।

भूटान की बौद्ध राजशाही ने 1947 के पहले ब्रिटिश-भारत के साथ मैत्रीपूर्ण लेकिन सावधानीपूर्वक दूरी बरतते हुए संबंध कायम रखे थे। चीन गणराज्य ने जब 1950-51 में तिब्बत पर कब्जा जमाया तो भारत और भूटान दोनों में कुछ शुरुआती चिंताएं उठीं थी। 1960 के दशक के अंत में, भातर भूटान का प्रमुख विदेशी मददकर्ता बन गया। 1962-63 में चीन-भारत युद्ध के संदर्भ में भूटान भारत से बड़े पैमाने पर सैन्य सहायता हासिल करने वाला देश बना। दोनों ही राष्ट्रों के बीच मधुर संबंध रहे हैं और भूटान सुरक्षा, राजनीति और आर्थिक मसलों पर पूरी तरह से भारत के साथ है।

भारतीय गणराज्य ने इस्लामिक देश अफगानिस्तान के साथ द्विपक्षीय संबंध विकसित किए हैं और दोनों देशों के बीच संबंध मैत्रीपूर्ण और मजबूत माने जाते हैं। 1980 के दशक में सोवितय समर्थित लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान को मान्यता देने वाला एकमात्र दक्षिण एशियाई देश भारत ही था।

2.9 मुख्य शब्दावली

- **स्थानांतरण** : एक स्थान से दूसरे स्थान को विस्थापन।
- **एल.टी.टी.ई.** : लिबरेशन टाइगर्स ऑफ तमिल इलम।
- **बी.एच.ई.एल.** : भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड।
- **एलायंस** : संधि, संबंध।

2.10 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. नेहरू-लियाकत समझौता का मुख्य विषय क्या था?
2. भारत ने बांग्लादेश को नए राष्ट्र के तौर पर सबसे पहले कब मान्यता दी थी?
3. नेहरू-कोटेलवाला समझौते के पीछे मुख्य समस्या क्या थी?
4. पुनाका संधि का मुख्य मसौदा क्या था?
5. एन.डब्ल्यू.एफ.पी. क्या है?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. भारत-पाकिस्तान के मध्य सीमा विवाद की समस्या की समीक्षा कीजिए।
2. बांग्लादेश के नए राष्ट्र के रूप में उदय में भारत की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

3. भारत-श्रीलंका संबंधों में उतार-चढ़ाव के चरणों की विवेचना कीजिए।
4. भारत द्वारा भूटान को दी जाने वाली आर्थिक व तकनीकी सहायताओं की समीक्षा कीजिए।
5. अफगानिस्तान में तालिबानी हुकूमत के पतन के बाद भारत-अफगानिस्तान के संबंधों की स्थिति की गवेषणा कीजिए।

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

Khanna, V. N. and Leslie K. Kumar. 2018. *Foreign Policy of India*, 7th Edition. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Ganguly, Sumit. 2011. *India's Foreign Policy.* New Delhi: Oxford University Press.

Reddy, K. Raja. 2012. *Foreign Policy of India and Asia-Pacific.* New Delhi: New Century Publications.

Balakrishan, T.K. 2010. *Foreign Policy of India: Problems and Paradoxes*. New Delhi: Mohini Publishers and Distributors.

Muni, S.D. 2009. *India's Foreign Policy: The Democracy Dimension*. Foundation Books.

इकाई 3 महाशक्तियों के साथ भारत के संबंध

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 अमेरिका के साथ संबंध
3.3 रूस के साथ संबंध
3.4 चीन के साथ संबंध
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

भारत के विश्व महाशक्तियों के साथ संबंध भी बड़े उतार-चढ़ाव भरे रहे हैं। भारत तथा रूस के संबंध जहां दोस्ताना तथा पारस्परिक विश्वास वाले रहे हैं वहीं भारत-अमेरिका संबंधों में पाकिस्तान एक महत्वपूर्ण तत्व रहा है। यहां उन तथ्यों का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है जिन्होंने भारत के महाशक्तियों के साथ संबंधों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। इन राष्ट्रों के साथ पारस्परिक संबंधों को आर्थिक तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के दृष्टिकोण से देखना भारतीय विदेश नीति के वास्तविक एवं प्रायोगिक पक्ष को समझने में सहायक होगा।

संयुक्त राज्य अमेरिका एवं सोवियत संघ प्रारंभ से ही विश्व की प्रभुत्व शक्तियां रही हैं। इन दोनों शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रति भारत की विदेश नीति काफी उतार-चढ़ावपूर्ण रही है। भारत विश्व में सबसे अधिक जनसंख्या वाला दूसरा देश है। एशिया में भी इसकी स्थिति सामरिक महत्व की है। यह तीसरे विश्व तथा गुट-निरपेक्ष देशों का एक महत्वपूर्ण नेता है।

आज भारत विकासशील देशों में सबसे अधिक विकसित देश है। परमाणु शक्ति संपन्न राष्ट्र के रूप में भारत अमेरिका की दृष्टि में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो रहा है। फिर भी उसकी पाकिस्तान के प्रति दोस्ती में कुछ अन्तर आने के बावजूद प्रगाढ़ता बनी हुई है जो भारत के लिए एक चिंता का विषय बनी हुई है। वहीं सोवियत संघ से भारत के संबंध कमोबेश मित्रतापूर्ण रहे हैं। सन् 1971 में सोवियत संघ से भारत की एक शांति, मैत्री और सहयोग की संधि इस बात का प्रमाण है।

विघटन के बाद सोवियत संघ के विखंडन ने भारत को चिंतित किया है, लेकिन आज भी रूस के रूप में भारत के पास एक शक्तिशाली राष्ट्र की दोस्ती साथ है। अगस्त-सितंबर 1984 में मास्को में भारत के व्यापार मेला प्राधिकरण द्वारा प्रदर्शनी लगाई गई तथा विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में भी कई समझौते हुए। 1 नवंबर, 2001 को संयुक्त

राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता के लिए भारत के दावे का समर्थन करके रूस ने भारत समर्थक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है।

इस इकाई में विश्व की प्रमुख शक्तियों– अमेरिका, रूस और चीन के साथ भारत के संबंधों की सविस्तार चर्चा की गई है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भारत की विदेश नीति से विभिन्न शक्तिशाली देशों के साथ उसके संबंधों के सिद्धांतों को जान पाएंगे;
- भारत-अमेरिका के उतार-चढ़ाव भरे संबंधों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- भारत और रूस की मित्रता व उनके मध्य हुई संधियों की समीक्षा कर पाएंगे;
- भारत और चीन की जटिलता को विश्लेषित कर पाएंगे।

3.2 अमेरिका के साथ संबंध

1947 से लेकर आज तक भारतीय-अमेरिका संबंधों को शक्ति अनेक सकारात्मक तथा सहायक कारकों से प्राप्त होती रही है। इसके कारण भारतीय तथा अमेरिकी नेताओं में एवं दोनों देशों के लोगों की यह प्रबल इच्छा रही है कि उन्हें घनिष्ठ मित्रता, उच्चतर सहयोगात्मक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक संबंधों के लिए कार्य करना चाहिए।

निम्नलिखित कारक सकारात्मक तथा सहायक कहे जा सकते हैं जो कि भारत-अमरीका मित्रता तथा पारस्परिक सहयोग का प्रबलता से समर्थन करते हैं–

अमेरीका के स्वतंत्रता युद्ध तथा स्वतंत्रता की घोषणा का भारत पर प्रभाव–ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अपने स्वतंत्रता संग्राम में भारतीयों ने अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम से प्रेरणा तथा प्रोत्साहन लिया। अमेरिका के 'स्वतंत्रता के घोषणा पत्र' ने भारतीयों के दिलों में नई आशा पैदा की तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न करने की प्रेरणा दी। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बहुत से स्वतंत्रता संग्रामियों तथा विद्वानों ने अमेरिका का दौरा किया तथा वहां भारत तथा उसकी स्वतंत्रता के लिए समर्थन प्राप्त करने के प्रयत्न किए।

भारतीय स्वतंत्रता के लिए अमेरिका का समर्थन–अमेरिका ने भारत को उस समय नैतिक समर्थन दिया जब भारतीय स्वतंत्रता संग्रामी भारत में निरंतर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कड़े संघर्ष में जुटे हुए थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय में अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवैल्ट ने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल से कहा कि वे भारतीयों की मांगों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाएं तथा इसी कारण भारत में क्रिप्स मिशन भेजा गया था। यद्यपि अमेरिका, ब्रिटेन का युद्ध साथी होने के कारण भारत की स्वतंत्रता की मांग के लिए उसे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं कर सकता था न ही कोई कार्यवाही कर सकता था। इसके बावजूद रुजवैल्ट ने जो नैतिक दबाव डाला उसे भारतीयों ने बहुत सराहा। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने भारतीय स्वतंत्रता संग्रामियों, जो उस समय भारत की

स्वतंत्रता के संघर्ष को और तेज करने के लिए विदेशों में रह कर कार्य कर रहे थे, की गतिविधियों पर अपनी धरती पर कोई आपत्ति प्रकट नहीं की बल्कि उन्हें भली-भांति सहन किया।

उदार लोकतंत्र तथा विश्व शांति में साझा विकास—भारत तथा अमेरिका दोनों देश उदार लोकतंत्र के सिद्धांतों तथा मूल्यों में दृढ़ विश्वास रखते हैं। दोनों ही विश्व में सबसे बड़े सक्रिय लोकतंत्र हैं। अमेरिका भारत के लोकतंत्र के प्रति सम्मान रखता है। अमेरिका भारतीय लोकतंत्र को ठीक ढंग से देखने का इच्छुक है। यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया से भारत का विकास होते देखना चाहता है। क्योंकि भारत की सफलता से ही सरकार की व्यवस्था के रूप में लोकतांत्रिक प्रणाली तथा जीवन के आदर्श स्वरूप को बल मिल सकता है। इसी प्रकार भारत का उदार लोकतंत्र अमेरिकी परंपराओं का सम्मान करता है तथा वहीं से भारतीय लोकतंत्र प्रक्रिया के विकास के लिए प्रेरणा लेता रहा है। भारत तथा अमेरिका दोनों ही मानवीय अधिकारों, स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा शांति के मूल्यों को प्यार करते हैं। दोनों ही विश्व शांति तथा सुरक्षा, विश्व के अन्य देशों के साथ मित्रता तथा सहयोग के लिए प्रतिबद्ध हैं। दोनों ही साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा प्रजाति पार्थक्य के विरुद्ध हैं।

अमेरिका द्वारा भारत के महत्व को मान्यता देना—भारत बहुत बड़ा तथा संभावित विशाल शक्ति वाला देश है। यह विश्व में अधिक जनसंख्या (मानव-शक्ति) वाला दूसरा देश है। एशिया में भी इसकी स्थिति सामरिक महत्व की है। यह तीसरे विश्व तथा गुटनिरपेक्ष देशों का एक महत्वपूर्ण नेता है। आज यह विकासशील देशों में सबसे अधिक विकसित देश है। विश्व की कुल प्रतिशत मानव शक्ति का 1/3 भाग वाला तकनीकी रूप से विकसित राष्ट्र के रूप में दसवां स्तर रखने वाला तथा परमाणु शक्ति संपन्न भारत, अमेरिका की दृष्टि में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो रहा है। 1971 के बाद अमेरिका की विदेश नीति में एक नया परिवर्तन आया जिसने भारत को दक्षिण एशिया की एक बड़ी शक्ति माना। वर्तमान समय में भी अमेरिका विश्व में भारत की बढ़ रही शक्ति को स्वीकार कर रहा है। भारत एक संभावित आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति है। काफी प्रतिकूल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के बावजूद भारत ने लगातार लगभग 5-6% की दर से विकास किया है। यह विकासशील देशों में से अब अधिक विकसित देश है तथा इसने अपने प्रयत्नों से काफी तकनीकी विकास किया। सूचना तकनीक में विश्व का नेतृत्व करने में सक्षम है, अतः अब अमेरिकी विदेश नीति भारत को एक स्वतंत्र शक्ति केंद्र के रूप में पहचानती है। उत्तर शीतयुद्धकाल में भारत के साथ संबंधों के महत्व को अमेरिकी नेतृत्व अब स्वीकार कर रहा है। इसी प्रकार भारत भी अमेरिका को दुनिया का सबसे अधिक शक्तिशाली तथा विकसित देश मानता है जो भारत को भारतीय समाज के आर्थिक सामाजिक विकास में सहायता प्रदान कर सकता है। भारत अमेरिका को महाशक्ति मानता है तथा शीतयुद्धोत्तर काल के अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इसकी केंद्रीय भूमिका के बारे में पूर्ण रूप से सजग है। इस प्रकार भारत तथा अमेरिका दोनों ही एक दूसरे के महत्व को महसूस करते हैं तथा यही मान्यता आज भारत तथा अमेरिका के बीच संबंधों के विकास के मामलों को सुदृढ़ता प्रदान कर रही है।

अमेरिका की आर्थिक सहायता की भारत को आवश्यकता—भारत अपनी स्वतंत्रता के बाद से ही सामाजिक-आर्थिक पुनर्गठन की प्रक्रिया में लीन है। इसके लिए

टिप्पणी

उसे बाहरी आर्थिक तथा तकनीकी सहायता की आवश्यकता रही है। अमेरिका विश्व का सर्वाधिक विकसित तथा आर्थिक रूप से संपन्न राज्य होने के कारण भारत को आर्थिक सहायता तथा तकनीकी ज्ञान दोनों ही सरलता से प्रदान कर सकता है। पिछले 50 वर्षों में भारत अमेरिका से सहायता प्राप्त करने वाला मुख्य देश रहा है। यहां तक विश्व बैंक जैसे अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों से भी सहायता प्राप्त करने के लिए इसे अमेरिका की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका की सहायता की भारतीय आवश्यकता के कारण भी भारत को अमेरिका से मित्रता तथा सहयोग के विषय को उत्साह तथा सुदृढ़ता मिलती है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के उत्तर शीतयुद्ध तथा उत्तर सोवियत संघ काल में भारत संयुक्त राज्य अमेरिका की महत्वपूर्ण स्थिति को और अच्छी तरह समझने लग गया है।

भारत एक उभर रही प्रमुख आर्थिक शक्ति—उत्तर युद्ध काल में विश्व अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में आर्थिक राजनीति तथा आर्थिक व्यापार प्रमुख मुद्दे बन कर उभरे हैं। विभिन्न देशों, भूतपूर्व समाजवादी देशों सहित, नई बाजार अर्थव्यवस्था, उदारीकरण वैश्वीकरण तथा खुली स्पर्धा के सिद्धांतों को अपनाकर अपनी आर्थिक नीतियों, प्रोग्रामों तथा प्राथमिकताओं में गहरे परिवर्तन किए हैं। 1991 के बाद ऐसे ही आर्थिक परिवर्तन भारत में भी हुए हैं ताकि इनसे भारत में भी आर्थिक विकास की प्रक्रिया में एक नई गतिशीलता आई है। यह विश्वास पैदा हुआ कि भारत विश्व में एक आर्थिक और राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरेगा और इस दिशा में भारत उभर भी रहा है। वास्तव में भारत सीमाओं के बावजूद लगातार लगभग 5-6% की दर से अपनी स्वतंत्रता के पश्चात विकास करता आया है। अब अमेरिका भारत को एक उभरती हुई संभावित बड़ी आर्थिक और सैनिक शक्ति की अवस्था में देख रहा है। इसी कारण भारत के साथ आर्थिक, व्यापारिक तथा औद्योगिक संबंधों का तेजी से विकास करना चाहता है। भारत ने अपने आर्थिक तथा औद्योगिक विकास में अमेरिका की संभावित भावना को स्वीकार किया है। इसी कारण आज 21वीं शताब्दी में भारत तथा अमेरिका के संबंधों, विशेषकर आर्थिक क्षेत्र के संबंध में एक नई तेजी तथा आशा दिखाई देती है। इन छः कारकों को हम मूल रूप से ऐसे महत्वपूर्ण सकारात्मक तत्वों के रूप में वर्णन कर सकते हैं जो अमेरिका तथा भारत के बीच मित्रता तथा परस्पर सहयोग की प्राप्ति के लिए किए जा रहे प्रयत्नों का समर्थन करते हैं। विश्व की दो महानतम लोकतंत्रीय व्यवस्थाओं के बीच गहरे मित्रतापूर्ण सहयोगी संबंधों की कामना करना स्वाभाविक ही है।

नकारात्मक, प्रतिरोधी अथवा उत्तेजक तत्व

मित्रता की तीव्र इच्छा तथा उपर्युक्त सकारात्मक तत्वों की विद्यमानता के बावजूद, भारत तथा अमेरिका के संबंध 1947-2004 के दौरान आशानुकूल अधिक अच्छे नहीं बन पाए। शुरू-शुरू में एक दूसरे की वस्तुगत समझ न होने, भारत की स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में भारत में अमेरिका की रुचि कम होने तथा विदेश नीति के झुकावों तथा उद्देश्यों में अंतर होने के कारण तथा बाद में कुछ अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं तथा मामलों पर गहरे मतभेदों ने भारत तथा अमेरिका के संबंधों को मधुर गहरे संबंधों में नहीं बदलने दिया। कुछ अवरोधक तत्वों ने दोनों देशों के बीच संबंधों के क्षेत्र को सीमित तथा गति को धीमा ही बनाए रखा। ऐसे कुछ अवरोधकों या नकारात्मक तत्वों का हम दो भागों में वर्गीकृत करके अध्ययन कर सकते हैं–(क) सामान्य अवरोधक तत्व तथा (ख) विशिष्ट मतभेद।

टिप्पणी

(क) सामान्य अवरोधक तत्व

- **एक-दूसरे के प्रति प्रारंभिक वर्षों में स्पष्ट दृष्टिकोण न होना**–पहले पहल अमेरिका के भारत के प्रति दृष्टिकोण में स्पष्टता का अभाव था। अमेरिकी लोगों को सामान्यत: या तो भारत के प्रति ज्ञान नहीं था या फिर इसके प्रति गलत धारणाएं थीं। टी.वी. कुन्ही कृष्णन के शब्दों में, "क्रिस्टोफर कोलंबस ने भारत की अथाह धन राशि तक पहुंचने के लिए निकटतम रास्ते की खोज के दौरान जब 1442 ई. में अमेरिका को खोजा था उस समय से अमेरिका के लोग भारत के रोमांचकारी रूप की कल्पना करते रहे हैं–महाराजाओं की, जादूगरों की, रहस्यवादियों की तथा जाति-पाति के बंधनों में जकड़े दरिद्र पिछड़े हुए लोगों वाले भारत की कल्पना।" अमेरिका की दृष्टि में भारत का यह रूप भारत पर ब्रिटिश धर्म प्रचारकों तथा साहित्य के प्रभाव के कारण बना। इन प्रभावों के अंतर्गत अमेरिकी लोग भारत को हिन्दू-भारत मानते थे–"विश्व का सबसे अधिक आश्चर्यजनक मूर्ति पूजा का शरण स्थल तथा गढ़।" जून 1917 में प्रकाशित कुमारी मेयो की पुस्तक 'मदर इंडिया' तथा रूडयार्ड किपलिंग के लेखों ने भारत के प्रति एक पूर्णतया भ्रामक छाप छोड़ी। एक लेखक ने यहां तक कह दिया कि भारत एक ऐसा देश है जिसका कोई इतिहास नहीं तथा भारत के धर्म को रहस्यवादी व्यर्थ की बातों का पुलिंदा कहा। हिंदुओं को निम्न कोटि के दास, रूढ़िवादी, निष्क्रिय तथा अंधविश्वासी व्यक्ति कहा। इसके विपरीत मुसलमानों को पौरुषतापूर्ण एवं आक्रामक कहा गया। न केवल भारत के सामान्य नागरिक के बारे में ही बल्कि पंडित जवाहरलाल नेहरू के बारे में भी पहले पहल अमेरिका का दृष्टिकोण पक्षपात पूर्ण था। कुछ अमेरिकी उन्हें 'घमंडी', अमेरिका विरोधी एवं साम्यवाद समर्थक भारतीय नेता कहते या मानते थे। पहले पहल भारत के प्रति अमेरिका का दृष्टिकोण ऐसा ही पूर्वधारणाओं से ग्रस्त रहा। अमेरिका के बारे में भारत का दृष्टिकोण यद्यपि सकारात्मक था, फिर भी स्पष्ट नहीं था तथा इसमें वस्तुनिष्ठ धारणा की कमी थी। भारतीयों के लिए अमेरिका बहुत आर्थिक तथा भौतिक रूप से विकसित एवं शोषण करने वाला पूंजीवादी देश था। बहुत से भारतीयों को इस बात का दुख था कि भारत के बारे में अमेरिका का विचार मिश मेयो द्वारा लिखी पुस्तक 'मदर इंडिया' के दिए गए भारतीय जीवन की झांकी पर आधारित था। बहुत से भारतीयों ने अमेरिका के स्वतंत्रता के घोषणा पत्र तथा अब्राहम लिंकन के बारे में पता था फिर भी उन्हें अमेरिका के जीवन तथा संस्थाओं के बारे में अधिक स्पष्टता से पता नहीं थी। वे अमेरिका को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का साथी, लैटिन अमेरिका पर साम्राज्यवाद चाहने वाला तथा एक ऐसा देश समझते थे जहां खेतों तथा काले व्यक्तियों के बीच नस्लवादी पक्षपात किया जाता था।

एक दूसरे के जीवन के बारे में तथा इनकी संस्थाओं के प्रति अधिक जानकारी न होने के कारण भारत को स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में भारत तथा अमेरिका की मित्रता अच्छी तरह विकसित नहीं हो सकी।

परंतु आज दोनों ही देशों के लोग एक दूसरे को बेहतर रूप से समझते हैं लेकिन अभी भी यह समझ अधिक परिपक्व नहीं तथा इसमें पूर्ण बोध की कमी है। इसलिए कुछ सीमा तक यह नकारात्मक तथा अवरोधक तत्व अभी तक विद्यमान है।

- **राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों में विभिन्नता**—अमेरिका तथा भारत के बीच मैत्रीपूर्ण तथा स्नेहपूर्ण संबंधों में 1947-48 के दौरान एक अन्य रुकावट रही—दोनों ही देशों के राष्ट्रीय हितों में भिन्नता। अपनी स्वतंत्रता के बाद भारत ने अपने क्षेत्र में अपने आपको एक स्वतंत्र शक्ति केंद्र की भूमिका के लिए चुना। उसकी इच्छा थी कि वह दक्षिण एशिया तथा एशियाई संबंधों में मुख्य भूमिका निभाए। भारत की कोई क्षेत्रीय तथा विस्तारवादी आकांक्षाएं न थीं परंतु उसने अपने सामरिक महत्व, भौगोलिक-राजनीतिक स्थिति तथा विकास की शक्ति को पहचानते हुए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अपनी मुख्य भूमिका का अनुमान लगा लिया था। श्री जवाहरलाल नेहरू ने मुखरता से अपने विचारों का प्रकटीकरण करते हुए कहा था, "एशियाई सुरक्षा केवल महाशक्तियों का ही खेल नहीं तथा इनमें भारत तथा चीन की भूमिका निहित है।" एक बार उन्होंने निर्भीकता से यह घोषणा की थी कि "भारत को एशिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है तथा अगर आपने मध्यपूर्व, दक्षिण तथा दक्षिण एशिया तथा सुदूर पूर्व के क्षेत्रों से संबंधित कोई प्रश्न करना है तो भारत अनिवार्य रूप से सामने आएगा।" जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत ने यह स्वीकार किया कि उसका विशिष्ट उत्तरदायित्व है तथा इसे विश्व के मामलों में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। ऐसी भूमिका निभाने के लिए भारत ने अपनी विदेश नीति की स्वतंत्रता को अपना मूलभूत उद्देश्य बना लिया तथा महाशक्तियों, राजनीति से दूर रहने के लिए तथा उदीप्तमान स्वतंत्र अफ्रीकी-एशियाई देशों द्वारा विदेश नीतियों के निर्माण के लिए नमूने के रूप में गुट-निरपेक्षता की नीति को अपना लिया।

  इसके विपरीत दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अमेरिकी विदेश नीति इस बात द्वारा संचालित थी कि जो भूमिका इसने युद्ध काल में निभाई थी वही उच्च भूमिका निरंतर बनी रहेगी। अमेरिका अपने आपको 'विश्व राजनीति का नियंत्रक' मानता था' तथा विश्व पुलिस मैन की भूमिका निभाना चाहता था, एक ऐसी भूमिका जो पहले ब्रिटेन निभाया करता था। यह अपनी नई महाशक्ति की स्थिति को मजबूत करना चाहता था। इसलिए वह सहन नहीं कर सकता था कि भारत जैसा कोई भी राज्य विश्व राजनीति में अपना स्वतंत्र शक्ति स्तर कायम करने का प्रयत्न करे। इसके अतिरिक्त अमेरिका भारत को एशिया में कोई भी महत्व नहीं देना चाहता था। अमेरिका भारत को इंग्लैंड के दृष्टिकोण से देखता तथा ये स्वीकार करने के लिए कतई तैयार नहीं था कि भारत की एशिया में कोई विशेष भूमिका है। वह यह चाहता था कि भारत भी उसके नेतृत्व को स्वीकार कर ले। अमेरिका भारत को केवल एक उपक्षेत्रीय देश ही मानता था। परंतु उत्तर शीतयुद्ध के प्रारंभिक वर्षों में भी अमेरिका भारत के साथ संबंधों को भारत पाकिस्तान संदर्भ में ही देखता प्रतीत हुआ। मई 1993 में अमेरिकी विदेश विभाग के मुख्य उपसहायक सचिव, श्री जॉन आर. मैलोट ने अपनी प्रेस कान्फ्रेंस में ऐसा ही आभास दिया। अमेरिका की एशिया नीति अब तक जापान, पाकिस्तान, चीन, एशिया प्रशांत, मध्य एशिया तथा पश्चिमी एशिया के इर्द-गिर्द घूमती रही थी। भारत-पाकिस्तान में समानता इसकी विदेश नीति की एक विशेषता बनी रही थी। इसी कारण भारत तथा अमेरिका के संबंध सीमित ही बने रहे। अमेरिकी नेताओं ने अपने देश के हितों की जो व्याख्या समय-समय पर की उसमें भारतीय हितों को कम ही महत्व दिया।

भारत ने भी अपने हितों को देखते हुए (भू.पू.) सोवियत संघ के साथ अपने संबंधों के विस्तार को अधिक महत्व दिया। इसी कारण भारत-अमेरिका संबंधों को प्रकृति एवं दिशा एक दूसरे से अलग ही रही। लेकिन 1996 के बाद ऐसी स्थिति को दोनों देशों ने पीछे छोड़कर आने वाले समय में उच्च स्तरीय सहयोगात्मक संबंध स्थापित करने का निर्णय लिया। परंतु 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण किए जाने तथा अपने मिसाइल प्रोग्राम को आगे बढ़ाने के निर्णय के विरुद्ध अमेरिका ने तीव्र प्रक्रिया की तथा भारत के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए। 1998-99 के संबंध में इस तत्व ने भारत अमेरिकी संबंधों को सीमित बनाए रखा। लेकिन 1995 के बाद अब भारत-अमेरिका का संबंध दृढ़ रूप से विकसित हो रहे हैं। दोनों ही देशों के हितों के उद्देश्यों के बीच इन अंतरों के कारण भारत तथा अमेरिका के बीच गहरे तथा पारस्परिक सहयोगात्मक संबंधों के विकास में रुकावट पैदा होती रही है और कुछ सीमा तक अब भी है।

- **अमेरिका की भारत के प्रति प्रारंभिक रुचि का अभाव**—भारत की स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में अमेरिका ने भारत के साथ अपने संबंधों के विकास की और विशेष ध्यान नहीं दिया। ऐसा आंशिक रूप से यूरोप में शीतयुद्ध में अमेरिका के शामिल होने के कारण हुआ। अमेरिका की दृष्टि में भारत अधिक महत्वपूर्ण नहीं था। इसे पिछड़ा हुआ, निर्धन तथा साम्यवाद के विरुद्ध लोकतांत्रिक शक्तियों को सुदृढ़ करने के लिए स्वयं अमेरिका की गोद में आ जाना था। साम्यवादी देश के रूप में चीन के प्रादुर्भाव के बाद ही अमेरिका भारत के साथ संबंध बनाने के महत्व को समझ सका। परंतु इस स्थिति में भी कुछ एक अवरोधक तत्वों तथा कुछ नकारात्मक तत्वों ने भारत-अमेरिका सहयोग को पनपने नहीं दिया। 1970 के बाद अमरीका ने अपने विदेशी संबंधों में चीन को अधिक महत्व देना आरंभ कर दिया तथा एशिया में इसकी विदेश नीति चीन, जापान तथा पाकिस्तान केंद्रित नीति रही। इसी कारण भारत अमेरिका संबंधों में प्रगति की गति धीमी ही रही।
- **1945-90 के काल में विदेश नीति सिद्धांतों का विरोध, शीतयुद्ध तथा सुरक्षा संधियां बनाम गुट निरपेक्षता**—युद्धोत्तर काल में जब शीतयुद्ध आरंभ हो गया तो अमेरिका के ट्रूमैन प्रशासन की यह धारणा बन गई थी कि विश्व को साम्यवाद से खतरा है तथा सोवियत संघ दूसरे देशों में साम्यवाद को लाकर अपना विस्तार करना चाहता है। पूर्वी यूरोप में साम्यवाद का विस्तार हुआ था तथा 1949 में एशिया में साम्यवादी देश के रूप में चीन के प्रादुर्भाव से साम्यवाद के प्रति अमेरिका की अशंकाओं को और बल मिला था। अमेरिका के विदेश नीति निर्माताओं ने, 'साम्यवाद का नियंत्रण' को अमेरिका की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य बना लिया था। उन्होंने पश्चिमी शक्ति को सभी मोर्चों पर प्रदर्शित करने की योजना को अपना लिया। बाद में अमेरिका के राज्य सचिव जॉन फॉस्टर डलेस 'भारी प्रतिकार' के सिद्धांत के साथ सामने आए। अमेरिका की विदेश नीति— 1. साम्यवाद का विरोध करने, 2. संधियों द्वारा अमेरिका की स्थिति को सुदृढ़ करने तथा 3. पश्चिमी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए सक्रिय हो गई। अमेरिका की इस प्रकार की कार्यवाही के प्रत्युत्तर में सोवियत संघ ने भी ऐसे ही साधन अपनाए।

टिप्पणी

इसके परिणामस्वरूप अमेरिका तथा सोवियत संघ के बीच युद्ध तेज हो गया। दोनों में से प्रत्येक तनावों के इस युद्ध में शामिल हो गया तथा दोनों ने ही एक दूसरे को अलग-थलग करने के प्रयत्न शुरू कर दिए। अमेरिका ने अपने मित्रों के साथ सैनिक/सुरक्षा संधियां करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की नीति को अपनाया। इसने दूसरे राष्ट्रों के साथ, विशेषतया लोकतांत्रिक देशों तथा एशिया और अफ्रीका के नए बने प्रभुसत्तात्मक राष्ट्रों के साथ संधि संबंध कायम करने शुरू कर दिए इस प्रकार शीतयुद्ध तथा संधियां अमेरिका की विदेश नीति की मौलिक विशेषता बन गई।

दूसरी ओर भारत की विदेश नीति ने शीतयुद्ध में तटस्थता की नीति को तथा सैनिक एवं सुरक्षा संधियों से दूर रहने की नीति को अपनाया। इसने गुट निरपेक्षता को अपनाया। इसने गुटनिरपेक्षता को अपना मुख्य सिद्धांत बनाया तथा इसके द्वारा शीतयुद्ध की आलोचना करना तथा इसका विरोध करना शुरू कर दिया। इसके साथ-साथ भारत ने तनावों के साधन के रूप में सुरक्षा संधियों, जो कि और भी अधिक विस्तृत तथा पहले से काफी अधिक विध्वंसकारी, तीसरे विश्वयुद्ध के विरुद्ध भारत ने साम्यवादी तथा गैर साम्यवादी देशों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का सुदृढ़ता से समर्थन किया। भारत ने समानता, परस्पर सम्मान तथा परस्पर हितों के आधार पर सभी देशों के साथ संबंध बनाने का पक्ष लिया। अमेरिका ने भारत की गुटनिरपेक्षता को संदेह की दृष्टि से देखा। इसने महसूस किया कि एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते भारत को अमेरिका की संधि व्यवस्था में शामिल होना चाहिए तथा इस प्रकार साम्यवाद के विरुद्ध संघर्ष को सुदृढ़ता प्रदान करनी चाहिए। अमेरिका ने गुटनिरपेक्षता को गैर-यथार्थवादी नीति करार दिया। इसके विपरीत भारत ने सुरक्षा संधियों के द्वारा महाशक्ति स्थिति को निरंतर बनाए रखने के लिए प्रयत्न समझा। वह विदेश संबंधों में स्वतंत्रता के अपने अधिकार को बनाए रखने तथा इसका प्रयोग करना चाहता था तथा उसने अनुभव किया कि किसी भी एक गुट के साथ गुटबंदी उसकी स्वतंत्र कार्य शक्ति को सीमित कर देगी। इसलिए भारत ने गुटनिरपेक्ष रहने का ही निश्चय किया। यह अमेरिका की इच्छाओं तथा उसकी विदेश नीति के बिलकुल विपरीत था। इस प्रकार अमेरिका तथा भारत में एक-दूसरे के प्रति विभिन्न विरोधी सिद्धांत अपना लिए गए। आज भी जहां अमेरिका उत्तर-शीतयुद्ध काल में भी नाटो का विस्तार करने तथा इसे शक्तिशाली बनाए रखने की बात कर रहा है वहां भारत ने एकल ध्रुवीकरण की विद्यमान स्थिति में भी गुट निरपेक्षता को अपनाए रखने का दृढ़ निश्चय किया हुआ है।

ऐसे सैद्धांतिक मतभेदों ने भारत तथा अमेरिका के संबंधों में 1965 तक काफी कटुता पैदा कर दी। अमेरिकी विदेश नीति ने सदैव पाकिस्तान के संबंधों की तुलना में अधिक महत्व दिया क्योंकि पाकिस्तान उसके द्वारा डाली गई लकीरों पर चलने की नीति को अपनाए रहा और भारत ने गुटनिरपेक्षता के अधीन एक स्वतंत्र विदेश नीति के सिद्धांत को अपनाए रखा। भारत तथा अमेरिका की विदेश नीतियों में सैद्धांतिक समानताओं ने दोनों देशों के मध्य संबंधों को सीमित तथा उतार-चढ़ाव वाले संबंध बनाए रखा। 1991 तक ऐसी स्थिति विद्यमान रही।

1991-98 में कुछ सकारात्मक परिवर्तन तो आए लेकिन एन.पी.टी. (NPT), सी.टी.बी.टी. (CTBT) भारत की परमाणु नीति, भारत के मिसाइल प्रोग्राम आदि मुद्दों पर मतभेद के कारण दोनों देशों के संबंध सीमित रूप से ही प्रगति कर सके। मई 1998 में, भारतीय परमाणु परीक्षणों की घटनाओं के बाद तो ऐसा लगा कि दोनों देशों के संबंध काफी कटु हो जाएंगे। परंतु सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। दोनों देशों ने एक दूसरे के महत्व को पहचाना तथा अपने संबंधों को विकसित करने की नीति को अपनाया और चलाया। इस दिशा में अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की मार्च 2000 में भारत यात्रा ने तथा प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी की सितंबर 2000 में अमेरिकी यात्रा ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा अब दोनों देशों के संबंध कुछ मतभेदों के बावजूद सकारात्मक रूप में विकसित हो रहे हैं।

(ख) विशिष्ट मतभेद

समय-समय पर निम्नांकित विभिन्न मुद्दों पर भारत तथा अमेरिका के संबंधों में कटुता आती रही है–

- **कश्मीर का मुद्दा–**कश्मीर के मुद्दे पर अमेरिका के पक्षपात पूर्ण रवैये का भारत ने हमेशा ही विरोध किया है। कश्मीर पर पहले पाकिस्तानी आक्रमण के बाद भारत ने जनवरी 1948 में भारत तथा पाकिस्तान के बीच कश्मीर की समस्या को शांतिपूर्ण निपटारे के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ में पेश किया। भारत को आशा थी कि अमेरिका कश्मीर जिसका वैध रूप से भारत में विलय हुआ था, के प्रश्न पर भारत का समर्थन करेगा। इसके विपरीत अमेरिका ने कुछ कारणों से पाकिस्तान का समर्थन करना अच्छा समझा। अमेरिका का पाकिस्तान समर्थन उस समय खुल कर सामने आया जब सन् 1954 में पाकिस्तान अमेरिका की सुरक्षा संधियों सीटो तथा सैंटो में शामिल हो गया। परिणामस्वरूप 1957, 1892 तथा फिर 1964 में पाकिस्तान द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में कश्मीर की समस्या को फिर से उठाने के प्रश्न को अमेरिका का समर्थन मिला। पाकिस्तान का समर्थन करते हुए अमेरिका ने इसके पक्ष में कुछ तर्क भी दिए जो पूर्ण रूप से भारत की विचारधारा के तथा भारतीय लोकतंत्र के कुछ मूलभूत सिद्धांतों के विरुद्ध थे। अमेरिका ने हिंदू भारत तथा मुस्लिम पाकिस्तान आदि शब्दों का प्रयोग किया तथा उसका विश्वास था कि कश्मीर में क्योंकि मुस्लिमों का बहुमत है इसलिए उन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाना चाहिए। यह भारतीय धर्मनिरपेक्षता के तथा इस भारतीय मत के भी कि भारत के राज्य प्राप्ति दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के बाद कश्मीर भारत का एक हिस्सा बन चुका था, के विरुद्ध था। इस प्रकार कश्मीर समस्या पर मतभेदों ने भारत-अमेरिका संबंधों को गंभीर रूप से प्रभावित किया।

  वर्तमान समय में कश्मीर के संबंध में अमेरिका के विचारों में कुछ परिवर्तन तो हुआ है परंतु यह काफी नहीं। अभी भी अमेरिका कश्मीर को एक झगड़े का स्थान मानता है तथा वह कश्मीर को भारत का अंग मानने के लिए तैयार नहीं। वह यह भी सोचता है कि उसकी मध्यस्थता का उपयोग समस्या के हल के लिए किया जा सकता है। वह अब शिमला समझौते को व्यवहार में लागू करने की बात करके भारत तथा पाकिस्तान में द्विपक्षीय स्तर पर बातचीत की बात करता है। वह पाकिस्तान की आलोचना तो करता है कि वह भारत में उग्रवाद को समर्थन दे रहा

टिप्पणी

है परंतु अमेरिका पाकिस्तान के विरुद्ध कार्यवाही की बात टालता है। वह पाकिस्तान में नागरिक अधिकारों के हनन के प्रति भी नरम रुख अपनाए हुए है।

कारगिल युद्ध के बाद अमेरिका की कश्मीर मुद्दे के संबंध में सोच में कुछ परिवर्तन हुआ। लेकिन अभी भी अमेरिका कश्मीर के मुद्दे को एक बड़ा झगड़ा तथा एक संभावित युद्ध केद्र मानता है। यह अब कश्मीर में वास्तविक नियंत्रण रेखा के सम्मान की बात करता है तथा कश्मीर में चल रहे आतंकवाद के पीछे इस्लामिक आतंकवादियों का हाथ स्वीकार करता है परंतु पाकिस्तान के विरुद्ध पग उठाने के लिए तैयार नहीं है। भारत तथा अमेरिका में अभी भी कश्मीर के मुद्दे पर तथा भारत-पाकिस्तान संबंधों के बारे में कुछ मतभेद हैं।

- **साम्यवादी चीन की मान्यता का मुद्दा–**सन् 1949 में साम्यवादी देश के रूप में चीन का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय अमेरिका साम्यवाद के नियंत्रण की अपनी नीति का कठोरता से पालन कर रहा था तथा इसलिए चीन के साथ संबंध बढ़ाने के विरुद्ध था। इसलिए इसने साम्यवादी चीन को मान्यता देने से इनकार करने तथा राष्ट्रवादी चीन/फारमोसा चीन (ताइवान) को मान्यता जारी रखने का निश्चय किया। इसने साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ में प्रवेश नहीं करने दिया तथा राष्ट्रवादी चीन को सुरक्षा परिषद में निषेधाधिकार के साथ रहने दिया। यह चाहता था कि दूसरे राष्ट्र भी साम्यवादी चीन को मान्यता दें। अमेरिका की साम्यवादी चीन के प्रति नीति साम्यवादी चीन को पूर्ण मान्यता देने के भारत के निर्णय के विरुद्ध थी। भारत ने यह मत दिया कि चीन के लोगों को ऐसी किसी भी व्यवस्था के अंतर्गत रहने का अधिकार है जो वे अपने लिए ठीक समझते हैं। भारत को यह विश्वास था कि चीन की साम्यवाद सरकार कानूनी तथा वास्तविक दोनों रूपों में प्रभुता संपन्न है तथा साम्यवादी चीन को भी पूरा अधिकार है कि वह अंतर्राष्ट्रीय जीवन में स्थिति तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ में उचित स्थान प्राप्त करे। अमेरिका की साम्यवादी चीन को मान्यता देने में अस्वीकृति तथा उसकी 'साम्यवाद को नियंत्रण' करने की नीति को उचित मानने के लिए भारत बिलकुल तैयार नहीं था। साम्यवादी चीन को मान्यता देने के इस मामले में अंतर ने भी दोनों देशों के बीच गहरा मतभेद पैदा कर दिया। इस तरह भारत-अमेरिका संबंधों में चीन का तत्व एक कारक रहा है। 1998 में अमेरिका ने चीन को भारत तथा पाकिस्तान के परमाणु प्रोग्रामों पर अंकुश लगाने के लिए कहा जिसे कि भारत ने बिलकुल पसंद नहीं किया।
- **कोरिया की समस्या–**कोरियाई मामले पर विचारों के अंतर के कारण 1950 के दशक के आरंभिक वर्षों में भारत-अमेरिका संबंधों के बीच मतभेद तथा तनाव पैदा हो गए। भारत कोरियाई मामले में संयुक्त राष्ट्र के कोरिया की समस्या पर बैठे आयोग का सदस्य होने तथा सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्य होने के नाते शामिल हो गया था। भारत तथा अमेरिका दोनों उत्तरी कोरिया को आक्रामक घोषित करने पर तो सहमत थे किंतु कोरियाई समस्या को हल करने के मामलों को लेकर दोनों में मतभेद उत्पन्न हो गए। भारत कोरिया में शांतिपूर्ण हल चाहता था जिसमें गणतंत्र चीन को संयुक्त राष्ट्रसंघ में शामिल किया जाना भी शामिल था तथा इसके साथ 38वें अक्षांश के साथ-साथ युद्ध विराम, कोरिया को मिलाना तथा उसकी स्वतंत्रता

टिप्पणी

का समर्थन शामिल था। जवाहरलाल नेहरू ने अमेरिका तथा रूस दोनों को ही भारत के प्रस्ताव को मानने को कहा। अमेरिका ने भारत के दृष्टिकोण को अस्वीकार कर दिया। इसने 38वें अक्षांश को भी पार करने का निश्चय कर लिया। अमेरिका के इस कार्य को भारत ने साम्यवाद के नियंत्रण की अमेरिकी नीति के एक भाग के रूप में चीन पर दबाव डालने वाला कदम माना न कि कोरिया की समस्या को सुलझाने वाला। भारत ने इन परिस्थितियों में एशिया में अमेरिका की सभी सुरक्षा नीतियों के विरोध की घोषणा की। इसके पश्चात भारत ने एशिया के लिए सुरक्षा संधियों की व्यवस्था की तथा उसके वियतनाम के साथ संबंधों का इस आधार पर विरोध किया कि अमेरिकी सुरक्षा नीतियां चीनी सैन्यवाद को बढ़ावा देने वाली हैं। 1975 तक यह युद्ध द्विपक्षीय संबंधों में एक नकारात्मक कारक रहा।

- **जापान के साथ शांति संधि का मुद्दा**—सन् 1951 में जापान के साथ युद्धकालीन संबंधों को समाप्त करने की इच्छा के साथ अमेरिका ने भारत समेत करीब 50 राष्ट्रों जो अभी भी तकनीकी रूप से जापान के साथ युद्धरत थे, को एक प्रारूपक संधि भेजी। यह प्रारूपक संधि आने वाले सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन की बातचीत का आधार होनी थी। भारत इस प्रारूपक संधि की सभी शर्तों के साथ सहमत नहीं था क्योंकि इनमें कुछ बातें भारत के उद्देश्यों तथा हितों के विरुद्ध थीं। भारत इस प्रारूप के साथ सहमत नहीं हुआ इसलिए परिणामस्वरूप उसने निर्णय किया कि सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग नहीं लेगा। इससे अमेरिका बहुत नराज हो गया तथा इससे दोनों देशों के संबंध बुरी तरह से प्रभावित हुए।
- **अमेरिकी सुरक्षा व्यवस्था का दक्षिण एशिया तक विस्तार**—युद्धोत्तर काल में एशिया में बढ़ती हुई साम्यवादी शक्ति को रोकने के लिए तथा अपनी प्रमुख सैनिक स्थिति को बनाए रखने के अमेरिका के प्रयत्नों का भारत ने विरोध किया। सन् 1953 में अमेरिका ने एशिया के एक राज्य पाकिस्तान के साथ संधि संबंध बनाने के लिए बातचीत की। अमेरिका ने साम्यवादी चीन तथा रूस के विरुद्ध सैनिक आधार कायम करने के लिए पाकिस्तान की भौगोलिक स्थिति को अपने लिए श्रेष्ठ समझा। 1954 ई. में पाकिस्तान अमेरिका की सुरक्षा संधि सीटो का सदस्य बन गया। 1955 में पाकिस्तान मध्य पूर्व सुरक्षा व्यवस्था बगदाद समझौता सेंटों में शामिल हो गया तथा इस प्रकार यह अमेरिका का 'साम्यवाद को नियंत्रण' करने की नीति का एक भाग बन गया। पाकिस्तान अमेरिका से काफी सैनिक सहायता प्राप्त करने लगा तथा अमेरिका को पाकिस्तान में अपने हवाई अड्डे स्थापित करने का अवसर मिल गया। बाद में यह जासूसी के केंद्र बन गए। अमेरिका की इस नीति से दक्षिणी एशिया में उसकी शक्ति का विस्तार हुआ। यह सब कुछ भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति के बिलकुल विरुद्ध था। भारत यह अनुभव करने लगा कि अमेरिका की इस प्रकार की नीति से एशिया में शीतयुद्ध शुरू हो जाएगा तथा इस प्रकार शांति खतरे में पड़ जाएगी। इसके अतिरिक्त अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दिए जाने वाले भारी मात्रा में आधुनिकतम शस्त्रों ने भी भारत को चिंति कर दिया। भारत को विश्वास था कि इस प्रकार के शस्त्रों की प्राप्ति से पाकिस्तान का भारत के प्रति व्यवहार कठोर होगा तथा पाकिस्तानी नेता भारत तथा पाकिस्तान के मध्य झगड़ों का, विशेषतया कश्मीर के झगड़े का, सैनिक हल ढूंढ़ने के लिए उत्साहित होंगे। यद्यपि आइसनहावर प्रशासन

टिप्पणी

ने भारत को यह विश्वास दिलाया कि जो शस्त्र पाकिस्तान को भेजे जा रहे हैं उनका प्रयोग केवल साम्यवाद के विरुद्ध किया जाएगा, फिर भी भारत पाकिस्तान की इस बढ़ती सैनिक शक्ति से अपनी सुरक्षा को खतरा अनुभव करने लगा। भारत की इस प्रकार की दुश्चिंताएं उस समय सत्य सिद्ध हुईं जब 1965 ई. में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया तथा अमेरिका द्वारा दिए गए शस्त्रों का भारत के विरुद्ध प्रयोग किया। अभी भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष साधनों द्वारा अमेरिकी शस्त्र पाकिस्तान को प्राप्त हो रहे हैं। चीन मिसाइल तकनीक हस्तांतरण व्यवस्था की उल्लंघना करके पाकिस्तान को मिसाइलों तथा अन्य शस्त्रों की आपूर्ति कर रहा है और अमेरिका इस तथ्य को अभी तक अनदेखा ही कर रहा है। इस प्रकार एशिया के प्रति अमेरिका की नीति के कारण भारत तथा अमेरिका के बीच मतभेद अत्यधिक बढ़े तथा गहरे हो रहे हैं।

- **सोवियत संघ के साथ भारत की मित्रता–**1955 के आस-पास सोवियत संघ के साथ भारत के बढ़ते संबंध अमेरिका तथा भारत के संबंधों के लिए उत्तेजक तत्व बन गए। भारत का सभी के साथ मैत्री में सुदृढ़ विश्वास रहा है तथा सोवियत संघ के साथ उसकी मित्रता न तो उसके अमेरिका, चीन तथा दूसरे देशों के साथ संबंधों की कीमत पर थी तथा न ही उसके विरोध में। लेकिन अमेरिका को इससे कोई विशेष तसल्ली नहीं हुई। शीतयुद्ध के युग में भारत तथा सोवियत संघ के संबंधों में मित्रता तथा सहयोग का विकास खतरनाक तथा चोट पहुंचाने वाला बना क्योंकि यह अमेरिका के 'साम्यवाद के नियंत्रण' तथा बड़े पैमाने पर विरोध की अमेरिका की नीतियों के विरुद्ध था। यहां तक कि दीतां के युग में भी भारत तथा सोवियत संघ के संबंधों के कारण विशेषतया शांति, मित्रता तथा सहयोग की भारत तथा सोवियत संघ संधि को होने के बाद अमेरिका भारत को सोवियत संघ समर्थक संघ देश ही मानता रहा। अफगानिस्तान तथा कंबोडिया के मामलों पर मतभेदों को भी अमेरिका भारत सोवियत संघ के साथ अप्रत्यक्ष तथा भूमिगत संधि मानता रहा। भारत दोनों ही महाशक्तियों के साथ मैत्री में विश्वास करता रहा। वह मानता रहा कि उसके सोवियत संघ के साथ बड़े गहरे, सौहर्दपूर्ण तथा अत्यधिक सहयोगात्मक संबंध बने रहे जो अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के तथा दोनों देशों की विदेश नीतियों के कुछ उद्देश्यों तथा हितों में समानता के परिणामस्वरूप बने थे। भारत-सोवियत मैत्री संधि के अपने गुटनिरपेक्षता की नीति का परिसीमन तथा सोवियत संघ की तरफ झुकाव मानने का कड़ा विरोध भारत ने किया। उसका (भारत का) विचार था कि यह संधि किसी भी दशा में दूसरे देशों के साथ भारत की मैत्री तथा सहयोग के रास्ते में रुकावट नहीं थी। तथापि यह विचार अमेरिका को कुछ अधिक आश्वस्त नहीं कर सका तथा सोवियत संघ के विद्यमान रहने तक वह भारत को सोवियत समर्थक देश ही मानता रहा। अब भारत तथा रूस में अधिक विकसित हो रहे सामाजिक महत्व के संबंधों के प्रति भी अमेरिका एक नकारात्मक रुख अपना सकता है।
- **उपनिवेशीय मामलों पर मतभेद तथा गोवा–**1950 से 1960 के बीच कई उपनिवेशीय मामलों पर भारत-अमेरिका की नीति के बीच विरोध के कारण भी

उनके द्विपक्षीय मैत्रीपूर्ण संबंधों को हानि पहुंची। अमेरिका ने वैसे तो साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध किया परंतु संयुक्त राष्ट्रसंघ में उपनिवेश विरोधी प्रस्तावों के पास होने को कोई विशेष महत्व नहीं दिया। बहुत सी साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशीय शक्तियों से मित्रता के कारण इसने कई बार भारत जैसे नए प्रभुसत्ता संपन्न राज्यों द्वारा उन राज्यों के लिए सहायता दिए जाने के विरुद्ध भी वीटो शक्ति का प्रयोग किया जो अभी भी साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के पंजे में फंसे हुए थे। इससे भारत को अत्यधिक क्षोभ हुआ तथा वह अमेरिका की आलोचना करने में कभी नहीं हिचकिचाया।

जब दिसंबर 1961 में भारत ने गोवा को स्वतंत्र करवाया, जो उस समय तक भी पुर्तगाल के नियंत्रण में था, तब अमेरिका ने ऐसा रुख अपनाया जो भारत-विरोधी ही था। संयुक्त राष्ट्रसंघ में अमरीका के राजदूत अदलई स्टीवेंसन ने गोवा में भारत की कार्रवाई पर गहरी चोट की। उसने कहा, "इस समय खतरा उपनिवेशवाद को नहीं, यह कदम न केवल चार्टर से बल्कि स्वयं भारत के अपने व्यक्त आस्थाओं को शोचनीय हद तक तिलांजलि देने वाला है।" अमेरिका की जनता तथा प्रेस में भी भारत के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। यहां तक कि अमेरिका द्वारा भारत को दी जाने वाली सहायताओं में कटौती करने की मांग भी की गई। अमेरिका के इस प्रकार के विरोधी रवैये का भारत ने भी प्रतिरोध किया। इस प्रकार भारत-अमेरिका के संबंधों में एक और घाव बन गया जिसने दोनों के बीच मित्रता तथा सहयोग को पनपने नहीं दिया।

- **दक्षिण पूर्वी एशिया के विषय में मतभेद**—दक्षिण पूर्वी एशिया क्षेत्र में अमेरिका की नीति शक्ति प्रयोग की धमकी की नीति थी। स्वाभाविक रूप से ही यह भारत की शांति तथा दक्षिण-पूर्वी ऐशिया में अहस्तक्षेप की नीति के विरुद्ध था। परिणामस्वरूप भारत तथा अमेरिका इस क्षेत्र में एक दूसरे के उद्देश्यों के विपरीत काम करने लगे। कभी-कभी तो एक दूसरे के हितों को हानि पहुंचाने के लिए भी। भारत ने तो सदैव ही इस क्षेत्र के बहुत से देशों में चलने वाले राष्ट्रीय आंदोलनों का समर्थन किया था जबकि अमेरिका ने केवल गैर-साम्यवादी आंदोलनों का ही समर्थन किया था। अमेरिका औपनिवेशिक शक्तियों का भी समर्थन करता रहा जो कि साम्यवादी देशों द्वारा समर्थित स्वतंत्रता आंदोलनों को समाप्त करने के प्रयत्न कर रही थी। दृष्टिकोण का यह मतभेद भी भारत-अमेरिका के बीच संबंधों के सुधार में बाधक बना रहा।
- **वियतनाम का मतभेद**—वियतनाम की समस्या पर भारत तथा अमेरिका के आपसी मतभेद बहुत गहरे रहे। भारत वियतनाम की स्वतंत्रता का तथा वियतनाम की एकता का कट्टर समर्थक था। उसका मत था कि वियतनाम का भविष्य, वियतनाम के लोगों की इच्छाओं के अनुसार ही निश्चित होना चाहिए तथा किसी भी देश को वियतनाम पर कोई विशेष व्यवस्था नहीं लादनी चाहिए। तथापि अमेरिका वियतनाम को साम्यवाद से दूर रखना चाहता था। इसी उद्देश्य से पहले तो अमेरिका ने फ्रांस की सहायता की तथा बाद में बेयो डायस राकर की सहायता की। इसका भारत ने कड़ा विरोध किया क्योंकि इससे अमेरिका का उपनिवेशवाद समर्थक रुख दृष्टिगोचर होता था। बाद में जब अमेरिका प्रत्यक्ष रूप से उत्तरी

टिप्पणी

वियतनाम तथा साम्यवाद के विरुद्ध दक्षिणी वियतनाम की लोकतांत्रिक सरकार की सहायता करके उत्तरी तथा दक्षिणी वियतनाम के युद्ध में शामिल हो गया तो भारत खुले रूप से अमेरिका की नीति का विरोध करने से नहीं हिचकिचाया।

सातवें दशक में, भारत तथा संयुक्त राज्य के आपसी संबंध और भी तनाव ग्रस्त हो गए जब अमेरिका ने वियतनाम के युद्धों को और तीव्र करने का निर्णय लिया। जब राष्ट्रपति एल.बी. जॉनसन ने उत्तरी वियतनाम के ठिकानों पर बम वर्षा की आज्ञा दी तो भारत ने इसका कड़ा विरोध किया। सारे सातवें दशक में भारत तथा अमेरिका के संबंध वियतनाम के युद्ध से प्रभावित रहे। सातवें दशक के प्रारंभ में स्वतंत्र तथा अखंड वियतनाम के प्रादुर्भाव से भारत अमेरिका के संयुक्त संबंधों से यह अधिक रुकावट डालने वाला तत्व समाप्त हो गया।

- **बांग्लादेश का संकट तथा भारत-अमेरिका मतभेद**—बलदेव राज नैयर के अनुसार, "1971 के वर्ष में भारत-अमेरिका के युद्धोत्तर संबंधों ने निम्नतम बिंदु को छू लिया।" दृष्टिकोण के अंतरों तथा अमेरिका के नीति निर्णयों, क्रियाओं तथा हाव-भाव ने भारत-अमेरिका के संबंधों को निम्न स्तर पर पहुंचा दिए। बांग्लादेश की उत्पत्ति तथा इसके उठ खड़ा होने से भारत तथा अमेरिका को एक दूसरे के विरुद्ध शिखरों पर ला खड़ा किया। पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) के लोगों के उत्थान को मात्र शक्ति तथा हिंसा से दबाने के पाकिस्तान के प्रयत्नों ने भारत के लिए बहुत बड़ी परेशानी करने वाली स्थिति पैदा कर दी। पूर्वी पाकिस्तान के करीब दस लाख से अधिक शरणार्थी सीमा पार कर भारत आ गए तथा इससे भारत की आर्थिक तथा राजनीतिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया। भारत ने पूर्वी पाकिस्तान में सैनिकों द्वारा दमन तथा नरसंहार का कड़ा विरोध किया तथा यह भी कहा कि सभी देश मानवीय अधिकारों के इस खुले उल्लंघन का विरोध करें। अमेरिका बल्कि यूं कहें कि निक्सन का अमेरिका न तो पूर्वी पाकिस्तान में पाकिस्तानी सेना की मनमानियों का विरोध करने के लिए ही तैयार था तथा न ही भारत के साथ हमदर्दी जताने के लिए तैयार था जो कि दस लाख शरणार्थियों की उपस्थिति के कारण सामाजिक तथा आर्थिक सहायता लगातार देता जा रहा था। जब दिसंबर 1971 को इस संकट के कारण भारत तथा पाकिस्तान के बीच युद्ध शुरू हुआ तो अमेरिका का पाकिस्तान की ओर झुकाव और भी स्पष्ट हो गया। अमेरिका ने भारत की आक्रमक के रूप में तथा इसे ऐसा देश कहकर जो कि पाकिस्तान की सत्ता को मिटा देना चाहता है, आलोचना की। इसने भारत का विरोध करने के लिए सब कुछ किया। बंगाल की खाड़ी में अमेरिका द्वारा अपना सातवां बेड़ा भेजने के निर्णय ने स्थिति को और भी बिगाड़ दिया। भारत ने अमेरिका की इस प्रकार की चालों के विरुद्ध गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी तथा इससे सातवें दशक के प्रथम वर्षों में भारत अमेरिका संबंध अत्यधिक तनावपूर्ण हो गए। शांति, मैत्री तथा सहयोग की भारत रूस संधि (1971) ने भारत-अमेरिका संबंधों को बहुत उदासीन कर दिया तथा दिसंबर 1971 के बांग्लादेश युद्ध ने संबंधों को और भी बिगाड़ दिया।
- **भारत परमाणु नीति का अमेरिका द्वारा विरोध**—भारत अमेरिका संबंधों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला अन्य तत्व भारत की परमाणु नीति के विषय में मतभेद रहा

है। 1997-98 के समय के दौरान भारत ने अपनी परमाणु नीति को शांतिपूर्ण परमाणु तकनीक विकास नीति का स्वरूप दिया। यहां तक कि 1974 के पहले परमाणु परीक्षण के बाद भी भारत ने परमाणु शस्त्र न बनाने की नीति को अपनाए रखा। परंतु अमेरिका यह विश्वास करने के लिए तैयार नहीं था कि भारत की परमाणु नीति शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए तकनीक विकास करने का प्रयत्न है क्योंकि भारत एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं और न ही अपने सभी परमाणु संयंत्रों का अंतर्राष्ट्रीय निरीक्षण करवाने के लिए तैयार था। अमेरिका का विश्वास था कि भारत की परमाणु नीति के कारण ही पाकिस्तान परमाणु देश बनने का प्रयत्न कर रहा था जिससे सारे एशिया में शस्त्र दौड़ प्रारंभ हो सकती थी। दूसरी तरफ भारत परमाणु तकनीकि के विकास को अपनी उन्नति के लिए अत्यावश्यक समझता था। भारत एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार नहीं था। परमाणु शस्त्र बनाने की इच्छा के कारण नहीं बल्कि इसलिए कि अप्रसार संधि अत्यधिक भेदमूलक संधि थी। इसका उद्देश्य परमाणु देशों की उच्च स्थिति को बनाए रखना तथा परमाणु विहीन राष्ट्रों को विकसित राष्ट्रों पर निर्भर बनाए रखना था। 1991 के बाद अमेरिका ने यह प्रयास करना आरंभ कर दिया कि भारत एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर कर दे। भारत इस संधि को भेदभावपूर्ण तथा परमाणु साम्राज्यवादी संधियां मानता था तथा इस पर हस्ताक्षर करने के लिए कतई तैयार नहीं था।

वास्तव में 1990 के दशक में भी अमेरिका भारत पर NPT तथा CTBT पर हस्ताक्षर करने के लिए अधिक दबाव डालने की नीति पर चलने लगा। उसने दक्षिणी एशिया को परमाणु शस्त्र रहित क्षेत्र बनाने के लिए बड़े प्रयास आरंभ कर दिए। 1990 के दशक के पहले सात वर्षों में दक्षिण एशिया को परमाणु रहित क्षेत्र बनाने के विषय पर भारत-अमेरिका में मतभेद रहे। भारत ने इस प्रस्ताव को आंशिक अवास्तविक एवं सीमित माना तथा उसने इसे स्पष्ट रूप से रद्द कर दिया परंतु अमेरिका ने बल दिया कि भारत यह प्रस्ताव मान ले। मई 1993 में अपने भारत के दौरे के समय अमेरिकी विदेश मंत्रालय में प्रमुख उप सहायक सचिव श्री मैलोट ने ऐसे ही विचार प्रकट किए। उसका यह मत था कि ऐसा न होने पर पाकिस्तान को परमाणु बम बनाने का आधार प्राप्त हो जाएगा परंतु भारत ने यह मत दिया कि बिना चीन की परमाणु क्षमता को तथा चीन-पाकिस्तान के सैनिक संबंधों को ध्यान में रखे कोई भी ऐसा प्रस्ताव अधूरा है और अधूरा ही रहेगा। अमेरिका ने यह चाहा कि भारत एनपीटी तथा सीटीबीटी दोनों को अपनाए जबकि भारत इन दोनों को पक्षपातपूर्ण संधियां मानता रहा तथा इन पर हस्ताक्षर न करने की नीति पर अडिग रहा। भारत ने सीटीबीटी को परमाणु साम्राज्यवाद का एक उपकरण माना जबकि संयुक्त राज्य ने इसे सशस्त्र नियंत्रण का एक उपकरण माना। ऐसे मतभेद ने भारत-अमेरिका संबंधों को सीमित ही रखा। मई 1998 में जब भारत ने पांच परमाणु विस्फोट करने के बाद अपने आपको परमाणु शस्त्रधारक देश घोषित किया तो अमेरिका ने इस पर तीव्र प्रतिक्रिया करते हुए भारत पर आर्थिक प्रतिबंध लागू कर दिए तथा भारत को यह कहा कि वह तुरंत सीटीबीटी पर हस्ताक्षर करे। भारत ने इस संबंध में अपनी नीति को यथापूर्वक बनाए रखा तथा यह कहा कि वह इस संधि पर इसके विद्यमान में हस्ताक्षर नहीं करेगा। भारत ने

टिप्पणी

अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक न्यूनतम परमाणु शस्त्र बल विकसित करना आवश्यक माना है तथा अपने परमाणु कार्यक्रम को स्वतंत्रता को बनाए रखने की नीति को आवश्यक माना। अमेरिका ने भारतीय परमाणु नीति को पसंद नहीं किया। यद्यपि अमेरिकी सीनेट ने नवंबर 1999 में सीटीबीटी पर अमेरिकी हस्ताक्षरों की पुष्टि करने से इनकार कर दिया तथापि अमेरिका यह चाहता रहा कि भारत सीटीबीटी पर हस्ताक्षर कर दे। परमाणु मुद्दे पर अभी भी भारत तथा अमेरिकी नीतियों तथा विचारों में मतभेद हैं। लेकिन इसके बावजूद दोनों देश अब अपने संबंधों को और अधिक सहयोगी तथा लाभदायक बनाने के लिए सकारात्मक तथा महत्वपूर्ण पग उठा रहे हैं।

- **1980-90 के दौरान अफगानिस्तान संकट पर मतभेद**—दिसंबर 1980-90 के मध्य अफगानिस्तान समस्या पर भारत अमेरिका मतभेद तनावों का कारण बने रहे। 24 दिसंबर, 1979 को अफगानिस्तान में रूस के हस्तक्षेप के बाद अमेरिका ने लगातार अफगानिस्तान में रूसी सेनाओं की उपस्थिति की आलोचना की। इसका विश्वास था कि रूस की यह कार्यवाही संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर की तथा अफगानिस्तान की स्वतंत्रता तथा प्रभुसत्ता का उल्लंघन थी। इसके अतिरिक्त इससे पाकिस्तान के लिए सुरक्षा समस्या पैदा हो गई थी तथा यह अफगानिस्तान को बलपूर्वक रूस के साथ संधि द्वारा मिलाने का अनैतिक तथा अवैध प्रयत्न था। परिणामस्वरूप अमेरिका-अफगानिस्तान के शरणार्थियों, जिन्होंने पाकिस्तान में शरण ले रखी थी तथा अफगान-छापामारों को जो अफगानिस्तान तथा रूस की सेनाओं के विरुद्ध लड़ रहे थे, को बड़े पैमाने पर सैनिक सहायता तथा धन संबंधी सहायता देना आरंभ कर दिया। अमेरिका चाहता था कि रूस की निंदा की जाए तथा अमेरिकी दृष्टिकोण का समर्थन किया जाए। इसने भारत के दृष्टिकोण की आलोचना की क्योंकि उनके विचार में यह पक्षपातपूर्ण तथा सोवियत समर्थक था। दूसरी और भारत, यद्यपि अफगानिस्तान में विदेशी सेनाओं की उपस्थिति के विरुद्ध तो था परंतु खुले रूप में रूस का विरोध नहीं कर सकता था। यह अफगानिस्तान में रूस की भूमिका से संतुष्ट नहीं था परंतु उसका विश्वास था कि रूस को अफगानिस्तान में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य होना पड़ा था क्योंकि साम्यवादी सरकार को समाप्त करने के प्रयत्न किए जा रहे थे। भारत का विश्वास था कि रूस की भर्त्सना करके कोई लाभ नहीं होगा, इसके विपरीत इससे रूस का रवैया और भी कठोर हो सकता था। भारत अफगानिस्तान समस्या के शांतिपूर्ण निपटारे के पक्ष में था। जिससे अफगानिस्तान के आंतरिक मामले में अहस्तक्षेप की नीति भी शामिल थी। इस प्रकार अफगानिस्तान को लेकर अमेरिका तथा भारत की नीतियां अलग-अलग थीं। यहां तक कि सोवियत संघ से अपनी सेनाएं हटा लेने के बाद भी जब भारत अफगानिस्तान में नजीब की सरकार को पूर्ण मान्यता देता रहा, वहां संयुक्त राज्य अमेरिका पाकिस्तान के माध्यम से अफगान विद्रोहियों की सहायता करता रहा। आज से कुछ समय पहले तक अफगानिस्तान के प्रति अमेरिका की नीति पाकिस्तान की नीति के साथ-साथ चलती रही। 1990 तक अफगानिस्तान का मुद्दा भारत तथा अमेरिका के संबंधों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता रहा।

टिप्पणी

- **1980-1990 में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को आधुनिक एफ-16 युद्ध विमान, एवाकस** (SESVD) **तथा अन्य सैनिक सामान की आपूर्ति के प्रश्न पर मतभेद**—अफगानिस्तान समस्या के कारण अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ संधि जैसे संबंध बनाने के प्रयत्नों को और तेज कर दिया। इसका विश्वास था कि अफगानिस्तान में रूस की उपस्थिति से पाकिस्तान की सुरक्षा को एक बड़ा खतरा पैदा हो गया था। परिणामस्वरूप यह पाकिस्तान को शक्तिशाली बनाना चाहता था ताकि पाकिस्तान एशिया में विशेषतया पश्चिमी एशिया में अपनी शक्ति को बढ़ाये और रूस के किसी भी प्रयत्न का मुकाबला कर सके। इस उद्देश्य के लिए अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को बड़ी संख्या में युद्ध सामग्री विशेषतया तकनीकी रूप से अत्यधिक विकसित एफ-16 देने का भारत ने विरोध किया। भारत ने यह महसूस किया कि पाकिस्तान को बड़ी संख्या में शस्त्र मिलने से भारत के लिए अपनी सुरक्षा तथा संरक्षण की समस्या पैदा हो जाएगी। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान द्वारा भारत में विघटनकारी तथा उग्रवादी तत्वों को हथियारों की आपूर्ति किए जाने के कारण ताकि यह कश्मीर तथा पंजाब में गड़बड़ फैला सकें, भारत को ऐसी अमेरिकी नीति के प्रति बहुत भारी आपत्ति थी। भारत ने यह माना कि इसमें अनावश्यक रूप से पाकिस्तान भारत से अधिक शक्तिशाली हो जाएगा तथा दक्षिण एशिया में शक्ति संतुलन बिगड़ जाएगा। तथापि अमेरिका इसके विपरीत सोचता था। वह भारत के दृष्टिकोण से सहमत नहीं था। उसका कहना था कि पाकिस्तान एक छोटा सा देश है इसलिए यह भारत के लिए खतरा नहीं बन सकता। पाकिस्तान की बड़ी संख्या में शस्त्र आपूर्ति के प्रश्न पर भारत अमेरिका मतभेद भी मित्रता तथा सहयोग के रास्ते में एक रुकावट बने रहे। परंतु अब अमेरिका ने पाकिस्तान की परमाणु नीति और कार्यक्रम को देखते हुए ऐसे शस्त्रों की पूर्ति रोक दी है।
- **डियागो गार्शिया के प्रश्न पर मतभेद**—अमेरिका ने हिंद महासागर में एक सुदृढ़ नौसैनिक अड्डे के रूप में एक सामरिक द्वीप, डियागो गार्शिया का निर्माण किया ताकि हिंद महासागर के क्षेत्र में अमेरिकी सेनाओं की सक्रियता तथा शक्ति को बढ़ाया जा सके। इसका विश्वास है कि एशिया में अमेरिका के हितों की रक्षा करने के लिए डियागो गार्शिया के अड्डे का विकास आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह तर्क भी देता है कि अमेरिका यह कदम एशिया तथा हिंद महासागर में रूस की बढ़ती शक्ति को नियंत्रित करने के लिए भी है। जनवरी 1991 के खाड़ी युद्ध में अमेरिका के डियागो गार्शिया के अड्डे का पूर्ण उपयोग किया। दूसरी और भारत महाशक्तियों की हिंद महासगार में प्रतिद्वंद्विता का विरोध करता रहा है। भारत का विचार है कि अमेरिका के हिंद महासागर में डियागो गार्शिया को शक्तिशाली सैनिक अड्डा बनाने के निर्णय से हिंद महासगर में महाशक्तियों को प्रतिद्वंद्विता से तनाव बढ़ गए हैं। भारत चाहता है कि हिंद महासागर को शांति क्षेत्र बना दिया जाए जो शीतयुद्ध प्रतिद्वंद्विता से मुक्त हो। इसका विश्वास है कि इसके सुरक्षा के हित हिंद महासागर की शांति और सुरक्षा के साथ अत्यधिक रूप से जुड़े हुए हैं। इसलिए भारत डियागो गार्शिया के संबंध में अमेरिका की नीति का कड़ा विरोध करता है। तथा डियागो गार्शिया का द्वीप मॉरीशस को वापस देने की मॉरीशस की मांग का समर्थन करता है जो कि इसका असली तथा वैधानिक स्वामी है।

- **कोसोवो संकट के संबंध में मतभेद**–यूगोस्लाविया में सर्वो द्वारा अल्बेनिया मूल के नागरिकों के विरुद्ध की जा रही हिंसा तथा अत्याचारों का भारत ने पूर्ण विरोध किया परंतु वह इस संकट के समाधान के लिए कूटनीतिक प्रयासों तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर के अधीन कार्यवाही किए जाने का समर्थक था। इसके विपरीत अमेरिका ने नाटो के माध्यम से यूगोस्लाविया पर हवाई हमले करके इस संकट का समाधान करने की नीति अपनाई। इन हवाई हमलों में काफी जान माल की हानि हुई तथा चीन व भारत के दूतावासों तथा विदेशियों को भी हानि पहुंची। हवाई हमले लगभग तीन महीने जारी रहे तथा फिर एक शांति समझौते द्वारा इस संकट का हल संभव हो सका। भारत आरंभ से ही कूटनीति हल ढूंढ़ने का पक्षपाती था। वह वाल्कन क्षेत्र में अपने प्रभाव को बढ़ाने तथा नाटो की सार्थकता को प्रकट करने का प्रयास करता रहा था। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा व्यवस्था की अवहेलना करके अमेरिका ने नाटो की शक्ति के बल पर इस समस्या का समाधान करने की नीति पर कार्य किया। भारत तथा अन्य देशों ने ऐसी नीति का विरोध किया।
- **अन्य नकारात्मक कारक**–इस सूची में हम यह भी कह सकते हैं कि अमेरिकी प्रशासन भारत में दिन प्रतिदिन बढ़ती आतंकवादियों की भारत विरोधी कार्यवाहियों को पूरी तरह समझ कर भी उचित ध्यान नहीं देता रहा। अमेरिका के बार-बार आश्वासनों के बावजूद वाशिंगटन के अधिकारी इस मामले में उदासीन ही रहे तथा भारत की प्रार्थना के प्रति गंभीर नहीं हुए। भारत के मिसाइल कार्यक्रम, भारत की बढ़ रही परमाणु क्षमता के विषय में अमेरिकी आपत्ति तथा भारत को सुपर 301 धाराओं के अंतर्गत निरीक्षण सूची में रखना बहुत बड़ी बाधाएं रहीं। भारत को उस समय एक गहरा धक्का लगा जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने जापान के साथ इसे भी संलग्न करने का निश्चय किया तथा सुपर 301 के अधीन कार्यवाही के लिए इसे प्रतिकूल व्यापारिक सहयोगी घोषित करने की इच्छा घोषित की। तथापि भारत की तीव्र प्रतिक्रिया व्यापारिक तथा वाणिज्यिक नीतियों को और अधिक उदार बनाने की प्रतिबद्धता के सामूहिक प्रभावाधीन संयुक्त राज्य अमेरिका को सुपर 301 के अधीन कार्यवाही के निलंबन के लिए बाधित कर दिया। परंतु इस दिशा में मतभेद काफी समय तक विद्यमान रहे। सुपर 301 कानून की धमकी आज भी भारत-अमेरिकी संबंधों की एक रुकावट है। अमेरिका भारत के मिसाइल प्रोग्राम का भी विरोध कर रहा है। भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ पर अमेरिकी प्रभुत्व की आलोचना कर रहा है। अमेरिका ने भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए प्रस्तुत दावे को समर्थन नहीं दिया है। अमेरिका भारत को एन.पी.टी. तथा सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर करने की नीति पर चल रहा है। मई 1998 में भारत द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों के बाद भारत-अमेरिका संबंधों में नए तनाव पैदा हो गए विशेषकर उस समय जब अमेरिका ने भारत के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए। इसके बाद मार्च 1999 तक दोनों देशों के मध्य विदेश मंत्रियों के स्तर पर वार्तालाप के आठ दौर हुए परंतु मतभेदों को पूर्ण रूप से हल नहीं किया जा सका। यद्यपि अमेरिका के रुख में लचकीलापन अवश्य दिखाई दिया। मई-जून 1999 में अमेरिका ने कारगिल युद्ध के संबंध में स्पष्ट तौर पर पाकिस्तान को भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ का दोषी माना,

टिप्पणी

परंतु अभी भी अमेरिका ने भारत पर दबाव डालने की नीति का त्याग नहीं किया। 20वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारत तथा अमेरिका संबंधों में सहयोग तथा संपर्कों का वातावरण बना। मार्च 2000 में अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की भारत यात्रा के समय ऐसा वातावरण स्पष्ट रूप में दिखाई दिया तथा यह आशा बनी कि दोनों देशों के संबंध अब अधिक प्रौढ़ रूप से विकसित किए जाएंगे तथा सभी क्षेत्रों में द्विपक्षीय संबंधों का विस्तार होगा तथा दोनों में सामूहिक भागीदारी बढ़ने के प्रयास होंगे।

भारत तथा अमेरिका के अधिकारियों तथा नेताओं के मध्य यात्राओं और वार्तालापों के कई दौर हुए। अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन तथा भारतीय प्रधानमंत्री की एक दूसरे के देशों की यात्राओं ने द्विपक्षीय संबंधों को सकारात्मक स्वरूप प्रदान किया।

भारत-अमेरिका संबंधों का इतिहास, 1947-66

1947-66 के समय भारत-अमेरिका संबंधों का इतिहास दो समांतर दिशाओं की अनुपस्थिति के कारण काफी मनोरंजक रहा। गहरी तथा स्नेहपूर्ण मित्रता तथा सहयोग बढ़ाने की इच्छा तथा इस इच्छा की पूर्ति करने हेतु वास्तविक सार्थक प्रयत्नों में असफलता। विश्व में दो सबसे बड़े लोकतंत्रीय देशों के रूप में लोकतंत्रीय प्रक्रिया द्वारा शांति, स्वतंत्रता एवं विकास के आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता तथा सुदृढ़ पारस्परिक सांस्कृतिक संपर्क तथा एक दूसरे के महत्व को पहचानते हुए भारत तथा अमेरिका दोनों ही मित्रता तथा सहयोग कायम करने की इच्छा रखते रहे। यद्यपि विदेश नीति परिप्रेक्ष्यों तथा कुछ मुख्य अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के विषयों में मतभेदों ने इस इच्छा को मूर्त रूप नहीं लेने दिया। परिणामस्वरूप भारत-अमेरिका संबंध मैत्री पूर्ण तथा सहयोगात्मक तो रहे हैं, परंतु इनमें गरिमा नहीं बन सकी। जैसा कि एम.पी. सिंह ने मत दिया, मित्रता की तीव्र इच्छा होने के बावजूद दुर्भाग्य से अमेरिका तथा भारत के बीच द्विपक्षीय संबंध अधिक संदेहास्पद, तनावों तथा गलतफहमियों के वातावरण में ही संचालित हुए हैं।"

डॉ. बलजीत सिंह लिखते हैं, "भारत अमेरिका संबंधों के प्रारंभिक वर्ष एक ऐसे नवविवाहित जोड़े की तरह थे जो शादी होते ही, यहां तक कि मधुमास की छोटी-सी विलासिता के बिना ही, एक-दूसरे के दृष्टिकोणों, इच्छाओं-अनिच्छाओं तथा पसंदों को समझने के गंभीर कार्य को लेकर बैठ गए हैं। अनेक गलतफहमियों का पैदा हो जाना तथा परिणामस्वरूप कटु तर्कों का आदान-प्रदान स्वाभाविक ही था।" 1940 के दशक में दोनों ही राज्य एक दूसरे के सान्निध्य में अचानक ही आ गए। फिर एक-दूसरे के चरित्र तथा इच्छाओं को दस वर्ष तक परखने में गुजारने के बाद पारस्परिक लाभदायक संबंधों को बनाने के गंभीर कार्य में जुट गए।" सुरजीत मानसिंह के शब्दों में, "भारत तथा अमेरिका के बीच संबंध कभी नियोजित नहीं थे तथा न ही इनके बारे में कोई भविष्यवाणी की जा सकती थी। इन दोनों के बीच विकास की कोई सामान्य रेखा दृष्टिगोचार नहीं होती।"

आरंभ के वर्षों में तो एक-दूसरे के बारे में स्पष्टता की कमी तथा विदेश नीति सिद्धांतों तथा राष्ट्रीय हितों के लक्ष्यों में अंतर तथा बाद में कुछ मुख्य विषयों पर गहरे मतभेदों ने भारत-अमेरिका मैत्री तथा सहयोग के विकास के रास्ते में रुकावट खड़ी रखी।

1947-66 के वर्षों में भारत तथा अमेरिका के इतिहास का निम्नलिखित विवरण इन अवलोकनों को स्पष्ट करता है कि चाहे भारत-अमेरिका संबंध मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक रहे, फिर भी इनमें वह गरिमा तथा सौहार्द नहीं था जो होना चाहिए था।

टिप्पणी

भारत अमेरिका संबंधों का इतिहास (नेहरू-शास्त्री युग–1947-60)

नेहरू युग भारत की विदेश नीति का उषाकाल था। नेहरू स्वयं विदेश मंत्री थे तथा स्वतंत्रता के बाद वे तत्काल ही भारत की विदेश नीति में निर्माण में तथा दूसरे देशों विशेषत: महाशक्तियों के साथ संबंध कायम करने में जुट गए।

1947-64 तक के संबंधों का इतिहास

1947 से लेकर 1952 के मध्य संबंध–दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति की संभावनाएं अधिक हो गईं। फरवरी, 1944 में श्री आसफ अली को अमेरिका में भारत का राजदूत बना कर भेजा गया तथा इससे अमेरिका तथा भारत के संबंधों का दौर शुरू हुआ। यद्यपि भारत-अमेरिका संबंध 1949 तक कोई विशेष प्रगति नहीं कर सके। अमेरिका यूरोप के मामलों तथा साम्यवाद के नियंत्रण में बुरी तरह से उलझा रहा। तब तक शीतयुद्ध शुरू हो चुका था तथा अमेरिका का ध्यान अब शीतयुद्ध में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने तथा विश्व राजनीति में महाशक्ति के रूप में स्थिति को बनाए रखने की ओर लगा रहा। वह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी नई भूमिका के अनुरूप अपने आपको ढालने लगा, इसलिए उसने भारत के साथ संबंधों में कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई। भारत भी स्वतंत्रता के बाद अपने घरेलू मामलों में उलझ गया।

सन् 1946 में अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री के रूप में भी नेहरू ने भारत तथा अमेरिका के बीच सांस्कृतिक संपर्क स्थापित करने पर जोर दिया था तथा इस बात की तीव्र इच्छा व्यक्त की कि भारत के अमेरिका के साथ गहरे मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक संबंध स्थापित हों। यद्यपि भारत के प्रति अमेरिका की उदासीनता, अमेरिका की शीतयुद्ध की नीति तथा अमेरिका के कुछ अन्य निर्णय सभी उनकी नजर में संदेहास्पद तथा भयोत्पादक थे।

भारत की प्रारंभिक विदेश नीति निर्णयों, जो एशिया में भारत की मुख्य भूमिका के संबंध में थे, शीतयुद्ध में तटस्थ रहने के निर्णयों का अमेरिका के विदेश नीति निर्माताओं तथा राजनेताओं ने कड़ा विरोध किया। अमेरिका भारत की संधियों तथा शीतयुद्ध से अलग रहने की नीति के प्रति आशंकित थे। इसे साम्यवाद के नियंत्रण के लिए की गई अपनी सुरक्षा संधियों की नीति के रास्ते में बहुत बड़ी रुकावट मानते थे।

विदेश नीति में स्वतंत्रता में भारत की इच्छा, साम्यवादी रूस की बढ़ती शक्ति को नियंत्रित करने की शक्ति द्वारा लोकतांत्रिक देशों को सुदृढ़ करने की अमेरिका की इच्छा के बिलकुल विरुद्ध थी। सन् 1949 में भारत तथा अमेरिका के संबंधों को नए सिरे से शुरू करने के लिए दो साहसिक प्रयत्न किए गए। जुलाई 1949 में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित को अमेरिका में राजदूत बना कर भेजा गया तथा अक्टूबर, 1949 में नेहरू ने भारत के लिए अमेरिकी मैत्री सहयोग तथा सहायता प्राप्त करने के लिए अमेरिका की यात्रा की। इस समय तक अमेरिका भी भारत के साथ संबंध विकसित करने के प्रति सचेत हो गया था क्योंकि चीन एक बड़े साम्यवादी देश के रूप में उभर कर सामने आ गया था। परंतु नेहरू की इस यात्रा से कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। नेहरू ने अमेरिका को यह समझाने का कड़ा प्रयत्न किया कि भारत की अमेरिका को सहायता की आवश्यकता है, परंतु अमेरिकी सरकार ने कोई विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

टिप्पणी

श्री टी.एन. कौल ने 1949 ई. में अमेरिका तथा भारत के बीच कोई समझौता न हो पाने के मुख्य कारण बताए। उनके अनुसार ये कारण थे–

(1) पारस्परिक सम्मान तथा समझ की कमी,

(2) दोनों देशों की ओर से एक-दूसरे से अत्यधिक आशाएं–ऐसी आशाएं जो गलत आधारों पर आधारित थीं,

(3) अमेरिका का यह सोचना कि भारत बड़ा कमजोर तथा पिछड़ा हुआ देश है जिसे आर्थिक साधानों की अत्यधिक आवश्यकता है,

(4) अमेरिका द्वारा यह आशा कि भारत अमेरिका की नीति को स्वीकार करेगा,

(5) भारत की गुट-निरपेक्षता और विदेश संबंधों में स्वतंत्रता की नीति तथा

(6) भारत द्वारा अमेरिका के लोकतंत्र को शिरोमणि मानना तथा उससे यह आशा करना कि अमेरिका लोकतांत्रिक भारत को सहायता देने के लिए आसानी से राजी हो जाएगा।

इन सभी तथ्यों से 1949 ई. में अमेरिका तथा भारत के दृष्टिकोणों में अंतर स्पष्ट हो जाता है। ये मतभेद वास्तव में, कम से कम 1954 तक, भारत अमेरिका के संबंधों में रुकावट बने रहे। 1947 से 1952 के संबंध को इन बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

1. **कश्मीर समस्या एवं भारत–अमेरिका संबंध–**सन् 1949 में कश्मीर की समस्या ने भारत-अमेरिका संबंधों में सर्वप्रथम तनाव पैदा किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ में माऊंट बैटन तथा अमेरिकी प्रतिनिधियों के प्रभाव के कारण ही भारत ने कश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र में पेश करने का निर्णय किया था। यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ में कश्मीर पर बहस के दौरान अमेरिकी तथा पश्चिमी विचार पाकिस्तान के ही पक्ष में रहे। वास्तव में इस समय तक अमेरिका ने यह सोचना शुरू कर दिया कि शायद पाकिस्तान अमेरिका की सुरक्षा संधियों को स्वीकार कर लेगा। ऐसा इसलिए सोचा गया, क्योंकि नेहरू की यात्रा को अत्यधिक महत्व दिया था। कश्मीर पर भारत के दृष्टिकोण को समझने में अमेरिका को कमी ने दोनों देशों के बीच एक बड़ी खाई पैदा कर दी।
2. **चीन की मान्यता का प्रश्न तथा भारत-अमेरिका संबंध–**जब 1949 में चीन माओ के नेतृत्व में एक साम्यवादी देश के रूप में उभर कर सामने आया तो भारत ने चीन के लिए अपने संबंधों के महत्व को समझते हुए दिसंबर, 1949 में इसको पूर्ण मान्यता देने का निश्चय किया। भारत के इस निर्णय पर अमेरिका ने अप्रसन्नता तथा कड़ा विरोध प्रकट किया, क्योंकि वह समझता था कि ऐसा निर्णय साम्यवाद के नियंत्रण की अमेरिकी नीति के विरुद्ध था। अमेरिका ने यह महसूस किया कि भारत का यह निर्णय अमेरिका के विरुद्ध रूस की सहायता करेगा। इस प्रकार विश्व के विभिन्न भागों में साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव को और अधिक बल देगा। इसलिए चीन भारत अमेरिका संबंधों को परेशान करने वाला तथा रुकावट डालने वाला तत्व बन गया। एन.डी. पामन का मत है कि "1950 के दशक के

मध्य में भारत तथा अमेरिका, साम्यवादी चीन के प्रति अपने-अपने व्यवहार में एक दूसरे से कोसों दूर थे। भारत साम्यवादी चीन के साथ समझौता करना चाहता था तथा राष्ट्रों के अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में उसने चीन के शासन की पूर्ण मान्यता का समर्थन किया। इसके विपरीत अमेरिका साम्यवादी चीन को मान्यता न देने का समर्थक था। वह राष्ट्रवादी चीन का मुख्य समर्थक था जिसे भारत ने बिलकुल मान्यता नहीं दी थी। भारतीय नेता, अमेरिका की चीन नीति की खुली आलोचना करते थे, क्योंकि वे महसूस करते थे कि अमेरिका एशिया की वास्तविकताओं का सामना करने से इनकार कर रहा है।"

3. **कोरिया का संकट तथा भारत-अमेरिका संबंध–**सन् 1950 में एक बार फिर भारत-अमेरिका के दृष्टिकोण में कोरिया को लेकर मतभेद उभर कर सामने आए। पहले पहल तो भारत ने उत्तरी कोरिया को आक्रामक बताने में अमेरिका का साथ दिया तथापि बाद में जब अमेरिका ने साम्यवादी चीन का विरोध करने के लिए कोरिया की समस्या को ढाल बनाने का प्रयत्न किया, जैसा कि कोरिया में 38वें अक्षांश को पार करने के अमेरिकी निर्णय से पता चलता है, तो भारत ने अमेरिकी निर्णय का विरोध किया तथा साथ ही साथ अमेरिका के "शांति के लिए इकट्ठा होने के प्रस्ताव" का विरोध करने से भी नहीं हिचकिचाया। इससे भारत अमेरिका संबंध और भी तनावग्रस्त हो गए। साथ ही कश्मीर की समस्या तथा साम्यवादी चीन को मान्यता देने के विषय में दोनों ने ही भारत-अमेरिका के संबंधों पर बुरा प्रभाव डाला। इसके अतिरिक्त जून 1951 में अमेरिका ने जो जापान के साथ शांति संधि करने के लिए सान फ्रांसिस्को में सम्मेलन बुलाया था, उसमें भारत ने भाग लेने से इनकार कर दिया। भारत ने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि वह यह महसूस करता था कि अमेरिका जापान को पश्चिमी सुरक्षा व्यवस्था में शामिल करने का प्रयत्न कर रहा है। इस प्रकार जापान की नीतियों पर अमेरिका के नियंत्रण को बनाए रखने का प्रयास कर रहा है। भारत के इस निर्णय का अमेरिका ने फिर कड़ा विरोध किया।

   यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं कि 1947-50 के बीच के समय में अमेरिका तथा भारत किसी भी प्रकार सहयोग करने में असफल रहे। सन् 1950 में भारत ने अमेरिका से आर्थिक सहायता तथा खाद्य सहायता मांगी। अमेरिका के राष्ट्रपति ट्रूमैन ने तुरंत कार्यवाही की तथा अमेरिका ने भारत को बहुमूल्य खाद्य सहायता तथा आर्थिक सहायता प्रदान की।

1952 से 1960 तक के संबंध

1952 में आइसनहॉवर अमेरिका के राष्ट्रपति बने। उनके प्रशासन के अंतर्गत विदेश मंत्री डल्स ने "बड़े पैमाने पर प्रतिकार" का सिद्धांत बनाया तथा इसके अंतर्गत अमेरिका ने साम्यवाद के विरुद्ध अपने अभियान को तेज कर दिया। इसके लिए उसने नाटो को सुदृढ़ किया तथा ऐसी संधियों का विश्व के दूसरे भागों तक विस्तार किया। सैनिक संधियों के साधन द्वारा शीतयुद्ध तथा शक्ति-राजनीति संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य बन गई। यह नीति भारतीय गुटनिरपेक्षता के विरुद्ध थी जो शीतयुद्ध तथा सैनिक संधियों को खतरनाक मानती थी। भारत साम्यवादी तथा गैर-साम्यवादी राज्यों के बीच

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा विश्व शांति की स्थापना के लिए सकारात्मक शांतिपूर्ण प्रयत्नों का समर्थन करता था। राष्ट्रपति आइसनहॉवर तथा विदेश मंत्री जान फॉस्टर डल्स के शासन में अमेरिका की नीति न तो शत्रुओं के साथ समझौते की और न ही दूसरों को अकेला छोड़ देने की थी। मि. डल्स ने, विशेषत: साम्यवाद विरोधी नीति अपनाई तथा मुख्यत: सैनिक प्रतिक्रियाओं पर विश्वास करते हुए लगभग धर्म युद्ध के उत्साह से इस नीति पर अमल किया। ऐसा नेहरू की विचारधारा के विरुद्ध था। इसलिए आइसनहॉवर के काल में भारत-अमेरिका संबंध कोई विशेष उन्नति नहीं कर पाए।

1952 से 1960 के बीच के भारत-अमेरिकी संबंध को इस प्रकार समझा जा सकता है–

1. **पाकिस्तान का सीटो का सदस्य बनना तथा भारत-अमेरिका संबंध–**अप्रैल 1954 में अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ संधि कायम कर ली। पाकिस्तान सीटो में शामिल हो गया तथा इसने अमेरिका से भारी मात्रा में सैनिक सहायता लेनी शुरू कर दी। इसका भारत ने कड़ा विरोध किया; क्योंकि वह इसे एशिया में शीतयुद्ध का विस्तार समझता था। भारत ने पाकिस्तान की सैनिक सहायता का इसलिए भी विरोध किया क्योंकि पाकिस्तान सदा ही कश्मीर को प्राप्त करने के लिए युद्ध की बातें करता रहता था। भारत यह अनुभव करता था कि पाकिस्तान को यह आश्वासन दिलाए कि पाकिस्तान को दी जाने वाली सैनिक सहायता का प्रयोग भारत के विरुद्ध नहीं किया जाएगा, परंतु इससे भारत के लोग तथा नेता आश्वस्त नहीं हुए जिससे अमेरिका की यह नीति दोनों देशों के बीच संबंध रास्ते की एक मुख्य रुकावट बन गई। भारत का चीन के साथ तिब्बत समझौता, नेहरू एवं चाओ-एन-लाई के बीच पंचशील समझौता, भारत द्वारा हिंद-चीन को जाने के लिए भारत के खपर से इनकार तथा नेहरू द्वारा अमेरिका पर एशिया में छिपे रूप में साम्राज्यवाद स्थापित करने का आरोप इन सब ने भारत-अमेरिका के संबंधों को सुधारने के अवसरों को बिगाड़ दिया।
2. **भारत-सोवियत मैत्री तथा भारत-अमेरिका संबंध–**स्टालिन के बाद के काल में रूस के साथ भारत का मैत्रीपूर्ण संबंधों का प्रारंभ भी अमेरिका को अच्छा नहीं लगा। सन् 1955 में नेहरू की रूस यात्रा तथा उसके बाद रूसी नेता ख्रुश्चेव तथा बुल्गनिन की भारत यात्रा तथा रूसी-भारतीय भाई-भाई के नारे ने एक बार फिर अमेरिका को नाराज कर दिया। 1954 ई. के बाद कश्मीर के मामले पर पाकिस्तान को अमेरिका का खुला समर्थन स्पष्ट हो गया। इसके पिरीत सोवियत संघ ने कश्मीर के विषय पर भारत का समर्थन करना शुरू कर दिया। इनसे भारत-रूस मैत्री के अवसर अधिक उज्ज्वल हो गए तथा भारत-अमेरिका संबंधों में सुधार के अवसर कम हो गए। इसके अतिरिक्त अमेरिका का कुछ उपनिवेशीय मामलों पर भारत का समर्थन करने से इनकार तथा हिन्दी-चीनी में तथा मध्य पूर्व में अमेरिका की भूमिका का विरोध करने का भारत का निर्णय भी अमेरिका तथा भारत के संबंधों में रुकावट बन गया। इस प्रकार 1956 ई. तक अमेरिकी नेता, विशेषत: मि. डल्स ने भारत को रूस समर्थक देश मानना शुरू कर दिया।
3. **1950 के दशक के अंतिम वर्षों में भारत-अमेरिका संबंध–**नेहरू ने 1956 ई. में अमेरिका का एक दूसरा दौरा किया तथा भारत-अमेरिका मित्रता तथा संबंधों को

सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। यद्यपि इस यात्रा से भारत को खाद्य सहायता देने के अतिरिक्त कोई और विशेष लाभ नहीं हुआ। 1956 ई. में भारत ने स्वेज संकट समस्या पर अमेरिका के परिपक्व निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा की जिससे दोनों के संबंधों में कुछ सुधार हुआ। यद्यपि हंगरी में रूस के हस्तक्षेप की आलोचना करने से भारत का इनकार तथा मध्य पूर्व में लेबनान में अमेरिकी संलिप्तता का भारत द्वारा विरोध इन सबका बुर प्रभाव पड़ा तथा भारत-अमेरिका संबंध आशा के अनुसार गरिमा उत्पन्न न कर सके। 1959 ई. में अमेरिका के राष्ट्रपति आइजनहॉवर ने भारत की यात्रा की। इस यात्रा से दोनों देशों के संबंधों में सुधार की एक नई आशा का संचार हुआ। इस समय तक भारत अपनी उत्तरी सीमाओं पर चीन के बढ़ते खतरों से सचेत हो चुका था। उसे अमेरिका के साथ मित्रता करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी। परिणामस्वरूप भारत कई क्षेत्रों में अमेरिका के साथ संबंधों को बढ़ाने में अधिक रुचि लेने लगा था। सन् 1960 में अमेरिका में राष्ट्रपति के चुनावों में जे. एफ. कैनेडी विजयी हुए। मि. जे.एफ. कैनेडी भारत-अमेरिका मैत्री के जाने-माने समर्थक थे तथा सीनेटर के रूप में उन्होंने भारत के साथ गहरी मैत्री का समर्थन किया था। नवंबर, 1959 में अपने प्रसिद्ध रिवरसाइड कैलिफोर्निया भाषण में उन्होंने भारत तथा चीन के बीच एशिया के राजनीतिक तथा आर्थिक नेतृत्व के संघर्ष के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। "एशिया के सम्मान के लिए, किसका जीवनयापन या रास्ता दूसरे से श्रेष्ठ है, सिद्ध करने का अवसर है। हम चाहते हैं कि भारत इस संघर्ष में लाल चीन से जीत जाए। स्वतंत्र तथा संपन्न भारत स्वतंत्र तथा संपन्न एशिया का नेता बने।" ऐसा कहकर उन्होंने भारत के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने में कोई संदेह नहीं रहने दिया। इस प्रकार जब जनवरी, 1961 में मि. कैनेडी अमेरिका के राष्ट्रपति बने तो दोनों देशों के बीच संबंधों से सुदृढ़ता आने की आशाएं सुदृढ़ हो गईं।

4. **भारत पर चीन का आक्रमण और भारत-अमेरिका संबंध–**कैनेडी के प्रशासन के दौरान 1962 ई. में, जब भारत चीन के आक्रमण का शिकार हुआ, जिसके परिणामस्वरूप उसे अमेरिका की सैनिक तथा आर्थिक सहायता की आवश्यकता पड़ी तो भारत को अमेरिका के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने का अवसर प्राप्त हुआ। अमेरिका इस संकट के समय भारत की सहायता के लिए तत्परता से आगे आया तथा इसने तुरंत ही छोटे शस्त्र भारत को भेजने शुरू कर दिए। भारत की आकाश की सुरक्षा के लिए उसे अमेरिकी हवाई सेना की सुरक्षा का आश्वासन भी दिया। नेहरू ने यह घोषणा की कि भारत सभी देशों से सहायता स्वीकार करेगा तथा उसकी प्रशंसा भी करेगा। परंतु कभी भी अपनी गुटनिरपेक्षता के साथ समझौता नहीं करेगा। इसलिए अमेरिका को केवल सीमित सहायता देने का निर्णय किया। क्यूबा के मिसाइल संकट में शामिल होना तथा रूस के साथ नए प्रकार के संबंध बनाने की अमेरिका की इच्छा ने 1962 के बाद के काल में भारत-अमेरिका संबंधों की गति में थोड़ा अवरोध पैदा कर दिया। यद्यपि इसके बावजूद 1962-63 का समय भारत-अमेरिका के संबंधों का अच्छा समय था। चीन के आक्रमण के समय तथा बाद में भारत को अमेरिका की नैतिक तथा आर्थिक सहायता ने एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया जिससे दोनों देशों के बीच संबंधों के सुधारने के उज्ज्वल अवसर स्पष्ट हो गए। यद्यपि इस आदर्श वातावरण में भी भारत-अमेरिका

संबंध कुछ नकारात्मक घटनाओं के कारण सुधर न सके। अमेरिका दबावों के अंतर्गत ही भारत को पाकिस्तान के साथ कश्मीर समस्या पर बातचीत करनी पड़ी। मई, 1963 में अमेरिका ने भारत में सार्वजनिक क्षेत्र में बोकारों में इस्पात प्लांट लगाने के लिए सहायता देने से इनकार कर दिया। नवंबर, 1963 में कैनेडी की हत्या तथा उपर्युक्त दो घटनाओं के कारण भारत तथा अमेरिका के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों की स्थापना के अवसर फिर कम हो गए।

नेहरू युग में भारत-अमेरिका संबंधों का मूल्यांकन

1947 ई. से लेकर 1964 ई. तक भारत तथा अमेरिका के संबंधों के उपर्युक्त विवरण से तनावों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि नेहरू युग में दोनों देशों के बीच सहयोग नाम की कोई चीज नहीं थी। 1950 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में भारत तथा अमेरिका के बीच आर्थिक संबंध महत्वपूर्ण ढंग से विकसित हुए। नेहरू युग में अमेरिका ने भारत को बहुमूल्य आर्थिक एवं खाद्यान्न सहायता प्रदान की। अमेरिका के राजदूत चैस्टरबाउल्स ने अमेरिका तथा भारत के बीच आर्थिक संबंधों के विकास को अच्छी दिशा दी तथा उन्हीं के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही अमेरिका ने भारत को आर्थिक एवं खाद्यान्न सहायता प्रदान शुरू किया। 1953 ई. में अमेरिका की सहायता व समर्थन से भारत सहायता क्लब की स्थापना की गई। इस क्लब के अन्य सदस्यों के साथ अमेरिका ने भी भारत की आर्थिक योजनाओं को सफल बनाने के लिए आर्थिक सहायता देना शुरू किया। इस प्रकार भारत अमेरिकी आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाला एक मुख्य देश बन गया।

मई 1960 में, भारत तथा अमेरिका के बीच पी.एल. 480 समझौता हुआ जिसके अंतर्गत अमेरिका ने रुपए के बदले कम कीमत पर भारत को अनाज देना स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त यह भी स्वीकार किया गया कि पी.एन. 480 कोष को भारतीय रिजर्व बैंक में जमा करवाया जाएगा। भारत ने अमेरिका से न केवल अनाज ही प्राप्त करना शुरू किया बल्कि भारतीय कृषि के विशेषज्ञों को प्रशिक्षण देने तथा भारत में कृषि अनुसंधान संस्थान की स्थापना के लिए अमेरिका से बहुमूल्य सहायता प्राप्त करना शुरू कर दिया। इस समय के दौरान अमेरिका ने कुछ बहुमुखी योजनाओं तथा स्वास्थ्य योजनाओं को पूरा करने के लिए भी सहायता एवं सहयोग प्रदान किया। दिसंबर, 1963 में भारत तथा अमेरिका ने एक समझौता किया जिसके द्वारा अमेरिका ने भारत को तारापुर परमाणु संयंत्र की स्थापना के लिए 8 लाख डॉलर देना स्वीकार किया। 30 वर्षीय संधि के द्वारा इसने यह भी स्वीकार किया कि भारत को पुष्ट यूरेनियम भी दिया जाएगा। प्रयोग तारापुर प्लांट में परमाणु ईंधन के रूप में होगा इससे परमाणु तकनीकी के क्षेत्र में भारत-अमेरिका सहयोग के एक नए युग का सूत्रपात हुआ।

इस प्रकार नेहरू युग में भारत अमेरिकी संबंधों में कई एक संपर्क सूत्र पैदा हुए, परंतु राजनीतिक स्तर पर उनके संबंध तनावपूर्ण तथा दबावपूर्ण ही रहे।

शास्त्री जी के काल में भारत-अमेरिकी संबंधों का इतिहास (1964-1966)

जब शास्त्री जी प्रधानमंत्री बने तो भारत तथा अमेरिका के संबंध धीरे-धीरे निश्चित रूप से सुधर रहे थे। राष्ट्रपति जानसन भारत के प्रति उदारवादी ही बने रहे थे जैसा कि राष्ट्रपति कैनेडी ने शुरू किया था। भारत से तारापुर संयंत्र के संबंध में किया गया समझौता

तथा भारत को मिलने वाली निरंतर खाद्य सहायता ने भारत तथा अमेरिका के आपसी संबंधों के लिए अच्छा वातावरण उत्पन्न कर दिया था।

1965-66 काल में दो मुख्य धक्के–यद्यपि भारत तथा अमेरिका के संबंधों को 1965 में दो मुख्य धक्के लगे–

(क) पहला 1965 ई. के प्रारंभ में जब अमेरिका वियतनाम युद्ध में बुरी तरह संलिप्त हो गया तथा उत्तरी वियतनाम के ठिकानों पर बम वर्ष करने की आज्ञा देकर अमेरिका द्वारा युद्ध को और भड़का देने का निर्णय किया गया तो भारत ने इसका कड़ा विरोध किया तथा इसकी आलोचना की। भारत तथा अमेरिका के संबंध बहुत कटु हो गए तथा 16 अप्रैल 1965 को जब राष्ट्रपति जॉनसन ने श्री लाल बहादुर शास्त्री, जो उन दिनों अमेरिका की यात्रा पर जाने वाले थे, उनका स्वागत करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो इससे संबंध अपने निम्नतर स्तर पर पहुंच गए। अमेरिका का यह निर्णय भारत ने अपने अपमान के रूप में लिया तथा अमेरिका विरोधी भावनाओं का ज्वार आ गया।

(ख) दूसरे 1965 ई. में फिर जब पाकिस्तान ने आक्रमण किया तो अमेरिका की प्रतिक्रियाएं भारत के पक्ष में नहीं थीं। अमेरिका ने पाकिस्तान द्वारा भारत के विरुद्ध अमेरिकी पैटन टैंकों तथा दूसरे शस्त्रों के प्रयोग के विरुद्ध न कुछ किया तथा न ही इसकी आलोचना की। अमेरिकी आइजनहॉवर द्वारा नेहरू को दिए गए इस वचन की रक्षा न कर सका कि पाकिस्तान अमेरिकी शस्त्रों का भारत के विरुद्ध प्रयोग नहीं करेगा। अमेरिका की पाकिस्तान समर्थक नीति शास्त्री युग में भारत-अमेरिका संबंधों की बड़ी रुकावट बन गई। चीन की पाकिस्तान के साथ बढ़ती मैत्री के बावजूद अमेरिका पाकिस्तान के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलने के लिए तैयार नहीं हुआ। इसने संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में कश्मीर समस्या के राजनीतिक हल के लिए बहस पर बल दिया। यह भारत की इस विचारधारा के बिलकुल विपरीत था कि कश्मीर भारत का एक अभिन्न अंग है। थोड़े ही समय में ही इन दो धक्कों ने भारत तथा अमेरिका के संबंधों को तनावग्रस्त कर दिया। पी.एल. 480 के अंतर्गत खाद्य सहायता के अतिरिक्त अमेरिका द्वारा दी जाने वाली सभी सहायता बंद कर दिए जाने के कारण दोनों देशों के संबंध काफी सीमित हो गए। 'दक्षिण एशिया में रूस का प्रभाव बढ़ रहा है' इसके बारे में अमेरिका की आशंकाएं सोवियत संघ द्वारा भारत तथा पाकिस्तान के बीच ताशकंद समझौता होने से और भी पुष्ट हो गई जिससे अमेरिका तथा भारत के संबंधों में और भी उदासीनता आ गई।

1966 से 77 तक भारत-अमेरिका संबंधों का इतिहास (प्रथम इंदिरा काल)

1. **श्रीमती इंदिरा गांधी की अमेरिका यात्रा तथा उसका प्रभाव**–1965 में भारत तथा अमेरिका के संबंधों में जो ठहराव तथा उदासीनता आ गई थी उसे 1966 ई. में समाप्त करने का प्रयत्न किया गया। जनवरी 1966 ई. में श्रीमती इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री बनी तो राष्ट्रपति जॉनसन ने न केवल उन्हें बधाई दी बल्कि उन्हें अमेरिका द्वारा भारत की सहायता का भी अश्वासन दिया। उन्होंने श्रीमती गांधी को अमेरिका आने का निमंत्रण दिया। 28 मार्च, 1966 को श्रीमती गांधी

टिप्पणी

अमेरिका गईं तथा भारत-अमेरिका संबंधों में सुधार के लिए राष्ट्रपति जॉनसन से बातचीत की। भारत उस समय खाद्यान्न की भीषण कमी के दौर से गुजर रहा था तथा उसे अमेरिकी सहायता की आवश्यकता थी। यद्यपि इस यात्रा से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। भारत-अमेरिकी शैक्षणिक संस्था की स्थापना के लिए एक योजना बनाई गई, किंतु यह लागू न की जा सकी क्योंकि भारत के अधिकांश लोगों ने इसका कड़ा विरोध किया। अमेरिका खाद्यान्नों की आपूर्ति की कमी को समाप्त करने पर राजी तो हो गया, परंतु केवल उस समय ही जब भारत सरकार ने भारत के रुपए का अवमूल्यन कर दिया।

वियतनाम तथा मध्यपूर्व युद्ध के संबंध में भारत तथा अमेरिका के मतभेद सातवें दशक के मध्य तक दोनों देशों के संबंधों में रुकावट बने रहे। बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में अमेरिका की विदेश नीति में जो परिवर्तन देखने को मिला उसने स्थिति और भी निराशा जनक बना दी। इस समय तक अमेरिका में (1) एशिया में रूस के बढ़ते प्रभाव से, (2) पाकिस्तान के चीन के साथ निकटता के संबंध से तथा (3) भारत के संबंध में सहायता की थकान से काफी असंतोष उत्पन्न हो गया था। अमेरिका ऐसे समय में दूसरे देशों के साथ एक नया संबंध संतुलन कायम करने के बारे में सोचने लगा। रूस के प्रभाव को रोकने और अधिक सहायता देने की इसकी नीति अब परिवर्तित हो गई। इसलिए भारत को सहायता मिलनी कम हो गई। अमेरिका की नीति में यह परिवर्तन तथा भारत के साथ रूस के बढ़ते संबंधों के कारण भारत तथा अमेरिका के संबंधों में नकारात्मक विकास हुआ।

2. **इंदिरा बनाम निक्सन–**अमेरिकी प्रशासन के निक्सन युग में भारत तथा अमेरिका के संबंध अत्यधिक तनावपूर्ण व अमैत्रिक हो गए। जैसे कि टी.एन. कौल कहते हैं, "निक्सन के अमेरिका ने सारी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को एक अलग मोड़ देने के लिए नई प्रकार की रणनीति विकसित की। इसने अमेरिकी शक्ति की सीमाओं को माना तथा एशिया में अमेरिका द्वारा प्रतिबद्धता को कम करने के दृढ़ निश्चय को मान लिया।" बी.आर. नैयार का मत है, "इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका की प्रथम कर्ता की स्थिति को बनाए रखने की प्रमुख प्रेरणाएं थीं : सोवियत रूस की विस्तृत हो रही भूमिका को सीमित करना, वियतनाम से अमेरिकी सैनिकों को हटाने की प्रक्रिया का आरंभ करना तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में तीसरे कर्ता के रूप में चीन से पुनर्मेल करने की ओर कदम बढ़ाना।" चीन के साथ पुनर्मेल का निक्सन के विचार का मुख्य तत्व था–चीन की बढ़ती परमाणु योग्यता। इस प्रकार इस समय के दौरान भारत के प्रति अमेरिका की विदेश नीति शिथिल हो गई। इसे भारत तथा सोवियत संघ की बढ़ती मित्रता तथा एशिया की सुरक्षा और हिंद महासागर क्षेत्र से संबंधित अमेरिकी दृष्टिकोण को स्वीकार करने तथा उसे महत्व देने की भारत की अस्वीकृति अच्छी नहीं लगी।
3. **बांग्लादेश युद्ध तथा भारत-अमेरिका संबंध–**भारत-अमेरिका संबंधों का निम्नतर स्तर 1971 में आया जब भारत ने पहले रूस के साथ शांति तथा मित्रता की संधि की तथा फिर बांग्लादेश के साथ युद्ध में संलिप्त हो गया। अमेरिकियों ने रूस तथा भारत की इस संधि का कड़ा विरोध किया तथा इसे भारत की विदेश नीति का रूस की तरफ विश्वासात्मक झुकाव माना। कुछ अमेरिकी लेखकों ने तो यहां तक

कह दिया कि इससे भारत की गुटनिरपेक्षता खत्म हो जाती है। दूसरी ओर भारत ने इस आलोचना का कड़ा उत्तर दिया। 1971 ई. में भारत तथा पाकिस्तान युद्ध के दौरान अमेरिका पाकिस्तान समर्थक बना। इसने पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के लिए भारत की कड़ी आलोचना की। निक्सन प्रशासन ने तो भारत पर दबाव डालने के लिए 'गन बोट डिप्लौसी' का प्रयोग करने का प्रयत्न किया। इसने बंगाल की खाड़ी में अपने सातवें बेड़े को तैनात कर दिया। इसने भारत को आर्थिक सहायता तथा सुरक्षा उपकरणों की आपूर्ति बंद करवा दी। भारत द्वारा बांग्लादेश की मुक्ति वाहिनी की सहायता और अमेरिका द्वारा भारत को बांग्लादेश नीति की आलोचना तथा विरोध ने मिलकर दोनों देशों के संबंधों को निम्नतर स्तर पर ला खड़ा किया। यद्यपि इस युद्ध में पाकिस्तान की हार तथा बांग्लादेश की मुक्ति ने दक्षिण एशिया में सामरिक वातावारण को ही बदल दिया तथा इसके परिणामस्वरूप भारत इस क्षेत्र की मुख्य शक्ति के रूप में उभर कर सामने आ गया। इससे अमेरिका की नीति को एक झटका लगा जो भारत तथा पाकिस्तान को समान स्तर पर रखने पर आधारित थी। भारत तथा अमेरिका के संबंध कटु हो गए तथा कई महीने तक रहे। 1971 के युद्ध के बाद भारत ने उत्तरी वियतनाम के साथ अपने कूटनीतिक संबंधों को उच्चस्तरीय बनाने का निर्णय लिया। 1972 ई. में जैस एंड्रसन के आलेखों के प्रकाशन से निक्सन के प्रशासन का भारत विरोधी पक्ष खुलकर सामने आया। इसके अतिरिक्त वाशिंगटन- पीकिंग पीड़ी के साथ बढ़ते संबंधों को भारत संदेहास्पद समझता था। ये सभी तत्व भारत-अमेरिकी संबंधों में मुख्य रुकावट तत्व बने रहे।

4. **आठवें दशक में भारत-अमेरिका संबंध**–सन् 1972 ई. के अंतिम महीनों में भारत तथा अमेरिका के संबंधों में एक सुधार आ गया। इसका आरंभ तब हुआ जब अमेरिका ने सहायता संघ की इस इच्छा को स्वीकार कर लिया कि भारत ऋण को पुनः निर्धारित किया जाए। भारत ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके साथ-साथ हैनरी किसगिर का यह कहना कि अमेरिका भारत को दक्षिण ऐशिया की बड़ी शक्ति मानता है तथा डेनियल पी. मोनिहन के भारत में अमेरिका का राजदूत बन कर आने से 1971 ई. से चले आ रहे तनावपूर्ण संबंधों में एक सुखद वातावरण पैदा हो गया। दिसंबर 1973 में पी.एल. 480 कोष की जमा हुई राशि का 2/3 भाग माफ कर देने के अमेरिकी निर्णय ने भारत अमेरिकी संबंधों में सुधार के अवसरों को बढ़ावा दिया। यद्यपि इस नई प्रवृत्ति में वियतनाम पर भारत तथा अमेरिका के बीच तू-तू मैं-मैं, डियागो गार्शिया के मुद्दे, सी.आई.ए. के क्रियाकलाप तथा मार्च 1973 पाकिस्तान को अमेरिकी शस्त्रों की पुनः आपूर्ति से बाधा पड़ी। 18 मई, 1974 को भारत ने अपना पहला शांति पूर्ण परमाणु विस्फोट किया तथा वह इस प्रकार परमाणु क्लब में शामिल हो गया। भारत के शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट की अमेरिकी नेताओं एवं जनता ने कड़ी आलोचना की। अमेरिका भारत की परमाणु नीति के प्रति संदिग्ध हो उठा। इसने महसूस किया कि भारत का शांतिपूर्ण विस्फोट दूसरे देशों को भी परमाणु देश बनने को उत्साहित करेगा तथा इस प्रकार एशिया में शस्त्र-दौड़ तेज हो जाएगी, फिर भी भारत ने शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु तकनीक को विकसित करने के अपने अधिकार के औचित्य के संबंध में दृढ़ तर्क प्रस्तुत किया।

अक्टूबर, 1974 में अमेरिका के विदेश मंत्री डॉ. हैनरी किसिंगर भारत आए तथा उन्होंने अमेरिका और भारत की विदेश नीतियों, पूर्वाग्रहों तथा निर्णयों के बीच की दरार को पाटने का प्रयत्न किया। 28 अक्टूबर, 1974 को आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक सहयोग पर संयुक्त भारत-अमेरिका आयोग की स्थापना के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इसके द्वारा भारत तथा अमेरिका ने इस क्षेत्रों में परस्पर सहयोग को बढ़ावा देने का निर्णय लिया गया। अमेरिका तथा रूस के बीच दतां के प्रादुर्भाव, 1973 में वियतनाम युद्ध की समाप्ति, हैनरी किसिंगर तथा राष्ट्रपति फोर्ड के उत्साह प्रदान करने वाले कथन तथा अमेरिका द्वारा भारत को पुनः आर्थिक सहायता देना आदि ने भारत तथा अमेरिका के बीच अच्छे संबंधों के विकास के अवसरों को सुदृढ़ कर दिया।

श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा भारत में आपातकाल की घोषणा की अमेरिका द्वारा आलोचना बहुत ही हानिकारक तथा नकारात्मक सिद्ध हुई। 17 सितंबर, 1975 को राष्ट्रपति फोर्ड ने भारत में लोकतंत्र पर आए इस खतरे पर बड़ी निराशा व्यक्त की। अमेरिकी विद्वानों तथा राजनेताओं ने खुल कर श्रीमती गांधी को तानाशाह कहना शुरू कर दिया तो भारत सरकार ने इसका विरोध किया। 1975 से लेकर मार्च 1977 के बीच पनपे भारत सोवियत सहयोग ने अमेरिका को और भी नाराज कर दिया। इन सबके परिणामस्वरूप भारत तथा अमेरिका के संबंध एक बार फिर बिगड़ गए। इस प्रकार भारत में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के प्रथम काल में भारत तथा अमेरिका के संबंध मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगात्मक तो रहे, परंतु इनमें गरिमा न थी तथा प्रायः इनमें तनाव तथा खिंचाव के कारण बिगाड़ उत्पन्न होता रहा।

1991-1999 के दौरान भारत अमेरिकी संबंध

1947 से 1990 तक उतार-चढ़ाव से गुजरने के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की उत्तर शीतयुद्ध तथा उत्तर सोवियत संघ युग में भारत अमेरिका में कुछ सुखद परिवर्तन आया। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में गहरे तथा बड़े-बड़े परिवर्तनों के प्रभावाधीन, भारत तथा अमेरिका दोनों ने ही एक-दूसरे के महत्व तथा गोपनीयता को समझना शुरू कर दिया–

(क) **1990 के दशक के परिवर्तन तथा अमेरिका के अवबोधन–**1990 के आसपास भारत के आंतरिक वातावरण तथा इसके साथ-साथ बाहरी वातावरण के प्रभाव के अधीन भारत की नीति में परिवर्तन तथा आर्थिक उदारवाद, अपनाए जाने के कारण अमेरिका प्रसन्न हो गया तथा इसने भारत की आवश्यकताओं की ओर अधिक ध्यान देने का निर्णय किया। भारत के साम्यवादी अर्थव्यवस्था को मंडीकृत अर्थव्यवस्था में बदलने के प्रयत्नों, भारत द्वारा इस्राइल के साथ संबंध बढ़ाने का निर्णय, सियोनवाद तथा आतंकवाद को बराबर मानने के विरुद्ध मतदान तथा इसके साथ खाड़ी में सामूहिक युद्ध के अमेरिका के निर्णय के पक्ष में तथा फिर दोषी इराक के विरुद्ध सामाजिक, आर्थिक व्यापार दंड विधान थोपने के पक्ष में संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत का मतदान तथा हिंद महासागर में भारत-अमेरिका के सांझे नौ सैनिक अभ्यास के पक्ष में भारत के निर्णयों ने लोकतांत्रिक भारत की अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का अधिक स्थायी तथा सुचारु सदस्य बनाने तथा इसका समर्थन करने के लिए अमेरिका के नीति निर्माताओं को विशिष्ट रूप से प्रभावित किया। एशिया की मुख्य शक्ति के

टिप्पणी

रूप में, एक तेजी से विकासशील आर्थिक औद्योगिक तकनीक शक्ति के रूप में, संभावित परमाणु शक्ति के रूप में, तथा दो में से एक सबसे बड़ी उपभोक्ता मंडी वाले लोकतांत्रिक देश जिसका अमेरिकी उपभोग कर सकते थे इन सब तत्वों ने उत्तर-शीतयुद्ध काल में अमेरिका की नीति में परिवर्तन लाने के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

इन सबके अतिरिक्त पाकिस्तान की ओर से परमाणु शक्ति के रूप में उभरने के खतरे, इस्लामिक कट्टरवादी देश के रूप में इसकी भूमिका तथा इसका एक ऐसे देश के रूप में सामने आना जिससे खाड़ी युद्ध में अपने सैनिक भेजकर परंतु इसके साथ-साथ मुस्लिम देश होने के कारण इराक को समर्थन देकर दोहरी भूमिका निभाई। इन सबसे अमेरिका काफी असंतुष्ट हो गया। फिर केंद्रीय एशिया तथा पश्चिम एशिया में इस्लामी कट्टरवाद को सुदृढ़ होने के प्रति अमेरिकी आशंकाएं, साम्यवाद का लगभग अंत तथा साम्यवाद के प्रतिभार का संतुलन के रूप में इस्लामी राज्यों की आवश्यकता न रहना, अमेरिका की दृष्टि में भारत का साम्यवादी चीन का समकक्ष होना, फिलीपीन में अमेरिकी अड्डों की समाप्ति, एशिया में राजनीति स्वरूप को प्रभावित करने की आवश्यकता, जापान आदि के साथ आर्थिक शीतयुद्ध के उभरने की संभावना आदि सभी ने विश्व राजनीति, विशेषतया एशिया की राजनीति में भारत के महत्व तथा संभावित भूमिका ने अमेरिकी लोगों को उचित रूप से अवगत करवा दिया। अमेरिका ने यह अनुभव किया कि "इस्लामी पश्चिम एशिया तथा ईसाई पश्चिम जिसमें अमेरिका भी शामिल है के बीच भारत है, जिसका प्रभाव बड़ा संतुलित हो सकता है।" ऐसा अवबोधन भारत तथा अमेरिका के बीच मिलन बिंदु बन गया।

(ख) **1990 के दशक के परिवर्तन तथा भारतीय अवबोधन**—इसी तरह भारत के भूतपूर्व मित्र सोवियत संघ के विघटन, भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले दबाव, भारत की यह अनुभूति कि अमेरिका भारत की आर्थिक सहायता का सबसे बड़ा साधन बन सकता है, उत्तर सोवियत संघ युग में चीन तथा पाकिस्तान की तुलना में भारत की सुरक्षा आवश्यकता, यह एहसास कि एक ध्रुवीय युग में दुनिया की एकमात्र सर्वोच्च शक्ति अमेरिका के साथ अच्छे संबंध आवश्यक हैं। सोवियत संघ के उत्तराधिकारी के रूप में भारत की आर्थिक सुरक्षात्मक तथा व्यापारिक आवश्यकताओं को पूरा करने में रूस की असमर्थता, विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ऋणों तथा सहायता की (जो निश्चित रूप से अमेरिका से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित रहती है) भारत की आवश्यकता, संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में स्थायी स्थान प्राप्त करने की भारत की इच्छा, जिसकी पूर्ति अमेरिका के सहयोग के बिना संभव नहीं थी आदि सभी तत्वों ने भारत को भी बाध्य कर दिया कि वह भारत-अमेरिकी संबंधों के विभिन्न क्षेत्रों आर्थिक, राजनीतिक तथा तकनीकी एवं सैनिक में अमेरिका की मैत्री एवं सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करे तथा अमेरिका के साथ संबंधों का विकास करे।

इस प्रकार भारत तथा अमेरिका दोनों ने ही उत्तर-शीतयुद्ध तथा उत्तर-सोवियत संघ युग में एक दूसरे के महत्व को अधिक अच्छे रूप से पहचानना आरंभ कर दिया। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग करके अपने संबंधों को सुधारने का प्रयत्न करने

का निर्णय किया। भारतीय तथा अमेरिकी लोगों के बीच मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक संबंध जो कि अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा तथा बाद में ब्रिटेन के साथ युद्ध के द्वारा 1789 में अमेरिका के अस्तित्व में आने से पनपे थे इस प्रक्रिया को शुरू करने के लिए प्रेरणा स्रोत बने। मई, 1992 तक विश्व के दो सबसे बड़े लोकतंत्रों के बीच बढ़ते सुरक्षा सहयोग का युग शुरू करने के लिए भारत तथा अमेरिका हिंद महासागर के बीच सांझे नौ सैनिक अभ्यास करने की स्थिति में आ गए थे। भारत द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाने ने भी यह आवश्यक बना दिया कि अमेरिका जैसे राज्य के साथ आर्थिक संबंधों को अधिक उच्च स्तरीय तथा व्यापक बनाया जाए।

(ग) **1991-98 के बीच भारत-अमेरिका संबंधों का स्वरूप तथा प्रगति–**भारत तथा अमेरिका के बीच संबंधों में कुछ सकारात्मक परिवर्तन सोवियत संघ के विघटन की प्रक्रिया के साथ ही शुरू हो गए थे। भारत के विकास के समाजवादी रास्ते को विश्वसनीयता की समाप्ति के साथ ही कोई स्वीकार्य विकल्प ढूंढने की आवश्यकता महसूस की थी। 1991 में भारत के बजट में अवमूल्यन, लाइसेंसों तथा नियंत्रण की समाप्ति, निजीकरण, विदेशी निवेशकों के लिए उत्पादन क्षेत्र को खोलना, बहुराष्ट्रीय निगमों को भारत में निवेश के लिए निमंत्रण देना आदि कई कदम उठाए गए। ये सारे कदम अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक के मार्गदर्शन के अंतर्गत उठाए गए। 1992 के बजट में भी यही प्रक्रिया अपनाई गई तथा व्यापार, औद्योगिक तथा वाणिज्य के क्षेत्रों में और अधिक उदारवाद का आरंभ किया गया। वास्तव में, 1991-98 तक की अवधि के दौरान भारत ने उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण के सिद्धांतों के आधार पर अपनी अर्थव्यवस्था को संचालित किया तथा इस प्रगति ने अमेरिका को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया। भारत द्वारा अपनाई गई नीतियों विशेषतया आयात नीति में उदारता, विनियंत्रण तथा रुपये का आंशिक अवमूल्यन की अमेरिका के प्रशासन तथा व्यापार के बाजार में बहुत प्रशंसा हुई। अमेरिका को भारत अमेरिकी वस्तुओं के निर्यात का बड़ा उपभोक्ता लगने लगा तथा अमेरिकी विशेषज्ञों के भारत आने का मार्ग खुल गया। अमेरिका से बहुत-से अधिकारी नई दिल्ली आने लगे। सभी ने विभिन्न क्षेत्रों में भारत-अमेरिका मैत्री तथा सहयोग की आवश्यकता की बात की। अमेरिका की दृष्टि में परिवर्तन ने भारत-अमेरिका संबंधों के नए सकारात्मक आयाम दिए थे। नई विश्व व्यवस्था के आविर्भाव से संयुक्त राज्य के प्रशासन ने पाकिस्तान तथा चीन की तुलना में भारत के महत्व को पहचानना शुरू कर दिया।

भारत ने खाड़ी संकट तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद में खाड़ी युद्ध की निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में अमेरिका के साथ सहयोग किया और सियोनवाद तथा आतंकवाद को बराबर समझने के संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव को रद्द करने के पक्ष में वोट दिया। भारत के इन निर्णयों ने अमेरिका को प्रसन्न कर दिया तथा उस समय तो और भी प्रशंसा हुई जब भारत ने इस्राइल को पूर्ण राजनीतिक मान्यता दे दी। एशिया के मुस्लिम देशों के बीच विशेषत: भूतपूर्व सोवियत संघ के केंद्रीय एशियाई गणतंत्रों के बीच इस्लामिक कट्टरवाद के प्रादुर्भाव में निहित खतरों के बारे में सांझे अवबोधनों ने भी भारत तथा अमेरिका दोनों को ही अपने द्विपक्षीय संबंधो को नए तथा स्वस्थ आयाम देने के लिए प्रेरित किया। कश्मीर के मुद्दे पर

टिप्पणी

अमेरिका का दृढ़ता से कहना कि इस समस्या को शिमला समझौते के आधार पर परस्पर बातचीत द्वारा सुलझाया जाए भारत के पक्ष में अमेरिका के रवैये में एक सुखद परिवर्तन बना। नवंबर, 1992 में अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति बुश ने कहा था कि भारत तथा पाकिस्तान को दक्षिण एशिया में परमाणु शस्त्रों के मुद्दे पर पैदा हुए अंतरों को कम करने के लिए आगे आना चाहिए। पहले वाले कठोर विचारों से यह विचार काफी सौम्य था। इसलिए भारत और अमेरिका ने अपने व्यापार की मात्रा को बढ़ाना शुरू कर दिया तथा दोनों द्वारा शस्त्रापूर्ति तथा तकनीकी हस्तांतरण के बारे में समझौते किए गए। दोनों ने ही मई 1992 में हिंद महासागर में सांझा नौ सैनिक अभ्यास किए।

बुश के स्थान पर अमेरिका के नए डेमोक्रेट राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के चुनाव के बाद भारत ने नवंबर 1992 में एक उच्च-स्तरीय प्रतिनिधि मंडल अमेरिका भेजा ताकि डेमोक्रेटिक पार्टी के नेताओं की इस नई परिवर्तित टीम के साथ राजनीतिक संबंध और समझ स्थापित की जा सके। भारत ने यह प्रयत्न इसलिए किया ताकि बढ़ते हुए भारत-अमेरिकी संबंधों तथा सहयोग की प्रक्रिया को और अधिक स्थायी तथा सुदृढ़ बनाया जा सके। राष्ट्रपति बिल क्लिंटन तथा उनके सहयोगियों ने भी यह घोषणा की कि वे भारत के साथ संबंधों की शक्ति को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार भारत तथा अमेरिका के द्विपक्षीय संबंधों में सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों में समकालिक वर्षों में विकास का वातावरण और अधिक अच्छा तथा प्रफुल्लित हो गया।

भारत अमेरिकी सहयोग के मार्ग में कई रुकावटें विद्यमान रहीं। परिवर्तित अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत के साथ संबंधों के नए महत्व को अच्छी तरह समझने के बावजूद अमेरिका ने भारत के विरुद्ध सुपर 301 लागू करने, परमाणु अप्रसार तथा सी.टी.बी.टी. संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए भारत को प्रभावित करने तथा भारत के मिसाइल प्रयोग पर रोक लगाने के लिए मिसाइल तकनीक नियंत्रण व्यवस्था को भारत पर लागू किए जाने का प्रयत्न किया। 27 अगस्त, 1992 के ट्रिब्यून में छपे पत्र 'अमेरिका के अवबोधन में भारत' के लेखक जे.डी. सेठी के शब्दों में, "भारत की अपने आपको एक ऐसी स्थिति में, जो हर प्रकार से बदल चुकी है तथा जो भारत के पक्ष में नहीं है, में ढालने की हिम्मत की परीक्षा लेने के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका पुचकारने और डांटने की नीति लागू कर रहा है।" "वाशिंगटन, भारत-अमेरिका संबंध बढ़ाने के बदले में भारत से सर्वोच्च कीमत ऐंठने का प्रयत्न कर रहा है, उसका विश्वास है कि भारत कमजोर तथा संवेदनशील है।"

मई 1994 में तत्कालीन प्रधानंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने अमेरिका की यात्रा की तथा भारत-अमेरिका संबंधों को एक नई गतिशीलता प्रदान करने प्रयास किया। एक संयुक्त घोषणा में भारत तथा अमरिका ने लोकतंत्र, मानवाधिकार तथा आर्थिक उदारवाद की उपयोगिता को स्वीकार किया तथा इन्हें विश्व शांति, स्थायित्व तथा खुशहाली के लिए आधारभूत सिद्धांत माना गया। दोनों देशों के नेताओं ने यह माना कि भारत और पाकिस्तान को सभी मुद्दों, कश्मीर सहित, पर द्विपक्षीय वार्ता करनी चाहिए, जैसा कि शिमला समझौते में निहित है। पहली बार राष्ट्रपति क्लिंटन ने

ऐसा कहा। इस यात्रा के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग के लिए हस्ताक्षर किए गए। इस यात्रा के बाद अक्टूबर, 1994 में अमेरिकी घोषणा कि वह भारत के विरुद्ध सुपर 301 का प्रयोग अभी नहीं करेगा, ने अमेरिका-भारत संबंधों को अच्छा बनाने का मार्ग बना दिया, परंतु बाद के महीनों में भारत-अमेरिकी सहयोग तथा संबंधों की गति धीमी ही बनी रही। जनवरी, 1995 में अमेरिकी प्रतिरक्षा मंत्री श्री पैरी तथा अमेरिकी वाणिज्य मंत्री श्री रोनाल्ड ब्राउन ने भारत का दौरा किया। प्रतिरक्षा क्षेत्र तथा वाणिज्य एवं व्यापार के क्षेत्रों के संबंधों के विकास के लिए कई एक समझौतों के स्मरण-पत्रों पर हस्ताक्षर किए गए। इनसे यह आशा बनी कि भारत-अमेरिका संबंध अब अधिक तीव्रता तथा प्रभावी रूप से विकसित होंगे। अमेरिका ने भारत में 2.6 बिलियन डॉलर पूंजी निवेश, ऊर्जा, संचार क्षेत्रों में करने का समझौता किया। लेकिन अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को शस्त्र आपूर्ति करने के निर्णय, भारत पर एन.पी.टी. और प्रस्तावित सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डालने के उपक्रम, भारत पर मिसाइल नियंत्रण कानून लागू करवाने के निर्णय आदि ने भारत-अमेरिका संबंधों में विकास की प्रकृति को धुंधला तथा इसकी प्रगति की गति को धीमा ही बनाए रखा। दोनों देशों के संबंधों में उतार-चढ़ाव, का वातावरण ही बना रहा। मई, 1996 में भारत ने जम्मू-कश्मीर में लोकसभा चुनावों को काफी कठिनाइयों के बावजूद सफलतापूर्वक संपन्न करवाया लेकिन अमेरिकी प्रशासन तथा प्रेस ने नकारात्मक रुचि को प्रदर्शित किया जब यह कहा गया कि कश्मीरी लोगों को मतदान करने के लिए विवश किया गया था। ऐसे विचार भारत-अमेरिका संबंधों की प्रगति में बाधक ही बने।

अमेरिकी राष्ट्रपति की पत्नी श्रीमती हिलेरी क्लिंटन ने मार्च 1995 को भारत यात्रा के समय दोनों देशों के संबंधों को अच्छा बनाने का प्रयास किया। अप्रैल, 1995 में भारत तथा अमेरिका ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए एक समझौता किया। इसी समय अमेरिका ने यह स्वीकार किया कि यद्यपि भारत ने अभी भी काफी व्यापार प्रतिबंध जारी रखे थे तथापि उदारवाद की उत्पत्ति के बाद काफी प्रतिबंध समाप्त भी किए जा चुके थे। फिर सामाजिक तथा सुरक्षात्मक संबंधों को विकसित करने के लिए जून, 1995 में भारत तथा अमेरिका ने सांझे सैनिक अभ्यास किए परंतु अमेरिका ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि वह भारत को अमेरिकी हथियारों की भारी मात्रा में बिक्री तथा टेक्नोलॉजी हस्तांतरण को अस्वीकार करता था। इसके कुछ महीने बाद ही अमेरिकी प्रशासन ने पाकिस्तान को ब्राऊन संशोधन के अधीन शस्त्र आपूर्ति का निर्णय भी लिया, जिसने यह दर्शाया कि सैनिक संबंधों क्षेत्र में अमेरिका भारत की अपेक्षा पाकिस्तान को पहल देता था।

लेकिन 1996-98 के दौरान ऐसे स्पष्ट संकेत मिले जिनसे यह प्रतीत हुआ कि अब अमेरिका भारत के साथ सबंधों को अधिक महत्व दे रहा था। सितंबर, 1997 में अमेरिकी सहायता सचिव रिक इंडर फर्थ भारत आए तथा इस यात्रा में भारत-अमेरिकी संबंधों को सुधारने का प्रयास किया गया। मैडम रॉबिन राफेल द्वारा अपनाए गए नकारात्मक रवैये में परिवर्तन किया गया। अमेरिकी विदेश मंत्री मेडलीन अल्ब्राईट ने भी अपने भाषणों तथा नीति घोषणाओं में भारत के साथ संबंधों के महत्व को स्वीकार किया। अमेरिकी संबंधों, विशेषकर आर्थिक सहयोग

टिप्पणी

के विकास की कामना की। अमेरिका ने यह माना कि, "हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय तनावों का निपटारा क्षेत्रीय दलों के पारस्परिक फैसलों तथा व्यवहारों से ही होगा। हम मध्यस्थता नहीं करना चाहते...।"

जब सितंबर 1997 में प्रधानमंत्री श्री गुजराल संयुक्त राष्ट्र महासभा को संबोधित करने गए तो इस अवसर का लाभ उठाकर उन्होंने अमेरिकी राष्ट्रपति श्री क्लिंटन से एक उच्च स्तरीय बैठक 22 सितंबर को की। दोनों नेताओं ने आपसी संबंधों पर तथा विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर वार्तालाप किया तथा दोनों में आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों में तीव्र बढ़ोतरी करने के उद्देश्य का पूर्ण समर्थन किया। इस अवसर पर भारत तथा अमेरिका के उच्च स्तरीय अधिकारियों मंत्रियों की भी बातचीत हुई। अमेरिका ने यह आश्वासन दिया कि वह कश्मीर के संबंध में मध्यस्थता नहीं करना चाहता लेकिन इस मुद्दे के हल के लिए भारत-पाकिस्तान द्विपक्षीय वार्ता का समर्थन करता है। अमेरिका ने भारत तथा उसके पड़ोसियों के साथ विकसित हो रहे आर्थिक संबंधों एवं सहयोग की प्रशंसा की। भारत ने अमेरिका के साथ अपने आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों में नई सक्रियता लाने के उद्देश्य का पूर्ण समर्थन किया। सी.टी.बी.टी. के मुद्दे पर भी बातचीत हुई तथा भारत ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्दों में अमेरिका को बतलाया। दोनों नेताओं ने परमाणु निःशस्त्रीकरण के लिए एक साझा कार्यक्रम बनाने की संभावना पर विचार करने का निर्णय लिया। इस तरह भारत अमेरिकी वार्तालाप ने निश्चय ही दोनों देशों के संबंधों को एक अच्छी दिशा देने का प्रयास किया। ऐसा स्पष्ट दिखाई दिया कि दोनों देश राजनीतिक मुद्दों को एक तरफ रख कर आपसी आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों को तेजी से बढ़ाने के लिए आगे आ रहे थे। राष्ट्रपति क्लिंटन द्वारा भारत आने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया जाना इस आशा का प्रतीक बना। ऐसा समझा गया कि अब भारत और अमेरिका अपने आर्थिक संबंधों को अच्छी गति देने का प्रयास कर रहे थे।

लेकिन भारत के राजनीतिक वातावरण में नवंबर-दिसंबर, 1997 में हुए परिवर्तन ने श्री क्लिंटन की भारत यात्रा को स्थगित करने का कार्य किया और भारत-अमेरिकी संबंधों में होने वाले तीव्र सुधारों की आशा को आगे आने वाले समय पर निर्भर बना दिया। मार्च 1998 में भारत में प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी वाजपेयी की बी. जे.पी. गठबंधन वाली सरकार ने सत्ता संभाली तथा अमेरिका के साथ संबंधों को तेजी से विकसित करने की नीति पर चलने की घोषणा की। अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन सितंबर-अक्टूबर, 1998 में भारत की यात्रा पर आने वाले थे तथा ऐसी आशा की जाती कि सामाजिक-आर्थिक-व्यापारिक-औद्योगिक क्षेत्र में भारत-अमेरिका संबंधों को अधिक विकसित करने का प्रयास किया जाएगा। परंतु भारत द्वारा 11-13 मई को परमाणु विस्फोट किए जाने पर पारस्परिक संबंध फिर प्रश्नचिह्न के दायरे में आ गए। अमेरिका ने भारतीय परमाणु विस्फोटों तथा नई परमाणु नीति का कड़ा विरोध किया तथा प्रतिक्रियास्वरूप भारत पर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए, भारत को दी जाने वाली वित्तीय सहायता को आगे के लिए स्थगित किया तथा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद से एक प्रस्ताव पास करवा कर भारत को अपने परमाणु शस्त्र निर्माता की नीति को वापस लेने अर्थात डिब्बा बंद

टिप्पणी

करने को कहा गया। भारत ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर न करने की नीति को अपनाए रखा, अपने आपको परमाणु शस्त्र धारक देश घोषित कर दिया। आगे परमाणु परीक्षण न करने की नीति की घोषणा की, परंतु साथ ही एक न्यूनतम परमाणु शस्त्र निवारक शक्ति रखने का निर्णय भी लिया। नई भारतीय परमाणु नीति ने भारत-अमेरिकी संबंधों के लिए बाधाएं पैदा कर दीं। परंतु इनको दूर करने के लिए दोनों देशों ने उच्च स्तरीय कूटनीति तक वार्तालापों का सहारा लिया तथा वार्तालाप के कई दौर भारतीय विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह तथा अमेरिकी उप विदेश सचिव श्री स्ट्रोब हालवोट में हुए। इन वार्तालाप के दौरान दोनों देशों के संबंधों के वातावरण को सकारात्मक दिशा देने के प्रयास हुए। भारत की ओर अमेरिकी रुख सकारात्मक हुआ तो उत्तर-पोखरन के काल के प्रतिबंधों को ढीला किया गया। भारत अमेरिका संबंधों में सुधार के चिह्न फिर से दिखाई देने लगे तथा आगे जाकर ऐसा हुआ भी, जब 21वीं शताब्दी के आरंभ में अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा का कार्यक्रम बना तथा उन्होंने मार्च 2000 में भारत की सरकारी यात्रा की। इस यात्रा ने दोनों देशों के संबंधों को एक सुखद दिशा तथा गति प्रदान की।

इस यात्रा के लगभग छह महीने के बाद सितंबर, 2000 में प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने अमेरिका की यात्रा की तथा दोनों देशों में विकसित हो रहे सहयोग तथा समझौते को और दृढ़ता प्रदान की।

भारत-अमेरिका संबंध–1986-98 के दौरान भारत-अमेरिकी संबंधों में जो मधुरता तथा विकास उत्पन्न होने की प्रक्रिया उत्पन्न हुई, उसे एक बड़ा धक्का उस समय लगा जब 11 तथा 13 मई, 1998 को भारत ने पांच (3 + 2) परमाणु परीक्षण करने के बाद अपने को परमाणु शस्त्रधारक देश घोषित कर दिया तथा अमेरिकी प्रशासन ने इसकी न केवल कड़ी आलोचना की अपितु कुछ अन्य देशों ने मिलकर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद से भारत की नई परमाणु नीति तथा शस्त्रों के विरुद्ध एक प्रस्ताव भी पारित करवाया तथा भारत को अपना परमाणु शस्त्र कार्यक्रम समाप्त कर सी.टी.बी.टी. पर एकदम हस्ताक्षर करने के लिए कहा। अमेरिका ने यह माना कि भारतीय परमाणु परीक्षण पाकिस्तान को परमाणु परीक्षण करने के लिए प्रेरित करेंगे तथा दक्षिण एशिया में एक भयंकर और हानिकारक दौड़ आरंभ हो जाएगी। जब भारत के परमाणु परीक्षण के 15 दिन बाद पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण कर परमाणु शस्त्र प्राप्त करने की घोषणा की तो अमेरिका का रुख और भी कड़ा हो गया तथा भारत-अमेरिकी संबंध एक प्रकार से गतिहीन हो गए।

भारत ने अपनी नई परमाणु नीति के विरुद्ध अमेरिकी प्रतिक्रिया को सहज रूप में लिया। अपने परमाणु शस्त्र कार्यक्रम को जारी रखने का निर्णय लिया तथा सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर न करने की नीति अपनाए रखी। परंतु अमेरिका के साथ संबंधों के महत्व तथा आवश्यकता को देखते हुए उससे उच्च स्तरीय वार्तालाप आरंभ करने का निर्णय लिया। 12 जून, 1998 को श्री जसवंत सिंह (जो बाद में विदेश मंत्री बन गए) तथा अमेरिकी उपविदेश सचिव श्री स्ट्रोब टालवोट के मध्य उच्च स्तरीय वार्तालाप का पहला दौर हुआ। जून 1998 से जनवरी 1999 के मध्य सुरक्षा, परमाणु अप्रसार तथा नि:शस्त्रीकरण के मुद्दों पर वार्तालाप के आठ दौर हुए। दोनों देश परमाणु मुद्दों पर अपने

मतभेदों को कुछ कम करने में सफल हुए। मार्च, 1999 में अमेरिकी कांग्रेस के एक मंडल ने भारत का दौरा किया तथा भारत-अमेरिकी सहयोग संभावनाओं पर भारतीय नेताओं के साथ बातचीत की, परंतु अप्रैल, 1999 में बी.जे.पी. नेतृत्व वाली साझी सरकार लोक सभा में विश्वास मत प्राप्त न कर सकी तथा एक कार्यवाहक सरकार बन गई। इससे भारत अमेरिकी वार्तालाप में कुछ शिथिलता आ गई लेकिन इसके बाद के कुछ महीनों में अमेरिका ने भारत के विरुद्ध उत्तर-पोखरन काल के आर्थिक प्रतिबंधों को कुछ ढीला कर दिया।

मई-जून, 1999 में भारत तथा पाकिस्तान के मध्य भड़के कारगिल युद्ध के समय अमेरिका ने एक वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाया। इसने पाकिस्तान को नियंत्रण रेखा के उल्लंघन से वापस हटने को कहा, दोनों देशों से नियंत्रण रेखा का सम्मान करने को कहा तथा दोनों देशों से वार्तालाप आरंभ करने को कहा। इससे पाकिस्तान ने रेखा के उल्लंघन करने वालों को वापस बुलाया। भारत के संतुलित तथा संयम की प्रशंसा भी की। पाकिस्तान द्वारा कारगिल क्षेत्रों से घुसपैठ समाप्त करवाने में अमेरिका ने एक अच्छी भूमिका निभाई। इसने भारत अमेरिकी संबंधों के वातावरण को और भी सकारात्मक तथा सुखद बना दिया।

25 जुलाई, 1999 को विदेश मंत्री जसवंत सिंह तथा अमेरिकी विदेश सचिव मैडम अल्ब्राइट के मध्य सिंगापुर में एक बैठक हुई। इसने दोनों देशों के संबंध में गुणात्मक परिवर्तन किया। दोनों देशों ने एक दूसरे के विचारों को अधिक अच्छी प्रकार से समझा। सी.टी.बी.टी. पर मतभेद के बावजूद अमेरिका ने कश्मीर मुद्दे पर एक अच्छी सोच को प्रकट किया। यह बैठक उद्देश्यपूर्ण, मित्रतापूर्ण तथा उत्पादक रही।

जुलाई-अगस्त 1999 में भारत अमेरिकी संबंधों के वातावरण में और सुधार हुआ। भारत ने कारगिल युद्ध के मुद्दे पर अमेरिकी नीति की प्रशंसा की। क्योंकि इसमें पाकिस्तान को कारगिल घुसपैठ समाप्त करने के लिए कहा गया था। अमेरिकी कांग्रेस में पेश भारत विरोधी दो संशोधनों-गुडलिंग संशोधन तथा बर्टन संशोधन के रद्द किए जाने को भी भारत सरकार ने सराहा तथा इसे शुभ संकेत माना। ऐसा स्पष्ट दिखाई दिया कि चिर-परिचित भारत विरोधी अमेरिकी रवैया अब परिवर्तित हो रहा था तथा अमेरिका भारत को अब महत्व दे रहा था। सितंबर 1999 में अफगानिस्तान संकट पर भारत अमेरिका वार्तालाप हुआ तथा दोनों देशों ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के उभर रहे संकट पर चिंता व्यक्त की तथा इसके विरुद्ध सहयोगी प्रयासों की आवश्यकता को स्वीकार किया।

भारत में 13वीं लोक सभा के चुनावों के पश्चात 13 अक्टूबर, 1999 को राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की सरकार का गठन हुआ। यह भारत में लोकतंत्र की सफलता का एक बड़ा प्रतीक माना गया तथा अमेरिका ने इस पर प्रसन्नता व्यक्त की। इसके एक दिन पहले पाकिस्तान में लोकतंत्रीय सरकार का गला दबा कर सैनिक शासन की स्थापना हुई थी जिसकी अमेरिका ने तीखी आलोचना की। अमेरिका ने भारत में लोकतंत्र की सफल प्रक्रिया, बढ़ती आर्थिक प्रगति तथा तकनीकी विकास विशेषकर सूचना तकनीक विकास को देखते हुए भारत के साथ संबंधों को आर्थिक महत्व देने की नीति अपनाई।

दिसंबर 1999 में जब भारतीय वायु सेना का एक हवाई जहाज IC-814 को इस्लामिक आतंकवदियों ने अगवा कर कंधार (अफगानिस्तान) में उतार लिया तो अमेरिका ने इसकी कड़े शब्दों में निंदा की तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के

टिप्पणी

पक्ष में कार्य करने की नीति को दोहराया। भारत तथा अमेरिका ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए सहयोग करने का निर्णय किया तथा इससे भी दोनों देशों के संबंध दृढ़ हुए।

भारत तथा अमेरिका के संबंधों के वातावरण में जो सकारात्मक परिवर्तन जून, 1998 से दिसंबर 1999 के दौरान आए उसके आधार पर अमेरिकी राष्ट्रपति ने 21वीं शताब्दी के तीसरे महीने में ही भारत की यात्रा करने का निर्णय लिया। इस यात्रा ने निश्चय ही भारत-अमेरिकी संबंधों को एक उत्तम, आवश्यक तथा अत्यंत सहयोगी स्वरूप देने का कार्य किया और नई शताब्दी में भारत-अमेरिकी संबंध तेजी से विकसित होने लगे।

सन् 2001 के आरंभ में भारत अमेरिकी संबंधों को बहुत अच्छा प्रोत्साहन उस समय मिला जब नये राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू. बुश के प्रशासन ने विदेशी संबंधों में भारत को अधिक महत्व दिए जाने का निर्णय लिया। अमेरिका के विदेश सचिव जनरल पावले ने फरवरी, 2001 में अमेरिकी सीनेट में कहा कि अमेरिकी विदेश नीति में भारत को एक अच्छी पहल देनी आवश्यक थी। क्योंकि भारत एक परमाणु शस्त्र संपन्न देश है। अब यह अपनी अर्थव्यवस्था को मुक्त व्यवस्था बना रहा है। भारत को पहल देने की क्लिंटन प्रशासन की नीति को बुश प्रशासन ने जारी रखने का निर्णय लिया। इस निर्णय ने भारत-अमेरिकी संबंधों के विकास को प्रोत्साहित किया।

फरवरी 2001 में बुश प्रशासन ने इंग्लैंड द्वारा भारतीय नौ सेना को सीकिंग हैलीकॉप्टर की आपूर्ति किए जाने के संबंध में लगाई गई पाबंदी को समाप्त कर दिया और यह भी संकेत मिला कि पोखरन-2 के बाद अमेरिका द्वारा भारत पर लगाई गई पाबंदियों को भी नरम किया जाएगा। अप्रैल 2001 में भारतीय विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह ने अमेरिका का दौरा किया तथा बुश प्रशासन के साथ उच्च स्तरीय संबंध स्थापित किए। उन्हें राष्ट्रपति बुश के साथ भी बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा से यह भी स्पष्ट संकेत मिला कि अब भारत तथा अमेरिका आपसी संबंधों को अधिक स्वस्थ, सहयोगी तथा दृढ़ बनाने का प्रयास कर रहे थे।

यद्यपि अमेरिका ने पाकिस्तान को आतंकवाद समर्थक देश तो घोषित न करने का निर्णय लिया तथापि इसने कश्मीर के मुद्दे पर भारतीय सकारात्मक दृष्टिकोण की महत्ता को स्वीकार करना आरंभ कर दिया। बुश प्रशासन के द्वारा यह विचार भी प्रकट किया गया कि विद्यमान पार-सीमा आतंकवादी के पीछे पाकिस्तान के राष्ट्रपति का आशीर्वाद विद्यमान था। भारत और अमेरिका ने एक बार फिर अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद का सामना करने के लिए आपसी सहयोग को बढ़ाने का निर्णय दोहराया। दोनों देशों में परमाणु अप्रसार के मुद्दे पर तो मतभेद विद्यमान रहे, परंतु दोनों ने एकदूसरे के विचारों को अधिक अच्छी तरह समझना आरंभ कर दिया। अब यह भी अनुभव किया जाने लगा कि अमेरिका एशिया में चीन की तुलना में लोकतंत्रीय भारत को अधिक अधिमान देने की ओर झुक रहा था।

मई 2001 में बुश प्रशासन द्वारा घोषित राष्ट्रीय मिसाइल सुरक्षा प्रोग्राम के प्रति भारत ने समर्थन प्रकट किया और यह स्वीकार किया कि इस द्वारा शस्त्र नियंत्रण तथा नि:शस्त्रीकरण की दिशा में प्रगति होगी। इस प्रकार के भारतीय दृष्टिकोण का अमेरिका

टिप्पणी

ने स्वागत किया और अमेरिका ने यह फिर संकेत दिया कि भारत के विरुद्ध लगाए गए आर्थिक प्रतिबंधों की समाप्ति की प्रक्रिया तेज हो जाएगी तथा परमाणु टेक्नोलॉजी, दोहरे प्रयोग वाली टेक्नोलॉजी तथा कुछ प्रकार की सुरक्षा आपूर्तियों को छोड़ कर बाकी सभी प्रकार की आपूर्तियों पर से प्रतिबंध समाप्त कर दिया जाएंगे। ऐसे अनुमान ने भारत-अमेरिकी संबंधों को विकसित तथा दृढ़ बनाने के प्रयासों को अधिक शक्ति तथा उत्साह प्रदान किया।

जुलाई-अगस्त 2001 में जब अमेरिका के नव नियुक्त राजदूत श्री रावर्ट डी ब्लैक वैल भारत पहुंचे तो उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा कि भारत अमेरिकी संबंधों में बड़ा और अच्छा परिवर्तन आने वाला है। अब अमेरिका भारतीय परमाणु नीति का विरोध तथा अपने पाकिस्तान के प्रति झुकाव से बाहर आ रहा है। राष्ट्रपति बुश भारत-पाक संबंधों के अतीत से ऊपर उठकर इनको फिर से परिभाषित किए जाने का विचार रखते हैं तथा भारत पर मई 1998 के बाद लगे आर्थिक ओर सैनिक प्रतिबंध समाप्त किए जा सकते हैं। श्री ब्लैक वैल ने इंडिया टुडे के कार्यकारी संपादक श्री राज चेगप्पा के साथ बातचीत करते हुए ऐसे विचार प्रकट किए। उन्होंने यह कहा कि दोनों देशों के संबंधों को दक्षिण एशियाई परिप्रेक्ष्य से बाहर लाकर अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को चुनौतियों के संदर्भ में विकसित किया जाएगा। विश्व व्यापार व्यवस्थाओं, परमाणु शस्त्रों, आतंकवाद विरोधी, जलवायु परिवर्तन आदि मुद्दों पर बातचीत और सहयोग होगा। दोनों देश अच्छे मित्रों की तरह संबंधों का विकास करेंगे। भारत और अमेरिका विश्व में परमाणु अप्रसार के उद्देश्य की प्राप्ति की ओर कार्य करेंगे। अमेरिका के राजूदत ने यह भी स्पष्ट कहा कि अमेरिका का विश्वास है कि भारत तथा पाकिस्तान दोनों अपनी समस्याएं स्वयं परस्पर बातचीत से हल कर सकते हैं तथा दोनों को लगातार वार्तालाप करना चाहिए। कश्मीर के मुद्दे का भी दोनों देशों ने ही हल ढूंढना है। अमेरिका के पास इसके समाधान का खाका नहीं है और न ही अमेरिका मध्यस्थता या हस्तक्षेप करना चाहता है। श्री ब्लैक वैल ने यह स्वीकार किया कि आने वाले समय में भारत और अमेरिका में सुरक्षा संबंधों का विकास होगा और भारत को अमेरिकी सुरक्षा साजो सामान खरीदने की सुविधा होगी, परंतु कुछ सीमाएं तो रहेंगी और अमेरिका भारत को सब कुछ नहीं बेचेगा। इस प्रकार भारत-अमेरिकी संबंध 2001 में मध्य तक पहुंचते-पहुंचते एक नई आशा तथा विश्वास से परिपूर्ण हो गए।

11 सितंबर, 2001 को जब अमेरिका में विश्व व्यापार केंद्र तथा अमेरिकी सुरक्षा प्रतिष्ठान-पेंटागन पर आतंकवादी हमले हुए जिसमें भारी जान-माल की हानि हुई तो अमेरिका ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को जड़ से उखाड़ने का प्रण लिया। राष्ट्रपति बुश ने आतंकवाद को एक बुराई, एक कलंक, बर्बरतापूर्ण और कायरतापूर्ण और घिनौना कार्य माना तथा इस बुराई का सामना करने तथा इसकी समाप्ति के लिए कार्यवाही करना अमेरिकी विदेश नीति का सबसे प्रमुख लक्ष्य माना। अफगानिस्तान के तालिबान शासन तथा इस शासन की सुरक्षा में रह रहे सऊदी अरब के निष्कासित नागरिक ओसामा बिन लादेन को अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के जनक, रक्षक, समर्थक तथा 'नेता' मान कर अमेरिका ने इसके विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। कूटनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक कार्यवाहियों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के इस केंद्र को समाप्त करने के लिए विश्व स्तर पर एकता तथा एकजुटता स्थापित करने के लिए प्रयास आरंभ किए। इस संदर्भ में अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ अपने संबंधों को दृढ़ करना एक आवश्यकता माना क्योंकि अफगानिस्तान के तालिबान शासन के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पाकिस्तान ही एक ऐसा देश था जिसकी

टिप्पणी

धरती तथा वायुमंडल का प्रयोग किया जा सकता था। अमेरिका ने पाकिस्तान को सहयोग करने को कहा तथा पाकिस्तान ने ऐसा स्वीकार भी कर लिया, क्योंकि उसके पास कोई विकल्प नहीं था। पाकिस्तान ने अपनी तालिबान समर्थक नीति को छोड़ कर तालिबान के विरुद्ध अमेरिका का साथ देने का निर्णय लिया। अमेरिका तथा पाकिस्तान में संबंधों का एक नया दौर आरंभ हुआ।

भारत ने अमेरिका में हुए आतंकवादी आक्रमणों की न केवल घोर निंदा की अपितु अमेरिकी लोगों के साथ पूर्ण सहानुभूति भी प्रकट की, आतंकवाद विरोधी कार्यवाही में अमेरिका के साथ पूर्ण सहयोग करने की पेशकश की तथा विश्व स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए पूर्ण व्यापक तथा लगातार प्रयास करने का आह्वान भी किया। अमेरिका ने भारत के समर्थन तथा सहयोग की प्रशंसा की तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को इसके सभी स्वरूपों के साथ समाप्त करने के लक्ष्य को दृढ़ता से दोहराया। भारत ने कहा आतंकवादी संगठन और तालिबान के शासन की समाप्ति से ही अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद समाप्त नहीं हो जाएगा। इसके बाद अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के सभी केंद्रों, सभी संगठनों तथा आतंकवादियों को शरण तथा सुरक्षा देने वाले सभी देशों के विरुद्ध भी कार्यवाही की जानी आवश्यक होगी। अमेरिकी नेताओं ने अब कश्मीर घाटी में विद्यमान आतंकवाद को भी एक बुराई और मुसीबत के रूप में देखना आरंभ कर दिया।

अमेरिका की दुख की घड़ी में तथा अमेरिका द्वारा आतंकवाद के विरुद्ध छेड़े गए युद्ध (अभियान) में भारत सरकार तथा भारत के लगभग सभी राजनीतिक दलों ने सहयोग तथा यथोचित सहायता देने की नीति का अनुमोदन किया। भारत-अमेरिका संबंधों में एक नये प्रकार के सहयोग के युग के उभरने की आशा बनी। सितंबर 2001 के अंतिम सप्ताह में अमेरिका ने भारत तथा पाकिस्तान पर मई 1998 के बाद लगाए गए सभी प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया। भारत ने इस निर्णय का स्वागत किया। सितंबर में भारतीय प्रधानमंत्री के मुख्य सलाहकार तथा राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के अध्यक्ष श्री ब्रजेश मिश्र ने अमेरिका का दौरा किया तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध दोनों देशों में आपसी समझ, सहमति तथा सहयोग के संबंध में एक अच्छा आधार स्थापित करने का प्रयास किया। फिर अक्टूबर, 2001 के प्रथम सप्ताह में भारतीय विदेश तथा रक्षामंत्री श्री जसवंत सिंह ने अमेरिका की यात्रा की तथा अमेरिकी नेताओं से उच्चस्तरीय वार्तालाप किया। दोनों देशों ने आतंकवाद के विरुद्ध अपने सहयोग को और दृढ़ बनाने तथा आपसी सहयोग को विकसित करने की सहमति बनाई। भारत ने पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित सीमा पार आतंकवाद की ओर अमेरिका का ध्यान दिलाया तथा इस बात पर बल दिया कि उच्च राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध किए जा रहे युद्ध को सभी प्रकार के तथा सभी क्षेत्रों में विद्यमान आतंकवाद के विरुद्ध होना चाहिए। भारत और अमेरिका के राजनेता आपस में लगातार संपर्क बनाए हुए हैं। दोनों देशों में अब सुरक्षा क्षेत्र में भी सहयोग बढ़ाया जा रहा है। जनवरी, 2002 में भारत और अमेरिका ने एक विपक्षीय सैनिक सूचना समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसने दोनों में तकनीकी सहयोग बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त किया। यह समझौता अमेरिकी रक्षा सचिव श्री डोनल्ड रम्सफील्ड की भारत यात्रा के दौरान किया गया।

अफगानिस्तान में विद्यमान आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध के समय जब अमेरिका और पाकिस्तान के मध्य संबंधों का एक नया दौर विकसित होने लगा तो संयुक्त राज्य अमेरिका

के नेताओं ने यह स्पष्ट संकेत दिया कि पाकिस्तान के साथ स्थापित हो रहे संबंध किसी भी प्रकार में भारत के साथ अमेरिका के संबंधों को सीमित नहीं करेंगे। भारत ने भी यह स्वीकार किया कि अफगानिस्तान में विद्यमान आतंकवादी समर्थक तालिबान शासन की समाप्ति के लिए अमेरिका को पाकिस्तान के सहयोग की बड़ी आवश्यकता थी और यह तत्व भारत-अमेरिकी संबंधों के क्षेत्र को परिसीमित नहीं करेगा। भारत ने अमेरिकी वायुयानों को भारत से ईंधन भरने की सुविधा प्रदान की तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका तथा अन्य सभी देशों के साथ पूर्ण और व्यापक सहयोग करने की नीति को दृढ़ता से दोहराया।

13 दिसंबर, 2001 के दिन भारतीय संसद के विरुद्ध हुई आतंकवादी कार्यवाही की संयुक्त राज्य अमेरिका ने कड़ी निंदा की तथा इसे उदारवादी विचाराधारा तथा लोकतंत्र पर आक्रमण माना। भारत के पक्ष का समर्थन किया गया तथा पाकिस्तान पर यह दबाव डाला कि वह अपने भू-क्षेत्र में विद्यमान आतंकवादी संगठनों की कार्यवाही को समाप्ति के लिए प्रयास करे। अमेरिका ने लश्करे तैयब्बा, जैश-ए-मुहम्मद जैसे आतंकवादी संगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया। भारत-अमेरिका संबंधों में आतंकवाद की समाप्ति के मुद्दे पर पूर्ण सहमति बनी तथ दोनों देशों ने आपसी आर्थिक, राजनीतिक, सामरिक तथा सुरक्षा संबंधों को विकसित करने का निर्माण किया। दोनों देशों ने सुरक्षा सहयोग के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए तथा अमेरिका ने भारत को सुरक्षा उपकरणों को बेचने का निर्णय लिया। भारत की आतंकवाद विरोधी नीति का पूर्ण समर्थन किया, परंतु साथ ही पाकिस्तान के विरुद्ध भारत सरकार द्वारा बनाए गए सुरक्षा दबाव को सीमित रखने की इच्छा भी प्रकट की। अमेरिका ने भारत के साथ संबंधों को स्वतंत्र रूप में निर्धारित करने की नई नीति को अपनाने के संकेत दिए। वर्ष 2002 के आरंभ में भारत और अमेरिका के मध्य सुरक्षा संबंधों के विकास की और अच्छे प्रयास आरंभ किए गए। अमेरिकी सरकार ने पाकिस्तान पर आतंकवादियों के विरुद्ध ठोस कार्यवाही करने के लिए दबाव डालना आरंभ कर दिया। भारत ने यह स्पष्ट किया वह अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में सभी प्रकार के कदम (पाकिस्तान के विरुद्ध सैनिक कार्यवही के द्वारा बनाने सहित) दृढ़ रूप में उठाएगा। ऐसा लगा काफी समय के बाद अमेरिका भारत के संबंधों से अलग सरकार विकसित करने का प्रयास कर रहा था। अप्रैल 2002 में अमेरिका ने भारत की सुरक्षा आवश्यकताओं को स्वीकार करते हुए भारत के उच्च टेक्नोलॉजी राडार बेचना स्वीकार किया। इस तरह भारतीय स्थल सेना प्रमुख ने अमेरिका की यात्रा भी की। भारत और अमेरिका में उच्च स्तरीय सुरक्षा सहयोग की आशा बनी जो कि भारत-अमेरिका संबंधों में हो रही प्रगति का प्रतीक बनी।

2002 से मई 2004 के समय के दौरान भारत अमेरिका का संबंध लगातार प्रगति करते रहे। इस समय में कई एक भारतीय नेताओं और अधिकारियों ने अमेरिका की यात्राएं कीं तथा अमेरिकी नेताओं और अधिकारियों ने भारत की यात्राएं कीं। दोनों देशों ने आपसी संबंधों को और अधिक सहयोगी तथा उपयोगी बनाने के यत्न किए गए। परंतु अमेरिकी विदेश नीति में पाकिस्तान के साथ संबंधों को सामरिक रूप में अधिक विकसित करने तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, विशेषकर पाकिस्तान के साथ संबंधों को सामरिक रूप में अधिक विकसित करने तथा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, विशेषकर पाकिस्तान की ओर से भारत में प्रायोजित सीमा-पार आतंकवाद की समाप्ति के प्रति अमेरिकी तथा भारतीय दृष्टिकोणों में विद्यमान अंतर ने द्विपक्षीय संबंधों को प्रकृति तथा गति को सीमित ही बनाए

टिप्पणी

रखा। अमेरिका ने यह प्रयास तो किया कि भारत-पाकिस्तान संबंधों में विद्यमान गतिरोध तनाव तथा उग्र विरोध तो सीमित रहे तथा अफगानिस्तान में चल रहे अमेरिकी आतंकवाद विरोधी अभियान को हानि न हो, परंतु उसने पाकिस्तान में विद्यमान भारत विरोधी आतंकवादी संगठनों की गतिविधियों को रोकने के संबंध में पाकिस्तान पर अधिक दबाव न डालने की नीति चालू रखी। अमेरिका पाकिस्तान को अपने आतंकवादी विरोधी अभियान का एक कर्ता स्वीकार करता रहा तथा बाद में उसने पाकिस्तान को गैर-नाटो मित्र देश का दर्जा भी दे दिया। अमेरिका ने भारत के साथ संबंधों की प्रगति को एक उद्देश्य तो स्वीकार किया, परंतु अपनी सामरिक आवश्यकताओं और हितों को देखते हुए उसने पाकिस्तान के साथ संबंधों को विकसित करने में अधिक रुचि रखी। शब्दों में तो अमेरिका ने भारत के साथ संबंधों के महत्व को पूर्ण रूप में स्वीकार किया, परंतु वास्तविक व्यवहार में पाकिस्तान के साथ सामरिक संबंधों के विकास को प्राथमिकता ही दी, पाकिस्तान को आर्थिक तथा सैनिक सहायता देने की नीति को पुनर्जीवित किया गया। पाकिस्तान के कर्ज भी माफ किए गए। जब 14 मई, 2002 को आतंकवादियों ने कालचक पर 'आतंकवादी आक्रमण' किया तो अमेरिका ने उसकी कठोर आलोचना तो की, परंतु पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित सीमा पार आतंकवाद तथा पाकिस्तान की धरती पर विद्यमान आतंकवाद प्रशिक्षण केंद्रों की समाप्ति के लिए पाकिस्तान पर आवश्यक दबाव बनाने से परहेज ही किया। इस प्रकार 2002-04 के दौरान भारत अमेरिकी संबंध पाकिस्तानी तत्व से प्रभावित रहे, परंतु अमेरिकी और भारतीय नेताओं ने सदैव ये घोषणाएं कीं कि दोनों देशों के आपसी संबंध राष्ट्रीय हितों, आवश्यकताओं और सांझे मंतव्यों पर आधारित थे तथा किसी तीसरे देश के साथ संबंधों की प्रकृति पर निर्भर नहीं करते थे।

2002 के दौरान भारत-अमेरिकी संबंध इन्हीं तत्वों से प्रभावित रहे, परंतु साथ ही विकसित भी होते रहे। अगस्त 2002 में प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ब्रजेश मिश्र तथा विदेश सचिव पंकज सिब्बल ने अमेरिकी अवर विदेश सचिव आर्मिटेस से बातचीत की ताकि भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंधों को एक निश्चित सामरिक रूपरेखा प्रदान की जा सके। इससे पहले जून, 2002 में भारत तथा अमेरिका की सैनिक टुकड़ियों ने साझे सैनिक अभ्यास किए थे और इससे भी पहले अप्रैल 2002 में भारत और अमेरिका ने $146 मिलियन मूल्य के रक्षा सौदों पर हस्ताक्षर किए थे। दोनों देशों ने सैनिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में आपसी संबंधों तथा सहयोग का विकास करने को एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया। भारत ने अमेरिका राष्ट्रीय मिसाइल सुरक्षा प्रणाली को एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया। इस भारतीय दृष्टिकोण की अमेरिका ने प्रशंसा की तथा भारत-अमेरिका सुरक्षा और सामरिक सहयोग को विकसित करने को एक अच्छे और आवश्यक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया।

भारत-अमेरिका संबंध : मई 2004 के पश्चात

14वीं लोक सभा के चुनावों में राष्ट्रीय लोकतंत्रीय गठबंधन की सरकार की हार तथा साम्यवादी दलों के समर्थन वाली कांग्रेस की यू.पी.ए. सरकार के संगठन ने भी भारत-अमेरिकी संबंधों को कम ही उत्साहित बनाया। यू.पी.ए. की सरकार ने विदेशी संबंधों के क्षेत्र में एक संतुलन नीति अपनाने की बात कही और माना कि भूतपूर्व सरकार की विदेश नीति अनावश्यक रूप में अमेरिका के पक्ष में झुकी रही थी। यू.पी.ए. सरकार के समर्थक साम्यवादी दलों ने तो अमेरिकी नीतियों को कठोर आलोचना की तथा

अमेरिका की अपेक्षा चीन तथा रूस के साथ संबंधों को तेजी से विकसित करने तथा व्यापक बनाने की इच्छा को प्रकट किया।

टिप्पणी

मई 2004 में भारत में बी.जे.पी. के नेतृत्व वाले एन.डी.ए. के स्थान पर कांग्रेस के नेतृत्व में यू.पी.ए. सरकार सत्ता में आई। इस सत्ता परिवर्तन ने भारत–अमेरिका संबंधों में विकास को अच्छी शक्ति दी।

कांग्रेस के नेतृत्व में संगठित यू.पी.ए. सरकार ने अपने साझे न्यूनतम कार्यक्रम में अमेरिका के साथ संबंधों के विकास की आवश्यकता को स्वीकार किया। एक बार ऐसा भी प्रतीत हुआ कि साम्यवादी दलों, जिनके बाहरी समर्थन पर यह सरकार निर्भर थी, के दबाव के अधीन नई सरकार के शासन में भारत–अमेरिकी संबंधों के विकास की प्रगति धीमी ही रहेगी। परंतु जून–जुलाई 2004 में भारत सरकार ने अमेरिका के साथ संबंधों के विकास की गति को तेज करने का प्रयास किया। विदेश मंत्री नटवर सिंह ने अमेरिका की यात्रा की तथा प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने दोनों देशों के संबंधों को परंपरागत स्वरूप में मित्रतापूर्ण और अधिक से अधिक सहयोग बनाने के पक्ष में अपनी सरकार की नीति की घोषणा की। भारत–अमेरिका संबंध अच्छी प्रकार से विकसित होने लगे, परंतु भारत ने यह स्पष्ट नीति अपनाए रखी कि वह इराक में अपनी सेना की तैनाती नहीं करेगा।

भारत की इराक नीति और अमेरिका का इराक नीति में अंतर बना रहा, लेकिन दोनों ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष में आपसी सहयोग बढ़ाने तथा द्विपक्षीय संबंधों में सामाजिक भागीदारिता का विकास करने के उद्देश्यों को अपनाए रखा। ऐसा कहा जा सकता है कि आगामी कुछ महीनों में भारत–अमेरिका संबंध धीमी गति से ही विकसित होते रहेंगे। अमेरिका में राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया के पूर्ण होने के पश्चात तथा भारत में यू.पी.ए. सरकार द्वारा अपनी आरंभिक कठिनाइयों विशेषकर वामपंथी दलों द्वारा डाले जा रहे दबाव से उत्पन्न कठिनाइयों को प्रभावी रूप से नियंत्रित करने के पश्चात ही भारत–अमेरिका संबंध अधिक व्यापक स्वरूप और तीव्र गति से विकास करने लगे।

सितंबर 2004 में अमेरिका ने भारत को दोहरे उपयोग परंतु शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु तकनीक/यंत्रों की आपूर्ति का निर्णय लिया। इसी महीने डॉ. मनमोहन सिंह ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में भाग लेने के समय अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश से भी द्विपक्षीय वार्तालाप किया। दोनों देशों ने आपसी संबंधों के तीव्र तथा बहुमुखी विकास पर संतोष व्यक्त किया तथा सामरिक संबंधों के विकास की प्रगति की समीक्षा की। अमेरिका ने भारत–पाक संबंधों के क्षेत्र में हो रही प्रगति पर प्रसन्नता प्रकट की तथा भारत ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समूल समाप्ति को एक साझा उद्देश्य कहा।

इस यात्रा के दौरान यह घोषित किया गया कि भारत और अमेरिका ने सामरिक संबंधों के विकास में प्रथम पड़ाव पार कर लिया। अब इसका दूसरा पड़ाव आरंभ हो गया था और दोनों देश परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में संबंधों और भागीदारी के विकास के लिए वार्तालाप कर रहे थे। दोनों देशों ने इस बात को माना कि भारत–अमेरिकी मित्रता और संबंध अब काफी अच्छे संतोषजनक ढंग से प्रगति कर रहे थे और अमेरिका ने भारत को उच्च–तकनीक देने की प्रक्रिया पुनः चालू कर दी थी। विशेषकर अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में अमेरिका ने भारत को उच्च तकनीकी दिए जाने की बात स्वीकार कर ली थी।

फिर नवंबर 2004 में भारत सरकार ने उस समझौते की पुष्टि कर दी जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि भारत अमेरिका आपराधिक मामलों में एक दूसरे को कानूनी सहायता दिए जाने की व्यवस्था को दृढ़ करेंगे।

टिप्पणी

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की इस यात्रा ने निश्चय ही भारत-अमेरिकी संबंधों को एक अच्छा आधार प्रदान किया। यू.पी.ए. सरकार जो कि अपने समर्थन के लिए वाम दलों पर निर्भर थी, के लिए यह आवश्यक था कि भारत-अमेरिका संबंधों को अधिक शक्तिशाली आधार प्रदान किया जाए।

अक्टूबर 2004 में भारत तथा अमेरिका की नौ सेनाओं ने संयुक्त अभ्यास किए तथा ऐसे अभ्यास ने भारत-अमेरिका में विकसित होती अच्छी सकारात्मक समझ का परिचय दिया।

15 जनवरी, 2005 को भारत तथा अमेरिका ने ओपन स्काइज एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर किए जिसके अधीन दोनों देशों में ज्यादा हवाई उड़ानें होनी थीं और विमान यात्रा किराए में कमी की जानी थी ताकि दोनों देशों के लागों में आर्थिक संबंधों के विकास को अधिक अवसर मिले। जून 2005 में भारत तथा अमेरिका ने प्रतिरक्षा सहयोग रचना समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसके अधीन दोनों देशों में प्रतिरक्षा के संबंध में अधिक सहयोग किया जाना था।

नागरिक परमाणु सहयोग समझौता जुलाई 2005–जुलाई 2005 में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अमेरिका की यात्रा की तथा राष्ट्रपति जॉर्ज बुश से वार्तालाप का शिखर सम्मेलन किया। यह यात्रा एक ऐतिहासिक यात्रा सिद्ध हुई, क्योंकि अमेरिका ने अप्रत्यक्ष रूप से भारत को एक परमाणु शक्ति के रूप में मान्यता दी जब राष्ट्रपति बुश ने भारत को उच्च परमाणु तकनीक वाले उत्तरदायी राज्य की संज्ञा दी। दोनों नेताओं ने साझे समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसमें नागरिक परमाणु सहयोग को विकसित करने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय के द्वारा भारत के लिए यह संभव हो गया कि वह अपने तारापुर परमाणु ऊर्जा संयंत्र के लिए ईंधन तथा भारत में शांतिपूर्ण परमाणु तकनीकी के विकास के लिए आवश्यक परमाणु तकनीक को प्राप्त कर सके। इस समझौते ने भारत के परमाणु कार्यक्रम को वैधता प्रदान की। यह समझौता करते समय भारत ने स्वीकार किया कि वह अपने नागरिक परमाणु ऊर्जा संस्थानों को अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के निरीक्षण के लिए खोल देगा। लेकिन साथ ही यह घोषित हुआ कि भारत के सैनिक अथवा सुरक्षा के साथ संबंधित परमाणु संस्थाओं के संबंध में यह व्यवस्था लागू नहीं होगी और भारत अपनी राष्ट्रीय गोपनीयता बनाए रखने का अधिकारी होगा। यह भी निश्चित किया गया कि भारतीय परमाणु ऊर्जा नीति पर वे सभी नियम लागू होंगे जो कि पांच परमाणु शक्ति राज्यों पर लागू हो रहे थे। इस समझौते के समय भारत ने स्पष्ट कर दिया कि उस पर एन.पी.टी. संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए किसी प्रकार का दबाव नहीं था और न ही वह किसी ऐसे दबाव को स्वीकार करेगा।

भारत-अमेरिका के इस परमाणु समझौते ने निश्चय ही भारतीय परमाणु नीति को एक नई वैधता प्रदान की। भारत के लिए अब यह संभव हो गया कि वह परमाणु आपूर्ति समूह के देशों में अपनी परमाणु ईंधन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समझौते करने के योग्य होगा। भारत परमाणु ऊर्जा विकास यंत्रों को अब परमाणु ईंधन तथा उच्च परमाणु तकनीक प्राप्त होने के अवसर बढ़ गए। इस परमाणु समझौते ने निश्चय ही भारत तथा

अमेरिका में बढ़ रहे सहयोग, आपसी समझ तथा विश्वास को प्रकट किया और यह भी स्पष्ट दिखाई दिया कि अब अमेरिका अपनी विदेश नीति में भारत को अधिक श्रेष्ठ स्थान दे रहा था।

टिप्पणी

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की इस यात्रा के दौरान भारत तथा अमेरिका ने एक बार फिर यह प्रण और निर्णय दोहराया कि वे मिलकर अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष करेंगे, आपसी आर्थिक सहयोग को दृढ़ता प्रदान करेंगे, सामरिक भागीदारी को विकसित करने की दिशा में आवश्यक प्रयास करेंगे तथा वातावरण और ऊर्जा की सुरक्षा के क्षेत्र में सहयोग को विकसित करेंगे। जुलाई 2005 में हुई भारत–अमेरिका शिखर वार्ता काफी सीमा तक अत्यंत सफल रही लेकिन भारत अमेरिका भी अपनी इराक की नीति के संबंध में भारत का समर्थन प्राप्त करने में सफल न हो सका। भारत–ईरान गैस पाईप लाईन के विषय पर भी भारत और अमेरिका में मतभेद विद्यमान रहे

सितंबर 2005 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन में भाग लेने के अवसर पर एक बार फिर प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने अमेरिका की यात्रा की तथा राष्ट्रपति जॉर्ज बुश के साथ एक सफल बैठक की। दोनों देशों ने यह स्पष्ट घोषित किया कि जुलाई, 2005 में हस्ताक्षर किए गए भारत–अमेरिका परमाणु समझौते के प्रति वे पूरी तरह से प्रतिबद्ध थे। दोनों देशों ने आपसी संबंधों को और दृढ़ता प्रदान करने की आवश्यकता को दोहराया। राष्ट्रपति बुश ने यह स्पष्ट संकेत दिया कि वह भविष्य में भारत की बढ़ रही भूमिका को स्वीकार करते हैं तथा भारत और अमेरिका के संबंधों में दृढ़ता से विकास के लिए प्रतिबद्ध हैं। दोनों देशों में परमाणु ऊर्जा समझौते के संबंध में वार्तालाप हुआ तथा इस बात पर संतोष प्रकट किया गया कि दोनों देशों के लोगों तथा संस्थाओं ने इस समझौते का आमतौर पर स्वागत किया था। भारत तथा अमेरिका में भारत–पाकिस्तान संबंधों के विषय पर भी चर्चा हुई। भारत ने राष्ट्रपति बुश को यह बताया कि भारतीय जम्मू और कश्मीर में पाकिस्तान की धरती से प्रायोजित आतंकवाद अभी भी चल रहा था और शांति प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक था कि पाकिस्तान अपनी धरती से आतंकवादी गतिविधियों की समाप्ति करे अन्यथा यह स्थिति भारत–पाक शांति वार्ता के लिए एक अवरोधक का रूप ले सकती थी। पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल मुशर्रफ जो कि उसी समय संयुक्त राज्य अमेरिका में थे, ने राष्ट्रपति बुश से यह कहा कि अमेरिका को यह चाहिए कि वह भारत को जम्मू और कश्मीर में अपनी सेनाओं की उपस्थिति में कमी करने के लिए तैयार करें।

भारत और अमेरिका में ईरान की परमाणु नीति और भारत–ईरान गैस पाइप लाइन के मुद्दे पर भी विचार किया गया। अमेरिका ने यह स्पष्ट किया कि वह ईरान के परमाणु कार्यक्रम के प्रति संदेह रखता था पर वह यह नहीं चाहता था कि कोई भी देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस क्षेत्र में ईरान के साथ सहयोग करे। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने भारत–ईरान गैस पाइप लाइन के संबंध में यह स्पष्ट कहा कि भारतीय ऊर्जा आवश्यकताओं को देखते हुए पाइप लाइन बिछाने का निर्णय पूर्णतया उचित था और भारत किसी भी तरह से परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में ईरान के साथ कोई सहयोग नहीं कर रहा था और न ही ऐसा करने की इच्छा रखता था।

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की इस यात्रा ने निश्चय ही भारत–अमेरिकी संबंधों को अधिक विश्वसनीयता प्रदान की और यह बात स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आई

कि दोनों देश परमाणु ऊर्जा समझौते को उचित रूप से लागू किए जाने के प्रयास कर रहे थे। इस समझौते को लागू करने के लिए यह आवश्यक था कि अमेरिकी प्रशासन अमेरिकी कांग्रेस द्वारा पास किए गए परमाणु व्यवहार कानूनों में आवश्यक परिवर्तन करवाए। भारत ने भी यह स्पष्ट किया कि भारतीय संसद ने इस परमाणु समझौते की पुष्टि कर दी थी तथा भारत इस समझौते को पूरी तरह से लागू करने के लिए तैयार था।

इस यात्रा के बाद ऐसा स्पष्ट दिखाई दिया कि आने वाले वर्षों में भारत-अमेरिका संबंधों के विकास के लिए एक अच्छा वातावरण बनाया।

भारत-अमेरिका विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी समझौता तथा संयुक्त तथा नौ-सेना अभ्यास, अक्टूबर 2005–जुलाई 2005 में किए गए परमाणु समझौते ने भारत और अमेरिका के द्विपक्षीय संबंधों को अच्छी शक्ति प्रदान की तथा यह तेजी से आगे बढ़ने लगे। सितंबर-अक्टूबर 2005 में भारत-अमेरिका की नौ-सेनाओं ने संयुक्त सैनिक अभ्यास किए। दोनों देशों की नौ सेनाओं के अधिकारियों तथा नौ सैनिकों ने एक दूसरे के जहाजों पर जाकर आपसी अनुभवों तथा ज्ञान को साझा किया। इस सैनिक अभ्यास का उद्देश्य था समुद्री डाकू तथा समुद्र में आतंकवादी गतिविधियों को रोकने के लिए आवश्यक योग्यता में वृद्धि।

अक्टूबर 2005 में भारत तथा अमेरिका ने विज्ञान के क्षेत्र में सहयोग के लिए एक व्यापक समझौता किया। दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि ऐसा सहयोग साझी जिम्मेदारियों तथा एक-समान योगदानों पर आधारित होगा तथा यह दोनों देशों के लिए आनुपातिक रूप में लाभदायक होगा। विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी के क्षेत्रों में सहयोग के संबंध में सार्वजनिक एवं निजी संस्थाओं एवं उद्योगों ने भाग लिया था।

नवंबर 2005 में भारत-अमेरिकी वित्तीय तथा आर्थिक फोरम ने एक बैठक की जिसके बाद एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया। इसमें यह लिखा गया कि दोनों देशों ने इस बात को स्वीकार किया कि बीमा तथा पेंशन क्षेत्रों में सहयोग की आवश्यकता थी। इस बात पर भी सहमति बनाई गई कि मुद्रा सुरक्षा के क्षेत्र में तकनीकी सहयोग बना रहेगा तथा नकली मुद्राओं के प्रचलन को रोकने के लिए दोनों देश सहयोग करेंगे। दोनों देशों में इस संबंध में विश्व व्यापार और कारोबार में विकास होगा। यह भी घोषित किया गया कि भारतीय खेती बाड़ी अनुसंधान क्षेत्र में अब अमेरिकी कंपनियां भी भागीदार बन सकेंगी। इस समझौते का उद्देश्य भारत में कृषि अनुसंधान को और अधिक विस्तृत करना था तथा कृषि के क्षेत्र में भी ज्ञान के प्रयोग के अवसरों को दृढ़ता मिलनी थी।

दिसंबर, 2005 में भारत-अमेरिकी संबंधों में हो रहे सकारात्मक विकास का उस समय एक और प्रमाण मिला जब राष्ट्रपति ऐ.पी.जे. अब्दुल कलाम ने भारत-अमेरिका ईड्स नेटवर्क का शुभारंभ किया। ज्ञान के नए युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भारतीय विश्वविद्यालयों को कम्प्यूटरों के माध्यम से जोड़ने की आवश्यकता को पूरा किया जाना ईड्स नैटवर्क का उद्देश्य था। इससे भारत में उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान के कार्य को उत्साह मिलना था तथा इस संबंध में भारत के अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ईसरो, विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के विभाग तथा भारत-अमेरिका विज्ञान और टेक्नोलॉजी फार्म ने सहयोग देना था।

जनवरी 2006 में भारत-अमेरिकी संबंधों का एक अन्य सकारात्मक विकास तब आया जब अमेरिका ने यह घोषित किया कि अब उच्च तकनीक से संबंधित व्यापार के

संबंध में भारत को आयात सर्टीफिकेट प्राप्त करने की शर्त से मुक्त कर दिया गया था। इससे पहले भारत ने इसमें कुछ आयात करना होता था तो इसके साथ एक निर्यात लाइसैंस सर्टीफिकेट दिखाना होता था। इस घोषणा के बाद अब भारत के लिए उच्च तकनीक से संबंधित वस्तुओं का अमेरिका से आयात करना सरल हो गया। इस विकास से यह आशा बनी कि अब दोनों देशों में उच्च तकनीकी द्विपक्षीय व्यापार में काफी वृद्धि होगी।

प्रथम मार्च 2006 के दिन अमेरिकी राष्ट्रपति भारत की राजकीय यात्रा पर नई दिल्ली पहुंचे। इस यात्रा का उद्देश्य भारत-अमेरिकी सहयोग को दृढ़ बनाना था। इसका विशेष उद्देश्य था जुलाई 2005 में संपन्न परमाणु समझौते को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करना। राष्ट्रपति बुश तथा प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के मध्य एक महत्वपूर्ण शिखर वार्ता हुई जिसके बाद 2 मार्च 2006 को एक साझा व्यक्तव्य जारी किया गया। इस वक्तव्य में दोनों देशों के नेताओं ने द्विपक्षीय संबंधों में हो रही प्रगति पर संतोष प्रकट किया और यह विश्वास प्रकट किया कि 21वीं शताब्दी में मौजूद विश्व चुनौतियों का सामना करने के लिए भारत और अमेरिका में सामरिक साझेदारी विकसित होगी। दोनों नेताओं ने भारत-अमेरिका संबंधों को अधिक व्यापक तथा प्रौढ़ बनाने के प्रति वचनबद्धता प्रकट की।

2 मार्च 2006 को जो संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया, उसमें आर्थिक समृद्धि, व्यापार, ऊर्जा सुरक्षा, स्वच्छ वातावरण, आविष्कार, ज्ञान, अर्थव्यवस्था, विश्व सुरक्षा, लोकतंत्र विश्व के सम्मुख चुनौतियों, खेती बाड़ी, विज्ञान, टेक्नोलॉजी, एड्स तथा अन्य बीमारियों, परमाणु पृथकीकरण आदि विषयों पर विकसित समझ निर्णयों तथा समझौतों का विवरण दिया गया। इस वक्तव्य से यह स्पष्ट संकेत मिला कि अब भारत और अमेरिका आपसी संबंधों के सभी क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने के लिए कार्य कर रहे थे। आर्थिक और व्यापारिक संबंधों के क्षेत्रों के संबंध में यह लिखा गया कि दोनों देश इस बात पर सहमत थे कि ऐसा कारोबारी वातावरण विकसित किया जाए जिसमें व्यापार और निवेश अधिक उत्साहित और विकसित हों। कृषि के क्षेत्र में सहयोग में भारी वृद्धि की जानी थी। कृषि के क्षेत्र में अनुसंधान तथा ज्ञान के प्रयोग के संबंध में सहयोग किया जाना था तथा कृषि पर आधारित द्विपक्षीय व्यापार एजंडे को सफल बनाने के लिए सहयोग करें।

नागरिक एवं सैनिक परमाणु शक्ति को अलग करने के संबंध में भारत ने परमाणु पृथक्ककरण की योजना बनाई थी, उस पर व्यापक विचार-विमर्श किया गया और यह निश्चय प्रकट किया गया कि नागरिक परमाणु सहयोग समझौता को पूरी तरह से लागू किया जा सकेगा। अमेरिका ने आई.टी.आई.आर. के क्षेत्र में भारतीय भागीदारी का स्वागत किया और इस बात पर सहमति प्रकट की कि भविष्य में भारत की भागीदारिता बनी रहेगी। यह भी सहमति बनी कि दोनों देश सुरक्षा वार्तालाप को आगे बढ़ाएंगे और इस क्षेत्र में सकारात्मक सहयोग को विकसित करेंगे।

भारत और अमेरिका ने ज्ञान, अर्थव्यवस्था, नागरिक अंतरिक्ष अभियान सैटेलाइट नेवीगेशन तथा अर्द्ध साइंस (Earth Science) के क्षेत्र में सहयोग स्थापित करने के लिए सहमति बनाई। विश्व स्तरीय सुरक्षा के संबंध में इस बात पर संतोष प्रकट किया कि आतंकवाद विरोधी अभियान में दोनों देश आगे अधिक सहयोग कर रहे थे। दोनों ने यह कहा कि आतंकवाद एक विश्व मुसीबत थी जिसकी समाप्ति के लिए विश्व के सभी भागों में संघर्ष होना चाहिए। भारत और अमेरिका दोनों ने यह दृढ़तापूर्वक कहा कि दोनों

देश विश्व के सम्मुख मौजूद चुनौतियों का सामना करने के लिए लोकतंत्र को दृढ़ बनाने के लिए प्रतिबद्ध थे। भारत और अमेरिका में बढ़ रहे सुरक्षा सहयोग का दोनों नेताओं ने स्वागत किया और यह आशा प्रकट की कि प्रतिरक्षा सहयोग संरचना समझौते के आधार पर दोनों देशों में प्रतिरक्षा के क्षेत्र में सहयोग और भी विकसित हुआ।

भारत-अमेरिका परमाणु पृथक्करण समझौता–2 मार्च 2006 के दिन भारत-अमेरिका संबंधों को एक नया विश्वास प्राप्त हुआ जब भारत ने परमाणु पृथक्कीकरण के संबंध में जो योजनाएं बनाईं तथा जिसके अंतर्गत नागरिक परमाणु संयंत्रों द्वारा गैर-नागरिक या सैनिक परमाणु संयंत्रों तथा सुविधाओं के बीच में पृथक्कीकरण करना था, उसे अमेरिका ने स्वीकार कर लिया। भारत ने यह सहमति बनाई कि उसके 22 परमाणु संयंत्रों में से 14 को नागरिक परमाणु संयंत्र की श्रेणी में रखा जाएगा तथा जिसके संबंध में अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा संगठन अधीन निगरानी-सुरक्षा के अधीन लाया जाएगा तथा बाकी आठ परमाणु संयंत्रों का प्रयोग भारत अपने सैनिक परमाणु कार्यक्रम को संचालित करने के लिए अलग रखेगा तथा इस पर अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा संगठन की कोई भूमिका नहीं होगी। अमेरिका ने भारत के इस प्रस्ताव के साथ सहमति प्रकट की तथा यह स्वीकार किया कि अपने परमाणु संयंत्रों के लिए आवश्यक यूरेनियम ईंधन की आपूर्ति भारत को की जाएगी तथा विकसित परमाणु टेक्नोलॉजी के विकास में भारत की सहायता भी की जाएगी ताकि भारत अपनी बढ़ रही ऊर्जा सुरक्षा आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके।

इसके साथ यह भी स्पष्ट किया गया कि भारत भविष्य में जिन परमाणु संयंत्रों का निर्माण करेगा, उसको इच्छा तथा आवश्यकतानुसार नागरिक एवं सैनिक परमाणु संयंत्रों के रूप में परिभाषित करेगा। इस संबंध में भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होगी तथा बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के भारत सभी परमाणु शक्ति संबंधी निर्णय लेने में स्वतंत्र होगा।

परमाणु पृथक्कीकरण के लिए भारत ने कुछ पड़ावों में कार्य करना था तथा यह प्रक्रिया सन् 2014 तक पूर्ण होनी थी। अमेरिका ने परमाणु ईंधन की लगातार आपूर्ति को विश्वसनीय बनाने में भारत की सहायता करनी थी लेकिन भारत ने परमाणु प्रोग्राम के सैनिक पुर्जों के संबंध में किसी प्रकार का व्यापार नहीं करना था।

इस भारत-अमेरिकी परमाणु पृथक्कीकरण समझौते ने निश्चय ही विकसित हो रहे भारत-अमेरिकी संबंधों को एक अच्छा आधार दिया। अमेरिका ने पी-5 देशों के अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप में भारत को एक परमाणु शक्ति के रूप में स्वीकार किया तथा यह निर्णय लिया कि वह भारत परमाणु आपूर्ति समूह के 45 देशों विशेषकर यूरोपीय संघ के देशों रूस, जापान, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका से परमाणु ईंधन की प्राप्ति के योग्य हो जाएगा। इस समझौते को अमेरिका ने स्वीकार करके यह दिखलाया कि अब वह भारत को उभर रही अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अधिक महत्वपूर्ण स्थान दे रहा था तथा उसने यह स्वीकार कर लिया कि भारत उच्च परमाणु तकनीक के साथ एक जिम्मेवार राज्य था।

लेकिन कुछ आलोचकों ने यह मत दिया कि यह समझौता भारत की परमाणु प्रभुसत्ता को सीमित करेगा, क्योंकि इसके अधीन भारत के परमाणु संयंत्र अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा संगठन की निगरानी तथा सुरक्षा नियमों के अधीन आ जाएंगे तथा इससे भारत की प्रतिरक्षा समर्थता को हानि पहुंच सकती थी, लेकिन भारत के बहुत से राजनीतिक दलों, वैज्ञानिकों तथा प्रतिरक्षा विशेषज्ञों ने इस समझौते का स्वागत किया, क्योंकि इस समझौते ने भारत को एक परमाणु शक्ति के रूप में मान्यता दी थी तथा भारत

ने अभी एनपीटी पर हस्ताक्षर न करने के योग्य था तथा इसके अधीन भारत ने अपने सैनिक परमाणु प्रोग्राम को आवश्यकता के अनुसार आगे विकसित करने का अधिकार सुरक्षित कर लिया था। इस समझौते द्वारा भविष्य में भारतीय परमाणु शक्ति के विकास के संबंध में कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई थी और यह स्पष्ट तौर पर कहा गया था कि अपने भविष्य की परमाणु ऊर्जा एवं परमाणु सुरक्षा की पूर्ति के लिए भारत सभी प्रकार के फैसले करने के योग्य होगा। भारत स्वतंत्र रूप में अपनी प्रभुसत्ता की सुरक्षा की आवश्यकताओं को देखते हुए अपनी परमाणु शक्ति को विकसित करने का अधिकारी होगा।

निश्चय ही भारत अमेरिकी परमाणु समझौते ने न केवल भारत-अमेरिकी संबंधों को एक नया विश्वास और सेहत प्रदान की बल्कि इसके साथ ही परमाणु आपूर्ति समूह के देशों को भी इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे भारत की परमाणु ईंधन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहमति बनाएं। इस समझौते के बाद अमेरिकी कांग्रेस के दोनों सदनों ने इस समझौते को स्वीकार कर दिया और दिसंबर 2006 में राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने अमेरिकी कांग्रेस द्वारा पास संबंधित बिल पर हस्ताक्षर करके इसको एक कानून का स्वरूप दे दिया। अब इस समझौते को पूर्ण कानूनी स्वरूप देने के लिए एक द्विपक्षीय समझौता-123 समझौते पर वार्तालाप कर रहे हैं। इस बात की पूर्ण संभावना है कि जल्दी ही यह समझौता कर लिया जाएगा। यह आशा की जाती है कि भारत-अमेरिका परमाणु समझौता लागू होने के बाद परमाणु आपूर्ति समूह के अन्य देश भी भारत को परमाणु ईंधन की आपूर्ति करने के लिए आगे आएंगे।

समकालीन वर्षों में भारत-अमेरिका संबंध—मार्च 2006 में अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश की भारत यात्रा के पश्चात भारत तथा अमेरिका के द्विपक्षीय संबंध व्यापक रूप में विकसित होने लगे। अप्रैल 2006 में भविष्य में बिजली उत्पादन की प्रक्रिया संचालित होनी थी। इस तकनीक के अधीन पर्यावरण को दूषित करने वाली कार्बन गैस की मात्रा वातावरण में नहीं पड़नी थी। मई 2006 में भारत की ईसरो तथा अमेरिका की नासा ने एक समझौता किया जिसके अधीन अमेरिका ने भारत के चंद्रमा अभियान में भागीदारी करने पर सहमति प्रकट की और यह कहा कि भारतीय चंद्रमा मिशन चंद्रायन-1 अमेरिका के दो Payloads को भी लेकर जाएगा। इसके कुछ देर बार भारत और अमेरिका ने मानव तस्करी को रोकने के लिए एक व्यवस्था विकसित करने के संबंध में सहमति बनाई। यह भी सहमति बनी कि नशीले पदार्थों की तस्करी को रोकने के लिए भी दोनों देश मिल कर कार्य करेंगे।

जुलाई 2006 में तथा बाद में फरवरी 2007 में जब आतंकवादियों ने क्रमश: मुंबई तथा समझौता एक्सप्रेस में बम विस्फोट किए तो अमेरिका ने कड़े शब्दों में इसकी निंदा की। भारत और अमेरिका ने एक बार फिर अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए आपसी सहयोग के प्रति वचनबद्धता को दोहराया। अमेरिका ने पाकिस्तान को यह कहा कि वह पाकिस्तान में कार्य कर रहे कुछ आतंकवादी समूहों की गतिविधियों पर नियंत्रण लगाने के लिए उचित कदम उठाए। भारत और अमेरिका के आर्थिक और व्यापारिक संबंध आज लगातार विकसित हो रहे हैं। दोनों देश आपसी संबंधों के सभी क्षेत्रों में अपने सहयोग को बढ़ा रहे हैं। विशेषकर प्रतिरक्षा के क्षेत्र में दोनों देश आपसी संबंधों को अधिक दृढ़ बना रहे हैं और दोनों देशों की सेनाएं अब नियमित रूप से साझे

अभ्यास कर रही हैं। आतंकवाद की समाप्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों देश सहयोग कर रहे हैं। लेकिन भारत ने न तो इराक में अमेरिकी कार्यवाही में शामिल होने की बात को स्वीकार किया है और न ही ईरान के संबंध में अमेरिकी सोच के साथ सहमति प्रकट की है। भारत अमेरिका के साथ संबंधों का विकास व्यापक रूप में कर रहा है, परंतु साथ ही साथ वह रूस तथा चीन के साथ भी आपसी संबंधों का व्यापक एवं दृढ़ रूप में विकास कर रहा है।

टिप्पणी

समकालीन समय में भारत और अमेरिका संबंध कई एक प्रमुख तत्वों के प्रभावाधीन लगातार सकारात्मक रूप में विकसित हो रहे हैं। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण तत्व हैं–

1. अमेरिका अब भारत के आर्थिक विकास के महत्व को अधिक स्वीकार करता है। एक लोकतंत्रीय देश के रूप में भारत ने जो प्रगति की है तथा जिस प्रकार से भारतीय अर्थ व्यवस्था लगातार प्रगति कर रही है, उससे अमेरिका प्रभावित हुआ है तथा भारत के साथ अपने आर्थिक, व्यापारिक और कारोबारी संबंधों के क्षेत्र में अधिक व्यापक सहयोग स्थापित करना चाहता है। भारतीय आर्थिक बाजार विश्व का दूसरा सबसे तेजी से विकसित होने वाला बाजार बन कर उभरा है और इस तत्व ने अमेरिका को भारत के साथ संबंधों का विकास करने के लिए प्रेरित किया है।
2. भारत ने अपने प्रयत्नों से अपनी परमाणु शक्ति का विकास किया है। भारत के पास एक उत्तम विकसित परमाणु प्रौद्योगिकी है तथा भारत ने एक जिम्मेदार परमाणु शक्ति के रूप में व्यवहार किया है। इस तथ्य ने अमेरिकी जनता तथा प्रशासन को सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। इसी के आधार पर भारत-अमेरिका परमाणु समझौता किया हुआ है तथा इस समझौते ने दोनों देशों में सहयोग को विकसित करने के लिए एक अधिक सकारात्मक तथा स्वस्थ वातावरण पैदा किया है। यह समझा जाता है कि आने वाले समय में भारत और अमेरिका दोनों परमाणु प्रौद्योगिकी के विकास के क्षेत्र में तथा प्रतिरक्षा के क्षेत्र में अधिक व्यापक सहयोग स्थापित करने का प्रयास करेंगे।
3. उभर रही नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अमेरिका भारत की सक्रिय एवं दृढ़ भूमिका की संभावना को स्वीकार करता है और इसी कारण वह भारत के साथ संबंधों के विकास के प्रति अधिक उत्साहित है।
4. अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में चीन की बढ़ती हुई भूमिका तथा शक्ति के साथ-साथ चीन रूस संबंधों में विकसित हो रही सामरिक भागीदारी को देखते हुए अमेरिका यह चाहता है कि वह भारत के साथ अपने संबंधों को अधिक व्यापक तथा प्रौढ़ बनाए ताकि भारत की दृढ़ स्थिति चीन तथा रूस की बढ़ रही शक्ति पर एक अंकुश का कार्य करे।
5. विश्व राजनीति में अमेरिका एक महाशक्ति है। भारत का यह विश्वास है कि 21वीं शताब्दी की अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ अपने संबंधों का व्यापक रूप में विस्तार करना उसके लिए आवश्यक है। भारत अपनी ऊर्जा सुरक्षा की जरूरतों को देखते हुए परमाणु उर्जा तथा परमाणु प्रौद्योगिकी के विकास की आवश्यकता को समझता है और इसके लिए यह आवश्यक समझता

टिप्पणी

है कि संयुक्त राज्य अमेरिका से सहयोग प्राप्त किया जाए। अमेरिका के साथ लिए गए परमाणु समझौते के आधार पर भारत परमाणु आपूर्ति समूह के अन्य देशों से अपनी ऊर्जा सुरक्षा के लिए आवश्यक परमाणु ईंधन प्राप्त कर सकता है।

6. भारत और अमेरिकी दोनों ही आर्थिक, व्यापारिक तथा कारोबारी क्षेत्र में अपने संबंधों को विकसित करके अपनी-अपनी अर्थ-व्यवस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बना सकते हैं। भारत एक ज्ञान शक्ति संपन्न देश है जिसने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्चस्तरीय विकास किया है। अमेरिका में बसे भारतीय मूल के लोगों ने अमेरिका को भारत के साथ संबंधों के विकास के लिए प्रेरित किया है। भारत भी यह स्वीकार करता है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्च तकनीक प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अमेरिका के साथ संबंधों को अधिक व्यापक और सहयोगी बनाया जाए। इस तत्व ने भारत को अमेरिका के साथ संबंधों को अधिक सक्रियता के साथ प्राथमिकता के आधार पर विकसित करने के लिए प्रेरित किया है।
7. पिछले एक दशक में भारत और अमेरिका के संबंधों में जो महत्वपूर्ण विकास हुए हैं-सामरिक सहयोग में अगला कदम, परमाणु समझौता, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी समझौता, प्रतिरक्षा सहयोग संरचना समझोता, भारत अमेरिकी आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों में वृद्धि आदि सकारात्मक विशेषताओं ने मिल कर एक ऐसे वातावरण को पैदा किया है जिसने भारत एवं अमेरिका दोनों एक-दूसरे के साथ सभी क्षेत्रों में संबंध और सहयोग व्यापक बनाने के लिए प्रेरित हुए हैं।
8. अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति की प्रक्रिया में आज अमेरिका भारत की भूमिका तथा आवश्यकता को अधिक अच्छी तरह से स्वीकार करता है। अफगानिस्तान में आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष की प्रक्रिया में अमेरिका ने इस बात का अनुभव किया है कि आतंकवाद की जड़ें अफगानिस्तान-पाकिस्तान सीमा-क्षेत्र में मौजूद हैं। अलकायदा की समाप्ति आज अमेरिकी विदेश नीति की एक प्रमुख आवश्यकता है। अमेरिका अब पाकिस्तान पर यह दबाव बना रहा है कि उसे अपने क्षेत्र में सक्रिय आतंकवादी तत्वों को सख्ती से कुचलना चाहिए। कश्मीर के संबंध में भी अब अमेरिका का दृष्टिकोण अधिक वस्तुनिष्ठ है। इस तत्व ने भारत तथा अमेरिका के संबंधों को सकारात्मक रूप में प्रभावित किया है। भारत यह समझता है कि अमेरिका के दबाव में पाकिस्तान को अपनी आतंकवाद समर्थित नीति को समाप्त करने के लिए विवश किया जा सकता है और अमेरिका यह समझता है कि भारत के साथ अपने संबंधों को देखते हुए पाकिस्तान के ऊपर आतंकवाद की समाप्ति के लिए दबाव बनाना आवश्यक है। इस तत्व ने भी भारत तथा अमेरिकी संबंधों एवं सहयोग को अधिक विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

आज यह प्रमुख तत्व भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंधों को सकारात्मक रूप में प्रभावित कर रहे हैं। यह संतोष की बात है कि शीतयुद्ध के समय दबावों से भारत अमेरिकी संबंध अब मुक्त हो चुके हैं तथा दोनों देश अब परस्परता के आधार पर अपने संबंधों का विकास करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। यह आशा की जाती है कि आने वाले वर्षों में भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध अधिक व्यापक और दृढ़ बनेंगे। इस तथ्य को हम 21वीं शताब्दी की एक स्वाभाविक आवश्यकता भी कह सकते हैं।

जनवरी 2006 में भारत के विदेश सचिव ने अपने एक भाषण में कहा कि अमेरिकी और भारत संबंध वर्तमान समय में कई एक स्वतंत्र विकासों के कारण उत्पन्न वातावरण में विकसित हो रहे हैं। विश्व शीतयुद्ध के बाहर आ चुका है, भारत एक प्रगतिशील आर्थिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया है, विश्व में ज्ञान के आधार पर काम करने वाले समाज अधिक प्रभावी हो रहे हैं तथा 21वीं शताब्दी के वातावरण में कई एक सकारात्मक तत्व हैं जिनके कारण भारत-अमेरिकी संबंध अधिक व्यापक और सहयोगी बन रहे हैं। जुलाई 2005 में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की अमेरिकी यात्रा से लेकर अब तक भारत-अमेरिकी संबंधों ने सकारात्मक रूप से प्रगति की है तथा यह संबंध साझे मूल्यों तथा साझे हितों के आधार पर विकसित हो रहे हैं। भारत और अमेरिका के संबंधों में विकास विश्व शांति, सुरक्षा एवं विकास के लिए आवश्यक है क्योंकि दोनों ही देश आतंकवाद तथा महाविनाश के शस्त्रों की समाप्ति चाहते हैं तथा दोनों ही देश सभी क्षेत्रों में आपसी भागीदारी तथा सहयोग को विकसित करने के प्रति आज बहुत अधिक सचेत हैं।

अमेरिका आज विश्व व्यवस्था में भारत की केंद्रीय भूमिका को स्वीकार करता है। भारत अपने विकास के लिए अमेरिका के साथ संबंधों और सहयोग के महत्व के प्रति पूरी तरह जागरूक है। ऐसे वातावरण ने सभी क्षेत्रों में भारत अमेरिकी संबंधों में सहयोग के विकास की प्रक्रिया को शक्ति प्रदान की है। वर्तमान समय में भारत तथा अमेरिका आपसी संबंधों के सभी क्षेत्रों में सहयोग कर रहे हैं और दिन प्रतिदिन यह सहयोग व्यापक और दृढ़ हो रहा है।

भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका उभरते संबंध (2000 से आगे)

भारत अमेरिका के संबंध खट्टे मीठे रहे हैं भूतकाल में अधिकतर समय ये खट्टे ही रहे हैं किन्तु पिछले 2 दशकों से इनमें काफी मिठास आनी शुरू हुई है और हाल के वर्षों में तो विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र एवं सबसे पुराने लोकतंत्र के संबंधों की प्रगाढ़ता स्पष्ट नजर आने लगी है। और ऐसा दोनों देशों द्वारा आपसी सांस्कृतिक राजनैतिक व्यापारिक एवं सामरिक संबंधों को लगातार बढ़ाने कि दिशा में किये गए प्रयासों का ही परिणाम है। इस का वर्णन कुछ इस प्रकार से है।

भारत यात्रा पर आए अमेरिका के राष्ट्रपति

भारत के बढ़ते महत्व को यदि अमेरिकी राष्ट्रपतियों की भारत यात्रा से आंका जाए तो पता चलता है कि देश की आजादी के बाद के 52 सालों पर बीते 20 साल भारी हैं।

1947 से 1999 के बीच 3 राष्ट्रपति आइजनऑवर (1959), रिचर्ड निक्सन (1969), जिमी कॉर्टर (1978) ने भारत यात्रा की।

1999 से 2020 के बीच 4 राष्ट्रपति बिल क्लिंटन (2000), जॉर्ज बुश (2006), बराक ओबामा (2010, 2015) तथा डॉनल्ड ट्रम्प (2020) ने 5 बार भारत की यात्रा की।

भारत और अमेरिका के बीच हुए महत्त्वपूर्ण समझौतों का ऐतिहासिक घटनाक्रम कुछ इस प्रकार है:

- सामान्य सैन्य सुरक्षा सूचना समझौता (General Security of Military Information Agreement)-वर्ष 2002

टिप्पणी

- भारत-अमेरिका परमाणु समझौता (वर्ष 2008)
- लॉजिस्टिक्स एक्सचेंज मेमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट (Logistics Exchange Memorandum of Agreement)-वर्ष 2016
- भारत-अमेरिका सामरिक उर्जा भागीदारी (वर्ष 2017 में घोषित)
- संचार संगतता और सुरक्षा समझौता (Communications Compatibility and Security Agreement & COMCASA)-वर्ष 2018

आर्थिक मोर्चे पर देखें तो वर्ष 2000 में अमेरिका का भारत में रक्षा निर्यात 20 करोड़ डॉलर का था, जो 2014 में बढ़कर 14 अरब डॉलर तक पहुंच गया है। दोनों देशों के बीच वर्ष 2010 में द्विपक्षीय व्यापार 30 अरब डॉलर का था, जो 2015 में बढ़कर 104 अरब डॉलर पर पहुंच गया है। पांच वर्षों में इसके 500 अरब डॉलर तक पहुंचने की संभावना है (May 26, 2016)।

वर्ष 2018 में भारत और अमेरिका के बीच द्विपक्षीय व्यापार 142 बिलियन अमेरिकी डॉलर का रहा, जो वर्ष 2017 के द्विपक्षीय व्यापार से 12.6% अधिक है। ऐसे में इस यात्रा के दौरान हुए समझौते दोनों देशों की सरकारों के साथ ही व्यापार के क्षेत्र में एक सकारात्मक और स्थिर भविष्य का संकेत देते हैं (Feb 29, 2020)।

U-S- trade in goods with India
All figures are in millions of U-S- dollars

Year	Exports	Imports	Balance
2020	13,097.4	22,636.2	-9,538.8
2019	34,287.7	57,693.7	-23,406.0
2018	33,191.1	54,282.1	-21,091.1
2017	25,647.8	48,549.4	-22,901.6
2016	21,647.2	46,024.2	-24,377.1
2015	21,452.9	44,782.7	-23,329.7
2014	21,499.1	45,358.0	-23,858.9
2013	21,810.4	41,810.0	-19,999.5
2012	22,105.7	40,512.6	-18,406.9
2011	21,542.2	36,154.5	-14,612.3
2010	19,248.9	29,532.9	-10,284.1
2009	16,441.4	21,166.0	-4,724.6
2008	17,682.1	25,704.4	-8,022.3
2007	14,968.8	24,073.3	-9,104.4
2006	9,673.6	21,830.8	-12,157.3
2005	7,918.6	18,804.2	-10,885.6

भारत के साथ व्यापार के मामले में अमेरिका ने चीन को पीछे छोड़ दिया है. (Feb 24, 2020)

भारत के टॉप-5 व्यापारिक पार्टनर

- अमेरिका (+68 अरब)
- चीन (+65 अरब)

टिप्पणी

- संयुक्त अरब अमीरात (+44.8 अरब)
- सऊदी अरब (+24.6 अरब)
- हांगकांग (+21.7 अरब)
- इराक (+18.4 अरब)
- सिंगापुर (+17.9 अरब)

स्रोतः वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय

भारत का अमेरिका के साथ द्विपक्षीय व्यापार निकट भविष्य में 500 अरब डॉलर वार्षिक तक पहुंचने की संभावना है। यह बात वित्तीय सेवा परामर्श कंपनी पीडब्लयूसी और इंडो-अमेरिकन चौंबर ऑफ कॉमर्स की एक साझा रपट में कही गई है। वर्तमान में भारत-अमेरिका का द्विपक्षीय व्यापार 100 अरब डॉलर से कुछ अधिक है (Aug 28, 2016)।

समझौतों की प्रक्रिया के दौरान दो बड़े मुद्दे थे जिन पर दोनों देशों में सहमति नहीं बन पाई थी। भारत की मांग थी कि भविष्य में अगर वह परमाणु परीक्षण करता है तो उसका इस समझौते पर कोई असर न पड़े। इसके लिये अमेरिकी कानून में बदलाव की जरूरत पड़ती और अमेरिका इसके लिए तैयार नहीं था। इसके अलावा भारत परमाणु संयत्रों में इस्तेमाल हुए ईंधन पर-पूरा हक चाहता था। यानी कि बिजली पैदा करने के बाद ईंधन का क्या इस्तेमाल होता है यह भारत तय करना चाहता था। 18 जुलाई 2006 को इसे अंतिम रूप दिया गया। असैन्य परमाणु सहयोग समझौते से भारत अपने असैन्य परमाणु रिएक्टरों के लिए विश्वसनीय ईंधन आपूर्ति हासिल करने के योग्य हो गया। विदेशमंत्री प्रणब मुखर्जी और अमेरिकी विदेशमंत्री कोंडालीजा राइस ने इस द्विपक्षीय 123 समझौते पर 2008 में हस्ताक्षर किए। इसे 'असैनिक' संधि कहा गया दरअसल यह एक गहरा सामरिक एवं रणनीतिक समझौता था, इसने भारत को अहम सैन्य तकनीक और साज-सामान देने के मामले में अमेरिकी सत्तातंत्र के पुराने संदेहों और डरों को तुरंत खत्म कर दिया। साथ ही अमेरिका ने भारत और पाकिस्तान को एक तराजू पर तौलने की अपनी नीति छोड़ दी।

2009 में अमरीकी विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन की भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों बीच तीन प्रमुख समझौते हुए। समझौते रक्षा परमाणु सहयोग और अंतरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्रों में हुए अमरीकी रक्षा तकनीक और उपकरणों के आयात का रास्ता साफ होगा असैनिक परमाणु समझौते के तहत अमरीकी परमाणु रिएक्टर लगेंगे भारत अपने अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए अमरीकी उपकरण प्राप्त कर सकेगा आतंकवाद का मिल कर मुकाबला करने की प्रतिबद्धता जताई दोनों देशों के बीच असैनिक परमाणु समझौते, जलवायु परिवर्तन, परमाणु अप्रसार और अर्थव्यवस्था की चुनौतियों पर चर्चा हुई अमरीकी विदेश मंत्री ने बातचीत में आतंकवाद के खतरों पर साझा प्रयासों को आगे बढ़ाने पर भी चर्चा की।

भारत-अमेरिकी संबंधों में वर्ष 2010 मील का पत्थर बन गया। अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा इसी वर्ष पहली बार भारत आए जहां उन्होंने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की दावेदारी का समर्थन करके विश्व पटल पर उदीयमान भारत की ताकत को स्वीकार कर लिया। ओबामा प्रशासन ने कश्मीर मुद्दे पर भारत और पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता करने से साफ इनकार कर दिया। इसी वर्ष

अमेरिका और भारत ने दक्षिण पूर्व एशिया पर उप-संवाद की शुरुआत की। मुंबई हमलों के एक मुख्य साजिशकर्ता डेविड कोलमेन हेडली से पूछताछ के लिए दोनों देशों की खुफिया और सुरक्षा एजेंसियों ने परस्पर सहयोग के लिये संस्थागत तंत्र विकसित किया।

टिप्पणी

रक्षा संबंध

भारत को हथियार निर्यात करने वाले 15 देशों में अमेरिका का स्थान

1999-2003	2004-2008	2009-2013
पहला स्थान- रूस	पहला स्थान- रूस	पहला स्थान- रूस
दूसरा स्थान- इजरायल	दूसरा स्थान- इजरायल	दूसरा स्थान- अमेरिका
चौदहवां स्थान- अमेरिका	छठवां स्थान- अमेरिका	तीसरा स्थान- इजरायल

अभी हाल ही में अमेरिका भारत को विश्व का आधुनिकतम तथा विध्वंसक अपाचे तथा चिनूक हेलीकाप्टर हल्की होवित्जर तोपें सैनिकों की बंदूकें इत्यादि सप्लाई कर रहा है जबकि पहले कभी भी इतनी आधुनिक तकनीक के हथियार अमेरिका से हमें नहीं मिले थे। यह अमेरिका और भारत के संबंधों में आये बदलाव को स्पष्ट करता है।

अमेरिकी रक्षा विभाग पेंटागन ने कहा है कि इस साल के अंत तक भारत और अमेरिका के बीच द्विपक्षीय रक्षा कारोबार 18 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने की संभावना है (19 अक्टूबर 2019)।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी व यू.एस. राष्ट्रपति बराक ओबामा की वाशिंगटन में जून 2016 में हुई भेंट व मीटिंग के निर्णयों के क्रियान्वयन की प्रगति की समीक्षा तथा भारत संयुक्त राज्य अमेरिकी में द्विपक्षीय साझेदारी के महत्वपूर्ण विषयों जैसे स्वतंत्रता मूल्य, प्रजातांत्रिक व्यवस्था, वैश्विक मानवाधिकार, शांति, स्थायित्व व लैंगिक विभेदता, सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार, एवं समान अवसर व नियम इत्यादि को शामिल करने का प्रयास किए जाने पर दोनों ही पक्षों द्वारा बल दिया गया।

इसके साथ ही सामरिक रक्षा एवं प्रतिरक्षा क्षेत्रीय सलाह एवं वैश्विक मुद्दे जलवायु, उर्जा व पर्यावरण वाणिज्य, अर्थव्यवस्था एवं विकास नवोन्मेष व उद्यमिता व्यवसाय करने में आसानी स्मार्टसिटी कारपोरेशन यात्रा, पर्यटन व व्यक्तिगत संपर्क मानक समन्वय व्यापार नीति विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी स्वास्थय, शिक्षा एवं व्यक्तिगत संपर्क पर भी द्विपक्षीय संबंधों को और मजबूत करने पर बात हुई

मोदी और ट्रंप ने वर्ष 2017 में दो बार मुलाकात की। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने व्हाइट हाउस के भीतर "भारत का सबसे अच्छा दोस्त" होने का चुनावी वादा पूरा किया और इसके साथ ही वर्ष 2017 में भारत-अमेरिका संबंध नई ऊंचाइयों पर पहुंचे। भारत इकलौता ऐसा देश है जिसके लिए ट्रंप प्रशासन 100 वर्षीय योजना लेकर आया, यह सम्मान अमेरिका के शीर्ष सहयोगियों को भी प्राप्त नहीं है। ट्रंप प्रशासन ने एशिया प्रशांत क्षेत्र को हिंद-प्रशांत क्षेत्र नाम दिया। बल्कि चीन की बेचौनी को बढ़ाते हुए पूरे क्षेत्र में नई दिल्ली को और बड़ी भूमिका और स्थान भी दिया। चीन की वन बेल्ट, वन रोड परियोजना पर भी अमेरिका ने पहली बार भारत के रुख का समर्थन किया है। इसके अलावा रक्षा मंत्री जिम मैटिस के नेतृत्व में पूरे प्रशासन ने पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर से होकर गुजरने वाले चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे (सीपीईसी) को लेकर संप्रभुता का मुद्दा भी उठाया। इसके साथ ही अमेरिका ने पहली बार स्पष्ट शब्दों में कहा

कि अफगानिस्तान में पुनर्निर्माण और शांति स्थापना में भारत की एक महत्वपूर्ण भूमिका होगी। राष्ट्रपति ट्रंप ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के वॉशिंगटन दौरे के दौरान कहा कि भारत और अमेरिका के बीच संबंध पहले के मुकाबले कहीं अधिक मजबूत, कहीं अधिक बेहतर हैं। अमेरिकी सेना ने चेन्नई में मालाबार नौसेना अभ्यास के माध्यम से एक बार फिर साथ काम करने की अपनी क्षमता साबित की। वॉशिंगटन में भारतीय सेनाओं ने युद्ध अभ्यास अभियान के जरिए आतंकवाद निरोध तथा उग्रवाद निरोध अभियानों में अपने कौशल को और निखारा।

विदेश मंत्री सुषमा स्वराज और रक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण ने 6 सितंबर, 2018 को, भारत-अमेरिका 2 + 2 मंत्रीस्तरीय वार्ता के उद्घाटन पर, राज्य सचिव, माइकल आर. पोम्पे और रक्षा सचिव, जेम्स एन मैटिस का भारत में स्वागत किया। उन्होंने भारत-अमेरिका रणनीतिक साझेदारी को सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने और राजनयिक तथा सुरक्षा प्रयासों में तालमेल को बढ़ावा देने के लिए प्रधानमंत्री मोदी और राष्ट्रपति ट्रम्प की साझा वचनबद्धता के प्रतिबिंब के रूप में 2 + 2 वार्ता के शुभारंभ का स्वागत किया। उन्होंने इस प्रारूप में बैठकों को वार्षिक आधार पर जारी रखने का संकल्प किया।

इसके साथ ही रक्षा और सुरक्षा भागीदारी को सुदृढ़ बनाना भारत-प्रशांत और इससे परे क्षेत्र में भागीदार समृद्धि और लोगों के आपसी संबंधों को प्रोत्साहन मंत्रियों ने दोनों देशों के रणनीतिक साझीदार, विश्व मामलों में प्रमुख और स्वतंत्र हितधारक होने की स्थिति को स्वीकार करते हुए, द्विपक्षीय, त्रिपक्षीय और चतुपक्षीय प्रारूपों सहित क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर मिलकर काम करने की प्रतिबद्धता स्वीकार की। मंत्रियों ने, भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रमुख रक्षा साझेदार (एमडीपी) के रूप में पदनामित करने के रणनीतिक महत्व की पुष्टि की और भारत की एमडीपी स्थिति के दायरे को विस्तारित करने और रक्षा संबंधों को मजबूत करने तथा बेहतर रक्षा और सुरक्षा समन्वय और सहयोग को बढ़ावा देने के कदमों पर पारस्परिक रूप से सहमति व्यक्त की। उन्होंने द्विपक्षीय रक्षा व्यापार में तेजी से वृद्धि और हाल के वर्षों में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा भारत को प्रदान की जाने वाली प्रौद्योगिकी और उपकरणों के स्तर में गुणात्मक सुधार पर ध्यान दिया। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा, भारत को लाइसेंस मुक्त सामरिक व्यापार प्राधिकरण (एसटीए-1) के अंतर्गत लाइसेंस मुक्त निर्यात, पुनः निर्यात और हस्तांतरण के पात्र देशों के शीर्ष स्तर में शामिल करने का स्वागत किया और रक्षा सामग्रियों और रक्षा निर्माण आपूर्ति श्रृंखला में दोनों तरफ के व्यापार में विस्तार के समर्थन के लिए अन्य साधनों का पता लगाने हेतु प्रतिबद्धता व्यक्त की। उन्होंने एक संचार संगतता और सुरक्षा समझौते (सीओएमसीएएसए) पर हस्ताक्षर किए जाने का स्वागत किया, जो भारत को उन्नत रक्षा प्रणालियों तक पहुंच की सुविधा प्रदान करेगा और वर्तमान अमेरिकी मूल प्लेटफॉर्म का बेहतर उपयोग करने में सक्षम बनाएगा।

मोदी और ट्रंप ने मिलकर सितंबर 2019 में अमेरिका में हाउडी मोदी कार्यक्रम में एक भरे हुए स्टेडियम में भाषण दिया फिर फरवरी 2020 में अहमदाबाद में दुनिया के सबसे विशाल क्रिकेट स्टेडियम विश्व में दोनों शक्तिशाली नेताओं ने एक बार फिर भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के लोगों से संवाद किया।

अमेरिका लगातार दूसरे साल 2019-20 में भी भारत का सबसे बड़ा व्यापार साझेदार बना रहा, जो दोनों देशों के बीच बढ़ते आर्थिक संबंधों को दर्शाता है। वाणिज्य मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार, 2019-20 में अमेरिका और भारत के बीच द्विपक्षीय

टिप्पणी

व्यापार 88.75 अरब अमेरिकी डॉलर रहा, जो 2018-19 में 87.96 अरब डॉलर था। अमेरिका उन चुनिंदा देशों में एक है, जिनके साथ भारत का व्यापार अधिशेष है। आंकड़ों के अनुसार 2019-20 में दोनों देशों के बीच व्यापार अंतर बढ़कर 17.42 अरब डॉलर भारत के पक्ष में रहा । 2018-19 में अधिशेष 16.86 अरब डॉलर था। अमेरिका 2018-19 में चीन को पीछे छोड़कर भारत का शीर्ष व्यापारिक साझेदार बन गया था। भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार 2019-20 में घटकर 81.87 अरब डॉलर रह गया, जो 2018-19 में 87.08 अरब डॉलर था। दोनों देशों के बीच व्यापार अंतर भी 53.57 अरब डॉलर से घटकर 48.66 अरब डॉलर रह गया। आंकड़ों के मुताबिक चीन 2013-14 से 2017-18 तक भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार था। चीन से पहले, यूएई देश का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार था।

अमेरिका के दो शीर्ष सांसदों (Two top American lawmakers) ने कहा कि भारत के प्रति चीन के "आक्रामक रवैये" के मद्देनजर अमेरिका और भारत के करीबी संबंध (India & US relationship) बहुत मायने रखते हैं. अमेरिका और भारत के बीच मजबूत द्विपक्षीय संबंधों को द्विदलीय समर्थन दर्शाते हुए प्रतिनिधि सभा की विदेश मामलों की समिति के अध्यक्ष एलियॉट एंगल एवं रैंकिंग सदस्य माइकल टी मैककॉल ने भारत के विदेश मंत्री एस.जयशंकर को लिखे पत्र में कहा कि दोनों दलों के सदस्य भारत एवं अमेरिका के बीच मजबूत संबंधों के 21वीं सदी पर मजबूत प्रभाव को समझते हैं।

वैश्विक महामारी COVID-19 के दौर में भारत व संयुक्त राज्य अमेरिका अभूतपूर्व सहयोग प्रदर्शित कर रहे हैं। यह सहयोग न केवल स्वास्थ्य क्षेत्र बल्कि ऊर्जा सुरक्षा, रक्षा क्षेत्र, तकनीकी क्षेत्र तथा सामरिक क्षेत्र में भी लगातार बढ़ रहा है। भारत-चीन सीमा पर हुई हिंसक झड़प के बाद से अमेरिका और भारत के संबंधों में घनिष्ठता दिखाई दे रही है। इन परिस्थितियों में भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका का समर्थन भी प्राप्त हुआ है।

बहरहाल, भारतीय सीमा पर हुई हिंसक घटना को छोड़ भी दें तो पिछले कुछ समय से चीन के व्यवहार को लेकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता बढ़ी है। ऐसा सिर्फ सामरिक मामलों में ही नहीं बल्कि व्यापार से जुड़े मुद्दों पर भी हुआ है। यही कारण है कि अमेरिकी राजनीति आज समान रूप से चीन के प्रभाव को प्रतिसंतुलित करना चाहती है और भारत इस उद्देश्य को भलीभांति पूरा करता है । पूर्वी लद्दाख तथा दक्षिण चीन सागर में चीन का रुख किसी कारणवश नरम हो जाए तो भी भारत या बाकी दुनिया का व्यापारिक समीकरण उसके साथ पहले जैसा नहीं रह पाएगा।

भारत पाकिस्तान के संबंधों के सन्दर्भ में वर्ष-1999 में पहली बार अमेरिका के द्वारा भारतीय पक्ष का सीधा समर्थन किया गया था। वर्ष-1999 के कारगिल संघर्ष के दौरान अमेरिका ने स्पष्ट रूप में भारत के दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कहा कि-

पाकिस्तान को नियंत्रण लाइन का पालन करना चाहिए।

किसी भी सैन्य कार्यवाही द्वारा नियंत्रण रेखा परिवर्तित करने का विरोध किया।

समस्या का समाधान द्विपक्षीय रूप में करने का समर्थन किया।

29 मार्च 2019 को आतंकवाद निरोधक संयुक्त कार्यदल एवं सुझाव संवाद पर भारत-अमेरिका की संयुक्त वार्ता हुई जिसमें आपसी सहयोग को बढ़ाने पर विचार किया गया।

अगस्त 31, 2016 को दोनों ही पक्षों द्वारा आंतकवाद के सभी रूपों की आलोचना की गयी तथा विश्व में आंतक के पर्याय कई आंतकवादी संगठनों के नेटवर्क को जैसे

टिप्पणी

अलकायदा, जैश ए मोहम्मद, आईएसआइएल, लश्कर ए तैययबा, जैश, डी कंपनी व हक्कानी नेटवर्क। दोनों ही पक्षों द्वारा पाकिस्तान को 2008 में मुम्बई बम धमाकों के लिए 2016 में पठानकोठ में विस्फोट के दोषियों को सजा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय दबाव डालने के संयुक्त प्रयास किए गए। सीमा पार देशों से किसी देश की सीमा में आतंकवाद फैलाने वाले संगठनों को समाप्त करने के प्रयासों की भी चर्चा हुई। 2005 में जारी दोनों पक्षों के आंतकवाद पर जारी संयुक्त घोषणा पत्र में विश्वव्यापी आंतकी खतरों से निपटने के व्यावहारिक पहलुओं एवं समन्वित प्रयासों एवं कारगर तरीकों के प्रस्ताव पर विस्तार से चर्चा हुई। वाशिंगटन में जुलाई 2016 में आयोजित भारत अमेरिका संयुक्त समूह की मीटिंग के दौरान आंतकवाद से पूरी तरह से मुकाबला करने के बारे में चर्चा के महत्वपूर्ण पहलुओं पर जोर दिया गया। इस संदर्भ में आतंकवाद से संबंधित किसी भी प्रकार की सूचनाओं के आदान प्रदान, परस्पर विधिक सहायता को भी विषेष महत्व दिया गया। दोनों पक्षों ने आंतकवादियों से निपटने के लिए मजबूत व तकनीकी रूप से सक्षम एक फ्रेमवर्क तैयार करने तथा आंतकवाद के खिलाफ संयुक्त प्रयासों के क्रियान्वयन के लिए प्रतिबद्धतता दर्शायी।

दोनों ही पक्षों ने बढ़ते हुए वैश्विक आंतकवाद एवं हिंसा से निपटने के लिए एक शक्तिशाली व सृदृढ नेटवर्क तैयार करने तथा वैश्विक समन्वय की आवष्यकता पर बल दिया तथा धार्मिक कट्टर पंथी, राजनैतिक वारदातों इत्यादि कारणों से आतंकवादी गतिविधियों की भर्त्सना की गयी ।

आतंकवादियों द्वारा परमाणु, रासायनिक, जैव हथियारों एवं अन्य रेडियोधर्मी हथियारों के प्रयोग को ध्यान में रखते हुए 2016 में वाशिंगटन में आयोजित परमाणु सुरक्षा समिट के प्रस्तावों की दोनों पक्षों द्वारा पुष्टि की गयी ।

दोनों देशों ने अपने अपने देशो की प्रतिरक्षा एजेन्सियों के बीच एक पूर्ण द्विपक्षीय सहयोग नीति की प्रतिबद्धतता को दर्शाया तथा इस वर्ष के अंत तक भारत अमेरिका घरेलू सुरक्षा चर्चा के अगले चरण को पूर्ण करने पर भी सहमति व्यक्त की गयी ।

चीन द्वारा अपने सभी पड़ोसियों से सीमा विवाद, दक्षिण चीन सागर में उसके अवैधानिक अधिकार की चेष्टा, भारत के साथ LAC पर की जा रही जबरन अधिकार व उकसावे की एकतरफा कार्यवाई, Covid 19 को विश्व में फैलाने के कुत्सित आरोपों के संदर्भ में अमेरिका, उदार लोकतांत्रिक भारत की क्षमता एवं महत्व को भलीभांति समझ रहा है और इसके आलोक में भारत अमेरिका के आर्थिक, सामरिक एवं राजनैतिक संबंधों का भविष्य उज्ज्वल दिखाई देता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. भारत–अमेरिका संबंधों में अवरोधों को वर्गीकृत किया जा सकतस है–
   (क) सामान्य अवरोध (ख) विशिष्ट मतभेद
   (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) कोई नहीं
2. अमेरिकी विदेश नीति का 'बड़े पैमाने पर प्रतिकार' सिद्धांत किस अमेरिकी राष्ट्रपति के कार्यकाल में प्रतिपादित हुआ?
   (क) आइसनहावर (ख) निक्सन
   (ग) रूजवेल्ट (घ) केनेडी

टिप्पणी

3.3 रूस के साथ संबंध

भारत के सोवियत संघ के सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध काफी प्राचीन रहे हैं। 17वीं सदी में भारत के बहुत सारे व्यापारी रूस गये और वोल्गा नदी क्षेत्र में बस गए। 1917 का रूसी क्रांति का भारत के स्वाधीनता संघर्ष पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। 1927 में जवाहरलाल नेहरू ने सोवियत संघ की यात्रा की। 1939 के सोवियत जर्मन समझौते, सोवियत सेना द्वारा पोलैण्ड तथा फिनलैंड पर आक्रमण की नेहरू ने काफी आलोचना की। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत ने शीत–युद्ध से स्वयं को दूर रखते हुए स्वतंत्र विदेश नीति को अपनाया। 1949 में नेहरु ने सोवियत संघ के विश्व साम्यवाद के विस्तारवादी रूप को एशियाई देशों की शांति व स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया। परन्तु 1949 में भारत–रूस संबंधों को उस समय नई दिशा मिली जब दोनों देशों के बीच पहला व्यापारिक समझौता हुआ। 1950 में कोरिया संकट (Korean Crisis) के उत्पन्न होते ही भारत–सोवियत संघ संबंधों को करारा झटका लगा। इस युद्ध में भारत ने अमेरिका का पक्ष लिया। इससे सोवियत संघ के मन में भारत के प्रति रोष पनपना स्वाभाविक ही था। परंतु जब भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की सेनाओं को 38वीं अक्षांश रेखा को न पार करने और चीन को संघ द्वारा आक्रमणकारी घोषित न करने का आग्रह किया तो स्टालिन का भारत विरोधी दृष्टिकोण बदला। अप्रैल 1952 में भारत के राजदूत डा. राधाकृष्णन ने स्टालिन से भेंट की तो दोनों देशों में संबंध सुधार का दौर शुरू हुआ। 1953 में स्टालिन की मृत्यु के बाद दोनों देशों में संबंधों के नए युग की शुरूआत हुई जिसने अनूठी मिसाल कायम की।

स्टालिन के बाद भारत सोवियत संघ संबंधों का ख्रुश्चेव युग शुरू हुआ। इस युग को सक्रिय सहयोग का युग कहा जाता है। इस युग में सोवियत संघ ने अपनी विदेश नीति में बदलाव लाया और भारत के प्रबति सहानुभूति की भावना प्रकट की। 1954 में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दी गई सैनिक सहायता के विरोध का सोवियत संघ ने पूरा समर्थन किया। 1955 में रूसी प्रधानमंत्री बुलगानिन तथा बाद में साम्यवादी दल के महासचिव निकिता ख्रुश्चेव भारत यात्रा पर आए। इससे भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का सम्मान बढ़ा। बुलगानिन ने भारतीय संसद के सामने कहा कि "हम अपने आर्थिक तथा वैज्ञानिक अनुभव को आपके साथ बांटने को तैयार हैं।" ख्रुश्चेव ने कहा कि "हम अपनी रोटी का अंतिम टुकड़ा भी आपके साथ बांटकर खायेंगे।" 1955 में सोवियत संघ ने गोवा को भारत का ही अभिन्न अंग बताया और पुर्तगाल को गोवा से चले जाने को कहा। 1956 में स्वेज नहर संकट के समय तो दोनों देशों का दृष्टिकोण समान ही रहा था, परंतु हंगरी विवाद ने कुछ तनाव अवश्य उत्पन्न किया। 1959 तथा 1960 में महासभा के अधिवेशनों में भारत द्वारा लागू किए गए नि:शस्त्रीकरण संबंधी प्रस्तावों को सोवियत संघ ने भी पूरा समर्थन किया। 1961 में जब भारत ने गोवा को मुक्त कराया तो इस कार्यवाही का सोवियत संघ ने पूरा समर्थन किया। इसी पर 1962 में जब सैनिक कार्यवाही का मामला सुरक्षा परिषद में आया तो सोवियत संघ ने भारत के निंदा के प्रस्तावों पर वीटो कर दिया। उसके बाद 1962 में जब भारत पर चीन ने आक्रमण किया तो सोवियत संघ ने चीन को बाध्य किया कि वह अपनी आक्रमणकारी प्रवृति पर रोक लगाये। इस युद्ध के दौरान सोवियत–चीनी भाईचारे को बनाये रखने के लिए पहले तो सोवियत संघ ने भारत को दिए जाने वाले मिग–21 विमानों की आपूर्ति रोक दी, परंतु बाद में उसने यह

सहायता भारत को उपलब्ध करा दी। इससे शीघ्र ही दोनों देशों के बीच व्याप्त अविश्वास का निवारण हो गया। 1963 में भी भारत को सोवियत संघ की तरफ से प्रचुर मात्रा में सामरिक और आर्थिक सहायता प्राप्त हुई।

1963 में दोनों देशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार भारत में तेल और गैस का पता लगाने तथा उन्हें विकसित करने के लिए सोवियत संघ से तकनीकी सहायता प्राप्त हुई। 1964 में नेहरू की मृत्यु और ख्रुश्चेव के पतन के बाद सोवियत संघ की विदेश नीति में कुछ बदलाव आया। 1965 में जब पाकिस्तान ने पहले कच्छ के रण तथा फिर कश्मीर पर हमला किया तो सोवियत संघ ने भारत का ही पक्ष लिया। 1965 के भारत-पाक युद्ध में पश्चिमी गुट भारत को ही आक्रमणकारी घोषित करने की ताक में था। परंतु सोवियत संघ की वीटो शक्ति ने उसकी संपूर्ण आशाओं पर पानी फेर दिया। सोवियत संघ ने युद्ध-विराम के लिए भारत तथा पाकिस्तान पर दबाव डाला और इस बारे में संयम बरतने का सुझाव दिया। सोवियत संघ ने स्वयं मध्यस्थता के द्वारा इस युद्ध को बंद करवाने तथा बाद में दोनों देशों के बीच शांतिपूर्ण संबंध कायम करने के लिए जनवरी 1966 में ताशकंद समझौता करवाने में अहम् भूमिका अदा की। वास्तव में ताशकंद सम्मेलन ही भारत-सोवियत मैत्री की नींव सुदृढ़ करने में सफल रहा। 1968 में सोवियत संघ द्वारा पाकिस्तान को शस्त्र सहायता देना शुरु करने से भारत-सोवियत संबंधों में फिर से तनाव उत्पन्न हो गया। इस घटना का भारत की विदेश नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह तनाव उस समय कम हुआ जब 3 मई, 1969 को सोवियत प्रधानमंत्री कोसिजिन स्वयं भारत आए। मार्च, 1969 में ही सोवियत संघ के चीन के साथ सीमा विवाद में भारत ने सोवियत संघ का ही समर्थन किया परंतु जब सोवियत विश्वकोष (1970) में नेफा (अरुणाचल प्रदेश) तथा अक्साई चीन को चीन का हिस्सा बतलाया गया तो भारत सरकार ने विश्व कोष के नक्शे की तीव्र आलोचना की।

दोनों देशों ने 9 अगस्त, 1971 को एक शांति, मैत्री और सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर किए। इस संधि से भारतीय उपमहाद्वीप में स्थिरता व शांति स्थापित होने में बड़ी मदद मिली। इस संधि से भारत को एक ढाल मिल गई और अमेरिका ने 1971 के भारत-पाक युद्ध में हस्तक्षेप नहीं किया। इस संधि के बाद दिसंबर 1971 के भारत-पाक युद्ध में न तो अमेरिका ने हस्तक्षेप किया और न ही चीन ने। अत: 1971 की भारत-सोवियत मैत्री संधि दोनों देशों में सौहार्दपूर्ण संबंधों का आधार मजबूत करने में सफल रही। 2 अक्तूबर, 1972 को दोनों देशों के मध्य 'विज्ञान और तकनीकी सहयोग' का समझौता हुआ। 29 नवंबर 1973 में सोवियत राष्ट्रपति ब्रेजनेव की भारत यात्रा ने भारत-सोवियत मैत्री को नई शक्ति प्रदान की। इस समय भारत और सोवियत संघ के बीच एक आर्थिक एवं व्यापार समझौता हुआ, जिसके अनुसार 1980 तक भारत-सोवियत व्यापार में 150 से 200 प्रतिशत तक वृद्धि करने और अनेक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने का प्रावधान किया गया। 1974 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने का सोवियत संघ ने स्वागत किया। 1976 में फिर दोनों देशों में एक व्यापारिक समझौता हुआ।

भारत-रूस संधि

चीन का रूस व भारत के प्रति अमैत्रीपूर्ण रुख और चीन पाकिस्तान-अमेरिका के गठबंधन की संभावना तथा प्रस्तावित सामूहिक सुरक्षा की योजना की असफलता वे प्रमुख तत्व थे जिन्होंने भारत-रूस मैत्री संधि को अनिवार्य सा बना दिया। इस पृष्ठभूमि में 8 अगस्त 1971 को रूस के विदेश मंत्री ग्रोमिको ने दिल्ली आगमन पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता

टिप्पणी

व्यक्त करते हुए कहा "भारत के विदेश मंत्री स्वर्ण सिंह की मास्को यात्रा के पश्चात और भारत सरकार के निमंत्रण पर हम अपने मित्र देश भारत की सरकारी यात्रा पर आए हैं। हम पूर्ण आशा करते हैं, कि भारतीय नेताओं के साथ होने वाली वार्ता में लाभप्रद व फलदायक परिणाम निकलेगा। जिससे दोनों देशों की मित्रता व सहयोग को बढ़ावा मिलेगा। इससे न केवल एशिया बल्कि पूरे विश्व में शांति को सुदृढ़ करने में सहायता मिलेगी।"

भारत व रूस के मध्य 9 अगस्त 1971 को शांति-मित्रता व सहयोग की बीस वर्षीय संधि संपन्न हुई, छह पृष्ठों की इस संधि में पहला पृष्ठ प्रस्तावना का था जिसमें दोनों देशों की शांति और सहअस्तित्व की नीतियों का बखान किया गया था, संधि में कुल 12 धाराएं थीं। इसका मूल पाठ हिंदी रूसी व अंग्रेजी भाषा में लिखा गया था। यह संधि एक-दूसरे के स्वतंत्रता, प्रभुसत्ता व क्षेत्रीय अखंडता को ध्यान में रखते हुए स्थायी शांति व मैत्री संबंध को परस्पर सुदृढ़ करने के विचार से की गयी थी। दोनों देशों का दृढ़ मंतव्य था कि उसमें से किसी एक पक्ष पर आक्रमण होने या आक्रमण की धमकी दी जाने की परिस्थिति में उनके निवारण के लिए दोनों देश शांति व सुरक्षा बनाए रखने के लिए परस्पर परामर्श करेंगे ताकि उसका निवारण हो सके। इस संधि पर रूस की तरफ से विदेश मंत्री आन्द्रेग्रोमिको ने तथा भारत की ओर से सरदार स्वर्ण सिंह ने हस्ताक्षर किये।

संधि की प्रमुख धाराएं

इस संधि की एक प्रस्तावना तथा 12 अनुच्छेद थे। प्रस्तावना में यह लिखा गया है कि दोनों ही देश अपने मध्य विद्यमान संबंधों को बढ़ाना तथा सुदृढ़ करना चाहते थे। उनका विचार था कि मित्रता तथा सहयोग की ओर बढ़ने से दोनों ही देशों की मूल राष्ट्रीय हितों की पूर्ति होगी।

अनुच्छेद I में लिखा गया है कि "दोनों देशों तथा उनके लोगों में स्थायी शांति तथा मित्रता बनी रहेगी।" दोनों ही देश एक-दूसरे की स्वतंत्रता, प्रभुसत्ता तथा भू-क्षेत्रीय अखंडता का सम्मान करेंगे तथा एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। दोनों ही देश अपने मध्य विद्यमान संबंधों के विकसित करने तथा सुदृढ़ करने का काम जारी रखेंगे तथा पूर्व घोषित सिद्धांतों तथा समानता तथा परस्पर सहयोग के सिद्धांत पर आधारित उनके बीच मित्रता, अच्छे पड़ोसी होने की बात तथा विस्तृत सहयोग बना रहेगा।

अनुच्छेद II में इस इच्छा की पुष्टि की गई कि दोनों ही देश शांति तथा लोगों की सुरक्षा को निश्चित बनाने के सभी संभावित उपायों में योगदान देंगे तथा दोनों ही देश, सामान्य तथा पूर्ण निशस्त्रीकरण की प्राप्ति तथा शस्त्र दौड़ को रोकने के लिए एशिया तथा समस्त विश्व में शांति को सुदृढ़ करने तथा उसे बनाए रखने के अपने प्रयत्नों को जारी रखेंगे।

अनुच्छद III के अंतर्गत दोनों ही देशों ने यह माना कि वे किसी भी प्रकार का तथा किसी भी रूप में उपनिवेशवाद तथा नस्लवाद का विरोध करेंगे।

अनुच्छेद IV में लिखा गया है कि भारत-सोवियत संघ की शांतिप्रिय नीति का सम्मान करता था, जिसका उद्देश्य सभी राष्ट्रों के साथ मैत्री तथा सहयोग को सशक्त बनाना था। इसी प्रकार यह घोषणा भी की गई थी कि सोवियत संघ भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का सम्मान करता है तथा इस बात की परिपुष्टि की गई कि यह नीति शांति बनाए रखने वाली तथा विश्व में तनावों को कम करने वाली नीति है।

अनुच्छेद V में यह प्रावधान किया गया कि दोनों ही देशों के हितों को प्रभावित करने वाली मुख्य अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर दोनों देश एक-दूसरे के साथ नियमित संपर्क बनाए रखेंगे।

टिप्पणी

अनुच्छेद VI में यह प्रावधान किया गया कि व्यापार व वाणिज्य के क्षेत्र में दोनों देश पारस्परिक सहयोग बढ़ाएंगे तथा सुविधाएं उपलब्ध करेंगे।

अनुच्छेद VII के अंतर्गत विज्ञान, कला, साहित्य, शिक्षा, जन स्वास्थ्य, खेल आदि विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में आपसी संबंधा एवं संपर्क को अधिाक विकसित करना।

अनुच्छेद VIII में प्रत्येक देश द्वारा एक महत्वपूर्ण घोषणा शामिल की गई कि वे अपनी साथी राष्ट्र के विरुद्ध किसी भी सैनिक संधि में शामिल नहीं होंगे और न ही उसमें भाग लेंगे तथा दूसरे देश के विरुद्ध किसी भी प्रकार के आक्रमण से दूर ही रहेंगे। प्रत्येक देश अपने क्षेत्र को किसी भी ऐसे कार्य के लिए प्रयुक्त नहीं होने देगा, जो दूसरे को कोई सैनिक हानि पहुंचाएगा।

अनुच्छेद IX में लिखा गया कि प्रत्येक देश दूसरे देश के साथ किसी तीसरे देश को किसी भी प्रकार की सहायता नहीं देंगे तथा किसी भी एक देश पर अगर कोई हमला होता है या हमले की उनको सूचना मिलती है तो दोनों राष्ट्र आपस में विचार विमर्श करेंगे ताकि "उस खतरे को दूर किया जा सके तथा उनके देश में शांति तथा सुरक्षा को निश्चित बनाने के लिए उचित प्रभावशाली उपाय किए जा सकें।"

अनुच्छेद X में लिखा गया कि दोनों में से कोई भी देश किसी अन्य देश के साथ किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करेगा तथा न ही कोई ऐसी जिम्मेदारी ही लेगा जिससे दूसरे देश को कोई सैनिक हानि पहुंचती हो।

अनुच्छेद XI में लिखा गया कि संधि की अवधि 20 वर्ष होगी तथा यह उस समय तक हर पांच वर्ष के लिए बढ़ती जाएगी, जब तक कि इनमें से कोई भी राष्ट्र संधि को समाप्त होने से 12 महीने पूर्व की सूचना देकर इस संधि को समाप्त करने की इच्छा प्रकट न कर दें।

अनुच्छेद XII में इस संधि के किसी भी अनुच्छेद या अनुच्छेदों की व्याख्या के संबंध में किसी भी प्रकार के मतभेदों को दूर करने के लिए प्रक्रिया का भी वर्णन किया गया है। इसके अनुसार इस प्रकार के मतभेद दोनों देशों द्वारा शांतिपूर्ण साधनों द्वारा एक-दूसरे के प्रति सम्मान तथा सद्भाव से निपटाए जाएंगे।

इन सभी प्रावधानों के साथ शांति, मित्रता तथा सहयोग की यह संधि भारत-रूस संबंधों का एक सशक्त आधार बनी। तत्कालीन विदेश मंत्री स्वर्ण सिंह ने कहा था, "यह संधि सोवियत संघ के साथ हमारे संबंधों में मील का पत्थर था जो कि 1955 ई. से ही धीरे-धीरे निकट होते जा रहे थे।" सोवियत संघ के विदेश मंत्री मि. ग्रोमिको द्वारा भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किए गए थे। उन्होंने इस संधि को महत्वपूर्ण युगांतकारी घटना माना जिसने दोनों देशों की समानुरूप नीति तथा सिद्धांतों को अभिव्यक्त किया। भारत-रूस संधि का अनेक क्षेत्रों में उत्साहपूर्ण स्वागत किया गया। इस संधि को भारत-रूस संबंधों के इतिहास में 'महत्वपूर्ण सीमा चिह्न' की संज्ञा दी गयी। इस संधि से भारत को आगे अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता को सुदृढ़ बनाने और आम जनता के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए संघ की आर्थिक व वैज्ञानिक सहायता का उपयोग करने के वास्ते नयी

विशाल संभावनाएं पैदा हो गयी। भारत के सभी भागों में आम लोगों ने इस संधि से गहरा संतोष प्रकट किया।

संधि पर प्रतिक्रिया

इस संधि पर 1971 में देश व विदेश में मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। एक ओर जहां आम धारणा यह थी कि इससे विश्व में शांति स्थापना के साथ भारत के आत्मविश्वास में वृद्धि होगी। भारत के अनेक भागों में इस संधि पर गहरा संतोष प्रकट करते हुए उत्साहपूर्वक स्वागत किया गया। परंतु दूसरी तरफ भारत-सोवियत संधि पर तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई। कुछ व्यक्तियों, दलों, समाचार पत्रों व देशों में इसे राजनीति से प्रेरित बताया। आलोचकों ने यहां तक कहा कि यह संधि असंलग्नता के नीति के परित्याग की घोषणा थी। यह एक घबराहट भरा कदम था जिसने बांग्ला देश के संबंध में भारत की इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया और भारत को रूस का पिछलग्गू राष्ट्र बना दिया।

संधि की आलोचना में निम्न तर्क प्रस्तुत किए गए-

1. संधि भारत की गुटनिरपेक्षता नीति के विरुद्ध है– आलोचकों की मान्यता है कि भारत-रूस संधि मित्रता समानता और सहयोग पर आधारित नहीं है अपितु यह सुरक्षात्मक संधि है जिसके कारण भारत की परंपरागत निर्गुण नीति का स्वत: ही परित्याग हो जाता है। एक आलोचक का मत है कि भारत ने अपने विदेश नीति के मूल बिंदु की कब्र खोद दी हैं। हिंदुस्तान टाइम्स में संधि पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था, "अब इसमें संदेह नहीं रह गया है कि भारत ने दो महाशक्तियों में से एक के साथ सुरक्षा समझौता करके गुटनिरपेक्षता की नीति को त्याग दिया है तथा रूस के साथ संलग्न हो गया है।" आलोचकों का कहा था कि अब भारत विश्व राजीनति में पहले की भांति न तो स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सकता है और न पूर्व-पश्चिम के गतिरोध में सेतुबंध का कार्य कर सकता है। अमेरिकी सीनेटर पर्सी के शब्दों में, "यह संधि बहुत समय से चली आ रही भारत के गुटनिरपेक्षता की नीति का उल्लंघन है। इस संधि से भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति बहुत कुछ बदल गयी है।"

संधि के आलोचकों ने दावा कि भारत सरकार के प्रवक्ताओं द्वारा लाख बार कहने के बावजूद अब यह तथ्य मान्य नहीं हो सकता कि भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति अब भी कायम है। एक महाशक्ति के साथ सुरक्षा समझौता करके उसने निश्चय ही एक गुट के साथ अपने को आबद्ध कर लिया है। यह भी कहना कि भारत-रूस संधि किसी देश के विरुद्ध नहीं है मान्य नहीं हो सकता। जिस परिस्थिति में संधि संपन्न हुई उससे स्पष्ट है कि यह मुख्यत: पाकिस्तान के विरुद्ध थी। संधि के आलोचकों का यह भी कहना था कि इसने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से भारत के स्वतंत्र पहलू को बहुत हद तक सीमित कर दिया है। एशिया में सोवियत संघ की अपनी नीति है और उसके अपने हित हें और इन हितों की रक्षा के लिए सोवियत विदेश नीति अवश्य सक्रिय रहेगी। सोवियत संघ के साथ संधि में आबद्ध हो जाने के बाद भारत को चाहे-अनचाहे समर्थन करना ही पड़ेगा।

2. भारत को रूसी उपग्रह बनाने का प्रयत्न- संधि के आलोचकों का कहना है कि यह संधि एक हाथी के साथ बिस्तर पर लेटने के समान है। बलराज मधोक जैसे

टिप्पणी

आलोचकों का कथन था कि इससे भविष्य में भारत की संप्रभुता पर प्रहार हो सकता है। यह भी कहा गया है कि रूस अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए भारत के साथ सामाजिक और आर्थिक ढांचे को परिवर्तित करने का प्रयस करे। बलराज मधोक के अनुसार यह संधि कहीं "भारत के गर्दन के इर्द-गिर्द एक पत्थर न हो जाये।" मीनू मसानी ने इस संधि को सोवियत उपग्रहवाद की नीति की संज्ञा दी। आलोचकों के अनुसार रूस-भारत में अपने पिट्ठुओं की सहायता से साम्यवाद का प्रसार करने का प्रयास करेगा।

3. जल्दबाजी में की गयी संधि- आलोचकों के अनुसार यह जल्दबाजी में की गयी संधि है, जिसकी आवश्यकता नहीं थी। आचार्य कृपलानी के अनुसार, "संधि की आवश्यकता नहीं थी, इसे जल्दबाजी में किया गया है। इसके पक्ष में व्यक्त किए गए विचार उतने ही उतावले हैं जितने कि संधि पर किए गए हस्ताक्षर।"

4. भारत के शत्रुओं को निकट लाने की संभावना- इस संधि की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत के शत्रु विशेषकर पाकिस्तान तथा चीन और अमेरिका को निकट आने का स्वाभाविक अवसर मिलेगा। क्या भारत एक साथ चीन, पाकिस्तान और अमेरिका की शत्रुता मोल ले सकेगा? दूसरे शब्दों में यह संधि चीन-रूस अमेरिका को त्रिकोणीय शीत युद्ध में घसीटती है। संधि के आलोचक का कहना था कि भारत-सोवियत संधि भारत के विरुद्ध चीन और पाकिस्तान के गठजोड़ के काल्पनिक भय का परिणाम है। यह बांग्लादेश के संदर्भ में चीन तथा अमेरिका की नीतियों के प्रति भारतीय प्रतिक्रिया का फल था। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत ने पाकिस्तान के साथ युद्ध, चीन द्वारा हस्तक्षेप तथा अमेरिका की पाकिस्तान को दी जाने वाले मदद की संभावनाओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखा था। इस दृष्टिकोण से देखने से ऐसा लगता है कि भारत ने संधि के दूरगामी परिणामों का विश्लेषण किये बिना ही इसको संपन्न कर लिया है। यह संधि चीन को उत्तेजित कर सकती है। सोवियत संघ ने अपने विश्वव्यापी हितों को ध्यान में रखकर इस संधि पर हस्ताक्षर किया था। भारतीय उप-महाद्वीप में राजनीतिक स्थिरता बनी रहे, यह उसका उद्देश्य नहीं था। चीन के साथ समझौता करने की नयी अमेरिकी पहल का यह सोवियत जवाब था, इसलिए जब यह प्रश्न उठेगा कि इस संधि में कौन नफे में रहा और कौन घाटे में तो कहा जाएगा कि महाशक्ति के विश्वव्यापी हितों की रक्षा के लिए भारत की विदेश-नीति ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो दिया।

5. अप्रत्यक्ष रूप से यह एक सैनिक संधि है– संधि के आलोचकों के अनुसार यह संधि 'वारसा समझौते' की तरह है। यद्यपि संधि को शांति, मित्रता व सहयोग की संधि कहा गया है तथापि संधि की 9वीं धारा में उल्लेखनीय शब्द आक्रमण की स्थिति में तत्काल पारस्परिक विचार-विमर्श और 'आवश्यक प्रभावकारी कदमों' का जिक्र किसकी ओर संकेत करते हैं? यह आक्रमण से बचाव की सन्धि है और आक्रमण का प्रतिरोध करने के लिए सैनिक सहायता की आवश्यकता होती है। डा. जे.डी. सेठी के अनुसार "यह सन्धि सैनिक सन्धि है और अन्य सैनिक सन्धियों की भांति असमान पक्षों की सन्धि है।"

परन्तु सन्धि के अनुच्छेदों का विश्लेषण करने से यह बात निर्विवाद रूप से सामने आती है कि इसने भारतीय गुट-निरपेक्षता को अक्षत रखा। प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने विरोधी दल के नेताओं को सूचना देते समय बताया यह सैनिक सन्धि नहीं वरन् मैत्री सन्धि है। रूस और भारत की यह सन्धि एक सैनिक गुटबन्दी की सन्धि नहीं कही जा

सकती है। भारत के विदेश मंत्री स्वर्ण सिंह ने यह दावा किया कि भारत अपनी नीति का परित्याग कर सोवियत सैनिक गुट में शामिल नहीं हुआ है। सन्धि में यह व्यवस्था नहीं है कि भारत पर हमला सोवियत संघ पर किया गया हमला माना जाएगा, जैसा कि अमेरिका द्वारा की गयी नाटो, सिआटो तथा सेंटो सैनिक सन्धियों में या सोवियत संघ के तत्वाधान में की गयी वारसा सन्धि में लिखा गया है। इस सन्धि में तो केवल यह व्यवस्था की गयी है कि "दोनों में से किसी पर आक्रमण का खतरा उपस्थित होने पर दोनों पक्ष शीघ्र ही विचार विमर्श करेंगे ताकि खतरों को समाप्त किया जाए और दोनों पक्ष की शान्ति व सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए समुचित व प्रभावकारी कदम उठाए जाए।" इन शब्दों के जरिए भारत ने किसी प्रकार अपने को सोवियत संघ के सैनिक गुटों से नहीं बाधा है। इसलिए किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह सन्धि किसी देश या देश–विदेश के विरुद्ध थी। यह तो भारत और सोवियत संघ के मध्य मैत्री सहयोग और शान्ति की सन्धि थी। इसका एकमात्र उद्देश्य आक्रमण या आक्रमण की आशंका का निवारण था। सोवियत संघ के साथ भारत ने सन्धि अवश्य की किन्तु यह युद्ध के विरुद्ध शान्ति की सन्धि थी। उसका कोई प्रकट सैनिक उद्देश्य नहीं था। सैनिक गुटबन्दी की संज्ञा इसे कदापि नहीं दी जा सकती। यह सही है कि दोनों में से किसी देश पर किसी तीसरे देश ने आक्रमण किया तो उसके प्रतिकार के लिए वे एक दूसरे की सहायता को तैयार रहेंगे और इस संबंध में आवश्यक विचार विमर्श करेंगे, किन्तु अपने–आप बिना बुलाये ही मित्र देश की सेना मदद के लिए मैदान में नहीं उतर पड़ेगी। जैसा कि सैनिक गठबंधन वाली सन्धि के परिणामस्वरूप होता है। विदेशमंत्री ने यह भी कहा कि सन्धि युद्ध के खिलाफ शांति के लिए है और अब हमारी आजादी पर हमला करने वाले को हिम्मत नहीं होगी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इस सन्धि से गुट निरपेक्षता की हमारी नीति सुदृढ़ होगी तथा अंतर्राष्ट्रीय तनाव कम करने में सहायता मिलेगी।

इस प्रकार इस सन्धि के तहत आसन्न संकट की स्थिति में दोनों पक्षों के लिए एक–दूसरे को सूचित करना तथा परामर्श के पश्चात् कोई कदम उठाना तय किया गया। इस व्यवस्था को किसी भी तरह सैनिक सन्धि के तरह समानार्थक नहीं समझा जा सकता। बांग्लादेश मुक्ति अभियान के दौरान भी इस सन्धि के प्रावधानों का सैनिक नहीं बल्कि राजनयिक लाभ ही उठाया गया। वास्तव में यह सन्धि भारत और रूस के बीच विशेष संबंधों या तात्कालिक स्थिति में मनोवैज्ञानिक लाभ उठाने का एक प्रयत्न थी। अगस्त 1971 को दिल्ली में एक विशाल जन समूह की रैली में भाषण करते हुए प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने कहा "आज सोवियत संघ के साथ जो सन्धि हुई है उसके बावजूद भारत अपनी गुट निरपेक्षता की नीति पर कायम रहेगा। हमने सोवियत संघ के सामने स्पष्ट कर दिया है कि भारत गुटों की नीति से अलग रहना चाहता है और हमारी बात उससे मान ली है। एक दूसरे अवसर पर प्रधानमंत्री ने कहा कि सन्धि के बाद भी भारत बिना किसी प्रतिबंध के अपने राष्ट्रीय हितों के लिए विकल्पों को अपना सकता था तथा भारत की विदेश नीति पहले की तरह ही स्वतंत्र विदेश नीति बनी रहेगी।"

भारत-रूस सन्धि की उपलब्धियां

भारत–रूस संबंधों की जड़े काफी गहरी हैं। नेहरू और टैगोर ने रूस की यात्रा करके मित्रता का जो बीज बोया था अंकुरित होकर उसने सघन वृक्ष का रूप ले लिया। जवाहर

लाल नेहरू दोनों महादेशों के बीच मैत्री और सक्रिय सहयोग के मुख्य अभियन्ता थे, राष्ट्रीय हित के व्यापक परिप्रेक्ष्य में उन्होंने ही इस मैत्री की आधारशिला रखी थी।

टिप्पणी

1955 में जब जवाहर लाल नेहरू रूस की यात्रा पर गये तभी से दोनों देशों के बीच संबंधों में निकटता तेजी से आनी प्रारंभ हो गई। 22 जून 1955 को जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ उसमें दोनों पक्षों ने न केवल शांतिपूर्ण सहअस्तित्व पर आधारित पारस्परिक संबंध बढ़ाने पर बल दिया। अपितु उसका कार्यक्षेत्र बढ़ाकर उसे विश्वशान्ति व देशों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग के लिए उपयोग करने पर भी सहमति प्रकट की। इसके पश्चात जो भी संयुक्त वक्तव्य सरकारी विज्ञप्तियां या घोषणाएं प्रकाशित हुईं उन सब में विश्व समस्याओं की झलक अवश्य दिखाई पड़ी। 1971 को शान्ति मित्रता व सहयोग की सन्धि ने विश्व कार्यक्षेत्र में भारत के वास्तविक व गुणकारी सहयोग का मार्ग खोल दिया। इस प्रकार इस सन्धि का ध्येय केवल कूटनीतिक संबंधों को औपचारिकता का जामा पहिनाना मात्र न था, बल्कि दोनों देशों में सक्रिय सहयोग को कानूनी स्वरूप प्रदान कर दिया। इसका प्रत्यक्ष लाभ बांग्लादेश के युद्ध के समय देखने को मिला। जब साम्राज्यवादी व प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने वाली शक्तियों ने मिलकर अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र से भारत को अलग करने का प्रयत्न किया।

इसे सन्धि की एक बड़ी उपलब्धि ही कहेंगे कि भारतीय उपमहाद्वीप में जब गंभीर संकट के बादल गहरा रहे थे और बांग्लादेश में स्वतंत्रता आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। उस समय उस सन्धि के द्वारा पाकिस्तान, चीन व अमेरिका के सम्मिलित विरोध का सामना करने में भारत सक्षम हो सका।

पाकिस्तान ने 3 दिसम्बर 1971 को जब भारत के उत्तरी व पश्चिमी आठ हवाई अड्डों पर अप्रत्याशित आक्रमण करके अपनी सेना को कश्मीर मोर्चे पर झोक दिया तब स्वाभाविक रूप से भारत-पाक युद्ध प्रारंभ हो गया। वाशिंगटन ने तृतीय देश के माध्यम से युद्धक विमान पाकिस्तान को भेजने का प्रयत्न किया। किन्तु सभी मोर्चों पर पाकिस्तान सेना के पराजय से अंतिम प्रयास के रूप में निक्सन ने सातवें बेड़े के एक भाग को बंगाल की खाड़ी में इस बहाने भेजा कि वह अपने नागरिकों को पूर्वी पाकिस्तान से हटाना चाहता है किन्तु ज्योंहि उन्हें समाचार मिला कि रूसी पोत भी उनके पीछे हैं उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। वास्तव में उसका ध्येय भारतीय सैनिकों पर मनोवैज्ञानिक दबाव डालना था जिसमें वह असफल रहा। उसी प्रकार चीन ने भारत पर केवल मौखिक आक्षेप लगाकर कि भारत विस्तार वादी नीति का अनुसरण कर रहा है, चुप रह जाना श्रेयकर समझा इन तथ्यों से यह बात स्पष्ट है कि यह सन्धि तत्कालीन कूटनीतिक विश्वास पैदा करने में सफल हुई थी।

इस सन्धि को दक्षिण एशिया शान्ति स्थिरता की गारन्टी कहना अनुपयुक्त न होगा क्योंकि इस क्षेत्र में वाशिंगटन-चीन धुरी अपने कार्यकलापों से वातावरण तनावपूर्ण बना रही थी। इस सन्धि का दूरगामी परिणाम चाहे जो भी हो इसका तत्कालीन लाभ यह हुआ कि जनता के बहुमत ने इसका हार्दिक स्वागत किया क्योंकि इससे भारत का बांग्लादेश में संघर्षरत मुक्तवाहिनी को खुलकर सहायता देने का मार्ग प्रशस्त हो गया। भारत को पाकिस्तानी तानाशाह को मुहतोड़ उत्तर देने की शक्ति प्राप्त हो गयी जो अमेरिका व चीन के बूते भारत को बन्दर घुड़की दे रहा था। इस सन्धि की एक बड़ी उपलब्धि यह थी कि रूस ने अपना कूटनीतिक समर्थन भारत को बढ़ा दिया। भारत की नीतियों का समर्थन

करते हुए उसने पाकिस्तान पर दबाव डाला कि पूर्वी पाकिस्तान में संघर्ष का मार्ग छोड़कर समस्या का राजनैतिक हल ढूंढने का प्रयास किया जाए।

टिप्पणी

रूस ने यह सन्धि एक ऐसे गैर कम्युनिस्ट देश भारत के साथ संपन्न की जिसके संबंध पश्चिम देशों के साथ भी मधुर थे। किन्तु इतिहास इस सत्य का साक्षी है कि रूस ने आड़े वक्त सन्धि के पूर्व भी भारत की सदैव सहायता की। साम्यवादी देश चीन व रूसी मित्र देश भारत के बीच संघर्ष ने उसे उलझन भरी स्थिति में ला खड़ा किया। रूस ने पहले अपना कूटनीतिक समर्थन भारत को दिया तत्पश्चात् उसे सैनिक सहायता भी प्रदान किया। कश्मीर व गोवा के प्रश्न पर जब भी उसकी क्षेत्रीय अखंडता को खतरा पैदा हुआ, वहां रूस ने बराबर भारत का साथ दिया था। इस प्रकार इस सन्धि के पीछे दोनों देशों का उत्कृष्ट संबंध कहा जा सकता है। रूस द्वारा भारत को आर्थिक क्षेत्र में बराबर सहायता प्रदान करना सन्धि की उपयोगिता को सिद्ध करता है। राष्ट्रीय हित में सन्धि के लाभ अनेक हैं दक्षिण एशिया की सुरक्षा का इसे आधार स्तंभ कहना अनुपयुक्त न होगा।

इस सन्धि की एक उपलब्धि यह भी कही जा सकती है कि सन्धि ने "दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग" (सार्क) के लिए भारत का मार्ग खोल दिया। इस क्षेत्र में कुछ देशों ने पश्चिम जगत के विकासशील देशों को न्यू इन्टरनेशनल इकोनोमिक आर्डर (नीओ) आर्थिक नीति के अंतर्गत करने को प्रोत्साहित किया है। इनका झुकाव साम्राज्यवादी ताकतों के प्रति होने के कारण इस क्षेत्र पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। चूंकि क्षेत्रीय योजना का स्वरूप सामाजिक व आर्थिक है, अत: सार्क के माध्यम से भारत लाभान्वित हो सकता है।

सन्धि की एक अन्य उपलब्धि यह थी कि भारत को एक शक्तिशाली भरोसेमंद व विश्वस्त मित्र मिल गया, जो संकट के समय खड़ा हो सकता था, इससे भारत के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। अब तक एशिया उपमहाद्वीप में वह अपने को अकेला अनुभव कर रहा था। बांग्लादेश संघर्ष में अमरीकी कूटनीति के कारण भारत को कोई सीधा समर्थन नहीं मिल पा रहा था, यद्यपि कोरी सहानुभूति दिखाने वाले अनेक देश थे। चीन भारत की सीमा पर अलग से कठिनाइयां पैदा कर रहा था। अमरीका से आधुनिक शस्त्र प्राप्त करके पाकिस्तान बांग्लादेश के अतिरिक्त अन्य मोर्चों पर भी स्थिति सुदृढ़ करने में लगा था सन्धि से न केवल भारत को सैनिक प्रयोग के आयुध प्राप्त हुए वरन् उसके नैतिक समर्थन से उसके हौसले बुलंद थे।

1971 के बाद यह संधि विभिन्न क्षेत्रों में भारत व रूस के आपसी सहयोग की आधारशिला बनी। इसने भारत तथा सोवियत संघ के सहयोग को कानूनी तथा राजनैतिक आधार प्रदान किया जो इसके परिणामस्वरूप कई गुना हो गया। भारत तथा रूस ने इस संधि को अपने आपस के संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए सफलता पूर्वक प्रयुक्त किया।

निश्चय ही संधि के बाद के समय में भारत तथा रूस की समीक्षा से यह कथन का औचित्य सिद्ध हो गया है। 1971 के बाद भारत तथा रूस के मध्य व्यापारिक तथा आर्थिक संबंध काफी ऊँचे स्तर तक बढ़े। भारत तथा सोवियत रूस के मध्य 70 से भी अधिक औद्योगिक योजनाओं में एक-दूसरे का सहयोग प्राप्त किया। रूस भारत को सैनिक सामग्री तथा शस्त्रों का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्ता बना। रूस विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र

में भी मूल्यवान योगदान देता रहा। रूस के लिए भी सन्धि भारत के साथ स्थायी तथा लाभकारी संबंधों का साधन बनी।

टिप्पणी

जून 1976 में भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की सोवियत यात्रा से दोनों देशों के बीच घनिष्ठ मित्रता की शुरूआत हुई। 1975 में हुए समझौतों के क्रियान्वयन का यह अच्छा समय था। 1977 में भारत में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने घोषणा की कि भारत-सोवियत मैत्री का बनाए रखने पर जोर दिया जाएगा। फिर 31 मार्च 1977 में दोनों देशों के मध्य जहाजों के आवागमन पर एक समझौता हुआ। उसके बाद अप्रैल 1977 में सोवियत विदेश मंत्री ग्रेमिको भारत यात्रा पर आए। इस समय भारत और सोवियत संघ के बीच तीन समझौते हुए। मार्च 1979 में सोवियत प्रधानमंत्री कोसिजिन की भारत यात्रा से दोनों देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों की नीव सुदृढ़ हुई। 1980 में ही सोवियत संघ ने 1300 करोड़ रुपये की सैनिक सामग्री भारत को देने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। उसके बाद 1981-82 में भी भारत और सोवियत संघ के बीच व्यापार तथा आर्थिक संबंधों का विकास हुआ। नवंबर 1981 में सोवियत तेल उद्योग मंत्री भारत आए और इस क्षेत्र में सहयोग के लिए एक समझौता हुआ। 1983 में सोवियत ब्रेजनेव की मृत्यु के बाद सोवियत साम्यवादी दल के नए महासचिव यूरी आन्द्रोपोव ने भारत को आश्वासन दिया कि ब्रेजनेव द्वारा शुरु की गई भारत के निकट सहयोग की नीति कायम रखी जाएगी।

अगस्त-सितंबर 1984 में मास्को में भारत के व्यापार मेला प्राधिकरण द्वारा प्रदर्शनी लगाई गई। इसी वर्ष भारत और सोवियत संघ के बीच 3 वर्ष के लिए विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में सहयोग के लिए एक समझौता हुआ। मार्च 1984 में ही सोवियत रक्षा मंत्री मार्शल उस्तिनोव भारत आए। इससे भी भारत-सोवियत मैत्री प्रगाढ़ हुई। इसी दौरान अक्तूबर 1984 में भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी सोवियत संघ के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्राथमिकता दी और 21 मई, 1985 को सोवियत संघ गए। 22 मई, 1985 को भारत के प्रधानमंत्री राजीव गांधी तथा सोवियत संघ के साम्यवादी दल के महासचिव मिखाइल गोर्बाच्योव के बीच 1986 से 19980 के लिए एक व्यापार समझौता हुआ जिससे 25 नवंबर 1985 को मिखाइल गोर्बाच्योब का भारत आगमन हुआ और दोनों देशों के बीच अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों और द्विपक्षीय संबंधों पर बातचीत हुई। जून 1987 में भारत के विदेश मंत्री सोवियत संघ की यात्रा पर गए और कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए।

18 से 20 नवंबर 1988 को सोवियत संघ के राष्ट्रपति गोर्बाच्योव भारत आए। सोवियत संघ ने भारत को परमाणु बिजली घर लगाने के लिए 35 अरब का ऋण देने की बात स्वीकार की। परंतु 1990 में खाड़ी संकट के समय भारत ने सोवियत संघ के दृष्टिकोण का ही समर्थन किया। 1991 में सोवियत संघ का विघटन तथा शीतयुद्ध का अंत ऐसी घटनाएं घटीं जिनसे भारत-सोवियत संबंधों में ठहराव सा उत्पन्न हो गया। 1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत ने सोवियत संघ के उत्तराधिकारी रूस के साथ मधुर संबंध कायम करने पर जोर दिया। परंतु राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने अपनी प्रारंभिक घोषणा में ही पाकिस्तान को हथियार देने का फैसला करके तथा कश्मीर समस्या पर विपरीत आचरण करके संबंधों को खराब कर दिया। परंतु 1993 में येल्तसीन की भारत यात्रा ने आपसी शंकाओं का अंत कर दिया।

1994 में भारत के प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव रूस की यात्रा पर गए। 1994 से 1996 के बीच भारत और रूस में विभिन्न सांस्कृतिक आदान-प्रदान व समझौते हुए। 1997 में प्रधानमंत्री देवगौडा की रूस यात्रा से संबंधों में मधुरता आई। 1998 में भारत द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों की घटना को रूस ने चिंताजनक बताया। परंतु अमेरिका द्वारा भारत पर लगाए गए आर्थिक प्रतिबंधों की निंदा भी की। 1998 में रूस के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा ने भी दोनों देशों के संबंधों को और अधिक सुदृढ़ बना दिया। 1999 में कारगिल युद्ध के समय भी रूस ने भारत का ही समर्थन किया और पाकिस्तानी घुसपैठ की निंदा करते हुए उसे आक्रमणकारी कहा। सितंबर 2000 में रूस के राष्ट्रपति बनने के बाद प्रथम बार पुतिन भारत आए। दोनों देशों ने सामरिक सहयोग के समझौते पर हस्ताक्षर किए।

1 नवंबर 2001 को भारत की संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद के लिए रूस ने स्थायी सदस्यता का समर्थन करके भारत समर्थक दृष्टिकोण व्यक्त किया। 8 फरवरी, 2002 को रूस के उप-प्रधानमंत्री इल्या कलबानोव के भारत आगमन पर भी चार प्रमुख रक्षा समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। वाजपेयी जी भी 2003 में रूस गए। जून 2004 में दोनों देशों ने आपसी सहयोग को आगे बढ़ाने का संकल्प लेते हुए संयुक्त प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम बनाने की घोषणा की तथा एजेटी प्रक्षेपास्त्र बनाने पर सहमति प्रकट की। उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत और रूस के बीच शुरू से लेकर आज काफी मधुर व सौहार्दपूर्ण संबंध रहे हैं। रूस ने हमेशा ही कश्मीर पर भारत का साथ दिया है। यदि रूस कश्मीर मुद्दे पर भारत के साथ न होता तो कश्मीर पाकिस्तान के हाथ में होता।

प्रारंभ से ही भारत और रूस में आर्थिक व व्यापारिक सहयोग की प्रक्रिया सुदृढ़ रही है। रूस ने भारत को हर कदम पर हर संभव मदद दी है। भारत ने भी अधिकांश पर रूस का ही पक्ष लिया है। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री संधि ने दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की जो नींव डाली थी, वह आज एक मजबूत भवन बनकर विश्व राजनीति में अहम भूमिका निभा रही है।

भारत-रूस सम्बन्ध : दोस्ती और भरोसे का नया सिलसिला

पिछले 100 वर्षों में दुनिया में इतनी उथल पुथल हुई कि देशों के आपसी संबंध बदले बिना न रह सके पर भारत और रूस दुनिया के चंद ऐसे देशों में होंगे जिनके द्विपक्षीय संबंधों पर काल और इसकी उथल पुथल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दोनों देशों ने एक दूसरे की जरूरत और सहायता करने हेतु कभी दुनिया की परवाह नहीं की और दृढ़ता से एक दूसरे के साथ खड़े रहे। इस आपसी सहयोग और मजबूत संबंधों के कुछ उदाहरणों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

2000, 2008, 2013 और 2016 की भारत रूस संधियों में स्टील प्लांट, विशाल टरबाइन, सैन्य विमान-टैंक और परमाणु संयंत्र शामिल थे जबकि अब इस सूची में परमाणु हथियार सम्पन्न पनडुब्बी, बाहरी अंतरिक्ष जगत-रॉकेट विज्ञान और असैन्य परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में तकनीक की हस्तांतरण जैसे पहलू शामिल हैं।

भारत का दशकों पुराना साझेदार रूस उन तमाम चीजों की आपूर्ति के लिए पहले से कहीं अधिक आतुर है जिन्हें भारत पश्चिमी देशों से खरीदना चाहता है ऐसी चीजें

टिप्पणी

जिन्हें पश्चिमी देश भारत को बेचने से कतराते रहे हैं गुजरे दिनों में भारत पर जब भी क्षेत्रीय या अंतर्राष्ट्रीय दबाव (आतंकवाद कश्मीर) पड़ा, रूस भारत के पक्ष में खड़ा हुआ। भारत के ज्यादातर युद्धों में रूस भारत का एक मजूबत सहयोगी रहा है। रूस के प्रति भी भारत का यही रूख रहा। भारत ने रूस का साथ दिया। हंगरी, चेकोस्लोवाकिया और अफगानिस्तान पर जब तत्कालीन सोवियत संघ ने आक्रमण किया, तब पश्चिमी जगत ने रूस को अलग-थलग करना चाहा लेकिन तब भी भारत ने पश्चिमी देशों की बजाए रूस का साथ दिया।

सत्तर साल पहले यानी 13 अप्रैल, 1947 को यूएसएसआर और भारत की सरकारों ने मास्को और दिल्ली में सरकारी मिशन स्थापित करने का फैसला किया। यह भारत अपनी आजादी हासिल करने तथा इसकी स्वतंत्रता को मजबूत बनाने में सहायता देने की दिशा में एक और कदम के रूप में आया। रूस की तकनीकी और वित्तीय सहायता से भारत में औद्योगीकरण अस्तित्व में आया। भिलाई, विशाखापट्टनम और बोकारो में मेटलर्जिकल कॉम्प्लेक्स, दुर्गापुर में माइनिंग इक्विपमेंट प्लांट, नेवेली में थर्मल पावर स्टेशन, कोरबा में इलेक्ट्रोमकैनिकल एंटरप्राइज, ऋषिकेश में एंटीबायोटिक प्लांट और हैदराबाद में फार्मास्यूटिकल प्लांट स्थापित हुए। सोवियत, और बाद में रूसी वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों ने भारत में रिसर्च और शिक्षा केंद्रों की स्थापना में भाग लिया। इनमें बॉम्बे में इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलाजी, देहरादून और अहमदाबाद में पेट्रोलियम इंडस्ट्री के रिसर्च इंस्टिट्यूट शामिल हैं। रूस के विशेषज्ञों ने भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम को विकसित करने में मदद की। इस फलदायी द्विपक्षीय सहयोग के कारण 1975 में भारत का पहला उपग्रह आर्यभट्ट लॉन्च किया गया था। भारतीय नागरिक राकेश शर्मा 1984 में सोयुज टी-11 के चालक दल के सदस्य के रूप में स्पेस में गए थे।

हमारे देशों ने अगस्त 1971 में शांति, मैत्री और सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर किए, जो द्विपक्षीय संबंधों के मूलभूत सिद्धांतों को आगे बढ़ाने में मददगार हुए। मसलन, संप्रभुता के प्रति सम्मान और एक दूसरे के हितों का ध्यान रखना, अच्छा पड़ोसी बनना और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व कायम करना। 1993 में, रूसी संघ और भारत ने शांति,मैत्री और सहयोग की नई संधि में इन बुनियादी सिद्धांतों के जरूरी होने की पुष्टि की। सामरिक साझेदारी पर साल 2000 में संपन्न घोषणापत्र ने अपने-अपने नजरिये में तालमेल बिठाने का मौका दिया, जिससे अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सुनिश्चित हो सके और अटके पड़े ग्लोबल और क्षेत्रीय मुद्दों को सुलझाया जा सके।

परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग में सहयोग रूस और भारत के बीच के रिश्तों के मूलभूत तत्वों में से एक है। रूस की सहायता से कुडनकुलम परमाणु ऊर्जा संयंत्र का निर्माण इस क्षेत्र में फ्लैगशिप परियोजना है। 2013 में पहली परमाणु ऊर्जा इकाई का ऑपरेशन शुरू हुआ था। अक्टूबर 2016 में दूसरी इकाई का निर्माण कार्य पूर्ण हुआ। तीसरी और चौथी बिजली इकाइयों का भी निर्माण शुरू हुआ। इन सबसे देश में परमाणु ऊर्जा के विकास की योजनाओं पर अमल में लाने में मदद मिल रही है, जिनके तहत 2020 तक भारत में कम से कम 12 बिजली इकाइयों का निर्माण किया जाना है।

पारंपरिक ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग सफलतापूर्वक विकसित हो रहा है। भारतीय कंपनियों के संघ ने रूसी कंपनी 'वानकोर्नेफ्ट' में शेयरों के एक ब्लॉक की खरीद की, जो तेल उद्योग में सबसे बड़ी द्विपक्षीय डील बन गई। रूसी आर्कटिक क्षेत्र में हाइड्रोकार्बन

टिप्पणी

की खोज मिलकर करने और उत्पादन परियोजनाओं में भारतीय कंपनियों की भागीदारी की संभावनाओं पर फिलहाल विचार हो रहा है।

हमारी प्राथमिकताओं में से एक यह है कि आपसी व्यापार का टर्नओवर बढ़ाया जाए और इसकी संरचना में सुधार किया जाए। यूरेशियन इकनॉमिक यूनियन और भारत के बीच फ्री ट्रेड एरिया अग्रीमेंट पर दिसंबर 2016 में बातचीत शुरू करने के फैसले का विशेष महत्व है। 19 सबसे आशाजनक परियोजनाओं का चयन पहले ही किया जा चुका है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के शुरू किए गए "मेक इन इंडिया" कार्यक्रम में दीर्घकालिक भागीदारी के लिए रूस प्रतिबद्ध है।

बहुउद्देशीय हथियारों और सैन्य उपकरणों के उत्पादन में दोनों सघन सहयोग करते हैं। अद्वितीय सुपरसॉनिक क्रूज मिसाइल "ब्रह्मोस" को मिलकर बनाना हमारा विशेष गौरव है। सैन्य और तकनीकी सहयोग के ढांचे के भीतर 1960 के बाद से अब तक 65 अरब डॉलर से ज्यादा के कॉन्ट्रैक्ट हो चुके हैं। ऑर्डर का पोर्टफोलियो 2012 से 2016 के बीच 46 अरब डॉलर से अधिक हो गया है।

अंतर्राष्ट्रीय मामलों में रूस और भारत बराबर सहयोगी हैं। दोनों अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में बहुध्रुवीय लोकतांत्रिक प्रणाली का समर्थन करते हैं, जिसमें कानून के सिद्धांतों का कड़ाई से पालन हो और संयुक्त राष्ट्र की केंद्रीय भूमिका हो।

दो महान शक्तियों के बीच सहयोग की विशाल क्षमता को और खंगाला जाए, ताकि रूस और भारत के लोगों के साथ सामान्य तौर पर पूरे अंतरराष्ट्रीय समुदाय को लाभ मिल सके। हमारे पास इसे हासिल करने के लिए जरूरी सब कुछ है ख्र दोनों पक्षों की राजनीतिक इच्छा है, आर्थिक क्षमता है और एक जैसी ग्लोबल प्राथमिकताएं हैं। इन सबका आधार रूस-भारत की दोस्ती का गौरवशाली इतिहास है।

पिछले दस वर्षों के रूस भारत द्विपक्षीय व्यापार के आंकड़े नीचे दिए गए हैं:

(राशि US $ बिलियन में)

Year	**India's Import from Russia**	**India's export to Russia**	**Total trade**	**Percentage Increase YOY**
2004	1.55	0.63	2.18	(-)34.17
2005	2.31	0.78	3.09	41.78
2006	2.98	0.96	3.95	27.66
2007	4.01	1.30	5.32	34.51
2008	5.23	1.71	6.94	30.56
2009	5.93	1.52	7.46	7.4
2010	6.39	2.14	8.53	14.4
2011	6.09	2.79	8.89	4.19
2012	7.91	3.04	10.95	23.8
2013	7.01	3. 10	10.11	-7.34
2014	6.34	3.17	9.51	- 5.6

टिप्पणी

भारत और रूस के बीच कुल व्यापार की बात करें तो यह 2015 में 7.83, 2016 में 7.71, 2017 में 10.71 में 2018 में 11.00, 2019में 7.71+ बिलियन US$ रहा है।

सोवियत संघ भारत का नंबर एक व्यापारिक भागीदार हुआ करता था किन्तु लगभग 9 बिलियन डॉलर के वार्षिक व्यापार के साथ, रूस 2018 में भारत के प्रमुख व्यापारिक भागीदारों की सूची में 30 वें स्थान पर है। अक्टूबर 2015 में भारत और रूस ने आर्थिक संबंधों को मजबूत बनाने तथा अगले दस साल में द्विपक्षीय कारोबार तिगुना कर 30 अरब डालर करने के उपायों पर चर्चा की। 1992 और 2018 के बीच भारत ने रूस से + 40 बिलियन के हथियार खरीदे। यह कुल भारतीय हथियारों के आयात का लगभग 70 प्रतिशत है जो कि इस अवधि में दुनिया में कुल रूसी हथियारों का लगभग 29 प्रतिशत निर्यात है। एस –400 सतह से हवा में मार करने वाली मिसाइल प्रणाली, फ्रिगेट, कामोव हेलीकॉप्टर प्रस्तावित हल्के टैंकों सहित कई नए सौदों के साथ, रूस का निर्यात और भी बढ़ सकता है।

चीन द्वारा LAC के अतिक्रमण के कारण बनी युद्ध की वर्तमान परिस्थितियों के मध्य भारत के मित्र देश रूस ने हमेशा की तरह भारत को हर संभव सहायता का भरोसा दिया है। S 400 रडार एवं मिसाइल सिस्टम तथा अन्य आवश्यक युद्धक सामग्री की समय पर डिलीवरी का वचन दिया है।

बढ़ते सांस्कृतिक आर्थिक वैज्ञानिक एवं सामरिक अनुबंधों के सन्दर्भ में भारत-रूस की दोस्ती और संबंध सदा की तरह दिन दूने रात चौगुने सुदृढ़ होते जायेंगे, ऐसी आशा है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. स्टालिन ने भारत के किस एकमात्र राजदूत से भेंट की थी?
   (क) विजयलक्ष्मी पंडित (ख) डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन
   (ग) टी.एन. कौल (घ) कोई नहीं
4. भारत और रूस के मध्य शांति, मैत्री और सहयोग की संधि कब हुई?
   (क) 1971 (ख) 1972
   (ग) 1973 (घ) 1974

3.4 चीन के साथ संबंध

भारत आरंभ से ही चीन के साथ मित्रता एवं सहयोग को बढ़ावा देने का इच्छुक रहा। 1949 में चीन के साम्यवादी देश के रूप में उभरने के बाद भारत ने इस देश के संबंधों के महत्व को पूर्णतया अनुभव किया। इससे पहले ही भारत की अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री बनने के 6 दिन के बाद पं. जवाहरलाल नेहरू ने 7 सितंबर 1946, को नई दिल्ली से रेडियो के एक प्रसारण में यह कहा था कि "चीन अपने महान इतिहास के साथ एक साथ एक शक्तिशाली देश है। वह हमारा पड़ोसी है। वह युगों से हमारा मित्र रहा है और यह मित्रता बनी रहेगी, बढ़ेगी और फूलेगी।"

दिसंबर 1949 में भारत ने साम्यवादी चीन को पूर्ण मान्यता प्रदान की तथा चीन के साथ द्विपक्षीय मित्रता एवं सहयोग बढ़ाने की अपनी तीव्र इच्छा व्यक्त की।

श्री के.एन. रामचन्द्रन के शब्दों में, "24 दिसंबर, 1949 से लेकर, जब भारत ने चीन को लगभग दो मास पूर्व मान्यता दी थी, तीन दशकों तक भारत तथा चीन के संबंधों में सौम्य तथा अशुभ दोनों प्रकार के चरण विद्यमान रहे।" प्रारंभिक वर्षों में चीन के साथ मित्रता एवं सहयोग के भारत के यत्नों को चीन ने अनदेखा किया क्योंकि चीन भारत को पूंजीवाद का उपांग और जवाहरलाल नेहरू को तथा दूसरे भारतीय नेताओं को पूंजीवाद का पिछलग्गू अथवा साम्राज्यवाद के 'भागते कुत्ते' कहता रहा। बाद में 1951 के आस-पास एशिया में भारत के महत्व को देखते हुए तथा भारतीय मित्रता के लाभ को ध्यान में रखते हुए, चीन ने भारत एवं भारतीय नेताओं के प्रति अपनी घृणापूर्ण नीति को त्यागने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप चीन भारत की आलोचना के स्थान पर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व तथा महान भारत एवं परंपरागत भारतीय लोगों से मित्रता की इच्छा में परिवर्तित कर दिया। इसी परिवर्तन ने बाद में 'हिंदी चीनी भाई-भाई' की विचारधारा को जन्म दिया।

सन् 1954 में भारत तथा चीन के मध्य कई महत्वपूर्ण समझौते हुए लेकिन सन् 1957 के बाद के काल में दोनों देशों के बीच सीमा विवाद को लेकर मनमुटाव पैदा हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सन् 1962 में दोनों देशों के बीच भारत-चीन सीमा युद्ध हुआ। सन् 1962 के बाद एशिया के दोनों बड़े देशों के संबंधों में भारी गतिरोध आ गया और दोनों के बीच महान रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गई। यह गतिरोध सातवें दशक के प्रारंभिक वर्षों तक चलता रहा।

इसके बाद संबंधों को सामान्य बनाने के लिए कुछ कदम उठाए गए। तब से भारत और चीन दोनों अपने संबंधों को बेहतर बनाने का यत्न कर रहे हैं। परंतु सन् 1962 के युद्ध के घावों तथा दूसरी अनेक हानिकारक तथा नकारात्मक घटनाओं ने सामान्यीकरण को प्रक्रिया को आज तक कठिन, धीमा एवं सीमित ही बनाए रखा है। पिछले कुछ वर्षों में, शीतयुद्ध की समाप्ति तथा सोवियत संघ के विघटन के बाद तथा एकल ध्रुवीय व्यवस्था के उभरने के युग में भारत तथा चीन अपने द्विपक्षीय संबंधों को अच्छा बनाने के महत्व को और अधिक अनुभव करने लगे हैं।

कई पश्चिमी देशों, विशेषतया अमेरिका द्वारा भारत की आलोचना करने पर भी भारत ने चीन की मित्रता प्राप्त करने की दिशा में काम करने का प्रयत्न किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए भारत ने चीन को संयुक्त राष्ट्र में प्रवेश दिलाने के लिए पूरी सहायता देने का निर्णय लिया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र में फारमोसा-चीन को पूरे चीन के प्रतिनिधि के रूप में मान्यता देने की अमेरिका नीति की कड़ी आलोचना की। नेहरू को इस बात की आशा थी कि भारत की ऐसी नीति का चीन द्वारा सकारात्मक उत्तर मिलेगा। लेकिन उस समय के चीन के नेता भारत समेत सभी देशों के प्रति भावना कठोर रखते थे, अत: भारत-चीन संबंधों का आरंभ उचित रूप से न हो सका।

चीन की कठोर नीति तथा भारत

चीन ने 1949 में गैर-साम्यवादी देशों के साथ कठोर नीति अपनाने का निर्णय लिया। फलस्वरूप चीन ने भारत को पश्चिमी समाज का पिछलग्गू कहा। चीन को लगता था कि भारत की स्वतंत्रता अवास्तविक थी और गुट-निरपेक्षता की नीति दिखावा मात्र था। नेहरू को चीन की प्रेस ने साम्राज्यवादियों का दास, बुर्जुवा तथा प्रतिक्रियावादी चरित्र वाला बताया। अपनी कठोर नीति के युग में, जो 1952 तक चली, चीन ने भारत को कोई

महत्व नहीं दिया। श्री माओ ने बी.टी. रणदीव को लिखे पत्र में विचार व्यक्त किए थे कि भारत शीघ्र ही साम्यवादी दल द्वारा आंग्ल-अमेरिकन साम्राज्यवाद तथा 'भारतीय पिछलग्गुओं' से मुक्त करवा लिया जाएगा। इस प्रकार का चीन का नकारात्मक तथा कठोर व्यवहार भारत-चीन संबंधों के विकास में बाधक रहा।

सन् 1950 के दशक के आरंभिक वर्षों के दौरान दोनों देश जिन महत्वपूर्ण विषयों में उलझे रहे, वे थे–तिब्बत की समस्या, कोरिया का संकट।

1. **तिब्बत समस्या तथा भारत-चीन संबंध–**चीन में साम्यवादी शासन स्थापित होने के बाद चीनी गणराज्य ने देश की सीमाओं के विसतार का निर्णय लिया और अल्पसंख्यक समुदाय को डराना शुरू किया। उसने एक योजना तैयार की। भारत को तिब्बत के लोगों से सहानुभूति थी और वह चाहता था कि चीन भी उनके स्वशासन के अधिकार का सम्मान करे। भारत चाहता था कि चीन तिब्बत के नेताओं के साथ शांतिपूर्वक ढंग से तिब्बत संबंधों के प्रश्न को हल करे। भारत ने चीन को सुझाव दिया कि वह तिब्बत के धार्मिक एवं आध्यात्मिक नेता से उनकी किसी न किसी रूप में प्रभुसत्तात्मक स्वायत्तता बनाए रखे जाने के लिए बातचीत करे। चीन ने न केवल इस सुझाव की उपेक्षा की बल्कि इसे चीन के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप भी बताया और भारत को आंग्ल अमेरिकी साम्राज्यवाद का दलाल भी कहा। अक्टूबर 1950 में चीन ने तिब्बत में अपनी सेना भेज दी और तिब्बत पर सैनिक नियंत्रण कर लिया। चीन की इस चाल ने भारत को स्तब्ध कर दिया। भारत की सदा से यह मान्तया थी कि तिब्बत चीन का भाग नहीं था। चीन का तिब्बत पर नाममात्र का आधिपत्य था, इसलिए इसे तिब्बत की प्रभुसत्ता का आदर करना ही चाहिए था। भारत ने इस संबंध में चीन को एक कड़ा विरोध पत्र भेजने का निर्णय लिया। 26 अक्टूबर 1950 के विरोध पत्र में भारत ने यह कहा कि "विश्व की वर्तमान घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में चीनी सेनाओं द्वारा तिब्बत पर किए गए आक्रमण को भारत सोचनीय समझता है और भारत सरकार की पक्की संपत्ति में यह आक्रमण न तो चीन के हित में है और न ही शांति के हित में है।" चीनियों द्वारा इस विरोध पत्र की कड़ी आलोचना की गई। पीकिंग में इसकी बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और उसने भारत को कहा कि वह अपने काम से मतलब रखे। चीन ने फिर घोषणा की, कि तिब्बत चीन का अटूट हिस्सा था। मई 1951 में चीन ने दलाईलामा के प्रतिनिधि को एक सत्रह सूत्रीय समझौते पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया जिसके अनुसार तिब्बत 'चीन का एक क्षेत्र' हो गया और तिब्बत को एक शिथिल और अवास्तविक स्वायत्तता मिली। चीन के साथ मैत्री पूर्ण संबंधों को बनाए रखने की भावना से प्रेरित भारत ने चीन के तिब्बत पर आक्रमण को नजरअंदाज कर दिया और चीनी आक्रमण से स्तब्ध भारत ने चीन के कृत्य को सहने का निर्णय लिया। इसलिए जब संयुक्त राष्ट्र में तिब्बत समस्या पर विचार-विमर्श का समय आया तो भारत ने कहा था कि चीन और तिब्बत को शांतिपूर्वक समस्या का हल ढूंढना चाहिए।

   सितंबर 1952 में भारत और चीन की सरकार ने समझौता किया जिसके द्वारा ल्हासा में भारतीय मिशन को आगे से महावाणिज्य दूतावास का दर्जा दिया जाने का निर्णय लिया गया। ल्हासा में भारतीय मिशन के इस परिवर्तन से ल्हासा की

राजनीतिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आ गया और चीन ने तिब्बत के विदेशी संबंधों पर अपना पूर्ण नियंत्रण कर लिया। सन् 1954 में भारत ने चीन के साथ एक और समझौता किया जिसके अनुसार भारत ने तिब्बत पर चीन के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार चीन-भारत संबंधों में चीन के तिब्बत पर आक्रमण के कारण जो दरार पैदा हुई थी, उसका अंत हो गया।

2. **कोरिया संकट तथा भारत-चीन संबंध–**कोरिया के विवाद पर भारत-चीन संबंधों का संचालन भारत की चीन के साथ मित्रता को विकसित करने तथा चीन एवं पश्चिम के बीच मध्यस्थ बनने की इच्छा से हुआ। 1950 से 1951 तक भारत ने कोरिया में युद्ध विराम कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कोरिया के संकट के आरंभ से ही भारत को इस बात का विश्वास था कि कोरिया चीन के लिए सामरिक महत्व वाली जगह है। इसलिए भारत ने कोरिया समस्या हल करने के लिए चीन का प्रभाव एवं सहयोग का प्रयोग करने का समर्थन किया। भले ही भारत ने संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों का अनुमोदन करते हुए उत्तर कोरिया को आक्रामक बताते हुए उसकी भर्त्सना की और कोरिया में शांति सेना रखने का समर्थन किया किंतु भारत ने संयुक्त राष्ट्र के उस प्रस्ताव का विरोध किया जसमें शांति सेना को कारिया में 38वें अक्षांश को पार करने का निर्देश दिया गया था। भारत का विचार था कि इससे चीन सीधे रूप से युद्ध में कूद पड़ेगा। जब संयुक्त राष्ट्र सेनाएं वास्तव में 38वें अक्षांश को पार कर गईं तो भारत ने इसे खतरनाक पश्चिमी नीति बताते हुए इसकी कड़ी निंदा की। नवंबर 1950 में जब चीन ने सीधे रूप से कार्यवाही की और संयुक्त राष्ट्र की सेनाओं को पीछे खदेड़ दिया तो भारत ने संयुक्त राष्ट्र के उस प्रस्ताव पर मत देने से इनकार कर दिया जिसमें चीन को आक्रामक कहा गया था। भारत की इस कार्यवाही की अमेरिका तथा इसके दूसरे पश्चिमी मित्रों ने कड़ी आलोचना की। किंतु चीन ने भारत की बड़ी प्रशंसा की। भारत की कोरियाई विवाद में स्वतंत्र, सक्रिय एवं साहसिक भूमिका की चीन ने बड़ी प्रशंसा की। यहीं से वास्तव में भारत के साथ मित्रता विकसित करने की आवश्यकता का चीन को अहसास शुरू हुआ।

सन् 1951 से भारत-चीन संबंध

अध्यक्ष माओ ने 26 जनवरी, 1951 को बीजिंग में भारतीय दूतावास में भारतीय गणतंत्र दिवस के समारोह में शामिल होकर चीन के लोगों की भारत के लोगों के साथ मित्रता को नया आयाम दिया। चीन के लोक गणराज्य को चीन का वास्तविक प्रतिनिधि मानने के लिए भारत का पूर्ण समर्थन तथा 1951 में जापान के साथ शांति करने के लिए अमेरिका द्वारा सैन फ्रांसिस्को में बुलाई गई कान्फ्रेंस में भाग लेने से भारत द्वारा इनकार करने के कारण चीन ने भारत की बहुत प्रशंसा की। इस कान्फ्रेंस में चीन को नहीं बुलाया गया था, इस कारण भी भारत ने इस कान्फ्रेंस का बहिष्कार किया था। इससे दोनों देशों के बीच मैत्री एवं सहयोग का युग शुरू हुआ और चीनी नेताओं ने भारतीय नेताओं को अच्छे तरीके से समझना शुरू किया। उन्हें इस बात का विश्वास होना शुरू हो गया कि भारत वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में स्वतंत्र और गुट-निरपेक्ष था।

जनवरी 1951 में भारत-चीन के मध्य चावल-पटसन विनिमय समझौता हुआ। सन् 1952 में श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के नेतृत्व में एक भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि

मंडल चीन गया था। यह प्रतिनिधि मंडल लोक गणराज्य चीन के निमंत्रण पर वहां गया था। इस प्रतिनिधि मंडल ने वापस आने पर बताया कि चीन में भारत में साथ मित्रता एवं भारत को समझने की इच्छा प्रबल थी।

टिप्पणी

तिब्बत समझौता तथा पंचशील

भारत-चीन मैत्री संबंध 29 अप्रैल, 1954 को 8 वर्षीय व्यापार एवं परस्पर संपर्क संधि पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते से भारत ने ब्रिटिश सरकार द्वारा तिब्बत में उपभोगित सीमा अधिकारों को त्यागा तथा तिब्बत को चीन का एक क्षेत्र माना। इस समझौते द्वारा चीन तथा भारत दोनों ने अपने संबंधों में पांच सिद्धांतों को मानने का प्रयत्न किया। ये पांच सिद्धांत (पंचशील) समझौते की प्रस्तावना में ही लिखे गए थे–

1. एक-दूसरे की सेनाओं एवं प्रभुसत्ता की आपसी स्वीकृति।
2. एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना।
3. एक-दूसरे के देश पर आक्रमण न करना।
4. समानता तथा आपसी हितों की रक्षा।
5. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

चीन ने भारत की प्रभुसत्ता और इसकी सीमाओं के प्रति आदर दर्शाने का गंभीर वचन दिया। इस समझौते से भारत-चीन के मध्य मैत्री एवं सहयोग का नया युग प्रारंभ हुआ। भारत द्वारा तिब्बत पर चीन की प्रभुता को स्वीकार कर लेने पर दोनों देशों के संबंध सुदृढ़ हुए और दोनों देशों के नेता विश्व समस्याओं पर एक जैसा दृष्टिकोण अपनाने लगे। दोनों देशों ने एशिया में पश्चिमी नीतियों, सैनिक गठबंधनों तथा उपनिवेशवाद का विरोध किया।

जून 1954 में चीन के प्रधानमंत्री चाऊ-इन-लाई ने भारत की यात्रा की और उनका हार्दिक स्वागत किया गया। यात्रा के अंत में नेहरू तथा चाऊ-इन-लाई ने अपने साझे बयान में पंचशील में आस्था व्यक्त की। टी.एन. कौल के अनुसार, "इससे पंचशील को और अधिक सम्मान एवं महत्व मिला।"

हिंदी चीनी भाई-भाई की भावना–भारत-चीन संबंधों में जब दोनों देशों में हिंदी चीनी भाई-भाई जैसे नारों की गूंज थी उसी दरम्यान नेहरू ने चीन यात्रा की। अप्रैल 1955 की बुटुंग कान्फ्रैंस में दोनों देशों के बीच निकटतम सहयोग तथा नवंबर-दिसंबर 1956 में चाऊ-इन-लाई की दूसरी भारत यात्रा से दोनों देशों के संबंधों में बड़ा सुधार हुआ। 1 अप्रैल, 1955 को ल्हासा प्रलेख पर हस्ताक्षर, ताइवान समस्या पर भारत का चीन को पूर्ण समर्थन का आश्वासन तथा संयुक्त राष्ट्र में चीन के प्रवेश के अधिकार को प्राप्त करने के लिए चीन को भारत का सहयोग, इन सबसे चीन बहुत खुश हुआ। चीन ने बदले में गोवा के मामले पर भारत को समर्थन दिया। भारत तथा चीन दोनों ने इकट्ठे सीटो (SEATO) का विरोध किया। अब भारत-चीन संबंधों को विकसित करना दोनों के नेताओं का एक लक्ष्य बन गया।

भारत तथा चीन के मानचित्रों का मतभेद–1954 में चीनी में छपे कुछ मानचित्रों में बहुत बड़े भारतीय खंड को चीनी भूखंड का भाग दिखाया गया था। अक्टूबर 1954 में श्री नेहरू ने अपनी चीन यात्रा के दौरान इस तथ्य की ओर श्री चाऊ का ध्यान दिलाया। इसके उत्तर में नेहरू को बताया गया कि ये पुराने मानचित्र थे, जिन्हें समय आने

पर सुधार लिया जाएगा। भारत ने चीनी स्पष्टीकरण को स्वीकार कर लिया, लेकिन चीनी इरादों से भारत की आशंका बढ़ गई। भारत की ऐसी आशंकाएं ठीक सिद्ध हुईं जब चीन ने बराहोती में एक शिविर स्थापित कर लिया। यह स्थान शिपकी दर्रे से 19 मील नीचे था। अप्रैल 1956 में चीनियों ने उत्तर प्रदेश के निलांग क्षेत्र में प्रवेश किया। छः महीने बाद चीनियों ने भारतीय सीमा का अतिक्रमण सिपकी दर्रे को पार करके किया। इन उत्तेजक कार्यवाहियों के बावजूद भारत ने कोई कार्यवाही नहीं की। सिर्फ चीन को विरोध पत्र भेजा। नवंबर, 1956 तथा जनवरी 1957 में चाऊ-इन-लाई की भारत यात्रा के दौरान यह निर्णय लिया गया कि 'सीमा संबंधी कोई विवाद नहीं है। कुछ छोटी-मोटी समस्याएं हैं जिन्हें मित्रतापूर्ण तरीके से हल कर लिया जाना चाहिए।

भारतीय सीमाओं के साथ-साथ चीनी गतिविधियां–लगभग उसी समय चीन ने सिवयांग तिब्बत सड़क का निर्माण शुरू कर दिया। यह सड़क पूर्वी लद्दाख से गुजरती थी। भारत सरकार को 1958 के शरद काल तक इसकी कोई खबर नहीं लगी। 1957 तक चीनियों द्वारा भारतीय सीमाओं का उल्लंघन एक नियमित कार्य बन गया था। भारत-चीन के आक्रामक व्यवहार से चिंतित हुआ और उसने सीमा सुरक्षा को मजबूत करना आरंभ कर दिया। तत्पश्चात भारत और चीन के संबंध चिंताजनक होने शुरू हो गए। चीनी सेनाओं द्वारा बाराहोती तथा अक्साई चिन क्षेत्रों का अतिक्रमण हुआ तथा 1958 में चीन ने भारत के खुरनाक किले पर अधिकार कर लिया। उसी महीने चीन के एक मासिक पत्र 'चाइना क्टिोरिल' में कुछ मानचित्र प्रकाशित हुए, जिनमें बहुत बड़े भारतीय भाग को चीन के भाग के रूप में दिखाया गया। जब भारत सरकार ने एक पत्र के द्वारा चीन का ध्यान इस और दिलाया तो चीन ने उत्तर दिया कि चीन ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण नहीं किया और न ही सीमा समस्या के संबंध में दोनों देशों ने विचार-विमर्श किया है। इसलिए इन नवीन मानचित्रों को बदला नहीं जा सकता। इस उत्तर ने चीन की पूर्व स्थिति से न हटने के निश्चित संकेत दिए। चीन की पूर्व स्थिति थी– 'मानचित्र पुराने हैं और समय आने पर इनमें सुधार कर लिया जाएगा।' नई स्थिति का अर्थ था कि चीन ने किसी समय अपने मानचित्र में दिखाई गई सीमाओं को विवादास्पद घोषित करने का अपना अधिकार सुरक्षित कर लिया था।

नेफा में चीनी घुसपैठ–सितंबर, 1958 के उत्तरार्द्ध में भारतीय सरकार को सूचना मिली कि चीनी सैनिकों की एक टुकड़ी ने नेफा के लोहित मंडल में घुसपैठ की थी। अक्टूबर 1958 में भारत को अक्साई चिन सड़क के बारे में पता चला, जिसे चीनियों ने भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए पहले बनाया था। भारत ने चीन को एक कड़ा विरोध पत्र भेजा और उसे जल्दी उत्तर देने को कहा। लगभग उसी समय भारत को सूचना मिली कि चीन ने भारत-तिब्बत सीमा के साथ लैपथल तथा सांगचोमाला में बाहरी चौकियां स्थापित कर ली हैं। परिणामस्वरूप एक दूसरा विरोध पत्र चीन को भेजा गया।

सीमा विवाद का उत्पन्न होना–1957-58 में भारत तथा चीन के संबंधों में तनाव आ गए तथा भारत-चीन के बीच सीमा विवाद उत्पन्न हो गया। इस काल में चीन का भारतीय सीमा पर दावा बड़ा चौकाने वाला था और चीनियों द्वारा भारतीय सीमा का अतिक्रमण नियमित तथा खतरनाक बन गया था। सितंबर 1958 में नेहरू ने चाऊ-इन-लाई को पत्र लिखा जिसमें चीन के भारतीय सीमा पर दावे को कठोरता से नकारा गया और चीनी सैनिकों द्वारा भारतीय सीमा के अतिक्रमण पर विरोध प्रकट किया। 29 जनवरी,

1958 में चाऊ-इन-लाई ने कहा कि, "भारत-चीन सीमा कभी भी औपचारिक रूप से सीमांकित नहीं की गई।" इस उत्तर से चीनियों के इरादों तथा भारतीय सीमाओं पर चीनी खतरे के प्रति कोई भी शक नहीं रह गया था।

टिप्पणी

तिब्बत में अशांति तथा चीन-भारत संबंध—सन् 1959 में तिब्बत समस्या ने एक बार फिर चीन-भारत संबंधों को प्रभावित किया। 9 मार्च, 1959 को ल्हासा में चीन के विरोध में प्रदर्शन हुए और तिब्बत की मंत्रीपरिषद ने तिब्बत को स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया। चीन लोक गणराज्य की सेना ने इस विद्रोह को कुचल दिया। तिब्बत के नेता दलाई लामा ने अपने अनुयायियों के साथ तिब्बत छोड़ दिया और भारत में शरण ली। उसके बाद भारत सरकार ने दलाई लामा तथा उनके अनुयायियों को भारत में राजनीतिक शरण दे दी। भारत के इस निर्णय पर चीन ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की और भारत पर झूठे आरोप लगाकर अपना क्रोध व्यक्त किया तथा भारतीय सीमाओं का बार-बार अतिक्रमण किया। पंगोरा झील के पश्चिमी क्षेत्र में सैनिक टुकड़ी तथा स्पानीपुर में चीनी सैनिक शिविर की स्थापना के समाचार ने भारत-चीन संबधों को और गहरा धक्का पहुंचाया।

चीनी सैनिकों के बार-बार सीमा अतिक्रमण ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया। 7 अगस्त, 1959 को चीन की एक गश्ती टुकड़ी ने खिसमैन के स्थान पर भारत में प्रवेश किया और 25 अगस्त, 1959 को एक बड़ी चीनी टुकड़ी ने नेफा के सावन मंडल में प्रवेश किया और लौंगजू की भारतीय सीमा चौकी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद सीमा घटनाओं की एक श्रृंखला प्रारंभ हो गई। इन सभी घटनाओं से भारत में चीन विरोधी भावनाएं भड़कीं। नेहरू स्वयं भी इस घटनाओं से बड़े बेचैन हुए। लौंगजू चौकी के चीनी अधिकार को नेहरू ने भारत पर आक्रमण बताया। उन्होंने भारत की सीमाओं की सुरक्षा के लिए दृढ़तापूर्वक मत व्यक्त किया और इस विवाद के शांतिपूर्ण समाधान के लिए विश्वास व्यक्त किया और घोषणा की, "समायोजन के लिए दरवाजे खुले हैं।" दूसरी और चाऊ-इन-लाई ने नेहरू को कहा कि चीन भारत की उत्तरी सीमाओं को स्वीकार नहीं करता। उसने कहा "भारत-चीन सीमाओं को कभी भी औपचारिक रूप से सीमांकित नहीं किया गया है। मैकमोहन कही जाने वाली रेखा चीन के क्षेत्र में तिब्बत पर ब्रिटिश आक्रामक नीति की उपज थी तथा इसलिए इसे वैध नहीं माना जा सकता।'' उसने आगे कहा, "भारत-चीन सीमा प्रश्न एक जटिल प्रश्न था जो कि इतिहास की देन था।" इस उत्तर से यह स्पष्ट हो गया कि चीन भारत की सीमाओं को खुला समझता था और इस सीमा का अंकन अभी किया जाना बाकी था। भारत के लिए यह सूचना बड़ी दहलाने वाली थी और उसने अपने आपको गंभीर खतरे से दो-चार पाया। चीन-भारत सीमा एक विस्फोटक तथा विवादास्पद सीमा बन गई।

भारत-चीन सीमा युद्ध 1962 तथा युद्धोत्तर काल के संबंध

1950 के दशक के अंत तक भारत-चीन की प्रारंभिक सीमा समस्या पूर्ण रूप से सीमा विवाद में परिवर्तित हो गई। 1959 भारत तथा चीन के संबंधों में बहुत अधिक तनाव आ गया। इस तनाव का कारण था—सीमाओं पर घटनाएं और इस स्थिति के प्रति कड़ा चीनी रुख। 19 दिसंबर, 1959 को राज्य सभा में एक बहस का उत्तर देते हुए श्री नेहरू ने कहा, "भारत और भारतीय सीमाओं के संदर्भ में पूर्ण विश्व में बदलाव आ रहा है। यह ऐतिहासिक बदलाव बहुत बड़े परिणाम का है। पहली बार एशिया की दो बड़ी शक्तियां

शस्त्र युक्त सीमा पर एक-दूसरे का सामना कर रही हैं। पहली बार एक बड़ी शक्ति अथवा संभावित विश्व शक्ति हमारी सीमाओं के पास बैठी है।" वास्तव में, चीन द्वारा भारत के एक बहुत बड़े भाग पर अन्यायपूर्ण अधिकार से तथा लगातार चीन द्वारा शत्रुतापूर्ण रुख अपनाए जाने से भारत बहुत चिंतित था। छठे दशक के अंत तक भारत को इस बात का विश्वास हो गया था कि भारत के चीन के साथ मित्रतपूर्ण सहयोग स्थापित करने के यत्न पूर्णत: असफल हो गए थे और भारत की उत्तरी तथा पूर्वी सीमाओं पर चीन का खतरा बढ़ गया था। 1950 के दशक के आरंभ के वर्षो में चीनी मानचित्रों को बनाने का जो खेल होता था, वहीं इस दशक के अंत तक चीन भारतीय क्षेत्र के बड़े भू-भाग को हड़पने का खेल बन गया। 'भारत और चीन के बीच कोई सीमा विवाद नहीं है' इस स्पष्ट बयान से चीन ने अपनी स्थिति को बदला और कहा, "भारत-चीन सीमा का कभी सीमांकन नहीं हुआ तथा कथित मैकमोहन रेखा चीन के तिब्बत पर ब्रिटिश आक्रामक नीति की उपज थी। इसलिए चीन को यह मान्य नहीं थी।" सीमा मुद्दे पर चीन के इस परिवर्तित दृष्टिकोण से भारत को बड़ा धक्का लगा और वे चीन के साथ लगती उत्तरी सीमाओं पर अपने आपको गंभीर खतरे से घिरा पाया। भारतीय सीमाओं पर बड़ी संख्या में चीनी सैनिकों का जमाव और उनका नियमित रूप से भारतीय सीमाओं का उल्लंघन भारत के लिए एक सिरदर्द बन गया। सीमा घटनाएं दिन प्रतिदिन बढ़ने लगीं। 1955-62 तक 30 ऐसे स्पष्ट मामले सामने आये, जिनमें चीनी सैनिकों ने स्पष्ट रूप से भारतीय सीमाओं का अतिक्रमण किया। इससे भारत-चीन सीमा एक आग्नेय सीमा बन गई। दोनों देशों के संबंध 1959 को तिब्बत की अशांति तथा दलाई लामा तथा उसके अनुयायियों को शरण देने के कारण और भी अधिक कटु हो गए।

टकराव को टालने के प्रयत्न—भारतीय सीमाओं पर चीन की ओर से मंडराते हुए युद्ध के खतरे के होते हुए भी भारत-चीन की मित्रता प्राप्त करने के किसी भी अवसर को खोने के लिए तैयार नहीं था। नेहरू अब भी कहते थे, "हमें न तो ऐसा कुछ कहना चाहिए और न ही ऐसा कुछ करना चाहिए, जिससे चीन को ऐसा लगे कि हम उसके सम्मान तथा राष्ट्रीय गोरव को आहत कर रहे हैं।" भारत अब अपनी सीमाओं का प्रश्न चीन के साथ शांतिपूर्ण वार्ता तथा पंचशील की भावना द्वारा हल करना चाहता था। लेकिन शांतिपूर्ण वार्ता द्वारा समस्या का समाधान ढूंढने के सारे यत्न बुरी तरह असफल रहे। सन् 1960 के आरंभ में नेहरू ने चाऊ-इन-लाई को भारत-चीन सीमा विवाद को सुलझाने के लिए बुलाया। परिणामस्वरूप अप्रैल, 1960 में चाऊ भारत आया और छः दिन भारत में रहा। इस दौरान उसने श्री नेहरू तथा दूसरे भारतीय नेताओं से बातचीत की। वह सीमा विवाद को हल करने के लिए गंभीर था। लेकिन दुर्भाग्य से दोनों देश न तो किसी समझौते पर पहुंचे और न ही सीमा विवाद की प्रकृति तथा न ही उसके विषय क्षेत्र को आंक पाए। विचार-विमर्श के समय यह पता चला कि दोनों देशों ने जो स्थितियां अपनाई हुई थीं, उनमें बहुत अधिक अंतर था। भारतीय लोक सभा में बोलते हुए श्री नेहरू ने कहा, "भारत तथा चीन के सम्मुख एक-दूसरे से भिन्न तथ्यों की कठोर चट्टान सदा ही सामने आ जाती हैं।" श्री नेहरू भारत के वैध दावे पर अड़े रहे और उन्होंने किसी राजनीतिक अथवा सैनिक महत्व पर आधारित किसी भी समाधान के लिए वार्ता करने से इनकार कर दिया। इसके विपरीत चाऊ-इन-लाई अक्साई चिन तथा उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में चीनी दावे पर रहा। इन क्षेत्रों में उन्होंने पहले ही सड़क बना ली थी और यह क्षेत्र उनके अधिकार में था। परिणामस्वरूप 1960 ई. की नेहरू-चाऊ वार्ता बिना किसी परिणाम के असफल हो गई।

सीमा मुद्दे पर तीव्र मतभेद—भारतीय एवं चीनी प्रतिनिधियों के बीच दिसंबर 1960 में कई सप्ताहों की असफल वार्ता के बाद दोनों की और से दो विभिन्न रिपोर्टें प्रकाशित की गईं, जिनमें दोनों देशों की सीमा के प्रति तीव्र मतभेद उभर कर सामने आए। भारतीय प्रतिनिधि मंडल ने वार्ता में 630 प्रमाण पत्र प्रस्तुत किए जिनमें 49 कानूनी थे और 516 पारस्परिक तथा प्रशासनिक तथ्यों से समर्थित थे। चीन ने केवल 245 प्रमाण पत्र ही प्रस्तुत किए, जिसमें 47 कानूनी थे और 198 पारस्परिक तथा प्रशासनिक तथ्यों से समर्थित थे। वार्ता के दौरान इस तथ्य पर प्रकाश पड़ा कि चीन ने भारतीय क्षेत्र का 12,000 वर्ग मील का भाग पहले ही गैर-कानूनी रूप से हड़प लिया था। अधिकारियों की वार्ता के मध्य तथा बाद में भी चीन नए क्षेत्रों पर नियंत्रण करने के लिए और पहले से कब्जा किए हुए भाग में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए भारतीय क्षेत्र में घुसपैठ करता रहा।

भारतीय उत्तरी सीमाओं पर युद्ध के बाद—1961 ई. में लद्दाख और नेफा क्षेत्रों में युद्ध के बादल मंडराने शुरू हो गए थे। अप्रैल 1961 में चीन ने सिक्किम में घुसपैठ की और मई में लद्दाख के चसूल क्षेत्र में, 1 जुलाई में नेफा के कासेग मंडल में पैर बढ़ाए और अगस्त में चीन ने लद्दाख में तीन सैनिक चौकियां स्थापित कर लीं। चीनियों की इस घुसपैठ से भारत को चीनियों द्वारा पूर्ण भारत-चीन सीमा पर गश्त करने की आवश्यकता महसूस हुई और उसने अपने क्षेत्र में नई सैनिक चौकियां स्थापित करनी शुरू कर दीं। भारत की इस कार्यवाही का चीनियों ने कड़ा विरोध किया। ऐसा प्रतीत होने लगा कि स्थिति सीधे संघर्ष की और बढ़ रही थी।

1962 का चीनी आक्रमण—जनवरी 1962 में चीनियों ने नेफा में लौंगजू को पार किया। जून 1962 में लद्दाख क्षेत्र में चिपचाप तथा सपानगुर में प्रविष्ट हुए। जुलाई 1962 को उन्होंने गल्वान घाटी को घेर लिया। 8 सितंबर, 1962 को चीनियों ने थगला पठार को पार किया और नेफा में और अधिक आगे बढ़ आए। इस तिथि के बाद वे भारतीय सीमा पर एक बड़े युद्ध की तैयारी में गोलाबारी करते रहे, और यह युद्ध 20 अक्टूबर, 1962 को सुबह को आरंभ हो गया। इस दिन चीनी सैनिकों ने पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्रों पर बहुत बड़ा आक्रमण किया। उन्होंने भारतीय सैनिकों को पछाड़ दिया। भारतीय सैनिकों की संख्या बहुत कम थी और उनके शस्त्र भी घटिया किस्म के थे। चीनियों को पता था कि भारत बड़े हमले के लिए तैयार नहीं था। और चीनियों के भारी हमले ने हमें आश्चर्यचकित कर दिया। हमारी सेनाएं नेफा में पराजित हुईं। सामरिक दृष्टि में भले ही हमें कुछ हानि हुई हो लेकिन लद्दाख में हमारी सेनाओं ने अपनी शक्ति का अच्छा परिचय दिया। नेफा में तीन सप्ताह की लड़ाई में चीन इस स्थिति में आ गया था कि वह सभी पहाड़ी दर्रों को पार कर सकता था और इससे असम के मैदानों को खतरा पैदा हो गया। चीन के पूर्ण स्तरीय आक्रमण की संभावना से भारत बुरी तरह चितिंत हो गया। परिणामस्वरूप उसने कुछ मित्र देशों से सहायता लेने का निर्णय लिया। लेकिन 21 नवंबर, 1962 को चीन ने एक तरफा युद्ध की समाप्ति की घोषणा कर दी और भारत-चीन के बीच 7 नवंबर, 1959 की वास्तविक नियंत्रण रेखा से 20 किलोमीटर हटने का निर्णय किया। एन.डी. पामर लिखते हैं, "इस प्रकार युद्ध का डर सीमा युद्ध में परिवर्तित हो गया।" लेकिन भारत की सैनिक दृष्टि से, कूटनीति की दृष्टि से और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत बड़ी हार हुई। श्री नेहरू ने भी स्वीकार किया, "हम अपने द्वारा निर्मित नकली वातावरण में रहते रहे हैं। .... चीनी कृत्यों में हमें यथार्थ का बोध हुआ है।"

भारत-चीन संबंधों में गतिरोध–चीन के आक्रमण से न केवल भारत-चीन सबंधों को भारी धक्का लगा अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की साख भी गिर गई। कई पश्चिमी प्रेक्षकों ने महसूस किया कि चीन के साथ सीमा विवाद भारत के विदेशी संबंधों तथा स्थिति निर्धारण के लिए गत्यारोधात्मक प्रमाणित हुआ। इस हार से अफ्रीकी-एशियाई राष्ट्रों की नजरों में भारत का गौरव कम हो गया। इस हार से पाकिस्तान भी यह सोचने के लिए उत्साहित हुआ कि वह कश्मीर का सैनिक समाधान भारत पर लाद सकता था। इसी विचार के अधीन उसने 1965 ई. में भारत पर आक्रमण कर दिया परंतु तब भारत ने उसे करारा उत्तर दिया आर्थिक दृष्टि से भी चीन के युद्ध ने भारत को हानि पहुंचाई। विकास की सभी योजनाएं पीछे रहीं। भारत को अपना सैनिक व्यय बढ़ाने पर मजबूर होना पड़ा। वैसे इस आक्रमण ने भारतीय सुरक्षा को राष्ट्रीय हितों के प्रति अधिक चौकस और संगठित कर दिया। इस आक्रमण से भारत जाग उठा, उसने अपनी सुरक्षा को परिष्कृत किया, लोगों को सुसंगठित किया और अपने स्रोतों को उचित रूप में प्रयोग में लाने का उपक्रम किया।

युद्धोत्तर काल में भारत-चीन संबंध–सन् 1962 ई. के उत्तर काल में संपर्क की कमी के कारण भारत-चीन संबंध टूटे रहे जो 1970-71 तक ऐसे ही बने रहे। युद्ध के बाद दोनों देशों में किसी ने भी राजदूतों की नियुक्ति नहीं की और दोनों के बीच कूटनीतिक संबंध भी प्रभारी राजदूत के स्तर पर गए। चीन भारत के प्रति अधिक से अधिक शत्रुतापूर्ण व्यवहार अपनाने लगा। दूसरे छोटे देशों से सीमा समझौते करके भारत को चीन ने अलग-थलग करने की कोशिश की। इसका उद्देश्य यह था कि चीन विश्व को यह बतलाना चाहता था कि वह पड़ोसियों के साथ सीमा विवाद हल करने के मामले में कितना उदार तथा तर्कसंगत है, जबकि भारत इसके विपरीत कठोर एवं असमझौतावादी है। चीन ने पुनः भारत विरोधी प्रचार को तेज कर दिया। एक बार फिर चीन ने भारत को साम्राज्यवादियों के हाथ की कठपुतली कहा, जो इसे अंतर्राष्ट्रीय चीन विरोधी अभियान में प्रयुक्त करते थे। उसने सिक्किम और भूटान के प्रति भारतीय नीति को विस्तारवादी कहना आरंभ कर दिया।

चीन पाकिस्तान धुरी की स्थापना–चीन ने भारत के शत्रु को कश्मीर के लिए पूर्ण समर्थन, आर्थिक तथा सैनिक सहायता देकर मित्र बनाना शुरू किया। पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर को सीमा के संबंध में चीन ने पाकिस्तान के साथ एक सीमा-समझौते पर हस्ताक्षर किए। 1965 ई. के भारत-पाक युद्ध में चीन ने पाकिस्तान को नैतिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक तथा सैनिक सहायता के रूप में पूर्ण समर्थन दिया। भारत जब पाकिस्तानी आक्रमण को पीछे धकेलने का यत्न कर रहा था तभी चीन ने भारत-चीन सीमा पर तनाव पैदा करने की चेष्टा की। पाकिस्तान को समर्थन देने के लिए तथा भारत पर दबाव डालने के लिए चीन ने भारत को गंभीर परिणामों की धमकी दी। लेकिन चीन ने 1965 ई. के भारत-पाक युद्ध में किसी भी प्रकार के सैनिक हस्तक्षेप से गुरेज किया। 1965 के बाद चीन और पाकिस्तान दोनों ने मिलकर दक्षिण एशिया में भारत विरोधी शक्तियों को संगठित करना शुरू कर दिया। चीन और पाकिस्तान की गुप्त संधि ने भारत को सताना शुरू कर दिया। बीजिंग-पिंडी धुरी, 1964 के अणुबम विस्फोट के बाद चीन की तेजी से बढ़ती सैनिक शक्ति, चीन का भारत से सीमा विवाद के संबंध में कड़ा रुख, सीमा पर चीन और भारतीय सेना में बढ़ती हुई गोलाबारी की घटनाएं तथा चीन का भारत

विरोधी तत्वों जैसे आतंकवादी नागाओं, मिजो विद्रोहियों, नक्सलवादियों का समर्थन, आदि सबने इन दोनों देशों के आपसी संबंधों में गहरा तनाव और दबाव पैदा कर दिए।

टिप्पणी

भारत-चीन संबंधों का सामान्यीकरण

परस्पर अविश्वास, डर तथा शत्रुता के युग में रहने के पश्चात अथवा वैर-विरोध तथा तनाव के वातावरण में जहां तर्क का हर जगह पर बोलबाला था, भारत तथा चीन ने आठवें दशक में आपसी संबंधों में आये इस गतिरोध को दूर करने की आवश्यकता महसूस की। एशिया में परिवर्तित स्थिति, नए अंतर्राष्ट्रीय दृश्य पटल के आविर्भाव, 1971 ई. में तृतीय विश्व के रूप में उभरना, तृतीय विश्व के देशों में महत्वपूर्ण नेता के रूप में बढ़ती हुई भारतीय भूमिका, तृतीय विश्व के देशों के साथ संबंधों में आए गतिरोध को समाप्त करने की भावना इन सब ने मिलकर भारत-चीन संबंधों को सुधारने की प्रक्रिया आरंभ करने की आधार भूमि तैयार की।

1962 ई. के पश्चात भारत अपनी शक्ति को बढ़ाने की कोशिश में लग गया था। 1965 ई. में पाकिस्तान के युद्ध के साथ भारत ने अपनी शक्ति का परिचय दिया था। 1971 ई. के युद्ध में पाकिस्तान पर भारत की विजय ने दक्षिण एशिया में भारत की बढ़ती हुई शक्ति का प्रदर्शन किया। दोनों महाशक्तियों के साथ अच्छे संबंध बनाने तथा 1972 में शिमला समझौते के द्वारा पाकिस्तान के साथ संबंध सुधारने के प्रयास ने विदेशी संबंधों के सफलतापूर्ण संचालन की भारतीय योग्यता को सिद्ध कर दिया। तृतीय विश्व में एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू की तथा इस समय गुट-निरपेक्ष आंदोलन से भी भारत की छवि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उभरी। इसलिए चीन को भारत के साथ संबंधों को सामान्य बनाने की आवश्यकता स्वीकार करनी पड़ी। सन् 1971 में भारत-सोवियत संधि पर हस्ताक्षर होने के पश्चात बढ़ती हुई भारत-सोवियत मित्रता ने चीन को यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि उसके भारत के साथ तनावपूर्ण संबंध ही भारत सोवियत मित्रता का आधार है। बढ़ती हुई सोवियत शक्ति का डर तथा सोवियत चीन संबंधों में बढ़ती हुई दरार ने चीन तथा भारत को नजदीक लाने में काफी मदद की। इस प्रकार 1970 के दशक का प्रारंभ भारत को अपने संबंधों में सुखद परिवर्तन लेकर आया। माओ-त्से-तुंग तथा चाऊ-इन-लाई की मृत्यु के पश्चात आठवें दशक के मध्य में चीन में नए नेतृत्व के आने से उसकी विदेश नीति कुछ उदारवादी बनी। इससे भी भारत तथा चीन के संबंधों को सामान्य बनाने की प्रक्रिया को शक्ति मिली। वैसे आज तक संबंधों में पूर्ण सामान्यीकरण तथा वास्तविक तनाव से मुक्ति की प्रगति काफी कम ही रही है। लेकिन ऐसा क्यों है? क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए पहले हमें भारत-चीनी संबंधों के 1971 से सामान्यीकरण की प्रक्रिया के इतिहास का विश्लेषण करना होगा।

सामान्यीकरण के संकेत—भारत के प्रति चीन के इस परिवर्तित व्यवहार के पहले संकेत 1969 ई. में तब मिले जब चीनियों ने भारतीय कूटनीतिक मिशनों द्वारा आयोजित समारोहों में भाग लेना शुरू किया और अपने समारोहों में भारतीय कूटनीतिज्ञों को आमंत्रित करना शुरू किया। परिवर्तन का 'बड़ा संकेत' तब मिला जब 1970 ई. में बीजिंग में मई दिवस स्वागत समारोह के अवसर पर अध्यक्ष माआ त्सेतुंग ने भारतीय प्रभारी राजदूत का स्वागत करते हुए कहा था कि, "भारत एक महान देश है तथा भारत और चीन बहुत पहले अच्छे मित्र थे, उन्हें फिर मित्र बनना चाहिए।" इस घटना को 'माओ मुस्कराहट' के नाम

टिप्पणी

से जाना जाने लगा तथा भारतीय चीनी कूटनीतिज्ञ दूसरे देशों की राजधानियों में अपनी गतिविधियों के दौरान संपर्क बढ़ाने लगे। 1971 ई. में चीन के राजदूत ने श्री डी.पी. धर से मास्को में तीन मुलाकातें कीं। इसी प्रकार काहिरा, पैरिस, वार्सा तथा बोन में चीन तथा भारत के राजदूतों में संपर्क बने। इन बढ़ते हुए संपर्कों के परिणामस्वरूप भारत तथा चीन के बीच एक अच्छी शुरुआत होने की संभावना बनने लगी। अक्टूबर, 1971 में भारतीय विदेश सचिव के नेतृत्व में अफसरों के एक दल ने नई दिल्ली में चीन के राष्ट्रीय दिवस समारोह में भाग लिया। दिसंबर 1971 में भारत सरकार ने चीनी दूतावास के बाहर बनी पुलिस चौकी को हटाने का आदेश दिया। इस चौकी को 1957 ई. में बनाया गया था। भारतीय एवं चीनी कूटनीतिज्ञों के बीच मुस्कराहटों का आदान-प्रदान तथा हाथ मिलाने का क्रम नियमित बन गया। नवंबर 1971 में चीन ने अफ्रीकी-एशियाई मैत्री टेबल टेनिस प्रतियोगिता (AAFTTC) में भारत की टीम को भी आमंत्रित किया। भारत ने इस निमंत्रण को स्वीकार किया और इस प्रकार दोनों देशों के मध्य पिंगपांग कूटनीति ने जन्म लिया।

भारत-चीन संबंधों में पाकिस्तानी तत्व–दिसंबर 1971 के भारत-पाक युद्ध में चीन ने भारत की भूमिका का विरोध किया किंतु यह विरोध इतना शत्रुतापूर्ण नहीं था जितना 1965 ई. में था। वैसे कुछ प्रकार की सकारात्मक घटनाओं के साथ-साथ चीनियों द्वारा भारतीय क्षेत्रों का अतिक्रमण और भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच पहले की तरह सीमा घटनाएं होती रहीं। चीनी प्रैस में भारत के प्रति उतनी ही शत्रुतापूर्ण बनी रही और चीन पाकिस्तान को भारत के विरोध में समर्थन देता रहा। जनवरी 1972 में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री श्री भुट्टो की चीन यात्रा की पूर्व संध्या पर 'पीकिंग डी' ने अपने संपादकीय में भारत और सोवियत संघ की बांग्लादेश के युद्ध में निभाई गई भूमिका के लिए आलोचना की और चेतावनी दी कि ''भारत इस उप महाद्वीप में और अधिक समस्याओं की अपेक्षा कर सकता था।" 1972 ई. के पहले महीनों में चीन के अनेक नेताओं ने भारत के विरुद्ध अनेक बयान दिए।

लेकिन इन्हीं दिनों चीन ने भारत के साथ संबंधों को सामान्य बनाने की प्रक्रिया को बनाए जाने की इच्छा भी प्रकट की। एक और चीन ने पाकिस्तान को कश्मीर समस्या पर पूर्ण समर्थन दिया और दूसरी और भारत तथा पाकिस्तान के बीच समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधान के लिए वार्तालाप का भी स्वागत किया। जब श्रीमती इंदिरा गांधी चेकोस्लोवाकिया तथा हंगरी की यात्रा पर गईं तो चीनी कूटनीतिज्ञ सभी समारोहों में उपस्थित रहे और भारतीय संवाददाताओं को दोनों देशों के संबंधों के सुधारने की आवश्यकता व्यक्त करते रहे। इस समय के दौरान चीन की भारत के प्रति नीति में कई उतार-चढ़ाव आए लेकिन इसे भी दशक के कठोर रुख तथा 1962 के काल के भारत-चीन संबंधों में आए गतिरोध की अपेक्षा अच्छा समझा जाने लगा। 1972 ई. के मध्य चीनी तथा भारतीय अधिकारियों के बीच गैर सरकारी तथा अप्रत्यक्ष स्तर पर संबंध पुन: बने और बढ़े। वार्सा में भारतीय और चीनी राजदूतों में बड़ी महत्वपूर्ण वार्ताएं हुई और इस बात के बड़े सुदृढ़ संकेत मिले कि निकट भविष्य में भारत-चीन संबंधों में सुधार आएगा। भारतीय एवं चीनी नेता भी संभावित लाभ की बात करने लगे जो दोनों देशों को उनके वाणिज्य संबंधों से प्राप्त हो सकते थे। इसी समय भारत-चीन संबंधों की समीक्षा करते हुए तत्कालीन भारतीय विदेश मंत्री स. स्वर्ण सिंह ने 15 दिसंबर, 1972 को राज्यसभा में कहा कि सरकार दोनों देशों के बीच संबंधों से प्रसन्न नहीं थी। "भारत बीती हुई बातों को विसारने तथा चीन के साथ नए सिरे

से संबंध स्थापित करने को तैयार था।" उन्होंने कहा, "भूगोल में हमें इस महान देश का पड़ोसी बनाया, हम चीन को और चीन भारत को अब और अधिक दूर नहीं रख सकता। युगों से सीमा विवाद कई देशों में रहा है और इनका समाधान भी शांतिपूर्ण ढंग से हुआ। इसलिए हमें ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं देता कि भारत और चीन इस समस्या का कोई समाधान नहीं ढूंढ़ सकेंगे।" इस बयान से यह बात स्पष्ट हो गई कि 1972 तक भारत-चीन के साथ अच्छे संबंधों का नया अध्याय शुरू करने का इच्छुक था किंतु 1972 ई. में चीनी नेता पूर्णतया भारतीय आकांक्षाओं का उचित प्रतिउत्तर देने में असफल रहे। वे अब भी इस बात को अच्छा समझते थे कि ''बातचीत में नर्म तथा कर्म में कठोर बने रहो।"

चीनी अवबोधन में परिवर्तन–अगले तीन वर्षों (1973-1975) तक लुका-छिपी का खेल चलता रहा। भारत तथा चीन दोनों के अधिकारी आपसी संबंध बनाने तथा उन्हें बढ़ाने में लगे रहे और भारत-चीन मित्रता तथा सहयोग को बनाने की इच्छा व्यक्त करते रहे लेकिन इस दिशा में इससे अधिक कुछ नहीं किया गया और न ही कुछ प्राप्त हुआ। इस पूरे काल में चीन यह प्रभाव देता रहा कि भारत के साथ संबंधों को सुधारने में बड़ा आतुर है। चीन के इस प्रभाव को फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक आन्द्रे मालरॉक्स तथा अमेरिका के भूतपूर्व राजदूत और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गालब्रैथ ने अपनी अप्रैल (1973) में चीन यात्रा के समय भी अनुभव किया। गालब्रैथ ने अपने इस प्रभाव से नई दिल्ली को अवगत करवाया और उसे बताया कि भारत-चीन वास्तव में भारत के साथ अपने संबंधों को सुधारना चाहता था। यह उसकी सामान्य इच्छा थी कि पारस्परिक लाभ पर आधारित उपमहाद्वीप के दोनों देशों में संबंध कायम हों। परंतु भारत सरकार ने इसे महत्वहीन सामान्योक्ति के रूप में लिया क्योंकि चीनी सरकार की ओर से संबंधों को सामान्य बनाने के लिए कोई भी सकारात्मक एवं स्पष्ट उपक्रम नहीं किया गया था। परिणामस्वरूप चीन ने जब भारत-चीन सीमा पर लाउडस्पीकर प्रचार युद्ध को बंद किया, जिसे उसने 1963 ई. से शुरू किया था तब भारत ने चीन संबंधों में सकारात्मक परिवर्तन को स्वीकार किया। भारत के विदेश राज्य मंत्री श्री सुरेंद्रपाल सिंह ने इस प्रकार का मत अगस्त 1973 में राज्यसभा में दिया। अगस्त 1973 के बाद भारत के सरकारी समारोहों में चीनी उपस्थिति बढ़ गई एवं गैर-सरकारी और निजी यात्राओं के आदान-प्रदान का सिलसिला भी काफी बढ़ गया। दोनों देशों के नेताओं ने अपने राष्ट्रीय दिवसों के उपलक्ष्य में बधाई संदेशों का आदान-प्रदान फिर शुरू कर दिया।

संबंधों में गतिरोध–सरदार स्वर्ण सिंह ने काहिरा के एक समाचार पत्र को भेंट वार्ता में बतलाया, "हमारे संबंध चीन के साथ सुसुप्ति की अवस्था में हैं। पिछले वर्षों के मुकाबले में न बुरे-न अच्छे हुए।" लेकिन उन्होंने इस बात की आशा व्यक्त की कि संबंध अगले वर्ष शायद सुधर जाएं। 1974 ई. में भारत ने शांतिपूर्ण अणु परीक्षण किया और 1975 ई. में सिक्किम को भारतीय गणराज्य का हिस्सा बनाया। ये दोनों बातें ही चीनी आलोचना के लक्ष्य रहे और भारत-चीनी संबंध केवल संपर्कों तक ही सीमित रहे। सिक्किम के भारत में मिलने के विरुद्ध कड़ी चीनी प्रतिक्रिया, चीन का भारत विरोधी लगातार प्रचार, बीजिंग-पिंडी की बढ़ती हुई शक्ति तथा भारतीय सीमा पर चीनियों द्वारा उत्पन्न कठिनाइयां, इन सबसे भारत-चीन संबंध कड़े शिथिल रहे। पिछले वर्षों की तरह इस काल में भी मित्रता एवं सहयोग के विकास की इच्छा में विश्वास तो प्रकट किया गया लेकिन इस भावना को यथार्थ रूप देने के लिए कोई ठोस कार्य नहीं हुआ।

सामान्यीकरण प्रक्रिया का आरंभ–15 अप्रैल, 1976 को भारत सरकर ने चीन के साथ दुबारा उच्च स्तरीयपूर्ण कूटनीतिक संबंध स्थापित करने का निर्णय लिया। श्री के.आर. नारायण को पीकिंग में भारत का राजदूत नियुक्त किया गया जो एक बहुत बड़ा अच्छा परिवर्तन था। भारत-चीन संबंधों को सामान्य बनाने की दिशा में भारत का एक सुदृढ़ प्रयास था। भारत के इस प्रयास की चीन द्वारा सराहना की गई और चीन की सरकार ने घोषणा की कि, "चीन भी भारत के साथ राजदूतीय स्तर के संबंधों को पुन: स्थापित करेगा।" वैसे चेन चाओ यवान को भारत में चीनी राजदूत नियुक्त करने में पांच महीने लग गए। 1976 ई. में पूर्ण कूटनीतिक संबंधों की पुन: स्थापना से भारत-चीनी संबंधों के सामान्यीकरण की प्रक्रिया को शक्ति मिली।

1976 ई. के उत्तरकाल में व्यापार में वृद्धि तथा सांस्कृतिक सहयोग के द्वारा भारत-चीन संबंधों में सुधार होना शुरू हुआ। धीरे-धीरे भारत-चीन व्यापार में वृद्धि और सद्भावना मिशनों का पारस्परिक आदान-प्रदान शुरू हुआ परंतु संबंधों के सामान्यीकरण में सीमा विवाद मुख्य रूप से गतिरोधक और मुख्य उत्तेजक बना रहा।

चीन के प्रधानमंत्री ली-पेंग की भारत यात्रा–दिसंबर 1988 में शुरू की गई पुष्ट सामान्यीकरण की प्रक्रिया को और तेज करने के लिए चीन के प्रधानमंत्री ली-पेंग ने जनवरी 1992 में भारत की छ: दिवसीय सरकारी यात्रा की। इस यात्रा में आपसी विचार-विमर्श किया गया, समझौते किए गए तथा भारत के साथ और भी अच्छे संबंध स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की गई। भारत तथा चीन दोनों के प्रधानमंत्रियों ने भारत तथा चीन के बीच विकट सीमा विवाद सहित सभी प्रकार के झगड़ों की समीक्षा की। इस यात्रा के दौरान तत्कालिक प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हाराव ने घोषणा की, "मेरी सरकार सीमा प्रश्न का न्यायसंगत तथा तर्कसंगत समाधान खोजने के लिए वचनबद्ध है जो प्रत्येक राष्ट्र की प्रतिष्ठा तथा आत्मसम्मान के अनुरूप है। दोनों देश शांतिपूर्वक ही इस तरह का कोई समाधान निकाल सकते हैं।" चीन के प्रधानमंत्री श्री लीपेंग ने कहा, "कम से कम कष्टकारी सीमा विवाद को हल करने की प्रक्रिया शुरू कर सकते हैं।" इस बात का जिक्र करते हुए कि दोनों ही देश सीमा क्षेत्रों में शांति तथा चुप्पी चाहते हैं, प्रधानमंत्री ली पेंग ने कहा, "मुझे पक्का विश्वास है कि परस्पर विवेक तथा समझौते की भावना से तथा आपसी समझौते के द्वारा किए गए वार्तालाप से हम इसका हल ढूंढ़ सकते हैं।" दोनों ही देशों ने यह भी स्वीकार किया कि द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ाने के रास्ते में सीमा विवाद नहीं आना चाहिए।

द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ाने तथा सुदृढ़ बनाने की दिशा में मुख्य कदम के रूप में भारत तथा चीन ने समानता तथा परस्पर लाभ के आधार पर सीमा व्यापार करने, 29 वर्षों तक बंद रहने के बाद बंबई तथा शंघाई में वाणिज्य दूतावास को पुन: खोलने तथा अंतरिक्ष अनुसंधान, तकनीक तथा इसके प्रयोग में सहयोग करने का निर्णय किया। जो तीन समझौते किए गए वे इस प्रकार थे–

सीमा व्यापार के पुन: शुरू करने के विवरण पत्र पर भारत के तत्कालीन वाणिज्य राज्य मंत्री पी. चिदंबरम तथा चीन के विदेश मंत्री (आर्थिक संबंध तथा व्यापार) ली-लैक्विग ने हस्ताक्षर किए।

विवरण पत्रिका में सीमा व्यापार में चीन के स्वायत्त क्षेत्र तिब्बत तथा उत्तर प्रदेश की सीमा में रहने वाले लोगों के बीच व्यापार तथा वस्तुओं का आदान-प्रदान तथा इसके

साथ-साथ, समय-समय पर आपसी स्वीकृति से दूसरे क्षेत्रों में व्यापार शामिल किया गया था।

आर्थिक संबंधों तथा व्यापार एवं विज्ञान तथा तकनीक पर भारत-चीन के संयुक्त समूह के तीसरे सत्र में स्वीकृत विचारों पर हस्ताक्षर किए गए। 1992 के लिए दोनों देशों के बीच व्यापार न्यायाचार पर भी हस्ताक्ष्र किए गए। व्यापार न्यायाचार में दोनों देशों के बीच व्यापार में और अधिक वृद्धि तथा विविधता आनी थी। इसके अंतर्गत चीन ने भारत से कच्चा लोहा तथा क्रोम, चाय, तंबाकू, रसायनों आदि सहित विभिन्न वस्तुएं आयात करनी थीं। बदले में भारत ने अखबारी कागज, कच्चा रेशम का धागा, कुछ कृषि उत्पाद वस्तुएं, धातु तथा खनिज तथा इसके साथ कुकिंग कोयला रसायन तथा पैट्रोलियम पदार्थ आयात करने थे। दोनों ही देश आपस में व्यापार को प्रोत्साहित करने के पक्ष में थे। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिनिधि मंडलों का आदान-प्रदान करने तथा व्यापारियों और उनके व्यापारिक संगठनों की आपसी यात्राओं को प्रोत्साहित करने तथा विभिन्न प्रकार के व्यापार तथा सहयोग की संभावनाओं को ढूंढ़ना भी स्वीकार किया। यह व्यापार न्यायाचार 1 जनवरी, 1992 से लागू होना था तथा एक वर्ष तक वैध रहना था।

29 वर्षों के बाद बम्बई तथा शंघाई में वाणिज्य दूतावास की पुनः स्थापना के बारे में विदेश मामलों तत्कालीन मंत्री श्री माधव सिंह सोलंकी तथा चीन के विदेश मंत्री किन किचन ने समझौते पर हस्ताक्षर किए। दोनों देशों ने भारत-चीन वाणिज्य संधि पर भी हस्ताक्षर किए। वाणिज्य दूतावास की पुनः स्थापना परस्पर परामर्श से शीघ्र से शीघ्र की जानी थी। वाणिज्य दूतावासों में करने वाले अधिकारियों को विशेषधिकारों को इस कन्वेंशन में कलमबद्ध किया गया।

अंतरिक्ष अनुसंधान तकनीक तथा इसके प्रयोग के क्षेत्र में द्विपक्षीय सहयोग के लिए समझौते की पत्रिका पर भारत के अंतरिक्ष सचिव.यू.आर. राव तथा चीन के वायु अंतरिक्ष तथा विमान सेवा उपमंत्री निओ जीयूआन ने हस्ताक्षर किए।

भारत के अंतरिक्ष विभाग तथा चीन के वायु-अंतरित मंत्रालय के बीच उच्च स्तरीय विमर्श के बाद ही उपरिवर्णित समझौते को किया गया। भारत तथा चीन दो सबसे बड़े विकासशील देश होने के कारण आपसी सहयोग से अंतरिक्ष जैसी आधुनिकतम तकनीक के विकास के अधिक से अधिक लाभ उठा सकते थे जिसमें दोनों ही देशों ने हाल ही के वर्षों में अद्वितीय उन्नति की थी। ये समझौते भारत तथा चीन के बीच सहयोग के बढ़ते क्षेत्रों के प्रतीक थे।

संयुक्त विज्ञप्ति–लीपेंग की भारत यात्रा के अंत में एक चार पृष्ठों वाली संयुक्त विज्ञप्ति जारी की गई–

दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि विदेश सचिव स्तर का संयुक्त संचालन समूह हल खोजने के अपने काम में तेजी लाए तथा अगले वर्ष दिल्ली में बैठक हो। दोनों ही देशों ने यह माना कि सीमा क्षेत्रों में सैन्य अधिकारियों के बीच समय समय पर बैठकें नियमित आधार पर होनी चाहिए। चीन के कुछ तिब्बतियों द्वारा भारत में चीन विरोधी गतिविधियों पर चिंता व्यक्त की तथा इस बात को दोहरया कि "तिब्बत चीन के भू-क्षेत्र का अटूट अंग है।" भारत ने भी यह दोहरया कि तिब्बत चीन का एक स्वायत्त क्षेत्र है तथा श्री ली को यह विश्वास दिलाया कि भारत तिब्बतियों को चीन विरोधी गतिविधियों में भाग लेने की अनुमति नहीं देता।

टिप्पणी

विज्ञप्ति में कश्मीर के संबंध में कोई प्रत्यक्ष प्रसंग नहीं था। तथापि चीन ने दक्षिण एशिया क्षेत्र के देशों के बीच मैत्रीपूर्ण साधनों तथा शांतिपूर्ण ढंग से सभी द्विपक्षीय समस्याओं को सुलझाने को समर्थन दिया। विज्ञप्ति में कहा गया कि दोनों ही देश इस बात में विश्वास रखते थे कि दक्षिण एशिया में शांति तथा स्थिरता बनाए रखना क्षेत्रों के लोगों के हित में थी तथा विश्व शांति और स्थिरता के लिए सहायक थी।

दोनों देशों ने कहा कि भारत-चीन संबंधों में सुधार तथा विकास प्रत्यक्ष रूप से किसी तीसरे देश के विरुद्ध नहीं है तथा न ही यह इन देशों के दूसरे देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को बुरी तरह प्रभावित करेंगे। दोनों को ही यह विश्वास था कि भारत तथा चीन के बीच सहयोग दोनों देशों के हित में तथा एशिया तथा विश्व की शांति स्थिरता में सहायक था।

व्यापार, संस्कृति, विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्रों में द्विपक्षीय सहयोग को देखते हुए दोनों ही देशों ने व्यापार सहित आर्थिक क्षेत्र की विविधता तथा इसमें गतिशीलता बढ़ोतरी के लिए संयुक्त प्रयत्नों की आवश्यकता पर बल दिया। दोनों ही देशों ने स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा तथा कृषि के क्षेत्रों में सहयोग करने के लिए सक्रिय रूप से जुट जाने का निर्णय लिया। भारत में एक चीन उत्सव करवाने के लिए स्वीकृति दी गई।

दोनों ही देशों ने पंचशील में अपना विश्वास प्रकट किया तथा शस्त्र-दौड़ तथा नि:शस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करने का आह्वान किया। इसके अतिरिक्त दोनों देशों ने उत्तर तथा दक्षिण के बीच बढ़ते आर्थिक अंतर को कम करने की आवश्यकता पर बल दिया तथा यह विचार दिया कि सार्वभौमिक आर्थिक, सामाजिक, जनसांख्यकीय तथा पर्यावरण की समस्याओं को इस प्रकार से सुलझाया जाए कि समस्त विश्व को उनका लाभ पहुंचे। दोनों ही देशों ने उत्तर तथा दक्षिण के बीच बढ़ती आर्थिक खाई तथा निरंतर गहरे होते विरोधाभासों पर चिंता व्यक्त की। आपस में एक दूसरे को और अधिक समझने के लिए, द्विपक्षीय मैत्री को और विकसित करने के लिए तथा क्षेत्रों में दृढ़ सहयोग करने के लिए भारत तथा चीन ने अपने नेताओं की एक दूसरे के देश में यात्रा के नियमित आदान-प्रदान का समर्थन किया।

मि. लिपिंग की यात्रा के परिणाम का विश्लेषण करते हुए यह कहा जा सकता है कि चाहे विकट सीमा विवाद को हल करने की दिशा में बहुत कम उन्नति हुई फिर भी इस यात्रा ने दोनों देशों के बीच सौहार्द तथा द्विपक्षीय संबंधों को और अधिक सुदृढ़ करने में सहायक वातावरण पैदा कर दिया। इस यात्रा ने जो 34 वर्षों के बाद हुई थी, कुछ एक संदेहों को दूर किया। मि. लीपेंग जो चीन की उत्तर तिबानमन नीति के निर्माता थे, ने भारत के पत्रकारों के साथ अपनी बैठक में विशिष्ठ रूप से इस बात का जिक्र करते हुए कहा, "अब विश्व तेजी से बदल रहा है तथा हमारे दोनों देश भी तेजी से बदल रहे हैं, इस सारे परिवर्तनों के विभिन्न पहलुओं में हम देख सकते हैं कि अब भारत तथा चीन 30 वर्ष पहले वाला भारत तथा चीन से काफी भिन्न है।"

"यह सच है कि चीन तथा भारत के बीच कुछ मतभेद हैं, विशेषतया सीमा विवाद को लेकर परंतु दोनों ही देश यह स्वीकार करते हैं कि यह विवाद हमारे संबंधों के विस्तृत विकास के रास्ते में रोड़ा नहीं बनना चाहिए।"

"यद्यपि आप देखते हैं कि ये (शांति बनाए रखने तथा सीमा प्रहरियों के बीच बैठकों के उपाय) कोई बड़ी उपलब्धियां नहीं फिर भी इनसे सीमा विवाद बातचीत का

टिप्पणी

एक अच्छा वातावरण बनेगा तथा इस प्रकार का वातावरण मामले को सुलझाने की प्रक्रिया को सुविधाजनक बना देगा। यह हमारा आपसी समझौता है कि अधिकारी स्तर पर इस उलझे हुए मामले को सुलझाने का समय आ गया है और अब आवश्यकता है उचित राजनीतिक प्रयास अथवा धक्के की। इस रूप में भी इस प्रकार का वातावरण तथा भारत-चीन संबंधों को समुचित स्थिति के लिए महत्वपूर्ण है।"

लोकसभा में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हाराव ने अपने एक कथन में यह कहा कि "लीपेंग की भारत यात्रा के दौरान भारत ने चीन पर इस बात पर जोर डाला कि सीमा विवाद के मुद्दे को कम कर देना चाहिए क्योंकि इस समस्या को सुलझाने की सफलता दोनों देशों के लिए महान उपलब्धि होगी। भारत तथा चीन मानवता के प्रति ऋणी हैं कि वे मिलकर काम करें क्योंकि पूर्व-पश्चिम के तनावों की समाप्ति के बाद भी विश्व उत्तेजना की स्थिति से गुजर रहा था।सीमा के प्रश्न पर भारत तथा चीन ने यह स्वीकार किया कि समस्या को सुलझाने के लिए अति शीघ्र न्यायसंगत, तर्क-संगत तथा परस्पर स्वीकार्य हल ढूंढने के प्रयत्नों को तेज करना चाहिए।

हमने इस बात पर जोर दिया है कि सीमा के प्रश्न पर हमारे मतभेद कम किए जाने चाहिए तथा यह कि हमें एक दूसरे के साथ सम्पर्क बनाए रखना चाहिए ताकि हम संयुक्त संचालन समूह का जो 1988 में इस प्रश्न को सुलझाने के लिए बनाया गया था, मार्ग दर्शन कर सकें।"

मि. लीपेंग की भारत यात्रा पर श्री नरसिम्हाराव ने उसे यह बताने का भी प्रयास किया कि चीन द्वारा पाकिस्तान को आधुनिकतम हथियारों की आपूर्ति तथा कश्मीर में उग्रवाद को बढ़ावा देने में पाकिस्तान की भूमिका पर भारत को चिंता थी। मि. लीपेंग ने यह घोषणा की कि चीन भी उग्रवाद के विरुद्ध था क्योंकि इससे समस्याएं सुलझती नहीं बल्कि विद्यमान विरोधाभासों को और बल मिलता था। चीन के लोग टकराव नहीं देखना चाहते तथा भारत तथा पाकिस्तान के बीच मतभेदों के शांतिपूर्ण निपटारे के पक्ष में थे।

चीन के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा, दिसंबर 1988 में शुरू हुई प्रक्रिया का जब भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने बीजिंग का दौरा किया था, इसका दूसरा अध्याय थी। इससे दोनों देश एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सके। उभरती हुई नई विश्व व्यवस्था को लेकर दोनों को कई एक क्षेत्रों में एक जैसे अवबोधन मिले। दोनों ही देशों की सरकारें "मानवीय अधिकार सुरक्षा", परमाणु अप्रसार संधि तथा विश्व अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के नामाधीन लुप्त तथा संभावित खतरों के प्रति सचेत हो गयीं। सीमा के प्रश्न पर दोनों देशों के विचारों के आदान-प्रदान में ठोस आधारों की कमी रही तथा दोनों ही नए शब्दों में वही पुरानी बात तथा कुछ एक नए छोटे-छोटे सुझावों तक ही सीमित रहे।

एक अन्य स्वरूप में इस यात्रा ने उच्चस्तरीय राजनीतिक संपर्कों के लिए सुखद वातावरण पैदा कर दिया। जून 1992 को तात्कालिक राष्ट्रपति श्री वैंकटरमन ने बीजिंग का दौरा किया तथा चीन के नेताओं के साथ महत्वपूर्ण विचार-विमर्श किया। उनके दौरे के बाद शीघ्र ही भारत के प्रतिरक्षा मंत्री शरद पवार ने चीन की यात्रा की। श्री शरद पवार ने भारत तथा चीन के जहाजों के बीच शीघ्र ही नौ-सैनिक अभ्यास कराए जाने की घोषणा की। इस दौरान संयुक्त संचालन समूह सीमा विवाद को सुलझाने का साधन ढूंढने में लग

गया। इसकी पांचवीं बैठक अक्टूबर, 1992 में बीजिंग में हुई जिसमें सीमा समझौते के संबंध में एक प्रारूप पर विचार-विमर्श किया गया। इसकी छठी बैठक 25 और 26 जून, 1993 को नई दिल्ली में हुई। इसमें सीमा पर विश्वास में वृद्धि करने के लिए कुछ एक नये उपक्रमों के संबंध में बातचीत तथा सहमति हुई। ऐसा अनुमान लगाया गया कि ऐसा समझौता प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव की चीन की यात्रा के समय, सितंबर के आस-पास हस्ताक्षरबद्ध किया गया।

1992 में भारत में चीन उत्सव लगाया गया तथा 1993 में चीन में भारत उत्सव हुआ। इन सभी तत्वों ने भारत तथा चीन के बीच संबंधों में सुखद नई प्रवृत्तियों को उत्पन्न किया। भारत तथा चीन भी पुराने 1954-57 वाले गहरे संबंध पुन: जाग्रत करने का प्रयास करने लगे। 1991 से 1996 के वर्षों में भारत-चीन व्यापार में काफी वृद्धि हुई। दोनों देशों ने भारत-चीन नियंत्रण रेखा के घेरे से सैनिकों की संख्या में कटौती की। दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंधों में लगातार सुधार हुआ। लेकिन चीन की विदेशी नीति में पाकिस्तान के साथ संबंधों को अधिक प्राथमिकता दी जाती रही। चीन ने पाकिस्तान को उच्च तकनीक के शस्त्रों तथा रिंग मैगनेट की आपूर्ति की। भारत की तुलना में पाकिस्तान को शक्तिशाली बनाने की नीति चलती रही।

अक्टूबर 1994 में भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन ने सात दिन की चीन यात्रा की। सरकारी अधिकारी गणों को बहु प्रवेश वीजा जारी करने के बारे में एक समझौते पत्र पर हस्ताक्षर किए गए। चीन के राष्ट्रपति जी आंग जेमिन के साथ मुलाकात के बाद यह कहा गया कि दोनों देशों को आर्थिक क्षेत्र में अपने संबंध अधिक सहयोगात्मक बनाने चाहिए तथा द्विपक्षीय व्यापार में वृद्धि की जानी चाहिए। दोनों देशों ने संबंधों के सामान्यीकरण की दिशा में प्रगति के लिए अधिक आर्थिक सहयोग पर बल दिया गया।

मार्च 1995 में चीन तथा भारत ने नाथूला तथा सिक्किम की सीमा पर सैनिक अधिकारियों की बैठकों के लिए दो और जगहों के संबंध में सहमति की। यह परस्पर विश्वास निर्माण प्रक्रिया का ही अंग था। इसी तरह जब भारत के गृहमंत्री ने जुलाई 1995 में चीन की यात्रा की तो दोनों देशों ने यह माना कि आपसी लाभकारी संबंधों की स्थापना के लिए दोनों देशों के अधिकारियों, नेताओं तथा लोगों को एक दूसरे देश की यात्राओं के लिए उत्साहित किया जाना चाहिए। विश्व तथा एशिया में शांति एवं स्थायित्व के लिए भारत तथा चीन दोनों द्वारा तीव्रता से सामाजिक-आर्थिक विकास किया जाना आवश्यक था इसके लिए दोनों देशों में आपसी गहरे सहयोगात्मक संबंध स्थापित तथा संचालित किए जाने आवश्यक थे।

भारत-चीन संयुक्त कार्य समूह (JWG) की एक बैठक अगस्त 1995 में नई दिल्ली में हुई तथा दोनों देशों ने अरुणाचल प्रदेश के चार क्षेत्रों से अपने-अपने सैनिक पीछे हटाने तथा वास्तविक नियंत्रण रेखा पर से दो भारतीय तथा दो चीनी चौकियां हटाने का निर्णय लिया। इसके साथ ही चार और विश्वास निर्माण पग उठाने का निर्णय किया गया था जिनमें मध्य तथा उच्च सतर की सैनिक बैठकें, यात्राओं का आदान-प्रदान, संयुक्त पर्वतारोही दलों का संगठन तथा खतरनाक सैनिक क्रियाओं जैसे गोलाबारी को रोकना शामिल था। भारत ने चीन द्वारा पाकिस्तान को किए जाने वाले शस्त्र हस्तांतरण का मुद्दा उठाया, परंतु चीन ने उसे टाल दिया।

टिप्पणी

इस प्रकार 1991-1966 के दौरान भारत-चीन संबंध धीरे-धीरे विकसित होते रहे तथा आगामी समय में द्विपक्षीय संबंधों में अधिक विशलता लाए जाने का वातवरण तैयार हो गया।

भारत-चीन संबंध 1996 से मई 2004 तक

1988 के बाद से आरंभ हुई भारत-चीन संबंधों को सामान्य बनाने की प्रक्रिया, जिससे 1991-96 के दौरान दोनों देशों में आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों में काफी प्रगति हुई। इस प्रगति को अच्छा उत्साह तब मिला जब चीन के राष्ट्रपति तथा चीन के साम्यवादी दल के सबसे अधिक शक्ति-शाली नेता, श्री जियांग जेमिन ने नवंबर 1996 में तीन दिन की भारत यात्रा की। यह चीनी राष्ट्रपति द्वारा की गई पहली यात्रा थी तथा इसने भारत-चीन संबंधों की प्रक्रिया को काफी अच्छी शक्ति प्रदान की।

चीन के राष्ट्रपति की भारत यात्रा, नवंबर 1996

चीन के राष्ट्रपति की यात्रा ने दोनों देशों के नेताओं को आपसी संबंधों पर विस्तृत बातचीत करने का अवसर प्रदान किया जिससे दोनों देशों में चल रही विश्वास निर्माण प्रक्रिया को और बल मिला तथा आर्थिक और व्यापार संबंधों के और विकास के लिए कुछ कदम उठाने का उपक्रम किया गया। दोनों देशों ने अपनी-अपनी सैनिक क्षमता का प्रयोग एक-दूसरे के विरुद्ध न करने को वचनबद्धता स्वीकार की। एक ऐतिहासिक समझौता किया गया जिसके अंतर्गत वास्तविक नियंत्रण रेखा पर एक-दूसरे पर आक्रमण न करने तथा इसको पार न करने का निर्णय लिया गया। भारत-चीन सीमा पर से सैनिकों तथा शस्त्रों को कम करने का निर्णय लिया गया तथा सैनिक तनावों को सीमित करने तथा सितंबर, 1993 के समझौते (हिमालय की झगड़े वाली सीमा पर शांति व्यवस्था बनाए रखने का समझौता) को लागू करने के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश अपनाए गए। ये थे–

1. एक डिवीजन (1500 से ऊपर) हटाना।
2. सैनिक अभ्यास के संबंध में एक-दूसरे को पूर्व सूचना देना।
3. लड़ाकू हवाई जहाजों को वास्तविक नियंत्रण रेखा को 10 कि.मी. के अंदर उड़ान भरने की मनाही की गई।
4. वास्तविक नियंत्रण रेखा के 2 कि.मी. के अंदर, कुछ प्रतिवादों सहित फाइरिंग, धमाके तथा शिकार करने की मनाही।
5. जब दोनों देशों के पैट्रोलिंग करने वाले दस्ते अचानक एक-दूसरे के सामने आ जाएं तो दोनों अपने आप पर रोक लगाएंगे तथा इनके दोनों पक्षों में एकदम विचार-विमर्श किया जाएगा।
6. निश्चित जगहों पर सीमा कमांडरों की झंडा बैठकों की व्यवस्था को बनाए रखना तथा इनका विस्तार करना।
7. सीमा पर बैठकों की जगहों पर टेलीफोन सेवाओं की व्यवस्था करना।
8. सीमा अधिकारियों के उच्चस्तरीय संपर्क स्थापित करना।
9. इस यात्रा के दौरान एक 11 सूत्रीय समझौता किया जाएगा जिस पर दोनों देशों के विदेश मंत्रियों ने हस्ताक्षर किए। यह स्वीकार किया गया कि परस्पर सह-अस्तित्व,

टिप्पणी

समानता तथा सुरक्षा के सिद्धांत के आधार पर वार्तालाप के द्वारा नियंत्रण रेखा पर सहमत इलाकों में सैनिकों तथा शस्त्रों के सीमाकरण का निर्णय लिया जाएगा।

दोनों देशों ने यह दोहरया कि सीमा के प्रश्न पर एक न्याययुक्त, आयात में स्वीकृति समाधान किया जाएगा तथा वास्तविक नियंत्रण रेखा का सम्मान किया जाएगा। इस यात्रा के फलस्वरूप सीमा विवाद सुलझा तो नहीं, और ऐसी आश भी नहीं थी, परंतु यथार्थपूर्वक स्थिति को बनाए रखने के निर्माण का सबने स्वागत किया क्योंकि इस निर्णय ने भारतीय पक्ष/स्थिति को भी यथापूर्वक बनाए रखा। नियंत्रण रेखा को निश्चित रूप में ठीक-ठीक स्पष्ट करने के निर्णय को भी एक सकारात्मक कदम माना गया।

बहुत से विचारकों ने भारत और चीन के बीच हुए इन सभी निर्णयों को एक प्रकार आक्रमण न करने के समझौते की संज्ञा दी। इससे भारत द्वारा किए जा रहे सैनिक खर्चे में कटौती की संभावना पैदा हुई और भारत की कश्मीर घाटी में अधिक दृढ़ कार्यवाही करने की आशा भी पैदा की। चीन ने यह भी माना कि कश्मीर के मुद्दे को भारत तथा पाकिस्तान द्वारा मित्रतापूर्वक हल कर लेना चाहिए। चीन के ऐसे मत ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह देश भारत के साथ संबंधों को अधिक महत्व दे रहा था। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के लिए अस्थायी सदस्य बनने की चुनावी मुकाबला भारत तथा जापान के मध्य था जिसमें चीन ने भारत के पक्ष में वोट दिया।

फिर दोनों देशों के आपसी द्विपक्षीय आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों में भी वृद्धि करने का निर्णय किया गया तथा यह माना कि भारत-चीन के आर्थिक संबंधा सीमा विवाद को हल करने में अति सहायक सिद्ध हो सकते थे।

केंद्रिय एशिया के संसाधन युक्त अमीर क्षेत्र में तेल तथा गैस को प्राप्त करने के संबंध में भागीदारी के लिए भारत तथा चीन ने अक्टूबर, 1997 में एक समझौता किया। भारत तथा चीन में व्यापारिक संबंध की संभावना इस समझौते से दृढ़ हुई।

भारतीय नई परमाणु नीति तथा भारत-चीन संबंध

मई 1998 में भारत-चीन संबंधों में तनाव पैदा हो गया जब भारत ने मई 11-13 मई, 1998 को पांच परामाणु परीक्षण किए तथा अपने आपको परमाणु शस्त्रधारक देश घोषित कर दिया। ऐसी नीति परिवर्तन करते समय भारत ने परमाणु शस्त्रधारक देश बनने के अपने निर्णय के पक्ष में जिन सुरक्षा कारणों को उद्धृत किया, वे थे—चीन की परमाणु शक्ति, पाकिस्तान की चोरी से विकसित परमाणु शस्त्र क्षमता तथा चीन-उत्तरी कोरिया-पाकिस्तान का परमाणु तथा मिसाइल विकास सहयोग।

भारत के रक्षा मंत्री श्री जॉर्ज फर्नांडीज ने तो चीन को शत्रु नंबर एक की संज्ञा दे डाली। इससे चीन की सरकार ने कठोर रुख अपनाते हुए भारत की आलोचना की। भारतीय परमाणु विस्फोटों किो विश्व शांति, विशेष कर दक्षिण एशिया में शांति का दुश्मन बतलाया। यह भी कहा कि नई भारतीय परमाणु नीति पाकिस्तान को शस्त्र बनाने के लिए विवश करेगी तथा दक्षिणी एशिया में परमाणु शस्त्र दोड़ को पैदा करेगी। चीन ने अमेरिका तथा कुछ अन्य देशों के साथ मिलकर भारत पर परमाणु शस्त्र नीति को समाप्त किए जाने के लिए तथ एन.पी.टी. (NPT) और सी.टी.बी.टी. (CTBT) पर हस्ताक्षर करने के लिए भारी दबाव डालने की नीति अपनाई। 15 जून, 1998 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा यह प्रस्ताव पास करवाया गया कि परीक्षण बंद किए जाएं, शस्त्र विकास प्रोग्राम बंद किया जाए, मिसाइल विकास कार्यक्रम छोड़ दिया जाए तथा NPT और CTBT पर हस्ताक्षर किए जाएं। जुलाई

टिप्पणी

1998 में चीन तथा अमेरिका ने यह घोषणा की कि दोनों देश इस प्रस्ताव के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निकट रूप में तालमेल करेंगे। 14 जुलाई, 1998 को पहली बार कश्मीर मुद्दे के समाधान के लिए पांच देशों भारत, पाकिस्तान, अमेरिका, चीन तथा रूस की बैठक बुलाने की मांग की। यह मांग कश्मीर मुद्दे के अंतर्राष्ट्रीयकरण के लिए तथा भारत पर दबाव बनाने के लिए की गई।

भारत-चीन संबंधों में क्षति नियंत्रण अभ्यास

पोखरण-II के बाद चीन के संबंधों में आ रही गिरावट पर रोक लगाने के लिए प्रयास आरंभ किया गया तथा द्विपक्षीय वार्तालाप की संभावनाएं तलाशी गईं। एशियान रिजनल फोरम की जुलाई 1998 की बैठक में भारत के प्रतिनिधि जसवंत सिंह ने चीन के विदेश मंत्री श्री तांग जियांशा के साथ मुलाकात की तथा दोनों नेताओं ने दोनों देशों में उच्च अधिकारी विचार-विमर्श की प्रक्रिया को चालू रखने का निर्णय किया गया। लेकिन संबंधों की प्रकृति सीमित ही रही। अक्टूबर 1998 में जब प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने दलाईलामा से मुलाकात की, तो चीन ने इसकी तीव्र आलोचना की। उसने यह भी दोष लगाया कि भारत-चीन के विरुद्ध तिब्बत कार्ड प्रयोग कर रहा था। चीन ने यह भी धमकी दी की वह भी कश्मीर कार्ड का प्रयोग कर सकता था। इस प्रकार वर्ष 1998 के अंत तक भारत-चीन संबंध सीमित ही रहे। चीन पाकिस्तान का पक्षपाती बना रहा तथा सी.टी.बी.टी. के मुद्दे पर भारत पर दबाव डालने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका से हाथ मिलाने की नीति पर चलता रहा।

लेकिन 1999 के आरंभ में दोनों देशों के नेताओं ने इस बात के महत्व को स्वीकार किया कि वर्तमान तनावपूर्ण स्थिति को नियंत्रित कर भारत-चीन संबंधों को सामान्य बनाना अति आवश्यक है अत: दिसंबर 1998 की प्रक्रिया को स्वस्थ बनाया जाए।

विदेश मंत्रालय स्तरीय विचार-विमर्श, फरवरी 1999

26 फरवरी, 1999 को भारत ने पहला कदम उठाते हुए का मंत्रालय स्तरीय मंडल वार्षिक विचार-विमर्श के लिए चीन भेजने का निर्णय लिया। (ऐसा विचार-विमर्श 1997 के एक समझौते के अधीन किया जाना था) भारतीय मंडल ने चीन के रुख को कठोर पाया तथा चीन ने यह भी घोषणा कर दी कि इस विचार-विमर्श को कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। परंतु शीघ्र ही चीन ने घोषणा की कि बैठक वास्तव में सफल रही थी और दोनों देशों का दृष्टिकोण 'सकारात्मक तथा प्रगतिवादी' था। चीन द्वारा किए गए ऐसे परिवर्तन का कारण भारत-अमेरिका वार्तालापों की सफलता था। बाद में जब प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने पाकिस्तान के साथ इसको आरंभ कर मित्रता, शांतिपूर्ण तथा सहयोगी संबंधों की स्थापना की ओर एक पहल की तो चीन ने भी भारत के साथ संबंधों की दिशा में एक लचकशील दृष्टिकोण अपनाने का निर्णय लिया। पोखरण दो के बाद उत्पन्न तनावपूर्ण वातावरण सुधारने लगा तथा भारत-चीन संबंधों में प्रगति की आशा पैदा हो गई।

अप्रैल 1999 में साझे कार्य समूह की 11वीं बैठक बीजिंग में हुई तथा दोनों देशों में मित्रतापूर्ण और सुखद वातावरण में वार्तालाप हुआ। दोनों देशों ने आपसी संबंधों में मित्रतापूर्ण अच्छे पड़ोसी संबंधों को विकसित करने पर बल दिया। दोनों ने एक बहुकेंद्रीय विश्व के विकास की आवश्यकता की पूर्ति के लिए आपसी सहयोग को सशक्त करने पर सहमति बनाई।

टिप्पणी

भारतीय विदेश मंत्री जसवंत सिंह की चीन यात्रा, जून 1999

पाकिस्तान के साथ कारगिल युद्ध के समय में चीन ने एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया तथा नियंत्रण रेखा के सम्मान की बात की। चीन ने पाकिस्तान का पक्ष नहीं लिया। जून 1999 में भारतीय विदेश मंत्री ने उच्चस्तरीय वार्तालाप किया। दोनों देशों ने आपसी आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सहयोग को स्तर पर विकसित करने का निर्णय लिया। दोनों देशों ने सामाजिक संबंधों पर वार्तालाप की आवश्यकता को भी स्वीकार किया। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों के विदेश मंत्रियों ने एक सुरक्षा वार्तालाप आरंभ करने पर सहमति बनाई। झगड़े वाली सीमा के (भारत-चीन सीमा) संबंध में नियंत्रण रेखा को स्पष्ट करने के लिए औपचारिक बातचीत आरंभ करने का निर्णय लिया गया। साझे कार्य समूह की गतिविधि को तेज करने के लिए तथा द्विपक्षीय संबंधों को सुधारने के लिए यह निर्णय लिया गया कि राजनीति, कूटनीति का सैनिक स्तर पर प्रतिनिधि मंडलों की यात्राओं को बढ़ावा दिया जाएगा तथा इनकी संख्या में वृद्धि की जाएगी। भारत-चीन व्यापार को दो बिलियन डॉलर से आगे बढ़ाया जाएगा ताकि भारत-चीन संबंधों को परिपक्व बनाया जा सके।

कारगिल युद्ध पर बातचीत हुई, भारत ने अपने पक्ष को स्पष्ट किया तथा यह कहा कि यह युद्ध वास्तव में कश्मीर पर भारत-पाक विवाद से संबंधित नहीं था तथा यह पाकिस्तान की अपनी घरेलू जोड़-तोड़ के कारण उभरा था। चीन ने भारत-पाक के बीच नियंत्रण रेखा के सम्मान को बनाए रखने को आवश्यक माना। दोनों देशों ने विश्व प्रभुत्व की ओर किए जा रहे प्रयासों की आलोचना की तथा पंचशील तथा अच्छे पड़ोसी के सिद्धांतों के पक्ष में अपने मत को दोहराया। इस यात्रा ने पोखरण II के बाद के समय से चीन द्वारा चलाए जा रहे भारत विरोधी अभियान को कमजोर करने में सफलता प्राप्त की। दोनों देशों ने एक बार फिर आपसी मित्रता और सहयोग को दृढ़ बनाने के लिए उच्चस्तरीय सहयोग का निर्णय लिया।

सितंबर, 1999 में एशियान फोरम की सिंगापुर में बैठक के समय तथा अक्टूबर 1999 में सुयक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन के समय चीन तथा भारत के विदेश मंत्रियों के बीच उच्च स्तरीय एवं सकारात्मक वार्तालाप हुआ। नवंबर 1999 में भारत-चीन विशेषत: समूह, जो 1996 में संयुक्त कार्य समूह की सहायता के लिए बनाया गया था, उसकी एक बैठक हुई। इसके साथ ही दोनों देशों ने पूर्वी क्षेत्र के क्षेत्रीय सैनिक कमांडरों के मध्य हॉटलाइन संचार व्यवस्था की स्थापना की ताकि प्रतिदिन की सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जा सके। यह एक विश्वास निर्माण का कदम था।

इस प्रकार 20वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारत-चीन संबंधों पर नई परमाणु शस्त्र नीति से नकारात्मक रूप में प्रभावित तो हुए परंतु दोनों देश शीघ्र ही अपने संबंधों को फिर से सकारात्मक दिशा तथा व्यापकता प्रदान करने में सफल रहे तथा भारत-चीन व्यापार अच्छी प्रकार से विकसित होने लगा।

चीन के प्रधानमंत्री जू रोगजी की भारत यात्रा तथा भारत-चीन संबंध, जनवरी 2002

जनवरी 2002 में भारत-चीन संबंधों को एक सकारात्मक उत्साह तब मिला जब चीन के प्रधानमंत्री श्री जू रोगजी ने पांच दिन की भारत यात्रा की। इसके दौरान दोनों देशों के

नेताओं में उच्चस्तरीय वार्तालाप के साथ-साथ चीन के शिष्टमंडल तथा भारतीय उद्यमियों में मुंबई तथा बंगलौर में भी विचारों का आदान-प्रदान किया तथा आपसी आर्थिक सहयोग तथा संबंधों को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित किया गया। दोनों देशों ने एक संस्था फोरम फॉर कमबेटिंग टेरिज्म की स्थापना का निश्चय किया जिसने आतंकवाद के विरुद्ध कार्यवाही के लिए द्विपक्षीय सहयोग और तालमेल बढ़ाने में सहयोग देना था। दोनों देशों ने स्वीकार किया कि आतंकवाद उनका साझा शत्रु था तथा इसका सामना करने के लिए दोनों देश नियमित वार्तालाप भी करेंगे और सहयोग भी। जिस प्रकार भारत सीमा आतंकवाद का संताप झेल रहा था वैसे ही चीन भी अपने Xinjiang प्रदेश में नस्ली Uyghus के एक भाग द्वारा किए जा रहे आतंकवादी कार्यवाहियों से ग्रस्त था और चीन यह मानता था कि यह आतंकवाद भी पार सीमा आतंकवाद था और इसका मूल स्थान केंद्रिय एशिया के कुछ देश थे, अतः स्वाभाविक रूप में चीन तथा भारत ने आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष में सहयोग स्थापित करने का निर्णय लिया। लेकिन भारत में विद्यमान आतंकवाद काफी सीमा तक पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित पार सीमा आतंकवाद था। और पाकिस्तान चीन का गहरा मित्र था। इस कारण आतंकवाद के विरुद्ध सहयोग करते समय भारत तथा चीन में सहयोग का क्षेत्र सीमित ही रहने की संभावना थी। वैसे चीन ने यह स्पष्ट रूप में घोषणा की थी कि भारत और पाकिस्तान के सभी विवाद दोनों देशों द्वारा शांतिपूर्वक तथा द्विपक्षीय साधनों के द्वारा ही हल किए जाने चाहिए। चीन का ऐसा मत भारतीय विदेश नीति द्वारा अपनाई गई स्थिति के साथ स्पष्ट रूप से मिलता था। 23 अप्रैल, 2002 के दिन दोनों देशों के अधिकारियों ने नई दिल्ली में एक बैठक की तथा क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे के साथ-साथ आतंकवाद के खतरे पर भी वार्तालाप किया। दोनों देशों ने आतंकवाद के विरुद्ध अपने संघर्ष में सहयोग करने की नीति को एक व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया।

भारत तथा चीन ने श्री जू की यात्रा के दौरान छह समझौतों पर हस्ताक्षर भी किए। इनका संबंध मुख्य रूप से अंतरिक्ष, विज्ञान तथा टेकनोलॉजी और पर्यटन के क्षेत्र से था। दोनों देशों ने साझे प्रोजेक्टों तथा प्रोग्रामों की लागतार समीक्षा करने के लिए एक संयुक्त कार्य समूह की स्थापना करने के लिए निर्णय लिया। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों में आपसी आर्थिक संबंधों को तीव्रता से आगे बढ़ाने की दृढ़ इच्छा को स्पष्ट दिखलाया। दोनों ने बढ़ रहे व्यापारिक एवं आर्थिक संबंधों को और बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया। 2000-2001 में चीन के साथ भारतीय व्यापार में 25% की वृद्धि हुई। यद्यपि व्यापार संतुलन चीन के पक्ष में रहा तथापि भारतीय निर्यातों में 50% का विकास हुआ था। दोनों देशों ने द्विपक्षीय व्यापार को गति देने का निश्चय दोहराया। इसी यात्रा के दौरान चीन को एक की एक कंपनी ने पांच भारतीय कंपनियों के साथ $125 मिलियन के कोयला, लोहा तथा एल्युमीनियम के आयात-निर्यात समझौते किए। चीन ने प्रमुख भारतीय सूचना तकनीकी कंपनियों को चीन के बाजार में व्यापार करने का निमंत्रण दिया। भारतीय कंपनी इनफोसिस टेक्नोलॉजी द्वारा शंघाई में एक सुविधा केंद्र खोलने के प्रस्ताव को चीन ने एकदम स्वीकृति प्रदान करके ऐसे नियंत्रण की सच्चाई को प्रकट किया। ऐसा माना जाता है कि अब चीन द्वारा डब्ल्यू.टी.ओ. में सम्मिलित होने के बाद भारत-चीन आर्थिक संबंधों और व्यापार में काफी भारी बढ़ोतरी होगी।

काफी समय से विद्यमान सीमा विवाद के संबंध में दोनों देशों ने विवादित सीमा के संबंध में स्पष्टीकरण सूचनाओं के आदान-प्रदान की प्रक्रिया को अधिक गति देने का

निर्णय लिया। अवरोधकों को समाप्त करने का निश्चय दोहराया गया। दोनों देश हिमाचल प्रदेश तथा उत्तरांचल के क्षेत्रों में नियंत्रण सीमा रेखा के संबंध में स्पष्ट हो चुके थे और अब लद्दाख और अरुणाचल के क्षेत्रों के संबंध में भी ऐसी प्रगति होने की संभावना बनी थी। मार्च 2002 में भारतीय विदेश मंत्री श्री जसवंत सिंह ने चीन की यात्रा की और इस विषय पर दोनों देशो में उच्चस्तरीय वार्तालाप और सूचनाओं का आदान-प्रदान हुआ।

श्री जू रोगजी की भारत यात्रा तथा फिर श्री जसवंत सिंह की चीन यात्रा ने निश्चय ही दोनों देशों के संबंधों को एक स्वस्थ दिशा और दृढ़ता प्रदान करने का कार्य किया। भाारत और पाकिस्तान के मध्य विद्यमान तनावों, विशेषकर व्यापक सैनिक तनाव की पृष्ठभूमि में दोनों में न केवल प्रगति बनाए रखने अपितु प्रगति को अधिक गति देने और संबंधों के स्वरूप को व्यापक बनाने की दिशा में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया। चीन ने भारतीय संसद पर 13 दिसंबर, 2001 में हुई आतंकवादी कार्यवाही की कड़ी निंदा की तथा आतंकवाद के विरुद्ध न केवल इस संकट का सामना करने के लिए आपसी सहयोग को बढ़ाने का निर्णय लिया बल्कि इसके साथ ही आपसी आर्थिक संबंधों के विकास तथा सामरिक संबंधों को दृढ़ता प्रदान करने की नीति पर चलने का मन भी बनाया।

2002-04 के समय में भारत-चीन संबंध सकारात्मक रूप में प्रगति करते रहे। सीमा विवाद तथा आपसी हित के अन्य सभी मुद्दों पर दोनों देशों के नेताओं और अधिकारियों में नियमित बैठकें और वार्तालाप होते रहे। दोनों देशों को आर्थिक-सामाजिक- सांस्कृतिक संबंधों में अच्छी प्रगति हुई। हां, चीन ने अब सिक्किम को भारत के एक अभिन्न भाग के रूप में मान्यता दे ही दी।

मार्च 2002 में भारत और चीन के बीच हवाई यात्रा संपर्क का शुभारंभ हुआ। अप्रैल 2002 में भारत और चीन ने आतंकवाद की समाप्ति के लिए वार्तालाप आरंभ किया और दोनों देशों ने अपने-अपने अनुभवों को बांटा। चीन के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा और भारतीय विदेश मंत्री की चीन की यात्रा (जनवरी 2002 और मार्च 2002) के एक अच्छे परिणाम के रूप में यह वार्तालाप प्रक्रिया आरंभ हुई। नवंबर 2002 में भारत-चीन साझे कार्य समूह की 14वीं बैठक नई दिल्ली में हुई तथा सीमा विवाद के समाधान के संबंधों में एक अच्छी समझ बनाने का यत्न किया गया ताकि विद्यमान कठिनाइयों पर काबू पाया जा सके। यह भी स्वीकार किया गया कि सीमा विवाद की गुंझलदार प्रकृति के कारण प्रगति की गति धीमी ही रहनी थी तथा यह आवश्यक था कि दोनों देश अपने सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक संबंधों का विस्तार करके सीमा विवाद के समाधान की प्रक्रिया को उत्साहित करें। जनवरी 2003 में एक 12 सदस्यीय संसदीय शिष्ट मंडल ने चीन की यात्रा की तथा इस दल के नेता लोकसभा स्पीकर मनोहर जोशी ने चीन की राष्ट्रीय जन कांग्रेस के चेयरमैन से वार्तालाप किया। दोनों देशों ने आपसी संबंधों के विस्तार के प्रति वचनबद्धता को दोहराया तथा पंचशील, आपसी सद्भाव तथा समानता के आधार पर द्विपक्षीय संबंधों के संचालन की प्रक्रिया में पुनः विश्वास प्रकट किया।

भारतीय रक्षा मंत्री की चीन यात्रा, अप्रैल 2003

अप्रैल 2003 में पहली बार भारतीय रक्षा मंत्री ने चीन की यात्रा की तथा इस यात्रा ने भारत तथा चीन के बढ़ते आपसी विश्वास को प्रकट किया। 1998 में पोखरण II परमाणु परीक्षण के समय रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडीस ने चीन के परमाणु शस्त्रों द्वारा उत्पन्न चुनौती

को भारतीय परमाणु परीक्षणों का एक प्रमुख कारण कहा था। इस कथन को चीन ने नापसंद किया था। परंतु इस यात्रा के अवसर पर रक्षा मंत्री ने कहा कि भारत तथा चीन न तो शत्रु थे और न ही प्रतियोगी अपितु वह तो मित्र थे जो संबंधों के सभी क्षेत्रों में आपसी सहयोग बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील थे। रक्षा मंत्री जॉर्ज फर्नांडीज ने चीन के रक्षामंत्री तथा अन्य नेताओं से महत्वपूर्ण वार्तालाप किया। दोनों देशों ने द्विपक्षीय संबंधों में हो रही प्रगति तथा वास्तविक सीमा रेखा के स्पष्टीकरण की प्रक्रिया पर संतोष प्रकट किया तथा विश्वास बढ़ाने वाले निर्णयों, नीतियों और कदमों को व्यापक और दृढ़ बनाने की आवश्यकता को स्वीकार किया। दोनों देशों ने आगामी कुछ वर्षों में अपने द्विपक्षीय व्यापारिक, कारोबारी, सांस्कृतिक संबंधों के क्षेत्र तथा सैनिक अधिकारियों की आपसी अंतर्क्रियाओं को बनाने के उद्देश्य को स्वीकार किया। दोनों ने क्षेत्रीय शांति और स्थिरता की सुरक्षा और विकास के लिए कार्य करने को भी एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया। दोनों देशों ने क्षेत्रीय शांति और स्थिरता की सुरक्षा और विकास के लिए कार्य करने को भी एक उद्देश्य के रूप में स्वीकार किया।

प्रधानमंत्री वाजपेयी की चीन यात्रा, जून 2003

भारत और चीन के द्विपक्षीय संबंधों में एक अच्छा सकारात्मक विकास 2003 में उस समय हुआ जब प्रधानमंत्री वाजपेयी ने चीन की यात्रा की तथा आपसी संबंधों के क्षेत्रों में हो रही प्रगति को और तीव्र करने तथा बेहतर दिशा देने का प्रयास किया। भारतीय प्रधानमंत्री की यह यात्रा 10 वर्षों के अंतराल के बाद हुई थी। इस यात्रा का उद्देश्य था–आपसी संबंधों को सभी क्षेत्रों में और विकसित करना। विकास निर्माण प्रक्रिया को और दृढ़ बनाना तथा सीमा विवाद के समाधान के लिए एक राजनीतिक प्रक्रिया को भी आरंभ करना। इस यात्रा के समय तक भारत-चीन व्यापार 5 बिलियन डॉलर वार्षिक स्तर तक पहुंच चुका था। वास्तविक नियंत्रण रेखा (एल.ओ.सी.) के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण हो चुके थे। दोनों देशों में सुरक्षा वार्तालाप की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। विश्वास निर्माण के लिए कुछ अच्छे कदम उठाए जा चुके थे। दोनों देशों में सीधी हवाई यात्रा संपर्क कार्य कर रही थी तथा दोनों ही देश विश्व व्यापार संगठन तथा वैश्वीकरण के युग में आपसी संबंधों को विकसित करने का निर्णय ले चुके थे।

इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री वाजपेयी ने चीन के शीर्ष नेताओं हुं-जिताओ वेन सिआवो तथा अन्यों से आपसी हित तथा विश्व व्यवस्था के मुद्दों पर व्यापक वार्तालाप किया। चीन और भारत के प्रधानमंत्रियों ने पहली बार एक साझा घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किए जिसमें आपसी द्विपक्षीय संबंधों के बारे में निर्देश सिद्धांतों और उद्देश्यों का उल्लेख किया गया। जहां भारत ने तिब्बत को चीन का स्वायत्त क्षेत्र स्वीकार किया वहां चीन ने सिक्किम के भारत में विलय को स्वीकार किया। दोनों देशों ने उत्तर पूर्वी राज्यों के मार्गों से व्यापार करने तथा सिक्किम तिब्बत सीमा की व्यापार चौकियों को खोलने के निर्णय लिए। इसके साथ दोनों देशों ने वीजा नियमों के सरलीकरण, द्विपक्षीय व्यापार के संबंध में एक स्मरण पत्र तथा पंचशील की वर्षगांठ मनाने के निर्णय भी लिए। इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री वाजपेयी ने पाकिस्तान की ओर से प्रायोजित सीमापार आतंकवाद का मुद्दा भी उठाया, परंतु इस पर चीन ने चुप्पी ही साध रखी, क्योंकि चीन पाकिस्तान के साथ अपने संबंधों को क्षति नहीं पहुंचाना चाहता था।

टिप्पणी

आर्थिक संबंधों के क्षेत्र में चीन ने यह घोषणा की कि वह 500 मिलियन डॉलर का एक फंड बना कर भारत में निवेश करेगा। दोनों देशों ने 9 समझौतों पर भी हस्ताक्षर किए जिनका संबंध विभिन्न विषयों के साथ था। सीमा-विवाद के समाधान के संबंध में भारत और चीन ने यह निर्णय लिया कि इसके लिए वह अपने विशेष प्रतिनिधियों को नियुक्त करेंगे तथा उनमें वार्तालाप की उच्चस्तरीय प्रक्रिया आरंभ होगी। भारत ने प्रधानमंत्री के सचिव ब्रजेश मिश्र को तथा चीन ने अपने विदेश विभाग के सबसे शीर्ष उपप्रधान डाए-बिंग-कू को इस वार्तालाप का उत्तरदायित्व सौंपा। इस प्रकार के नये उपक्रम को सचमुच द्विपक्षीय संबंधों और विशेषकर सीमा-विवाद के समाधान के लिए राजनीतिक प्रक्रिया का एक नया मार्ग कहा गया। इससे यह आशा बनी की सीमा-विवाद के समाधान का कार्य सफलता प्राप्त कर सकेगा। बाद में मई, 2004 में भारत में कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. सरकार ने सत्ता ग्रहण की तथा भूतपूर्व विदेश सचिव तथा प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जे.एन. दीक्षित ने इस वार्तालाप में भारत का प्रतिनिधित्व करना आरंभ कर दिया।

भारत तथा चीन ने सूचना तकनीकी में आपसी द्विपक्षीय सहयोग स्थापित करने का भी मन बनाया। प्रधानमंत्री वाजपेयी की इस यात्रा ने निश्चय ही दोनों देशों के संबंधों को अच्छी दिशा, व्यापकता तथा गति देने का प्रयास किया। परंतु आलोचकों ने कहा कि चीन ने भारतीय उपक्रम के प्रति आवश्यक उत्साह और समझ नहीं प्रकट की थी तथा भारत-चीन संबंधों के इतना कुछ होते हुए दोनों देशों के संबंधों में अधिक प्रगति होने के आसार नहीं थे। उधर फिर सिक्कम के संबंध में भारतीय पक्ष का चीन परोक्ष रूप में ही समर्थन किया था। इस यात्रा के कुछ दिनों बाद एक बार फिर चीन ने सिक्किम के संबंध में अपनी परंपरागत नीति की घोषणा कर दी। इससे आलोचक तो और भी कठोर आलोचक बन गए तथा इससे भारत सरकार को भी निराश हुई। परंतु 2003 की समाप्ति होते यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि चीन अब सिक्किम को भारतीय प्रदेश स्वीकार करता था तथा यह अपनी परंपरागत नीति का त्याग कर चुका था।

अक्टूबर 2003 में भारत तथा चीन में सीमा विवाद के समाधान के संबंध में उच्च स्तरीय वार्तालाप का एक दौर संपन्न हुआ और भारतीय प्रतिनिधि ब्रजेश मिश्र तथा चीन के प्रतिनिधि डाए-बिंग-कू ने सीमा मुद्दे पर व्यापक वार्तालाप किया। इस वार्तालाप को एक नई राजनीति प्रक्रिया के रूप में देखा गया। वार्तालाप का दूसरा दौर जनवरी, 2004 में हुआ तथा एक तीसरा दौर भारतीय प्रतिनधि जे.एन. दीक्षित तथा चीन के प्रतिनिधि डाए-बिंग-कू मध्य जुलाई, 2004 में संपन्न हुआ। वार्तालाप मित्रतापूर्ण वातावरण में हुआ, परंतु इस संबंध में सभी सूचनाओं को गुप्त रखा गया। सीमा विवाद के समाधान के लिए उच्च स्तरीय वार्तालाप की नियमित प्रक्रिया और भारत-चीन संबंधों के विकास का अंग बन गई है, परंतु सीमा विवाद के शीघ्र समाधान की एक अच्छी आशा अभी तक उभर कर सामने नहीं आई है। सितंबर, 2003 में दोनों देशों में वीजा प्राप्त कर सकते हैं। पहले केवल एक मास का वीजा ही दिया जाता था।

नवंबर, 2003 में भारत तथा चीन ने साझे नौसैनिक अभ्यास पूर्वी चीन समुद्र में शंघाई के क्षेत्र में किए। यह एक साहसिक विश्वास निर्माण अभ्यास था तथा भारत-चीन सुरक्षा संबंधों के विकसित हो रहे स्वरूप को प्रकट करता था। दिसंबर, 2003 में

भारत-चीन संबंधों के एक दूसरे के साधारण लोगों के आपसी मेलजोल और संपर्कों की प्रक्रिया का एक अच्छा आरंभ तब हुआ जब भारतीय नागरिक हवाई सेवा एयर इंडिया की पहली सीधी उड़ान चीन के शंघाई शहर में पहुंची। दोनों देशों के लोगों को आपस में प्रत्यक्ष अंतर्क्रियाएं करना इस सीधी उड़ान से अधिक सरल हो गया। फरवरी, 2004 में भारत तथ चीन ने प्रसार साधनों तथा मनोरंजन उद्योग में आपसी संबंधों को विकसित करने के लिए कई एक सिद्धांतों को स्वीकार किया। दोनों देशों ने साझे प्रोग्रामों को निर्मित करके आपसी फिल्म समारोह करने के निर्णय लिए। दोनों देशों के पत्रकारों की एक-दूसरे देश की यात्राओं की संभावनाओं पर दोनों देशों ने आपसी सहमति बनाने का प्रचार किया।

भारत-चीन संबंध, मई 2004 और उसके बाद

22 मई, 2004 को भारत में जब कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू.पी.ए. सरकार सत्ता में आई तो नई सरकार ने भी चीन के साथ उच्चस्तरीय, शांतिपूर्ण तथा अधिक से अधिक सहयोगी संबंध स्थापित करने की आवश्यकता स्वीकार की तथा भारत-चीन सीमा विवाद के समाधान की प्रक्रिया को गति प्रदान करने की आवश्यकता को भी पूर्व रूप में स्वीकार किया। यू.पी.ए. सरकार को वामपंथी दलों का बाहर से समर्थन प्राप्त था जो कि चीन के साथ अधिक से अधिक संबंधों के विकास के दृढ़ समर्थक थे। भारत भी चीन के आर्थिक विकास के मॉडल से काफी प्रभावित था तथा इसकी अच्छी और आवश्यक विशेषताओं को अपनाने में रुचि रखता था। इस कारण 2004 के मध्य में भारत-चीन संबंधों के विकास का वातावरण काफी आशाजनक दिखाई दिया, क्योंकि दोनों देश स्वीकार करते थे कि – सीमा विवाद को आपसी वार्तालाप और शांतिपूर्ण ढंग से संतोषजनक रूप में सुलझा लिया जाए।

दोनों देश आपसी व्यापार को बढ़ाना चहते थे, क्योंकि ऐसा करना दोनों की आर्थिक उन्नति के लिए आवश्यक था। भारत-चीन व्यापार 2004 के अंत तक 10 बिलियन डॉलर तक पहुंच सकता था। विश्व व्यापार संगठन तथा वैश्वीकरण के युग में आपसी आर्थिक-व्यापारिक तालमेल तथा सहयोग स्थापित करना दोनों देशों के लिए आवश्यक हो गया था।

28 जून, 2004 को नई दिल्ली में भारत और चीन ने पंचशील की 50वीं वर्षगांठ मनाई। विदेश मंत्री नटवर सिंह ने इस अवसर पर एक विशेष कवर जारी किया तथा कहा कि पंचशील वह रूपरेखा तथा आधार है जिस पर भारत तथा चीन के संबंधों को न्यायोचित रूप में लाने की योग्यता है। इस अवसर पर चीन में संगठित समारोह में भाषण करते हुए भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति के.आर. नारायणन ने कहा कि पंचशील एक न्याय युक्त व्यवहार क्रम है। इसी अवसर पर संगठित एक रैली को संबोधित करते हुए चीन के प्रधानमंत्री वेन जिआबो ने कहा कि यह सिद्धांत दोनों देशों के लोगों में स्थिरता और विकास का पोषक है। यह भारत और चीन के संबंधों के लिए मित्रता, मेल-मिलाप, लाभ का एक दृढ़ आधार है।

नवंबर 2004 में भारत-चीन संबंधों के क्षेत्र में तीन महत्वपूर्ण घटनाएं हुईं। 17 नवंबर, 2004 को भारत और चीन ने एक पॉयंट स्टीयरिंग कमेटी स्थापित करने का समझौता किया जिसने दोनों देशों में सूचना तथा विज्ञान और तकनीकी के दूसरे क्षेत्रों में

द्विपक्षीय सहयोग विकसित करना था। 18 नवंबर, 2004 को भारत-चीन के विशेष प्रतिनिधियों ने सीमा-विवाद पर चौथे दौर की बातचीत की तथा इस बातचीत में विचारों का आदान-प्रदान भी हुआ और सीमा-विवाद के हल के लिए वातावरण सकारात्मक बना रहा।

30 नवंबर, 2004 के दिन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह तथा चीन के प्रीमियर वेन जियाबो के बीच आलोस में एक 40 मिनट की बातचीत हुई। यह बातचीत भारत-एशियान शिखर वार्ता के साथ हुई। इस वार्ता में दोनों देशों ने भारत-चीन संबंधों में 1988 से हो रही सहयोग की समीक्षा की और इसके ऊपर संतोष प्रकट किया। यह स्वीकृति बनाई गई कि विश्वास निर्माण प्रक्रिया तथा सकारात्मक नीतियों को अपनाए जाने की प्रक्रिया जारी रहेगी ताकि सीमा विवाद के समाधान की और प्रगति हो सके। यह आशा प्रकट की गई कि भारत-चीन संबंध सभी क्षेत्रों में अधिक से अधिक सहयोग स्थापित करेंगे तथा सीमा विवाद का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से आपसी समझ तथा राजनीतिक इच्छा को विकसित करके लेन-देन की भावना से संपन्न कर लिया जाएगा।

भारत-चीन सामरिक संबंध वार्तालाप, जनवरी 2005

जनवरी 2005 में भारत-चीन संबंधों में उस समय एक नवीन प्रगति हुई जब दोनों देशों ने पहली बार द्विपक्षीय सामरिक वार्तालाप किया। भारत के विदेश सचिव तथा चीन के उप-विदेश मंत्री सभी क्षेत्रीय और विश्व स्तरीय मामलों पर चर्चा की और अपनी-अपनी विदेश नीतियों के बारे में विचारों का आदान-प्रदान किया। दोनों देशों ने यह कहा कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में वैश्वीकरण और लोकतंत्रीकरण की प्रभावी और कुशलता से प्रगति होनी चाहिए। चीन ने विश्व राजनीति में भारत की बढ़ रही भूमिका को स्वीकार तो किया परंतु संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए अपना समर्थन प्रकट न किया। लेकिन दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि आज सबसे बड़ी समस्या आतंकवाद तथा महाविनाश के रास्तों का आतंकवादियों के पास संभावित पहुंच का है। इसलिए यह आवश्यक था कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को और अधिक सुदृढ़ बना कर इस खतरे को समाप्त किया जाए। भारत और चीन ने इस बात पर संतोष व्यक्त किया। दोनों देशों का व्यापार अब बढ़कर 13 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया था।

इस वार्तालाप ने भारत और चीन के मध्य सामरिक भागीदारी की संभावना को बल दिया और बाद में जून 2005 में भारत-चीन तथा रूस के विदेश मंत्रियों ने एक बैठक के बाद यह घोषित किया कि तीनों देशों ने आपसी त्रिपक्षीय सामरिक भागीदारी तथा समझ को दृढ़ बनाने का निर्णय लिया था।

चीन के प्रधानमंत्री वेन जियाबो की भारत यात्रा, अप्रैल 2005

भारत-चीन संबंधों को उस समय और भी बल मिला जब चीन के प्रधानमंत्री ने अप्रैल 2005 में भारत की यात्रा की तथा भारतीय नेताओं के साथ भारत-चीन संबंधों के प्रत्येक पहलू पर वार्तालाप किया। वास्तव में भारत तथा चीन के बीच सहयोग बढ़ रहा था और दोनों देशों ने सीमा-विवाद के हल के संबंध में एक लचीला दृष्टिकोण अपनाया था।

इस यात्रा के दौरान चीन के प्रधानमंत्री ने भारत को चीन का एक नया सरकारी रूप से प्रकाशित मानचित्र सौंपा जिसमें सिक्किम को भारत का भाग दिखाया गया था। इस यात्रा

के दौरान भारत और चीन ने 12 नए समझौतों पर हस्ताक्षर किए। दोनों देशों ने सीमाविवाद के शांतिपूर्ण समाधान के प्रति वचनबद्धता दोहराई तथा सीमा के संबंधों में संयुक्त सर्वेक्षण करने पर सहमति बनाई। भारत और चीन ने परस्पर विश्वास-निर्माण की प्रक्रिया के अधीन यह निश्चय किया कि दोनों देश भारी सैनिक अभ्यास से दूर रहेंगे, सैनिक अभ्यासों के संबंध में पूर्व सूचना देंगे, वायु सीमा के उल्लंघन के निपटारे के लिए कार्य करेंगे और सीमा पर सैनिकों के एक-दूसरे के आमने-सामने की स्थित से दूर रहेंगे।

इस यात्रा के दौरान चीन ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के लिए भारत की दावेदारी को कुछ समर्थन दिया लेकिन उसने इस बात पर निराशा भी जाहिर की कि भारत ने अपनी दावेदारी को दूसरे कुछ देशों (जैसेकि जापान) से जोड़ लिया था। चीन ने यह भी स्पष्ट नहीं किया कि वह भारत की दावेदारी को किस प्रकार का समर्थन देगा, पूर्ण अथवा आंशिक?

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह तथा प्रीमियर वेन जियाबो ने यह निर्णय लिया कि आपसी सहयोग को व्यापक बनाने के लिए एक नया प्रयास किया जाएगा। यह भी निर्णय लिया गया कि दोनों देशों में नागरिक हवाई उड़ानों को अधिक उदार बनाया जाएगा और प्रत्येक देश की हवाई सेवा को किन्हीं छः स्थानों के लिए एक सप्ताह में 21 उड़ानें भरने की सुविधा होगी। चीन ने शंघाई सहयोग संगठन में भारत को प्राप्त पर्यवेक्षक के स्तर पर प्रसन्नता प्रकट की। यह आशा की गई कि इस संपर्क से भारत-चीन व्यापार संबंध अधिक विकसित होगा। 2004 में भारत-चीन व्यापार 13.7 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया था। और अब यह आशा बनी कि सन् 2006 तक यह व्यापार 20 बिलियन डॉलर तक पहुंच जाएगा।

15 सितंबर, 2005 को भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह तथा चीन के राष्ट्रपति हू जिन्ताओ के मध्य एक बैठक न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशन के अवसर पर हुई। दोनों ने आपसी द्विपक्षीय संबंधों की समीक्षा की तथा यह सहमति बनाई कि सीमा मामले को अधिक महत्व देते हुए दोनों देश इसका एक उचित समाधान प्राप्त करने के लिए कार्य करेंगे। दोनों नेताओं ने यह माना कि वर्तमान सिद्धांत तथा राजनीतिक रूप-रेखा, जिसके अधीन वर्तमान में भारत-चीन-विवाद वार्तालाप चल रहा था, उसके द्वारा इस समस्या का उचित समाधान संभव हो जाएगा। भारत ने इस बात का स्वागत किया कि चीन ने ITER परमाणु परियोजना में भारत की भागीदारी का समर्थन किया था। दोनों नेताओं ने ईरान तथा उत्तरी कोरिया के परमाणु प्रोग्राम पर भी विचारों का आदान-प्रदान किया।

भारत-चीन संबंध, 2006-07

पिछले दो वर्षों में भारत और चीन के संबंधों में लगातार सकारात्मक विकास हुआ है लेकिन इसके साथ यह भी एक तथ्य है कि सीमा विवाद के समाधान के संबंध में कोई विशेष प्रगति संभव नहीं हुई है। दोनों देशों ने विभिन्न स्तरों पर तथा सभी क्षेत्रों में संबंधों के विकास के लिए लगातार वार्तालाप किया है, कोई एक समझौते भी किए हैं। परंतु सीमा-विवाद के समाधान के संबंध में कोई निश्चित प्रगति संभव नहीं हुई है।

जनवरी, 2006 में भारत और चीन के मध्य सामरिक वार्तालाप का दूसरा दौर बीजिंग में संपन्न हुआ तथा दोनों देशों ने अंतर्राष्ट्रीय स्थिति, विश्व के सम्मुख मौजूद

चुनौतियों के संबंध में किए जा रहे प्रयासों की प्रकृति, संयुक्त राष्ट्र में सुधारों के मुद्दे पूर्वी एशियाई समुदाय के स्थापना के मुद्दे तथा भारत-चीन-रूस के मध्य त्रिपक्षीय सहयोग के मुद्दे पर विचार-विमर्श किया। दोनों देशों के प्रतिनिधिमंडलों ने द्विपक्षीय सहयोग को विकसित करने के लिए एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए। दोनों देशों ने यह निर्णय किया कि वे तेल की खोज तथा तीसरे देशों में तेल क्षेत्रों के अधिग्रहण के संबंध में आपस में सहयोग करेंगे।

सीमा वार्तालाप के संबंध में मार्च 2006 में सातवें तथा जून 2006 में आठवें दौर का द्विपक्षीय वार्तालाप संपन्न हुआ। सीमा मुद्दे के समाधान के संबंध में जो संरचनात्मक समझ पहले बनाई गई थी, उसी के आधार पर यह वार्तालाप किया गया। वार्तालाप की प्रगति को गुप्त रखा गया परंतु यह बात जरूर सामने आई कि सीमा पर वास्तविक नियंत्रण रेखा के संबंध में कुछ मतभेद अभी भी मौजूद थे तथा दोनों देश अब एक समुचित हल के निर्माण को महत्व दे रहे थे। मई 2006 को भारत के प्रतिरक्षा मंत्रियों ने प्रतिरक्षा संपर्कों के संबंध में एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए। दोनों देशों के प्रतिरक्षा अधिकारियों तथा प्रतिरक्षा विभागों के बीच यात्राओं, प्रोग्राम अपनाए जाने के संबंध में सहमति बनाई गई। दोनों देशों ने आपसी प्रतिरक्षा संपर्कों को विकसित करने के महत्व को स्वीकार करते हुए यह सहमति बनाई थी।

पिछले कुछ वर्षों में भारत और चीन के मध्य आर्थिक और व्यापारिक संबंध तेजी से विकसित हो रहे थे। इसी को देखते हुए मार्च 2006 में भारत तथा चीन के कारोबारी मंच ने एक बैठक की तथा कारोबारी आदान-प्रदान सुविधाओं का विस्तार करने के संबंध में एक सहमति बनाई गई। दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि आपसी प्रयासों के द्वारा सन् 2010 तक भारत-चीन व्यापार को 50 बिलियन डॉलर तक विकसित किया जा सकता था। इसके साथ ही भारत-चीन साझे आर्थिक समूह ने यह निर्णय किया कि छः कार्य दलों को स्थापित किया जाए। फिर अप्रैल 2006 में भारत-चीन वित्तीय वार्तालाप की पहली बैठक हुई और यह निर्णय किया गया कि दोनों देश विश्व व्यापार संघ के वार्तालाप में एक-दूसरे के साथ सहयोग करेंगे तथा बहुपक्षीय व्यापार वार्तालाप को सफल बनाने के लिए कार्य करेंगे। दोनों देशों ने वित्तीय संबंधों में आपसी सहयोग बढ़ाने का निर्णय भी लिया।

भारत-चीन व्यापार को आगे बढ़ाने के लिए दोनों देशों ने जुलाई 2006 में नाथुला व्यापार मार्ग को फिर से खोल दिया। इस मार्ग ने सिक्किम तथा तिब्बत में व्यापार संबंध के रूप में कार्य करना था। यह आशा की गई कि नाथुला व्यापार मार्ग के खुलने से दोनों देशों के व्यापार को अधिक उत्साह प्राप्त होगा।

चीन के राष्ट्रपति हू-जिंताओ की भारत यात्रा, नवंबर 2006 तथा भारत संबंध

नवंबर 2006 में भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह तथा चीन के राष्ट्रपति हू-जिंताओ ने नई दिल्ली में शिखर सम्मेलन किया। आपसी हित के सभी द्विपक्षीय तथा प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर व्यापक वार्तालाप किया। दोनों नेताओं ने सीमा विवाद पर विचार-विमर्श करने के साथ-साथ 13 समझौतों पर भी हस्ताक्षर किए। दोनों देशों ने एक दस-सूत्रीय समझौता किया जिसमें उन सिद्धांतों का वर्णन किया गया जिनके आधार पर दोनों देशों के संबंधों को संचालित किया जाना था।

10 सूत्रीय समझौता– दोनों नेताओं ने 10 सूत्रीय समझौते पर सहमति बनाई, वह था–

1. द्विपक्षीय संबंधों के व्यापक विकास को विश्वसनीय बनाना।
2. संस्थागत संपर्कों तथा वार्तालाप संयंत्रों को दृढ़ता देना।
3. आर्थिक और वाणिज्यिक आदान-प्रदानों को स्थिरता प्रदान करना तथा शक्तिशाली बनाना।
4. सर्वपक्षीय आपसी लाभकारी सहयोग का विस्तार करना। दोनों देशों ने यह स्वीकार किया कि एक विशेषज्ञों पर आधारित व्यवस्था को स्थापित करना जिससे बाढ़ आपदा प्रबंधन तथा उत्तर सीमा निर्देशों के संबंध में सहयोग को विकसित करने में सहायता देनी थी।
5. प्रतिरक्षा सहयोग के द्वारा आपसी विश्वास और भरोसा उत्पन्न करना।
6. अंतर्सीमा संपर्कों तथा सहयोग को उत्साहित करना।
7. लंबित मुद्दों के संबंध में शीघ्र से शीघ्र संसाधन ढूंढ़ने के लिए कार्य करना।
8. विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में सहयोगी बढ़ाना।
9. सांस्कृतिक संपर्कों को शक्तिशाली बनाना तथा लोगों के साथ संबंधों को अधिक विकसित करना।
10. क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग का विस्तार करना।

उपरोक्त 10 सूत्रीय योजना के आधार पर भारत और चीन के आपसी सामरिक तथा सहयोगी भागीदारिता को उत्साहित करना था। यह आशा व्यक्त की गई कि इस समझौते के बाद दोनों देशों में विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में सहयोग विकसित होगा तथा नागरिक परमाणु तकनीकी के क्षेत्र में भी सहयोग स्थापित करने की प्रक्रिया को बल मिलेगा। भारत-चीन सीमा विवाद के संबंध में भारत के प्रधानमंत्री तथा चीन के राष्ट्रपति ने अपने विशेष प्रतिनिधियों को यह निर्देश दिया कि वे अपने प्रयासों को तेज करें क्योंकि आपसी संबंधों के क्षेत्र में यह एक सामरिक महत्व का लक्ष्य था। इस शिखर बैठक के बाद एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया जिसमें यह लिखा गया कि दोनों देशों के विशेष प्रतिनिधियों में वार्तालाप के साथ-साथ भारत-चीन सीमा मुद्दे पर कार्य कर रहे साझे कार्य दल द्वारा अपने कार्य को शीघ्रता से पूर्ण किया जाएगा तथा दोनों देशों के प्रतिनिधि वास्तविक नियंत्रण रेखा के संबंध में मानचित्रों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया को पूरा करने के संबंध में यह कहा गया कि जितनी शीघ्रता से हो सकेगा, यह कार्य संपन्न कर लिया जाएगा। नागरिक परमाणु सहयोग के मुद्दे पर दोनों देशों ने यह घोषित किया कि नागरिक परमाणु ऊर्जा प्रोग्राम का विस्तार आवश्यक था क्योंकि इसके द्वारा वह राष्ट्रीय ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त कर सकते थे। दोनों देशों ने माना कि अपनी-अपनी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के अनुरूप दोनों ही देश परमाणु क्षेत्र में सहयोग के विकास के लिए कार्य करेंगे। लेकिन परमाणु आपूर्ति समूह के एक सदस्य के रूप में चीन ने भारत को यह स्पष्ट भरोसा नहीं दिया कि वह इस समूह की बैठक में भारत के परमाणु ईंधन आपूर्ति की आवश्यकता को समर्थन देगा।

अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के मुद्दे पर दोनों देशों ने यह कि आतंकवाद को किसी भी आधार पर और किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता था तथा

टिप्पणी

सभी स्वरूपों में आतंकवाद की समाप्ति होनी चाहिए। आतंकवाद विरोधी कार्यों में सहयोग स्थापित करने के लिए दोनों देशों ने आपसी वार्तालाप प्रक्रिया को व्यापक बनाने की आवश्यकता पर सहमति बनाई। उन्होंने यह निर्णय किया कि आतंकवाद की समाप्ति तथा नशले पदार्थों की तस्करी को रोकने के लिए दोनों देश द्विपक्षीय स्तर के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी आपस में सहयोग करेंगे तथा आपसी प्रयासों को दृढ़ बनाएंगे।

भारत और चीन ने आपसी द्विपक्षीय व्यापार को और अधिक विस्तृत बनाने के संकल्प को दोहराया। इस बात पर भी विचार-विमर्श किया कि क्या भविष्य में भारत-चीन क्षेत्रीय व्यापारिक संस्कथा की स्थापना की संभावना हो सकती थी। इस संबंध में अध्ययन करने के लिए दोनों देशों ने एक संयुक्त कार्य दल के संगठित किए जाने का निर्णय लिया जिसको कि अक्टूबर, 2000 तक इस मुद्दे पर अपनी रिपोर्ट पेश करनी थी।

भारत-चीन संबंधों में कुछ रुकावटी तत्व

पिछले दो दशकों में भारत-चीन आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों में व्यापक विकास हुआ है तथा दोनों देशों के नेताओं तथा लोगों में आपसी संपर्कों की प्रक्रिया व्यापक बनी है। दोनों देशों ने अपने संबंधों को संचालित करने के लिए कई एक मंचों, कार्य समूहों तथा वार्तालाप संस्थाओं को विकसित किया है। प्रतिरक्षा के क्षेत्र में दोनों देशों में संपर्क स्थापित हुए हैं तथा दोनों ही देश सामरिक वार्तालाप भी कर रहे हैं। लेकिन इसके साथ ही यह भी एक तथ्य है कि अभी भी कई एक नकारात्मक तत्व अथवा रुकावटी तत्व विद्यमान हैं जो कि भारत-चीन संबंधों के विकास को नकारात्मक रूप में प्रभावित कर रहे हैं। ऐसे कुछ तत्व हैं–

1. समाधान की प्रतीक्षा में सीमा-विवाद।
2. चीन द्वारा पाकिस्तान के पक्ष में प्रभावित विदेश नीति का संचालन जिसके अंतर्गत चीन पाकिस्तान के परमाणु तथा मिसाइल प्रोग्राम में सहायता दिया जाना।
3. चीन अभी भी पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध एक संतुलन के रूप में विकसित होते देखना चाहता है।
4. अपनी ऊर्जा सुरक्षा की आवश्यकता विशेषकर परमाणु ऊर्जा, विकास की आवश्यकता को देखते हुए भारत अमेरिका के साथ अपने संबंधों को अधिक व्यापक बना रहा है। निश्चय ही चीन इस विकास को पसंद नहीं करता।
5. चीन तथा रूस आपसी सामरिक भागीदारी विकसित करने के लिए कार्य कर रहे हैं क्योंकि वे चाहते हैं कि एशिया में अमेरिका की भूमिका सीमित रखनी चाहिए। इसी कारण चीन भारत अमेरिकी संबंधों के विकास के संबंध में यह शंका रखता है कि अमेरिका भारत को चीन के विरुद्ध एक संतुलन के रूप में विकसित करना चाहता है।
6. चीन ने अभी तक संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता के संबंध में भारत के दावे को स्पष्ट समर्थन नहीं दिया है। चीन संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत को अपने समान स्तर पर नहीं देखना चाहता।

टिप्पणी

7. भारतीय अरुणाचल प्रदेश के संबंध में चीन अभी भी समय-समय पर अपना दावा प्रस्तुत करता रहता है। भारत-चीन के ऐसे दावे को बिलकुल पसंद नहीं करता– ''नवंबर 2006 में भारत में चीनी भू-क्षेत्र का एक भाग था।'' चीन के राजदूत के इस कथन ने निश्चय ही भारत के प्रति चीन की संकुचित सोच को प्रकट किया।
8. चीन भारत के साथ के क्षेत्र में चीन की विदेश नीति जिस आधार पर कार्य कर रही है, वह है भारत के साथ संबंधों का विकास तथा भारत की शक्ति को सीमित बनाए रखने का प्रयास। फिर चीन म्यांमार, नेपाल, बांग्लादेश तथा हिंद महासागर के क्षेत्र में अपनी शक्ति एवं प्रभाव का विस्तार कर रहा है और भारत को यह अनुभव होता है कि चीन उसे घेरने की प्रक्रिया में संलग्न है। भारत को भी चीन की बढ़ रही शक्ति के संबंध में यह चिंता रहती है कि अभी तक सीमा-विवाद के समाधान के संबंध में चीन की नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

इन सभी तत्वों के प्रभाव अधीन समकालीन समय में भारत तथा चीन के संबंध विकसित हो रहे हैं। उभर रही नई अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत और चीन आपसी संबंधों की आवश्यकता को अनुभव करते हैं और दोनों यह चाहते हैं कि इस नई उभर रही व्यवस्था का स्वरूप बहुकेंद्रीय होना चाहिए। दोनों ही विश्व व्यापार संघ में अमेरिका तथा यूरोपीय देशों द्वारा अत्यंत प्रभावी स्थिति प्राप्त करने के विरोधी हैं। दोनों ही अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के संभावित खतरे को स्वीकार करते हैं तथा दोनों ही इस मुसीबत की पूर्ण समाप्ति के समर्थक हैं। दोनों देश यह भी मानते हैं कि द्विपक्षीय आर्थिक और व्यापारिक संबंधों के व्यापक विकास की बहुत अधिक संभावनाएं विद्यमान हैं तथा दोनों देशों की अर्थव्यवस्थाएं हैं।

चीन सूचना तकनीकी के क्षेत्र में भारत के महत्व को स्वीकार करता है और भारत यह स्वीकार करता है कि ऊर्जा सुरक्षा के क्षेत्र में चीन के साथ संबंधों का विकास करना एक आवश्यकता है। लेकिन इसके साथ ही ऊपर वर्णित अवरोधकों ने दोनों देशों के संबंधों को वर्तमान समय में भी सीमित ही बनाया हुआ है। इस बात की परम आवश्यकता है कि दोनों देश इन अवरोधों को नियंत्रित करके आपसी संबंधों को व्यापकता तथा दृढ़ता प्रदान करें।

भारत चीन संबंध 2005 से आगे

भारत और चीन संबंधों को बेहतर बनाने की दिशा में प्रयासरत तो हैं, मगर सीमा विवाद को लेकर राख में दबी चिंगारियां यदा-कदा भड़कने लगती है। दोनों देश 1993, 1996, 2005, 2012 और 2013 में हुए द्विपक्षीय समझौतों के साथ सीमा विवाद पर कॉन्फिडेंस बिल्डिंग मेजरमेंट (सीबीएम) में भी लगे हुए हैं।

2017 में, राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने अस्ताना में SCO शिखर सम्मेलन के मौके पर प्रधान मंत्री मोदी के साथ मुलाकात की। प्रधान मंत्री मोदी ने जियामेन में 9 वें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए चीन का दौरा किया और राष्ट्रपति शी जिनपिंग के साथ मुलाकात की।

2018-19 में राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने वुहान, चीन और महाबलीपुरम, भारत में भारतीय प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी के साथ एक अनौपचारिक बैठक की।

चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग और भारतीय प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने 2 अनौपचारिक शिखर सम्मेलन आयोजित किए, जिसमे वैश्विक, क्षेत्रीय महत्व के व्यापक, दीर्घकालिक और रणनीतिक मुद्दों पर गहन विचारों का आदान-प्रदान किया।

भारत और चीन के बीच सीमा स्पष्ट रूप से सीमांकित नहीं है। अपनी 3,488 किलोमीटर की लंबाई के कुछ हिस्सों के साथ, स्वतंत्रता के बाद, वास्तविक रूप से लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल (LAC) को लेकर भारत सहमत नहीं है, माना जाता है कि यह सीमा निर्धारण ब्रिटिश से विरासत में मिला था, लेकिन यह चीन के दृष्टिकोण के विपरीत था।

भारत-चीन सीमा तीन क्षेत्रों में विभाजित है, अर्थात पश्चिमी, मध्य और पूर्वी। पश्चिमी क्षेत्र में सीमा विवाद 1860 के दशक में ब्रिटिश द्वारा प्रस्तावित जॉनसन लाइन से संबंधित था, जो कुनलुन पर्वत तक विस्तृत था और अक्साई चिन को जम्मू और कश्मीर की तत्कालीन रियासत में रखा गया था।

स्वतंत्र भारत ने जॉनसन लाइन का इस्तेमाल किया और अक्साई चिन पर अपना दावा किया। 1950 की शुरुआत में जब भारत ने ऐसा कहा था तो चीन ने शुरू में इसका विरोध नहीं किया था; हालाँकि, इसके बाद के वर्षों में इसने अपनी स्थिति को उलट दिया और कहा कि इसने कभी भी जॉनसन लाइन को स्वीकार नहीं किया था।

मध्य क्षेत्र में, विवाद मामूली सा है। यह एकमात्र ऐसा स्थान है जहां भारत और चीन ने मानचित्रों का आदान-प्रदान किया है, जिस पर वे व्यापक रूप से सहमत हैं।

भारत-चीन सीमा के पूर्वी क्षेत्र में विवादित सीमा मैकमोहन रेखा के ऊपर है। 1913-14 में चीन, भारत और तिब्बत के प्रतिनिधि शिमला में मिले, जहाँ तिब्बत और भारत तथा तिब्बत और चीन के बीच सीमा के समझौते का प्रस्ताव रखा गया। हालांकि बैठक में चीनी प्रतिनिधियों ने समझौते को प्रारम्भ में स्वीकार कर लिया था, लेकिन बाद में उन्होंने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया। चीन द्वारा दावा किया गया कि तवांग मार्ग 1951 में भारत ने अपने अधिकार में ले लिया था।

1960 के दशक तक, चीन ने पश्चिम में अक्साई चिन को नियंत्रित किया जबकि भारत ने पूर्व में मैकमोहन रेखा तक सीमा को नियंत्रित किया।

तब से लगभग छह दशक बीत चुके हैं, लेकिन सीमा का मुद्दा अनसुलझा है। यह दुनिया के सबसे प्रचलित सीमा विवादों में से एक में बदल गया है। 1981 से, जब सीमा वार्ता का पहला दौर आयोजित किया गया था, भारत और चीन के अधिकारियों ने इस मुद्दे के हल के लिए कई बार मुलाकात की है।

LAC (भारत चीन के बीच सीमारेखा) के कई हिस्सों के बारे में स्पष्टता न होने के कारन चीन ने एकतरफा कार्रवाई कर के सीमा रेखा को बदलने का कई बार प्रयास किया और परिणामतः युद्ध भी हुए जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया है:

- 1962-भारत-चीन युद्ध, ये लड़ाई करीब एक महीने चली थी और इसका क्षेत्र लद्दाख से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक फैला हुआ था।

टिप्पणी

- 1967–नाथु ला में चीन और भारत के कई सैनिक मारे गए थे। संख्या के बारे में दोनों देश अलग–अलग दावे करते हैं।
- 1975–भारतीय सेना के गश्ती दल पर अरुणाचल प्रदेश में एलएसी पर चीनी सेना ने हमला किया था।

अभी हाल ही में गलवान घाटी (पश्चिमी क्षेत्र) पर चीन ने विवाद पैदा किया और अपना फौजी जमावड़ा बढ़ाया तो भारत ने भी अपने जवानों की संख्या बढ़ा दी। लद्दाख स्थित वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर दोनों देशों की सेनाएं एक दूसरे के आमने सामने आ गयी। 15 जून, 2020 की रात दोनों देशों की सेनाओं के बीच हिंसक झड़प में भारत के 20 जवान शहीद हो गए चीन ने अपने मृत सैनिकों की संख्या के बारे में कोई जानकारी नहीं दी। दोनों देशों की सेनाएं अभी भी LAC पर जमी हुई हैं। चीन बातचीत की शर्तों को मान नहीं रहा है अत: युद्ध के आसार बने हुए हैं।

भारत और चीन संबंधों के इतिहास में साल 2020 का जिक्र भी अब 1962, 1967 और 1975 की तरह ही होगा. वजह साफ है भारत–चीन सीमा विवाद में 45 साल बाद इतनी संख्या में सैनिकों की जान गई है।

चीन गलवान घाटी में भारत के निर्माण को गैर–कानूनी कह रहा है जबकि चीन वहां पहले ही जरूरी सैन्य निर्माण कर चुका है। ऐसी एकतरफा कार्रवाई चीन की विस्तारवादी नीतियों का ही परिणाम है। फिर हांगकांग का मामला अभी ठंडा भी नहीं हुआ था कि कोविड–19 महामारी आ गयी विश्व के अधिकांश देशों का मानना है कि इसको चीन ने ही फैलाया है और अब उसने अपने सभी पड़ोसियों को सीमा विवाद में उलझा लिया है। विशेषज्ञों का मानना है कि चीन ने यह हरकत अभी तक अर्जित आर्थिक और सामरिक शक्ति के घमंड और अपने हालिया कमजोर प्रदर्शन से अपनी जनता का ध्यान हटाने के लिए की है।

परिणामस्वरूप भारत ने चीन के कई डिजिटल एप्प्स को प्रतिबंधित कर दिया तथा 'आत्म निर्भर भारत परियोजना' को जोरशोर से आगे बढ़ाना शुरू कर दिया है। भविष्य में कई और चीनी उत्पादों और सेवाओं के आयात में कमी लाने या पूर्णत: बंद करने की भी योजना है। चीन की हठधर्मी के कारण भारत के शहीद हुए जवानों से उत्पन्न दु:ख और रोष के कारण भारत की जनता ने भी चीन में बनी वस्तुओं का बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया है।

इस से पहले, भारत ने बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI या B - R, जिसे पहले वन बेल्ट वन रोड के नाम से जाना जाता था) और चीनी वित्त पोषित CPEC की भी आलोचना की है, जो चीन के मुस्लिम बहुल शिनजियांग प्रांत को पाकिस्तान में ग्वादर गहरे समुद्री बंदरगाह से जोड़ता है। यह परियोजना पीओके में गिलगित–बाल्टिस्तान से होकर गुजरती है, जिसे भारत अपना क्षेत्र मानता है। BRI प्रोजेक्ट चीन ने अपनी विस्तारवादी नीतियों के क्रियान्वयन हेतु आरम्भ किया है ऐसा भारत का मानना है क्योंकि चीन ने BRI प्रोजेक्ट में विकास परियोजनाओं के नाम पर कमजोर देशों को भारी कर्ज दे कर उन्हें अपनी शर्तें मानने पर मजबूर कर दिया है और इस के प्रमाण भी सामने आने लगे हैं।

जैसा कि सर्वविदित है भारत चीन के संबंधों का इतिहास सीमा विवाद का इतिहास ही है। चीन द्वारा जब चाहे जहां चाहे मनमाने ढंग से सीमाओं का अतिक्रमण एवं विस्तार का प्रयास ही किया गया है और यह सब उसने 5 से ज्यादा आपसी समझौतों की आड़

लेकर और नीतियों पर चलने वाले भारत की पीठ में हर बार छुरा भोंक कर किया है। अभी हाल ही में 15 जून, 2020 को गलवान घाटी में फिर कुटिल चाल चलते हुए रात के अंधेरे में हम पर हमला किया।

टिप्पणी

चीन की इस हठधर्मी और उद्दंडता का कारण उसकी आर्थिक एवं सामरिक शक्ति में अथाह वृद्धि का होना है। विशेषज्ञों का मानना है कि चीन को मुंहतोड़ जवाब देने हेतु 'शठे शाठयं समाचरेत' अर्थात 'दुष्ट के साथ दुष्टता के व्यवहार की नीति ही उचित है' का अनुमोदन कर रहे हैं और इस हेतु भारत को अपनी सामरिक शक्ति बढ़ाने एवं चीन द्वारा भारत से की जा रही कमाई को कम करने और कालांतर में शून्य कर देने के प्रयासों को बढ़ावा देने का सुझाव दे रहे हैं। भारत तथा भारतवासी इसी नीति का पालन कर भी रहे हैं जब तक कि चीन सच्चे पड़ोसी धर्म का पालन न करने लगे।

ऐसा माना जाता है कि 21वीं शताब्दी में उभर रही अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भारत तथा चीन दोनों को महत्वपूर्ण तथा शक्तिशाली भूमिका निभानी है। दोनों देश आपस में मित्रता तथा सहयोग को दृढ़ बनाकर इस नई व्यवस्था में शक्तिशाली भूमिका निभा सकते हैं। दोनों को ये समझना चाहिए कि वे एक-दूसरे के न तो शत्रु हैं और न ही प्रतियोगी। दोनों को अच्छे पड़ोसियों की तरह आपसी समस्याओं का समाधान करके तथा द्विपक्षीय संबंधों का सर्वपक्षीय विकास करके विश्व राजनीति में दृढ़ भूमिकाएं निभाने के लिए कार्य करना चाहिए। कोई भी देश अपने भूगोल को परिवर्तित नहीं कर सकता। दो महान पड़ोसी देशों को इस तथ्य को स्वीकार करके हर प्रकार से अपनी मित्रता तथा सहयोग को दृढ़ता प्रदान करने के लिए कार्य करना चाहिए। आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों के तीव्र विकास के साथ-साथ दोनों देशों के मध्य विद्यमान सीमा विवाद का समाधान भी शीघ्रता से किया जाना आवश्यक है। दोनों देशों के यह हित में है कि वे सीमा-विवाद का शांतिपूर्ण ढंग से समाधान करके दो महाशक्तियों के रूप में विश्व राजनीतिक व्यवस्था में सहयोगी बनकर भूमिका निभाएं।

अपनी प्रगति जांचिए

5. भारत-चीन के मध्य आरंभिक दौर में निम्न में से कौन संकट बाधक रहे?
   (क) तिब्बत समस्या (ख) कोरिया संकट
   (ग) (क) और (ख) दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
6. चावल-पटसन विनिमय समझौता किन देशों के बीच हुआ?
   (क) भारत-रूस (ख) रूस-चीन
   (ग) भारत-वियतनाम (घ) भारत-चीन

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)

3. (ख)
4. (क)
5. (ग)
6. (घ)

3.6 सारांश

भारत तथा अमेरिका दोनों देश उदार लोकतंत्र के सिद्धांतों तथा मूल्यों में दृढ़ विश्वास रखते हैं। दोनों ही विश्व में सबसे बड़े सक्रिय लोकतंत्र हैं। अमेरिका भारत के लोकतंत्र के प्रति सम्मान रखता है। अमेरिका भारतीय लोकतंत्र को ठीक ढंग से देखने का इच्छुक है। यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया से भारत का विकास होते देखना चाहता है। क्योंकि भारत की सफलता से ही सरकार की व्यवस्था के रूप में लोकतांत्रिक प्रणाली तथा जीवन के आदर्श स्वरूप को बल मिल सकता है। इसी प्रकार भारत का उदार लोकतंत्र अमेरिकी परंपराओं का सम्मान करता है तथा वहीं से भारतीय लोकतंत्र प्रक्रिया के विकास के लिए प्रेरणा लेता रहा है। भारत तथा अमेरिका दोनों ही मानवीय अधिकारों, स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा शांति के मूल्यों को प्यार करते हैं। दोनों ही विश्व शांति तथा सुरक्षा, विश्व के अन्य देशों के साथ मित्रता तथा सहयोग के लिए प्रतिबद्ध हैं। दोनों ही साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा प्रजाति पार्थक्य के विरुद्ध हैं।

प्रारंभ से ही भारत और रूस में आर्थिक व व्यापारिक सहयोग की प्रक्रिया सुदृढ़ रही है। रूस ने भारत को हर कदम पर हर संभव मदद दी है। भारत ने भी अधिकांश पर रूस का ही पक्ष लिया है। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री संधि ने दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की जो नींव डाली थी, वह आज एक मजबूत भवन बनकर विश्व राजनीति में अहम भूमिका निभा रही है।

यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान समय में भारत तथा चीन संबंधों का विकास सकारात्मक रूप में हो रहा है और दोनों देशों में आर्थिक और व्यापारिक सहयोग काफी तेजी से बढ़ रहा है। दोनों देशों ने द्विपक्षीय सामरिक वार्तालाप की प्रक्रिया चल रही है तथा भारत-चीन द्विपक्षीय सामरिक सहयोग की प्रक्रिया भी अब एक प्रकार से आरंभ हो चुकी है। यह लक्षण भारत-चीन संबंधों के अधिक विकास के लिए अच्छे हैं लेकिन दो प्रमुख अवरोधकों को शीघ्रता से दूर करने की परम आवश्यकता आज भी बनी हुई है। यह है–चीन द्वारा पाकिस्तान को दिए जाने वाले समर्थन एवं सहायता, सीमा विवाद के समाधान की ओर बहुत धीमी प्रगति। इन दो अवरोधों को दूर करके भारत ओर चीन आपसी मित्रता तथा सहयोग को आवश्यक रूप में व्यापक एवं दृढ़ता प्रदान कर सकते हैं।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **एन.पी.टी. :** ट्रीटी ऑफ नॉन-प्लोरिफरेशन ऑफ न्यूक्लियर वेपन (परमाणु अप्रसार संधि)।

टिप्पणी

- **सी.टी.बी.टी.** : कॉम्प्रेहेन्सिव न्यूक्लियर-टेस्ट बैन ट्रीटी (व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि)।
- **सीटो (CEATO)** : साउथईस्ट एशिया ट्रीटी ऑगेनाइजेशन (दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन)
- **सेंटो (SENTO)** : सेंट्रल ट्रीटी ऑर्गनाइजेशन (केंद्रीय संधि संगठन)।

3.8 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. कोसोवो संकट से आप क्या समझते हैं?
2. सी.टी.बी.टी. का क्या अर्थ है?
3. भारत और रूस के साथ मध्य सक्रिय सहयोग का युग कब से कब तक माना जाता है?
4. भारत और रूस के मध्य विज्ञान एवं तकनीकी सहयोग समझौता कब हुआ?
5. तिब्बत समझौते की प्रस्तावना में उल्लिखित पंचशील सिद्धांत कौन-कौन से थे?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. भारत-अमेरिका संबंधों में विशिष्ट अवरोधों को व्याख्यायित कीजिए।
2. इंदिरा गांधी के कार्यकाल में भारत-अमेरिका संबंधों की समीक्षा कीजिए।
3. भारत और रूस के मध्य हुई 'शांति, मैत्री और सहयोग संधि' की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
4. गैर साम्यवादी देशों के प्रति चीन की कठोर नीति का भारतीय परिदृश्य पर क्या प्रभाव रहा है? विश्लेषण कीजिए।
5. भारत और चीन के मध्य युद्धोत्तर काल के संबंधों की समीक्षा कीजिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

Khanna, V. N. and Leslie K. Kumar. 2018. *Foreign Policy of India*, 7th Edition. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Ganguly, Sumit. 2011. *India's Foreign Policy.* New Delhi: Oxford University Press.

Reddy, K. Raja. 2012. *Foreign Policy of India and Asia-Pacific.* New Delhi: New Century Publications.

Balakrishan, T.K. 2010. *Foreign Policy of India: Problems and Paradoxes*. New Delhi: Mohini Publishers and Distributors.

Muni, S.D. 2009. *India's Foreign Policy: The Democracy Dimension*. Foundation Books.

इकाई 4 क्षेत्रीय संगठन

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 सार्क
4.3 आसियान
4.4 ओपेक
4.5 ब्रिक्स
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

भारत के उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में अरब सागर, हिंद महासागर तथा बंगाल की खाड़ी के मध्य स्थित भारतीय प्रायद्वीप से बने भारतीय उपमहाद्वीपीय देशों के समूह के लिए 'दक्षिण एशिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है। काफी लंबे अरसे तक यह ब्रिटिश शासन के अधीन रहा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत राजनीतिक रूप से यह स्वतंत्र तो हो गया लेकिन आपसी मतभेद बरकरार रहे। आर्थिक विकास की गति भी धीमी रही। भारत की ओर से आपसी मतभेदों को सुलझाने के प्रयास भी पाकिस्तान के नकारात्मक रवैए की वजह से नाकामयाब रहे। बांग्लादेश के जन्म के साथ ही भारत व पाकिस्तान के संबंधों में कुछ बदलाव आया और पारस्परिक वार्ताएं शुरू हो गईं।

उपयुक्त समय ऐसे में बांग्लादेश के राष्ट्रपति जिआ उर रहमान की तरफ से एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन बनाने का विचार पेश किया गया, जिसे दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) का नाम दिया गया। इसी तरह का एक संगठन 'आसियान' का गठन दक्षिण पूर्व एशिया से जुड़े सदस्य देशों के आर्थिक विकास के लिए बनाया गया है। एक अन्य संगठन 'खाड़ी सहयोग परिषद्' (जीसीसी) के नाम से छः खाड़ी देशों ने भी बनाया है। जिनका मुख्य उद्देश्य आपसी सहयोग और संबंध मजबूत बनाना ही है।

इस इकाई में सार्क, आसियान, ओपेक और ब्रिक्स संगठनों की स्थापना के उद्देश्य, सम्मेलनों, कार्यों व योगदानों का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- सार्क की आवश्यकता व सम्मिलित देशों के हितों को जान पाएंगे;

- आसियान संगठन व इसमें शामिल देशों से परिचित हो पाएंगे;
- ओपेक की प्रासंगिकता व संगठन के स्वरूप को समझ पाएंगे;
- ब्रिक्स संगठन में सम्मिलित देशों के बारे में जान पाएंगे।

टिप्पणी

4.2 सार्क

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) का गठन सदस्य देशों की अपनी क्षेत्रीय समस्याओं को सुलझाने और परस्पर सहयोग के लिए किया गया।

सार्क की स्थापना

1981 में बांग्लादेश के तत्कालीन राष्ट्रपति जिआ उर रहमान ने दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने हेतु एक नवीन योजना प्रस्तुत की। अगस्त, 1983 में सात देशों के विदेश मंत्रियों ने एक सामूहिक क्षेत्रीय सहयोग का घोषणा-पत्र नई दिल्ली में स्वीकार किया। इस घोषणा-पत्र में आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक बढ़ावा देने पर बल दिया गया। 1984 में हुई एक बैठक में इन सबके साथ-साथ राजनीतिक संबंधों के विकास का आह्वान किया गया। मई 1985 में थिम्पू बैठक में सार्क देशों द्वारा अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए क्षेत्रीय सहयोग संगठन को अमली जामा पहनाया गया। 7 दिसंबर, 1985 को बांग्लादेश की राजधानी ढाका में सात एशियाई देशों– भारत, मालदीव, भूटान, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका ने सार्क के घोषणा-पत्र पर औपचारिक हस्ताक्षर किए। अप्रैल 2007 में इसके 14वें शिखर सम्मेलन में अफगानिस्तान को इसका आठवां सदस्य बनाया गया।

सार्क के उद्देश्य एवं सिद्धांत

सार्क के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. दक्षिण एशियाई देशों की जनता के कल्याण को प्रोत्साहित कर उनके जीवन स्तर में सुधार लाना।
2. इन देशों की सामूहिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि करना।
3. इस क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक वैज्ञानिक क्षेत्रों में उन्नति करना।
4. अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर आपसी सहयोग को दृढ़ करना।
5. दूसरे विकासशील देशों से सहयोग को बढ़ावा।
6. आर्थिक, समाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विकास की रफ्तार को तेज करना।
7. आपसी समस्याओं को समक्ष रखकर उन्हें आपसी सहयोग द्वारा सुलटाने में मदद करना।

सार्क के सिद्धांत

सार्क के प्रमुख सिद्धांत निम्नांकित हैं–

1. क्षेत्रीय सहयोग को द्विपक्षीय व बहुपक्षीय सहयोग का पूरक बनाना।
2. क्षेत्रीय सहयोग को द्विपक्षीय व बहुपक्षीय सहयोग के उत्तरदायित्वों के अनुकूल बनाना।

3. इसके माध्यम से क्षेत्रीय सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखंडता, राजनीति स्वतंत्रता तथा दूसरों के घरेलू मामलों में अनपेक्षित दखल न देना।

सार्क के अभिकरण

सार्क के प्रमुख कार्यों के क्रियान्वयन के लिए निम्न अभिकरण स्थापित किए गए हैं–

1. **शिखर सम्मलेन :** इसमें सदस्य देशों के शासनाध्यक्षों द्वारा प्रतिवर्ष एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होकर आपसी समस्याओं पर विचार करने व सहयोग को बढ़ावा देने का उद्देश्य रहता है। सार्क के अब तक 18 शिखर सम्मेलन हो चुके हैं। प्रथम शिखर सम्मेलन 7-8 दिसंबर, 1985 को बांग्लादेश में हुआ और 18वां सम्मेलन 26-27 नवंबर, 2014 को नेपाल की राजधानी काठमांडू में आयोजित हुआ।
2. **मंत्रिपरिषद :** इसमें सदस्य देशों के विदेश मंत्री हिस्सा लेते हैं। इसके प्रमुख कार्य संघ की नीति निर्धारण करना, सामान्य हितों के मुद्दों के बारे में निर्णय करना न सहयोग के लिए क्षेत्र तलाशना है। इनकी बैठक आवश्यकतानुसार कभी भी आयोजित की जा सकती है।
3. **स्थायी समिति :** सदस्य देशों के सचिवों की इस बैठक में सहयोग के कार्यक्रमों की मॉनिटरिंग करा, सहयोग के नए मित्रों की पहचान करना प्रमुख कार्य हैं। यह तकनीकी समिति के कार्यों का निरीक्षण करती है।
4. **तकनीकी समितियां :** सदस्य देशों के प्रतिनिधि मिल कर अपने-अपने क्षेत्र में कार्यक्रम लागू करने, समन्वय करने व निरीक्षण करने के लिए उत्तरदायी हैं।
5. **सचिवालय :** महासचिव इसका अध्यक्ष होता है। यह पद सदस्य देशों को बारी बारी से 2 वर्षों के लिए प्राप्त होता रहता है। 7 भागों में बंटे इस सचिवालय के प्रत्येक विभाग का कार्य निदेशक की देख रेख में चलता है। संगठन के प्रशासनिक कार्यों का निष्पादन करने वाल सचिवालय की स्थापना 16 जनवरी, 1987 को बंगलौर में हुए दूसरे सार्क सम्मेलन में की गई। सार्क के कार्यों के निष्पादन के लिए एक वित्तीय संस्था का भी प्रावधान किया गया है जिसमें सभी सदस्या देश निर्धारित अंश दान के आधार पर वित्तीय सहयोग देते हैं। भारत का हिस्सा 32वां है।

सार्क के शिखर सम्मेलन

सार्क के कई शिखर सम्मेलन आयोजित किए गए हैं, जिनका क्रमवार विवरण निम्न प्रकार है–

पहला शिखर सम्मेलन : बांग्लादेश की राजधानी ढाका में 7 से 8 दिसंबर, 1985 को आयोजित हुए प्रथम शिखर सम्मेलन में सातों सदस्य देशों ने भाग लिया, जिसकी अध्यक्षता बांग्लादेश के राष्ट्रपति एच.एम. इरशाद ने की। सम्मेलन में सार्क के उद्देश्यों व सिद्धांतों पर आपसी सहमति हुई। एक मंत्रिपरिषद बनाने का निर्णय लिया गया। तकनीकी व कार्यकारी समितिके बनाने पर भी सहमति हुई। सम्मेलन में विभिन्न समस्याओं तथा सहयोग के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ।

दूसरा शिखर सम्मेलन : सार्क का द्वितीय शिखर सम्मेलन भारत के बंगलौर में 16-17 नवंबर, 1986 को संपन्न हुआ। इसमें भारत का नेतृत्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी

के द्वारा किया गया। उन्होंने बांग्लादेश के राष्ट्रपति इरशाद से अध्यक्ष पद भी प्राप्त किया। उल्लेखनीय रहा कि सम्मेलन में विकासशील गतिविधियों में स्त्रियों के सहयोग व मादक पदार्थों के प्रयोग को बंद करने के लिए एक तकनीकी समिति का निर्माण किया गया। दक्षिण एशिया को आतंकवाद से मुक्त करने पर भी आपसी समझौते की आवश्यकता पर बल दिया गया। भारत ने दक्षिण एशिया में एक साझा बाजार स्थापित करने की बात कही तो पाकिस्तान ने इसका विरोध किया। सम्मेलन में विकासशील देशों पर बढ़ते ऋणों के भार पर भी चिंता प्रगट की गई। इसी सम्मेलन में परमाणु नि:शस्त्रीकरण पर काफी जोर दिया गया। सार्क का यह शिखर सम्मेलन एक ऐतिहासिक यादगार बन गया।

तीसरा शिखर सम्मेलन : नेपाल की राजधानी काठमांडू में नवंबर, 1987 में तीसरा शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन की विशेष बात यह रही कि इसमें प्रत्येक सार्क देश को किसी अन्य देश में आतंकवादी गतिविधियां संचालित न करने की बात कही गई। भारत ने इस सम्मेलन में व्यापार, उद्योग, शक्ति तथा वातावरण में सहयोग देने का विचार रखा लेकिन उसे पूर्ण समर्थन न मिलने के कारण घोषणा पत्र में स्थान नहीं मिल सका। सम्मेलन में दक्षिण एशिया संरक्षित खाद्यान्न भंडार समझौता हुआ ताकि इस क्षेत्र में अकाल की स्थिति में उसका सामना किया जा सके।

चौथा शिखर सम्मेलन : पाकिस्तान के इस्लामाबाद शहर में दिसंबर, 1988 को सार्क का चौथा शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ जिसकी अध्यक्षता पाकिस्तान की प्रधानमंत्री बेनजीर भुट्टो ने की। सम्मेलन में मादक पदार्थों के उत्पादन, तस्करी एवं दुरुपयोग पर गहरी चिंता व्यक्त की गई। सम्मेलन में दक्षिण एशियाई उत्सवों को समय-समय पर आयोजित करने पर निर्णय लिया गया।

पांचवां शिखर सम्मेलन : सार्क का पांचवां शिखर सम्मेलन 1990 में मालद्वीप की राजधानी माले में हुआ जिसमें भारत का नेतृत्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर ने किया। सम्मेलन की उल्लेखनीय बात रही कि इसमें मादक पदार्थों के गैरकानूनी व्यापार, मादक पदार्थों की तस्करी व अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध गहरी चिंता प्रकट की गई। सम्मेलन में आर्थिक सहयोग, जन संचार माध्यम, जैविक तकनीकी एवं पर्यावरण को आर्थिक मुद्दों में शामिल करने पर सहमति की बात को दोहराया गया।

छठा सार्क सम्मेलन : 21 दिसंबर, 1991 को श्रीलंका की राजधानी कोलंबों में सार्क का छठा शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें भारत का नेतृत्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने किया। उल्लेखनीय बात यह रही कि इसमें आतंकवाद की निंदा करने, नि:शस्त्रीकरण का स्वागत, गरीबी निवारण हेतु दक्षिण एशियाई समिति का गठन करने तथा सर्क देशों में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने पर जोर दिया गया।

सातवां शिखर सम्मेलन : 11 से 19 अप्रैल, 1993 को बांग्लादेश की राजधानी ढाका में सातवां शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें सभी सदस्य देशों ने भाग लिया। उसमें भारत की अध्यक्षता पी.वी. नरसिम्हा राव ने की। सम्मेलन में व्यापार वस्तु, निर्माण और सेवाएं पर्यावरण, जनसंख्या, आवास, बच्चों, अपंग व्यक्तियों, स्त्री विकास, प्रौद्योगिकी, आतंकवाद, मादक पदार्थों का व्यापार आदि के संबंध में सार्क घोषण पत्र में संगठित कार्य को भी स्वीकार किया गया।

आठवां शिखर सम्मेलन : भारत की राजधानी दिल्ली में 3-4 मई, 1995 को सार्क का 9वां शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें सभी देशों के शसनाध्यक्षों ने

शिरकत की। गरीबी और आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष करने का आह्वान किया गया। वर्ष 1995 को गरीबी समाप्ति का वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया।

नौवां शिखर सम्मेलन : मालद्वीप की राजधानी माले में सार्क का नौवां शिखर सम्मेलन आयोजित हुआ, जिसमें भारत की अध्यक्षता प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने की। इसमें भी सभी सदस्य देशों ने भाग लिया। विशेष बात यह रही कि सम्मेलन में भारत ने दक्षिण एशियाई आर्थिक समुदाय के गठन का आह्वान किया। सम्मेलन में गरीबी उन्मूलन तथा स्त्रियों की खरीद फरोख्त पर भी व्यापक विचार विमर्श हुआ। सम्मेलन में आतंकवाद को रोकने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता के साथ-साथ सार्क देशों के बीच आवागमन, पर्यटन, सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा देने पर भी संकल्प लिया गया।

दसवां शिखर सम्मेलन : श्रीलंका की राजधानी कोलंबों में 29 जुलाई, 1998 को आयोजित हुए दसवें शिखर सम्मेलन भारत का नेतृत्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। सम्मेलन में एकीकृत योजना पर ल देते हुए संपूर्ण निःशस्त्रीकरण की बात को दोहराया गया। महिला व बाल कल्याण, स्वास्थ्य व पर्यावरण सुरक्षा के महत्व पर महती योजनाएं शुरू करने की बात कही गई। सम्मेलन में ै।थ्न। की 2001 तक स्थापना करने का निर्णय लिया गया।

ग्यारहवां शिखर सम्मेलन : एक लंबे अरसे बाद सार्क का ग्यारहवां शिखर सम्मेलन जनवरी 2002 को नेपाल की राजधानी काठमांडू में हुआ। यह सम्मेलन उस वातावरण में हुआ जब भारत और पाकिस्तान के मध्य युद्ध के आसार थे। पाकिस्तान ने अपने द्विपक्षीय मुद्दों को उठाने का प्रयास कर मुंह की खाई। इसमें सांझे हित के विषयों–आर्थिक सहयोग, गरीबी उन्मूलन, शिक्षा, स्त्री व बाल कल्याण आदि पर भी ध्यान केंद्रित किया गया।

बारहवां शिखर सम्मेलन : 4-6 जनवरी, 2004 को इस्लामाबाद, पाकिस्तान में आयोजित किया गया था। इसमें मालद्वीप पाकिस्तान, श्रीलंका, भूटान, भारत, नेपाल और बांग्लादेश ने भाग लिया था।

तेरहवां शिखर सम्मेलन : 12-13 नवंबर, 2005 को ढाका (बांगला देश) में आयोजित किया गया था। इस शिखर सम्मेलन में बांग्लादेश, भूटान, भारत, पाकिस्तान, मालद्वीप, श्रीलंका और नेपाल ने भाग लिया था।

चौदहवां शिखर सम्मेलन : 3-4 अप्रैल 2007 को नई दिल्ली, भारत में आयोजित किया गया था। इसमें अफगानिस्तान को आठवां सदस्य देश बनाया गया। इसमें मालदीव, भूटान, भारत, नेपाल, पाकिस्तान और बांग्लादेश ने भाग लिया था।

पंद्रहवां शिखर सम्मेलन : 1-3 अगस्त, 2008 को कोलंबो, श्रीलंका में आयोजित किया गया था। इसमें चर्चा के मुख्य मुद्दे थे–क्षेत्रीय सहयोग, ऊर्जा, पर्यावरण, जल संसाधन, गरीबी उन्मूलन, सार्क विकास कोष, दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र, वैश्विक खाद्य संकट, आतंकवाद का मुकाबला आदि।

सोलहवां शिखर सम्मेलन : 28-29 अप्रैल, 2010 को थिम्पू, भूटान में आयोजित किया गया था। इसमें जलवायु परिवर्तन की समस्या से निपटने के लिए सहयोग पर हस्ताक्षर किए गए।

सत्रहवां शिखर सम्मेलन : 10-11 नवंबर, 2011 को अड्डू शहर, मालद्वीप में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में सार्क के सभी सदस्य देशों के राष्ट्र प्रमुखों ने सम्मेलन को संबोधित किया था तथा अड्डू घोषणा को भी अपनाया गया था।

अठारहवां शिखर सम्मेलन : 26-27 नवंबर, 2014 को नेपाल की राजधानी काठमांडू में आयोजित किया गया था।

इसमें सभी सदस्य देशों ने आदर्श वाक्य 'शांति और समृद्धि के लिए गहरा एकीकरण' पर बल दिया था।

सार्क का मूल्यांकन

जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सार्क संगठन का गठन किया गया, उन्हें प्राप्त करने में ज्यादा सफलता नहीं मिल सकी। आज भारत और पाकिस्तान को आपसी मतभेद भुला कर एशिया में शांति के प्रयास खोजना चाहिए। सार्क के अन्य देश भी सैनिक ताकतों के साथ मिल कर क्षेत्रीय सहयोग की भावना से खिलवाड़ कर रहे हैं। भारत इस क्षेत्र बड़ी आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है तो दूसरे विकासशील देशों को भी सकारात्मक रुख अपनाते हुए दक्षिण एशिया में आत्मनिर्भरता के युग की शुरुआत में अपनी भूमिका निभानी चाहिए।

दक्षिण एशिया में मुक्त व्यापार की प्रबल संभावनाएं हैं, सभी को मिलजुल कर इस दिशा में आगे कदम बढ़ाने चाहिए। इससे विकसित देशों पर निर्भरता कम होगी व उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर विश्वीकरण के दुष्प्रभावों को भी कम करने में मदद मिलेगी। पाकिस्तान को भी यह बात समझ लेनी चाहिए कि सार्क में भारत की बढ़ती सहभागिता से उसका तथा पाकिस्तान का फायदा होगा। आज पाकिस्तान यदि भारत का बिग ब्रदर की भावना से स्वागत आदर करे तो सार्क एक उपयोगी संस्था का रूप ले सकता है।

सार्क को महाशक्तियों के हस्तक्षेप से मुक्त रख कर ही आर्थिक के साथ-साथ राजनीतिक मंच बनाने की जरूरत भी है। सभी सार्क देशों में इस तरफ कदम बढ़ाते होंगे ताकि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व वैज्ञानिक सभी क्षेत्रों में अपनी पहचान से वैश्वीकरण के भ्रम को तोड़ा जा सके। संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक अच्छे सकारात्मक लक्ष्य को लेकर सार्क की शुरुआत तो निसंदेह अच्छी है मगर सकारात्मक क्षेत्रवाद से यह अभी काफी दूर है। अर्थात सार्क प्रभावशाली क्षेत्रीय सहयोग संगठन नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. निम्न में से कौन-सा देश सार्क का सदस्य नहीं है?

   (क) भारत (ख) पाकिस्तान

   (ग) चीन (घ) नेपाल

2. सार्क के कार्यों के क्रियान्वयन के लिए कितने अभिकरण स्थापित किए गए हैं?

   (क) चार (ख) पांच

   (ग) छः (घ) सात

4.3 आसियान

1945 से पूर्व 'दक्षिण पूर्वी एशिया' का कोई वजूद नहीं था। 1945 के बाद ही भारत के पूर्व तथा चीन के दक्षिण पश्चिम में स्थित देशों म्यानमार, बरूनी, इंडोनेशिया, कंपूचिया, लाओस, मलेशिया, पिलिपाइन, सिंगापुर, थाईलैंड तथा वियतनाम आदि का क्षेत्र 'दक्षिण पूर्वी एशिया' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव ने 1945 के बाद पश्चिमी शक्तियों को नई चुनौती पेश की। सैनिक संगठन सीटो भी इस क्षेत्र के आर्थिक विकास की समस्याओं पर अपना पूरा ध्यान फोकस नहीं कर सका। आर्थिक विकास का भार स्वयं वहन करने की घोषणा के परिणामस्वरूप 1959 में दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (ASEAN) के निर्माण का रास्ता साफ हो गया।

आसियान की स्थापना

8 अगस्त, 1967 को आसियान की स्थापना हुई। बैंकाक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए गए। इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, सिंगापुर और थाइलैंड इसके प्राथमिक देश हैं जिन्होंने इस पर हस्ताक्षर किए। बाद में अन्य देशों ने भी इसकी सदस्यता लेकर आंकड़ा 10 से ऊपर पहुंचा दिया। भारत, रूस और चीन को भी आसियान में पूर्ण संवाद सहभाग बना लिया गया।

आसियान के उद्देश्य

- क्षेत्रीय शांति व स्थिरता को प्रोत्साहित करना।
- सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास को बढ़ावा।
- परस्पर सहायता व सहयोग की भावना में वृद्धि।
- शिक्षा, तकनीकी ज्ञान के साथ साथ वैज्ञानिक क्षेत्र में भी पारस्परिक सहयोग को बढ़ाना।
- क्षेत्र में अनुसंधाान, प्रशिक्षण व अध्ययन को बढ़ावा देना।
- समान उद्देश्यों वाले क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना।
- कृषि व्यापार तथा उद्योग के विकास में सहयोग देना।

आसियान का संगठनात्मक रूप

- **विदेश मंत्रियों का सम्मेलन :** सभी सदस्य राज्यों के मंत्री इस सम्मेलन में शामिल होते हैं जो वर्ष में एक बार आयोजित किया जाता है। इसे परामर्श मंत्रालय के नाम से भी जाना जाता है।
- **स्थायी समिति :** मेजबान देश के विदेश मंत्री तथा अन्य सदस्य देशों के राजदूतों की उपस्थिति में यह समिति विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करवाती है। इसमें क्षेत्रीय सहयोग में वृद्धि करने के आवश्यक सुझाव भी प्रस्तुत किए जाते हैं।
- **सचिवालय :** महासचिव, जिसकी नियुक्ति 2 वर्ष के लिए होती है, इसका अध्यक्ष होता है। प्रशासनिक सहयोग के कार्यों को पूरा करने के लिए 1976 में आसियान के संगठनात्मक स्वरूप में सचिवालय नाम अभिकरण भी जोड़ा गया।

इसका कार्यालय इंडोनेशिया में है। यह प्रशासनिक गतिविधियों पर अपना पूरा नियंत्रण रखता है।

आसियान की नौ स्थायी और 8 अस्थायी समितियां भी हैं जो संगठन के विभिन्न कार्यों का निष्पादन करती हैं।

टिप्पणी

आसियान के कार्य

आसियान की स्थायी समिति ने जनसंख्या विस्फोट, निर्धानता, आर्थिक शोषण, असुरक्षा से संबंधित अनेक नीतियां व कार्याक्रम बनाए हैं। कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

- आसियान दक्षिण पूर्वी एशिया में मुक्त व्यापार क्षेत्र विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।
- यह संगठन दक्षिण पूर्वी एशिया से जुड़े सभी सदस्य देशों के आर्थिक विकास पर जोर दे रहा है।
- यह जनसंख्या नियंत्रण, शिक्षा का विकास, समाज कल्याण, खेल, दवाओं पर नियंत्रण आदि के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित कर रहा है।
- पर्यटन के क्षेत्र में सहयोग देने के लिए अपने एक सामूहिक संगठन 'आसियंटा' के माध्यम से कार्य कर रहा है।
- सुरक्षा व शांति के लिए आणविक हथियारों पर प्रतिबंध लगाने पर जोर दे रहा है।
- रेडियो व दूरदर्शन के माध्यम से सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा दे रहा है।
- कृषि के वैज्ञानिक तकनीकी ज्ञान से किसानों का हित हो, ऐसे प्रयास भी 'आसियान' द्वारा किए जा रहे हैं।

उपर्युक्त कार्यो की देखादेखी कहा जा सकता है कि आसियान का उद्देश्य दक्षिण पूर्वी राज्यों में न केवल सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा देना है बल्कि अन्य गंभीर समस्याओं जैसे आणविक प्रतिबंध, विश्व शांति सुरक्षा व वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी लगातार वृद्ध करना, तकनीकी ज्ञान का ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाना, हर क्षेत्र में तरक्की करना उनके कार्यक्रमों व नीतियों का हिस्सा है ओर अपने प्रयास में वह पूरे मनोयोग से जुटा हुआ है। आने वाले कुछ वर्षों में इसके सकारात्मक परिणाम देखने को मिल सकते हैं। बस, जरूरत इस बात की है कि संकीर्ण क्षेत्रवाद से ऊपर उठ कर सार्वभौमिक स्तर पर हर काम के परिणामों को देखने की इच्छा हर किसी में बलवती हो और इस दिशा में सार्थक प्रयासों में ईमानदारी बढ़ती जाए।

आसियान के शिखर सम्मेलन

शिखर सम्मेलन किसी भी आंदोलन या भूमिका का स्पष्ट लेखा-जोखा व्यक्त करते हैं। शिखर सम्मेलनों की बड़ी विशेषता यह होती है कि वहां कोई गलत बयानी नहीं कर सकता और पूर्व में हुई प्रगति का भी सही-सही आकलन इसमें होता है। साथ ही आगामी कार्यक्रमों की रूपरेखा भी निर्धारित हो जाती है ताकि संबद्ध देश अगर किसी वजह से अपना सहयोग नहीं दे पाए तो अब उनके पास मौका है बहेतर प्रयास करने का। यह मीमांसा दरअसल भविष्य के नए सोपानों का आधार भी बनती है। सहयोग के साथ-साथ समीक्षा से दूसरे की अपने प्रति धारणा और अपनी पीठ दोनों के अवसर इस सम्मेलन में होते हैं।

आसियान के अब तक हुए शिखर सम्मेलनों का ब्यौरा इस प्रकार है–

पहला बाली शिखर सम्मेलन : 1976 में हुए इस प्रथम शिखर सम्मेलन में पारस्परिक व्यापार को बढ़ावा देने की नीति पर जोर दिया गया। इस सम्मेलन में दो प्रमुख दस्तावेजों को महत्व दिया गया। पहले दस्तावेज में समस्त सदस्य देशों की स्वतंत्रता और संप्रभुता के प्रति आदर सम्मान की बात कही गई। साथ ही एक-दूसरे के घरेलू मामलों में दखलअंदाजी न करने की बात पर भी जोर दिया गया। इतना ही नहीं आपसी झगड़ों को शांतिपूर्वक ढंग से हल करने की बात का भी समर्थन किया गया। परस्पर सहयोग की भावना के बलवती रहने पर भी जोर दिया गया।

दूसरे दस्तावेज में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक के साथ-साथ तकनीकी सहयोग की आवश्यकता पर बहुत जोर देकर प्रभावशाली तरीके से इसे लागू करने की बात कही गई।

दूसरा क्वालालम्पुर शिखर सम्मेलन : इस सम्मेलन के दौरान यह बात जो स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई वह थी विकासशील देशों का विकसित देशों पर बढ़ती निर्भरता। ज्यादातर विकासशील देश अपनी निर्भरता के निकास के लिए विकसित देशों के कंधों का सहारा लेने लगे। वहज यह विकसित देशों की चाल भी हो सकती है और विकासशील देशों के लिए विकास करने का एक सुगम राह भी। खैर वजह कुछ भी हो, लेकिन इसके पनपने से आसियान राज्यों के आंदोलन को ठेस तो लगी ही। इसलिए इस विषय यानी विकासशील देशों का विकसित देशों पर बढ़ती निर्भरता को चिंताजनक माना गया।

इसके अलावा इस सम्मेलन में सदस्य देशों के दरक्षिण पूर्वी एशिया को शांति स्वतंत्रता व स्थिरता का क्षेत्र विकसित करने पर जोर दिया।

तीसरा मनीला शिखर सम्मेलन : 14 सितंबर, 1987 को आयोजित हुए इस शिखर सम्मेलन में विशेष तौर पर फिलीपीन्स में एक्विनो सरकार की स्थिरता और कंबोडिया समस्या व आसियान की दूसरे राष्ट्रों के साथ गठबंधनों पर व्यापक विस्तृत विचार-विमर्श हुआ। एक दूसरे महत्वपूर्ण पहलू जिस पर इसमें विचार किया गया वह था 'दक्षिण पूर्वी एशिया' क्षेत्र को परमाणु मुक्त क्षेत्र विकसित करने का। यह तो मालूम नहीं हो सका कि इसके पक्ष विपक्ष में राज्यों ने क्या कहा, मगर यह जरूर सच है कि किसी ने भी ज्यादा विरोध या खिलाफत की बात नहीं कही। यानी सभी सर्वसम्मति से इस पर सहमत थे। इसी सम्मेलन में वरीयता व्यापार समझौते की अनुपालना करने व आसियान क्षेत्र को एक आर्थिक शक्ति के रूप में विकसित करने दिया गया पर भी विचार रखे गए।

चौथा सिंगापुर शिखर सम्मेलन : 1992 को समाप्त हुए इस सम्मेलन में नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग को दोहराया गया। इस सम्मेलन में भी आसियान को मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित करने पर जोर दिया गया। चर्चा के दौरान इस बात को भी अनदेखा नहीं किया गया कि कहीं शांति की बात को अनदेखी तो नहीं की जा रही। इस सम्मेलन में साझा कर योजना पर भी बातचीत हुई।

पांचवां शिखर सम्मेलन : दिसंबर, 1995 में आयोजित इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि दक्षिण पूर्व एशिया को 2003 तक मुक्त व्यापार क्षेत्र बना दिया जाएगा। सम्मेलन में एक और समझौता मौद्रिक संपदा संबंधी भी हुआ। विशेष बात इस

सम्मेलन की यह रही कि आसियान क्षेत्र को शासकीय शस्त्रविहीन क्षेत्र बनाने पर भी समझौते पर सहमति हुई।

टिप्पणी

छठा हनोई शिखर सम्मेलन : दिसंबर, 1998 में वियतनाम के हनोई में हुए समझौतों में 2003 से पहले ही इस क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र के रूप में विकसित करने पर निर्णय लिया गया। 'हनोई कार्य योजना' के तहत क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण, व्यापार उदारीकरण तथा वित्तीय सहयोग में वृद्धि करने के उपायोग पर विचार-विमर्श किया गया।

सातवां सेरी बेगावन शिखर सम्मेलन : 7 नवंबर, 2001 में आयोजित सेरी बेगावन (ब्रुनेई) सम्मेलन में भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभाग बनाने पर सहमति हुई। भारत की विश्व शांति की धारणा पर चलने के सिद्धांत की वजह से ही इस सम्मेलन को भी जरूरत महसूस हुई होगी कि उसे भारत को पूर्ण संवाद सहभाग बना लिया। इतना ही नहीं इसमें रूस व चीन को भी सहभागी बनने पर सहमति प्रकट की गई।

आसियान की भूमिका का मूल्यांकन

आसियान की भूमिका का मूल्यांकन करते हुए कुछ राजनीतिक पंडितों का कहना है कि वियतनाम युद्ध के बाद आसियान निरंतर प्रगति के पथ पर है। 1976 में जो लक्ष्य आसियान ने सोचे, उन्हें प्राप्त करने के लिए आसियान के सदस्य राष्ट्र बराबर प्रयास कर रहे हैं। दक्षिण पूर्वी एशिया का एक अन्य लक्ष्य मुक्त व्यापार क्षेत्र का प्रयास भी अंतिम सीमा पर है। उम्मीद है कि यदि इसी तरह आसियान अपने प्रयास करता रहा तो जल्द ही अपने सभी सोचे गए लक्ष्यों को बेझिझक हासिल कर एक नई मिसाल दुनिया के समक्ष रखेगा।

एक बड़ी चुनौती जो आसियान के सामने है वह है चीन की सामरिक शक्ति में वृद्धि। अमेरिका और जापान भी आसियान के सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती मिल रही है। पर्याप्त पूंजी व क्रय शक्ति के अभाव में आर्थिक सहयोग की गति मंद है। इन देशों की निर्भरता विकसित देशों पर बढ़ रही है। इन देशों में पश्चिमी ताकतों के सैनिक अड्डे भी मौजूद हैं। यदि आसियान देश विकसित देशों पर अपनी निर्भरता में कमी ला सकें और आपसी सहयोग की प्रवृत्ति में इजाफा करें तो दक्षिण पूर्वी एशियाई क्षेत्र में स्थापित किए गए आर्थिक संबंधों के एक नए अध्याय की शुरुआत होगी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'आसियान' की स्थापना कब हुई

   (क) 8 अगस्त, 1967 (ख) 8 अगस्त, 1976

   (ग) 8 अगस्त, 1977 (घ) 8 सितंबर, 1967

4. पहला आसियान शिखर सम्मेलन कहां आयोजित किया गया?

   (क) क्वालालम्पुर (ख) नई दिल्ली

   (ग) मनीला (घ) बाली

4.4 ओपेक

टिप्पणी

पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन ओपेक एक स्थायी, अंतरसरकारी संगठन है जिसकी स्थापना ईरान, इराक, कुवैत, सऊदी अरब और वेनेजुएला ने 10-14 सितंबर 1960 में बगदाद सम्मेलन में की थी। इन पांच संस्थापक सदस्यों के साथ बाद में नौ अन्य सदस्य भी शामिल हो गए: कतर (1961, लेकिन इसने अपनी सदस्यता जनवरी 2019 में खत्म कर दी); इंडोनेशिया (1962); इसने जनवरी 2009 में अपनी सदस्यता निलंबित कर दी थी, लेकिन जनवरी 2016 में उसने अपनी सदस्यता फिर सक्रिय कर दी, और नवंबर 2016 में फिर से इसने सदस्यता निलंबित कर दी; लीबिया (1962); संयुक्त अरब अमीरत (1967); अलजीरिया (1969); नाइजीरिया (1971); एक्वाडोर (1973); दिसंबर 1992 में इसने सदस्यता निलंबित कर दी थी लेकिन अक्टूबर 2007 में फिर चालू कर दी; अंगोला (2007); और गेबॉन (1975); जनवरी 1995 में इसने सदस्यता त्याग दी लेकिन जुलाई 2016 में ये फिर शामिल हो गया। ओपेक के दो नवीनतम सदस्य भूमध्यीय गिनी (2017) और कॉन्गो (2018) है। इस प्रकार ओपेक में वर्तमान सदस्यों की संख्या 14 है।

ओपेक का मुख्यालय अपनी स्थापना के पहले पांच साल तक जेनेवा, स्विटजरलैंड में रहा। एक सितंबर 1965 में इसे विएना, ऑस्ट्रिया ले जाया गया।

ओपेक का उद्देश्य पेट्रोलियम निर्यातकों को उचित और स्थायी मूल्य दिलाने के लिए, सदस्य देशों के बीच पेट्रोलियम नीतियों का समन्वय और एकीकरण करना है; खपत वाले देशों को पेट्रोलियम की सक्षम, आर्थिक और नियमित आपूर्ति करना है; और इस उद्योग में निवेश करने वालों को उचित रिटर्न दिलाना है।

ओपेक के संविधान में इसके संस्थापक सदस्यों और बाद में संगठन को आवेदन देकर सदस्य बने, पूर्ण सदस्यों में फर्क बताया गया है। संविधान में कहा गया है कि "कच्चे तेल के पर्याप्त शुद्ध निर्यात वाला कोई देश, जिसके मूल रूप से हित सदस्य देशों के समान हों, वह संगठन का पूर्ण सदस्य बन सकता है, अगर उसकी सदस्यता को पूर्ण सदस्यों का तीन चौथाई बहुमत स्वीकार कर लेता है, जिनमें सभी संस्थापक सदस्यों के सहमति के वोट शामिल हों।" संविधान के अनुसार, एसोसिएट सदस्य वे होंगे जो पूर्ण सदस्य की योग्यता पूरी नहीं करते, तथापि संगठन की विशेष शर्तों को पूरा करते हैं।

1960 का दशक

पांच तेल उत्पादक विकसित देशों द्वारा सितंबर 1960 में बगदाद में ओपेक का गठन अंतरराष्ट्रीय और राजनीतिक परिदृश्य में संक्रमण काल में हुआ था, जब विकासशील जगत में गहन विउपनिवेशीकरण और अनेक नये स्वतंत्र देशों का जन्म हो रहा था। अंतरराष्ट्रीय तेल बाजार पर 'सेविन सिस्टर' बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दबदबा था और पूर्व सोवियत संघ तथा अन्य केंद्रीय नियोजित अर्थव्यवस्थाओं से व्यापक रूप से पृथक थे। ओपेक ने अपना सामूहिक विजन विकसित किया, अपने उद्देश्य स्थापित किए और अपना सचिवालय स्थापित किया, पहले जेनेवा में और फिर 1965 में विएना में। इसने 1968 में 'सदस्य देशों में पेट्रोलियम नीति के घोषणा-पत्र' को स्वीकार किया, जिसमें सभी देशों के अपने राष्ट्रीय विकास के हित में उनके प्राकृतिक संसाधनों पर स्थायी

संप्रभुता रखने के अनिवार्य अधिकार पर जोर दिया गया है। ओपेक के सदस्य 1969 में बढ़कर 10 हो गए।

टिप्पणी

1970 का दशक

इस दशक में ओपेक का अंतरराष्ट्रीय महत्व बढ़ गया क्योंकि इसके सदस्य देशों ने उनके घरेलू पेट्रोलियम उद्योगों पर नियंत्रण कर लिया और विश्व बाजार में कच्चे तेल की कीमतों पर मुख्य प्रभाव हासिल कर लिया। दो अवसरों पर, तेल की कीमतें उथल-पुथल भरे बाजार में तेजी से उछलीं, 1973 में अरब तेल प्रतिबंध के मौके पर, और 1979 में ईरानी क्रांति के उभार के मौके पर। ओपेक ने 1975 में अल्जीयर्स में राष्ट्र और सरकार के प्रमुखों के प्रथम सम्मेलन के जरिए अपने अधिकार-पत्र को व्यापक किया जिसमें अधिक गरीब राष्ट्रों की दशा को संबोधित किया और विश्व आर्थिक विकास तथा स्थायित्व के हित में अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सहयोग के नए युग का आह्वान किया गया। इसके बाद 1976 में ओपेक अंतरराष्ट्रीय विकास कोष की स्थापना की गई। सदस्य देशों ने महत्वाकांक्षी सामाजिक-आर्थिक विकास योजनाएं अपनाईं। 1975 तक संगठन की सदस्यता बढ़कर 13 हो गई।

1980 का दशक

इस दशक के आरंभ में कीमतें रिकॉर्ड स्तर तक पहुंचने के बाद, व्यापक तेल भंडार और हाइड्रोकार्बन से उपभोक्ताओं के दूर हो जाने के कारण 1986 में गिरने से पहले कमजोर होना शुरू हो गई थीं। छोटे तेल बाजार में ओपेक की हिस्सेदारी तेजी से गिरी और इसका कुल पेट्रोलियम राजस्व पहले की ऊंचाई से गिरकर एक तिहाई रह गया, जिससे अनेक सदस्य देशों के सामने गंभीर आर्थिक कठिनाइयां पैदा हो गईं। दशक के आखिर में कीमतें बढ़ी, लेकिन पहले की तुलना में आधी ही रहीं, और नए बढ़ते विश्व के उत्पादन में ओपेक का हिस्सा रिकवर होना शुरू हो गया। ओपेक ने सदस्य देशों के बीच एक समूह उत्पादन सीमा तय करके, और कीमत निर्धारण के लिए एक संदर्भ बास्केट तैयार करके इसका समर्थन किया, तथा ओपेक/गैर ओपेक संवाद तथा सहयोग में उल्लेखनीय वृद्धि की जिसे बाजार की स्थिरता तथा तार्किक कीमतों के लिए अनिवार्य माना गया। पर्यावरण के मामले अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंडा पर उभरे।

1990 का दशक

इस दशक में 1970 और 1980 के दशकों की तुलना में कीमतों कम नाटकीय परिवर्तन हुआ, और ओपेक के समय पर कदम उठाने से 1990-91 में मध्य पूर्व की शत्रुता का बाजार पर असर कम हुआ। हालांकि, अत्यधिक अस्थिरता और कीमतों में सामान्य कमजोरी इस दशक पर हावी रही, और दक्षिण-पूर्व एशियाई आर्थिक गिरावट तथा 1998-99 के मध्यम उत्तरी गोलार्ध शीत में कीमतें फिर से 1986 के स्तर पर आ गईं। हालांकि, पूर्व-सोवियत विश्व, वृहद क्षेत्रवाद, संचार क्रांति और अन्य हाईटेक ट्रेंड्स के कारण अधिक एकीकृत तेल बाजार में ठोस रिकवरी हुई। उत्पादक-उपभोक्ता संवाद में सफलताओं से ओपेक/गैर ओपेक संबंधों में तरक्की होती रही। 1992 के पृथ्वी सम्मेलन के बाद जैसे ही संयुक्त राष्ट्र प्रायोजित जलवायु परिवर्तन की वार्ताओं ने रफ्तार पकड़ी, वैसे ही ओपेक ने तेल आपूर्ति के कार्य में निष्पक्षता, संतुलन और यथार्थवाद की मांग की। एक देश ने ओपेक को त्याग दिया, और एक अन्य ने अपनी सदस्यता निलंबित कर दी।

टिप्पणी

2000 का दशक

नए अभिनव ओपेक तेल मूल्य बैंड तंत्र ने इस दशक के आरंभ में कच्चे तेल की कीमतों को मजबूती और स्थिरता देने में मदद की, लेकिन बाजार की ताकतों, अनुमान तथा अन्य कारकों के मिश्रण ने 2004 में स्थिति बदल दी, और कीमतें बढ़ा दीं तथा अच्छी आपूर्ति के कच्चे तेल के बाजार में अस्थिरता बढ़ा दी। तेल को संपत्ति के रूप में इस्तेमाल बढ़ने लगा। 2008 के मध्य में कीमतें रिकॉर्ड स्तर पर बढ़ गईं फिर उभरते वैश्विक वित्तीय उथल-पुथल और आर्थिक मंदी के कारण गिर गईं। आर्थिक संकट से निपटने के वैश्विक प्रयासों के हिस्से के रूप में तेल सेक्टर का समर्थन करने में ओपेक की भूमिका प्रमुख हो गई। 2000 में कराकस में और 2007 में रियाद में हुए ओपेक के दूसरे और तीसरे सम्मेलनों ने स्थाई ऊर्जा बाजार, टिकाऊ विकास और पर्यावरण को तीन दिशानिर्देशक विषयों के रूप में स्थापित किया और 2005 में उसने एक व्यापक दीर्घकालीन रणनीति अपनाई। एक देश ओपेक में शामिल हुआ, एक अन्य ने अपनी सदस्यता पुनर्सक्रिय की और तीसरे ने अपनी सदस्यता निलंबित की।

2010 से अब तक

वैश्विक वृहद आर्थिक अनिश्चितताओं और अर्थव्यवस्थाओं को घेरने वाली अंतरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था के बड़े खतरों के कारण इस दशक के आरंभ में वैश्विक अर्थव्यवस्था तेल बाजार के लिए मुख्य खतरा बनी। दुनिया के अनेक हिस्सों में सामाजिक अशांति बढ़ने से दशक के पूर्ण पूर्वार्ध में मांग और आपूर्त दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ा, हालांकि बाजार तुलनात्मक तौर पर संतुलित बना रहा। 2014 में चिंता और अत्यधिक आपूर्ति के कारण कीमतों में गिरावट आई, लेकिन उसके पहले 2011 और मध्य 2014 तक कीमतें स्थिर बनी रहीं। व्यापार के पैटर्न बदलते रहे और एशियाई बाजारों में मांग बढ़ी तथा आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) में मांग आमतौर पर कम हुई। संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में नए जलवायु परिवर्तन समझौते की प्रत्याशा में बहुपक्षीय पर्यावरणीय मामलों पर दुनिया का ध्यान तेज हुआ। ओपेक ने बाजार में स्थिरता की कोशिश जारी रखी, और उपभोक्ता देशों तथा गैर-ओपेक उत्पादकों के साथ संवाद और सहयोग ज्यादा बढ़ाने में लगा रहा।

ओपेक की परिषद की 176वीं बैठक ऑस्ट्रिया के विएना में 1 जुलाई 2019 को राष्ट्रपति मैनुअल सेल्वाडोर क्यूवेडो, बोलीवीरियन गणराज्य वेनेजुएला के पेट्रोलियम मंत्री तथा इसके प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख की अध्यक्षता में हुई। परिषद ने महासचिव की रिपोर्ट, संयुक्त मंत्रीय निगरानी समिति (जेएमएमसी) और ओपेक सचिवालय की रिपोर्ट और अनुशंसाओं तथा आर्थिक आयोग बोर्ड की रिपोर्ट की समीक्षा की, साथ ही अनेक प्रशासनिक मामलों की भी समीक्षा की।

परिषद में विएना में दिसंबर 2018 में हुई पिछली बैठक के बाद के तेल बाजार के घटनाक्रमों पर विचार किया, और 2019 के बचे साल और 2020 के लिए तेल बाजार की संभावना की समीक्षा की। यह पाया गया कि आर्थिक मंदी का रुख अब लगातार प्रचलित होती जा रही है, जिसका कारण चालू व्यापार वार्ताओं को लेकर मुख्य चुनौतियां और बढ़ी अनिश्चितताएं हैं, आर्थिक नीतियों के विकास हैं, साथ ही भू-राजनीतिक मुद्दे हैं। यह भी देखा गया कि 2019 के लिए तेल की मांग की वृद्धि परिषद की पिछली

बैठक से लेकर अब तक फिर से गिरकर 1.14 मिलियन बैरल प्रतिदिन (उइ/क), और गैर-ओपेक आपूर्ति 2019 में तेज रफ्तार से साल-दर-साल बढ़ते हुए, 2.14 उइ/क हुई।

टिप्पणी

परिषद ने वैश्विक तालिका स्तरों पर, साथ ही समग्र बाजार और उद्योग की भावनाओंपर इन घटनाक्रमों के संभावित परिणामों पर भी विचार किया। मौजूदा मूल तत्वों और 2019 के बचे महीनों के लिए संभावना पर सर्वसम्मत विचारों को देखते हुए, परिषद ने स्वैच्छिक उत्पादन व्यवस्था 1 जुलाई 2019 से नौ महीने की अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाकर 31 मार्च 2020 तक कर दिया जिस पर ओपेक परिषद की 175वीं बैठक में सहमति बनी थी।

इस निर्णय के साथ, सदस्य देशों ने बुनियादी बातों के अलावा उत्पादकों, उपभोक्तों और वैश्विक अर्थव्यवस्था की सेहत के हित में स्थायी और संतुलित तेल बाजार के लिए प्रतिबद्धता पर लगातार ध्यान देने की पुष्टि की। परिषद ने 'सहयोग घोषणा' में सभी प्रतिभागी देशों द्वारा स्वैच्छिक उत्पादन व्यवस्था की हालिया रेकॉर्ड उच्च एकरूपता को मान्यता दी। यह भी देखा गया कि हर प्रतिभागी देश का अपनी खुद की व्यवस्था की पूरी जिम्मेदारी लेना अत्यावश्यक है। जेएमएमसी से अनुरोध किया गया था कि वह उत्पादन व्यवस्थाओं के साथ-साथ तेल मार्केट की घटनाओं के समयबद्ध तथा उचित क्रियान्वयनपर सतर्कता से निगरानी रखे और नियमित तौर पर परिषद के अध्यक्ष को रिपोर्ट देता रहे।

परिषद ने स्वीकार किया कि सहयोग घोषणा में प्रतिभागी गैर-ओपेक देशों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस बारे में, छठी ओपेक और गैरओपेक मंत्रिस्तरीय बैठक को महत्वपूर्ण बताया गया जो कि 2 जुलाई 2019 को होनी थी। परिषद ने अगले सहयोग चार्टर के प्रारूप को मंजूरी दी और सदस्य देशों से अनुरोध किया कि वे इसे अपनी संबंधित राष्ट्रीय प्रक्रिया के जरिए अपनाएं।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 'ओपेक' किस प्रकार का संगठन है?

   (क) पेट्रोलियम निर्यातक देशों का　　(ख) पेट्रोलियम आयातक देशों का

   (ग) जूट आयातक देशों का　　(घ) जूट निर्यातक देशों का

6. 'ओपेक' में सदस्य देशों की संख्या कितनी है?

   (क) 12　　(ख) 13

   (ग) 14　　(घ) 15

4.5 ब्रिक्स

ब्राजील, रूस, भारत और चीन (ब्रिक) के बीच सहयोग अनौपचारिक रूप से 2006 में शुरू हुआ था, जब चारों देशों के विदेश मंत्रियों की एक कार्य बैठक संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक के इतर हुई थी। तभी से, वित्तीय बाजार द्वारा कुछ साल पहले बनाए गए ब्रिक ने अपने को चार उभरती अर्थव्यवस्थाओं के रूप में अपनी पहचान तक सीमित नहीं रखा।

ब्राजीलियाई लोगों और अन्य सदस्य देशों के लोगों के लिए ठोस परिणाम पैदा करने की संभावनाओं वाले क्षेत्रों में ब्रिक सहयोग का तंत्र बन गया।

2009 से, इस समूह के राष्ट्राध्यक्ष और सरकार-प्रमुख वार्षिक बैठक करते हैं। 2011 में सान्या सम्मेलन में दक्षिण अफ्रीका इस समूह का हिस्सा बना और ब्रिक समूह ब्रिक्स बन गया।

पिछले 13 सालों में, 10 सम्मेलन हो चुके हैं जिनमें संगठन के सभी नेता मौजूद रहे हैं:

- प्रथम सम्मेलन: येकातेरिनबर्ग, रूस, जून 2009;
- द्वितीय सम्मेलन: ब्राजीलिया, ब्राजील, अप्रैल 2010;
- तृतीय सम्मेलन: सान्या, चीन, अप्रैल 2011;
- चतुर्थ सम्मेलन: नई दिल्ली, भारत, मार्च 2012;
- पांचवां सम्मेलन: डरबन, दक्षिण अफ्रीका, मार्च 2013;
- छठा सम्मेलन: फोर्टालेजा,ब्राजील, जुलाई 2014;
- सातवां सम्मेलन: यूफा, रूस, जुलाई 2015;
- आठवां सम्मेलन: बेनॉलिम (गोवा), भारत, अक्टूबर 2016;
- नौवां सम्मेलन: शियामेन, चीन, सितंबर 2017;
- दसवां सम्मेलन: जोहानिसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका, जुलाई 2018; और
- ग्यारहवां सम्मेलन: ब्राजीलिया, ब्राजील, नवंबर 2019

2009 के प्रथम सम्मेलन के बाद से ही ब्रिक्स ने अपनी गतिविधियों का महत्वपूर्ण विस्तार अनेक क्षेत्रों में किया, लेकिन बाहरी देशों की नजर वित्तीय क्षेत्र के कारण ही इस पर पड़ी। 2008 के संकट के परिणामस्वरूप, चारों सदस्य देशों ने विश्व अर्थव्यवस्था में उभरते देशों के तुलनात्मक महत्व को बढ़ाने के इरादे से, वैश्विक वित्तीय शासन ढांचे में सुधार के ठोस प्रस्तावों के साथ जी20, आईएमएफ और विश्व बैंक के साथ मिलकर काम करना शुरू किया। ब्रिक्स ने जो भूमिका निभाई, उसी के कारण 2010 में सिओल में आईएमएफ कोटों में सुधार मंजूर हुए।

इसी क्षेत्र में, ब्रिक्स सहयोग ने पहली दो संस्थाओं के तंत्र की शुरुआत की: न्यू डेवलपमेंट बैंक और रिजर्व कंटिंजेंट अरेंजमेट। बैंक की स्थापना का उद्देश्य अधोसंरचना की परियोजनाओं को धन मुहैया कराने में संसाधनों की कमी की वैश्विक समस्या का समाधान खोजना था।

2015 में ब्रिक्स ने सहयोग के नए क्षेत्रों की तलाश शुरू की और पांचों सदस्य देशों के असली लाभ हासिल करने की जरूरत को सदैव ध्यान में रखा। कार्य के नए क्षेत्रो में बढ़ने के प्रयासों में ब्राजील के लिए स्वास्थ्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवोन्मेष, डिजिटल अर्थव्यवस्था तथा पारदेशीय अपराधों से निपटने में सहयोग के क्षेत्रों की प्राथमिकता है।

ग्यारहवां सम्मेलन 13 और 14 नवंबर, 2019 को ब्राजीलिया में इटामारटी पैलेस में हुआ था जिसकी विषय-वस्तु थी "ब्रिक्स: नवोन्मेषी भविष्य के लिए आर्थिक वृद्धि"।

नेताओं की बैठक से पहले, ब्राजील के राष्ट्रपति कार्यालय ने अनेक बैठकों का आयोजन किया था जिनकी प्राथमिकताएं थीं– (i) विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवोन्मेषण में सहयोग की मजबूती; (ii) डिजिटल अर्थव्यवस्था में सहयोग की मजबूती; (iii) पारदेशीय अपराधों से निपटने में सहयोग वृद्धि, खासतौर पर संगठित अपराध, धनशोधन और नशीली दवाओं की तस्करी के क्षेत्र में; और (iv) न्यू डेवलपमेंट बैंक और व्यापार परिषद में मेलजोल को प्रोत्साहन।

11वां ब्रिक्स सम्मेलन ब्राजीलिया घोषणा पत्र

प्रस्तावना

- हम, संघीय गणराज्य ब्राजील, रूसी संघ, भारतीय गणराज्य, जन गणराज्य चीन और दक्षिण अफ्रीकी गणराज्य के नेताओं ने 14 नवंबर 2019 को ब्राजीलिया, ब्राजली में ग्यारहवें ब्रिक्स सम्मेलन की बैठक की, जिसकी विषय वस्तु "ब्रिक्स: नवोन्मेषी भविष्य के लिए आर्थिक वृद्धि" थी।
- उद्योगी राष्ट्रों के नेताओं के रूप में हम संप्रभुता, आपसी सम्मान और समानता के सिद्धांत और शांतिपूर्ण, स्थायी और समृद्ध विश्व निर्माण के साझे लक्ष्य के प्रति अपनी मूल प्रतिबद्धता को दोहराते हैं। ये अवधारणाएं, मूल्य और उद्देश्य हमारे आपसी हितों के और व्यवहारमूलक सहयोग के लिए ठोस आधार और स्पष्ट दिशानिर्देश मुहैया कराते हैं। अर्थव्यवस्था, शांति और सुरक्षा तथा लोगों के बीच विनिमय के स्तभों में उत्तरोत्तर सम्मेलनों के कार्य पर निर्माण करते हुए, हम अपने लोगों के हितों और कल्याण के लिए, और अपने देशों के बीच परंपरागत संबंधों को मजबूत करने के लिए ब्रिक्स सहयोग को मजबूत करना जारी रखेंगे।
- 2019 की ब्रिक्स चेयरशिप (संलग्नक 1)के नतीजों से प्रसन्न हैं। हमें इस साल हुई सौ से ज्यादा बैठकें याद हैं (संलग्नक 2)। हम वित्त, व्यापार, विदेशी मामलों, राष्ट्रीय सुरक्षा मामलों, संचार, पर्यावरण, श्रम एवं रोजगार, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवोन्मेष, ऊर्जा, कृषि, स्वास्थ्य और संस्कृति के क्षेत्रों में इस साल हुई मंत्रिस्तरीय और अन्य उच्चस्तरतीय बैठकों का स्वागत करते हैं। हमने न्यू डेवलपमेंट बैंक के बोर्ड ऑफ गवर्नर्स की बैठक पर भी विचार किया।
- हम अन्य उपलब्धियों के साथ-साथ, इनोवेशन ब्रिक्स नेटवर्क (आईब्रिक्स) की स्थापना; ब्रिक्स एसटीआई संचालन समिति के जरिए क्रियान्वित की जाने वाली विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवोन्मेष (एसटीआई) पर नई संरचना की स्वीकार्यता, और ब्रिक्स ऊर्जा सहयोग मंच के संदर्भ की शर्तों का भी स्वागत करते हैं। हम ब्रिक्स आतंकवाद निरोधक रणनीति सेमिनार, मानवीय दुग्ध बैंक पर सेमिनार और संपत्ति वसूली पर ब्रिक्स बैठक आयोजित होने का भी स्वागत करते हैं। ब्रिक्स व्यापार और निवेश प्रोत्साहन एजेंसियों (टीआईपीए) के बीच समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर होने, और ब्रिक्स महिला व्यापार गठबंधन (डब्ल्यूबीए) की स्थापना का भी स्वागत करते हैं। हम तपेदिक के लिए सामूहिक अनुसंधान कार्यक्रम तथा ब्रिक्स चेयरशिप 2019 द्वारा प्रोत्साहित अन्य योजनाओं की मंजूरी का भी स्वागत करते हैं।

टिप्पणी

बहुपक्षीय व्यवस्था की मजबूती और सुधार

- हम बहुपक्षता, संप्रभु राष्ट्रों के बीच शांति और सुरक्षा, उन्नत टिकाऊ विकास तथा सभी के मानव अधिकारों और मूलभूत स्वतंत्रताओं का प्रोत्साहन और संरक्षण सुनिश्चित करने, तथा अंतरराष्ट्रीय समुदाय का साझा उज्जवल भविष्य बनाने पर भी प्रतिबद्ध हैं। बहुपक्षता के सामने मौजूद हम चुनौतियों से निपटने में, साथ ही, अंतरराष्ट्रीय मामलों में संयुक्त राष्ट्र की केंद्रीय भूमिका बनाए रखने, और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर, इसके उद्देश्यों और सिद्धांतों के आदर के प्रति भी हम अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं।
- हम संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों समेत बहुपक्षीय व्यवस्था को मजबूत करने और इनमें सुधार करने की तत्काल आवश्यकता पर जोर देते हैं, जिसके लिए हम अंतरराष्ट्रीय निर्णय प्रक्रिया में उभरते बाजारों और विकासशील देशों के जरिए समेत, अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और प्रतिनिधित्वपर्ण बनाने के लिए काम करते रहेंगे। हम अधिक निष्पक्ष, न्यायपूर्ण, न्यायसंगत तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण बहुध्रुवीय अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था को आकार देने की अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं। हम उस उद्देश्य को भी महत्व देते हैं कि अंतरराष्ट्रीय संगठन पूरी तरह से सदस्य राष्ट्रों द्वारा संचालित हों और सबके हितों को प्रोत्साहित करने वाला हो।
- हम 2005 विश्व सम्मेलन के परिणाम के दस्तावेज को याद करते हैं और संयुक्त राष्ट्र को अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण, प्रभावशाली और सक्षम बनाने और विकासशील देशों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए सुरक्षा परिषद समेत संयुक्त राष्ट्र में व्यापक सुधार की जरूरत को दोहराते हैं ताकि यह वैश्विक चुनौतियों का पर्याप्त रूप से जवाब दे सके। चीन और रूस अपने दर्जे, और ब्राजील, भारत और दक्षिण अफ्रीका के अंतरराष्ट्रीय मामलों में भूमिका के महत्व को दोहराते हैं, और संयुक्त राष्ट्र में इनकी वृहद भूमिका निभाने की आकांक्षा का समर्थन करते हैं।
- हम टिकाऊ विकास के लिए इसके तीनों आयामों-आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय, में संतुलित और एकीकृत ढंग से अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं। हमारे हर नागरिक को, दूरदराज के इलाकों समेत, हमारे संबंधित भूक्षेत्रों के सभी हिस्सों में टिकाऊ विकास का पूरा फायदा मिलना चाहिए। इस क्षेत्र में, अन्य क्षेत्रों की तरह, अंतरराष्ट्रीय सहयोग को राष्ट्रीय संप्रभुता और घरेलू कानूनी तथा सांस्थानिक ढांचों तथा व्यवस्थाओं के साथ-साथ सभी प्रचलनों और प्रक्रियाओं का आदर करना होगा।
- हम टिकाऊ विकास एजेंडा 2013 के क्रियान्यवन के महत्व को दोहराते हैं,और इसके समयबद्ध क्रियान्वयन के लिए फिर से दुगुने प्रयास करने का आह्वान करते हैं। हम विकसित देशों से अपील करते हैं कि वे अपनी सरकारी विकास सहायता (ओडीए) प्रतिबद्धताओं को पूरा करें, और विकासशील देशों को अतिरिक्त विकास संसाधन मुहैया कराएं।
- भिन्न राष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रकाश में समान किंतु पृथक दायित्वों और संबंधित क्षमताओं के सिद्धांत समेत जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संरचना सम्मेलन

टिप्पणी

(यूएनएफसीसीसी) के सिद्धांतों के तहत पेरिस समझौते के क्रियान्वयन के लिए हम अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं। हम संलग्नक प्प में शामिल विकसित देशों से आग्रह करते हैं कि वे लघुकरण और अनुकूलन कार्य में विकासशील देशों की मदद के लिए वित्तीय, प्रौद्योगिकीय और क्षमता निर्माण सहायता के प्रावधान को बढ़ाएं। हम अपेक्षा करते हैं कि 2019 के अंत तक हरित जलवायु कोष की पहली पुनःपूर्ति से आंतरिक संसाधन एकत्रीकरण का कार्य बहुत ज्यादा हो जाएगा, और यह सुनिश्चित होगा कि दाताओं के वित्तीय योगदान विकासशील देशों की आकांक्षा,जरूरतों और प्राथमिकताओं से मेल खाते होंगे। खासतौर पर पेरिस समझौता कार्यक्रम की बाकी बातों को लेकर एक संतुलित और व्यापक निष्कर्ष के संबंध में, हम यूएनएफसीसी कॉप 25 की सफलता के लिए काम करने के वास्ते भी प्रतिबद्ध हैं।

- हम क्षेत्रीय उड्डयन पर ब्रिक्स के समझौता ज्ञापन को याद करते हैं और नागरिक उड्डयन के क्षेत्र में ब्रिक्स देशों के बीच सहयोग का सम्मान करते हैं। ब्रिक्स देशों समेत उभरती अर्थव्यवस्थाओं में उड्डयन क्षेत्र द्वारा निभाए महत्वपूर्ण रोल को स्वीकार करते हुए, और उड्डयन क्षेत्र की वृद्धि के बारे में कार्बन ऑफसेटिंग एंड रिडक्शन स्कीम फॉर इंटरनेशनल एविएशन (सीओआरएसआईए) के संभावित प्रभावों पर विचार करते हुए, हम रूपरेखा की समीक्षा प्रक्रिया पर मिलकर काम करने की प्रतिबद्धता दोहराते हैं।
- हम पोस्ट 2020 ग्लोबल बायोडाइवर्सिटी फ्रैमवर्क में 2020 में कनमिंग, चीन में होने वाले दलीय परिषद (Conference of the Parties) के 15वें सम्मेलन के परिणामों की सफलता में योगदान और इसका समर्थन करने को प्रतिबद्ध हैं। हम जैवविविधता से जुड़ी संबंधित स्थितियों के बारे में संवाद और सहयोग को गहन करेंगे। हम अपेक्षा करते हैं कि सीबीडी के तीन उद्देश्यों पर संरचना में संतुलित ढंग से विचार किया जाएगा ताकि होने वाले जैव विविधता घटकों तथा एक्सेस एंड बेनेफिट शेयरिंग (एबीएस) स्तंभों के टिकाऊ इस्तेमाल की अक्सर होने वाली अनदेखी से बचा जा सके।
- हम मरुस्थलीकरण से निपटने, क्षरित भूमि और मृदा को फिर से ठीक करने, और भूक्षरण-मुक्त विश्व को हासिल करने के लिए 2030 तक एसडीजी 15.3 को हासिल करने के इरादसे से कॉप 14 यूएनसीसीडी के निष्कर्षों के क्रियान्वयन के लिए प्रतिबद्ध हैं। हम भू-क्षरण उदासीनता लक्ष्य निर्धारण कार्यक्रम के संबंध में क्षमता निर्माण, और डाटाबेस तथा सूचना के विनिमय के लिए भारत द्वारा टिकाऊ भूमि बहाली केंद्र की स्थापना के जरिए दक्षिण-दक्षिण सहयोग को मजबूत करने का स्वागत करते हैं। हम 'भूमि तथा अवसरों को खोलने में निवेश' के बारे में नई दिल्ली घोषणा तथा ओर्डोस घोषणा की सराहना करते हैं।
- हम अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के सामने लगातार मौजूद खतरों के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त करते हैं और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर तथा अन्य सभी लागू अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के अनुरूप, सभी के लिए स्थायी शांति के लिए काम करने को प्रतिबद्ध हैं। हम किसी भी राष्ट्र के घरेलू न्यायाधिकार के अंदर, सौहार्द्र, राष्ट्रों की संप्रभु समानता और गैर-दखलंदाजी के प्रति, तथा, संयुक्त राष्ट्र चार्टर के तहत

निरंतर, सहयोग करने के कर्तव्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं। इन सिद्धांतों के क्रियान्वयन में उन अनिवार्य उपायों को थोपने को बाहर रखा जाए तो अंतरराष्ट्रीय कानून पर आधारित नहीं है।

- अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा तंत्र के स्तंभ के तौर पर, हम जैविक तथा जहरीले हथियारों के विकास, उत्पादन और भंडारण पर प्रतिबंध और उनके विध्वंस पर सम्मेलन (बीटीडब्ल्यूसी) के महत्व पर जोर देते हैं। उस सम्मेलन की रिपोर्ट को स्वीकार करने समेत बीटीडब्ल्यूसी के अनुपालन और मजबूतीकरण की जरूरत को हम अहमियत देते हैं जो कि अन्य बातों के साथ-साथ सक्षम सत्यापन तंत्र मुहैया कराता है। हम फिर से पुष्टि करते हैं कि बीटीडब्ल्यूसी जैविक और जहरीले हथियारों के लिए मूल साधन है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद से संबंधित इसके कार्यों समेत इनकी नकल किसी अन्य रूप में नहीं की जानी चाहिए। मुद्दों के क्रियान्वयन के समाधान के लिए किए जाने वाले प्रयास बीटीडब्ल्यूसी के अनुरूप होने चाहिए।
- रासायनिक अस्त्र निषेध संगठन (OPCW) तथा रासायनिक अस्त्र सम्मेलन (CWC) का प्रभावी निरस्त्रीकरण और अप्रसार साधन के रूप में हम समर्थन दोहराते हैं। सीडब्ल्यूसी के राष्ट्रों को एकजुट रहने और ओपीसीडब्ल्यू में सहमति की संस्कृति बहाल करने के इरादे से रचनात्मक संवाद में शामिल होने की जरूरत पर बल देते हैं।
- हम बाहरी अंतरिक्ष में हथियारों की संभावित होड़ के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त करते हैं, और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर समेत, अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुरूप बाहरी अंतरिक्ष में अन्वेषण और शांतिपूर्ण इस्तेमाल के कामों को जारी रखने की जरूरत दोहराते हैं। हम कानूनी रूप से बाध्य बहुपक्षीय व्यवस्था के लिए वार्ता की तत्काल जरूरत पर बल देते हैं जो बाहरी अंतरिक्ष में हथियारों की तैनाती रोकने समेत, बाहरी अंतरिक्ष पर लागू होने वाली अंतरराष्ट्रीय कानूनी व्यवस्था की कमी को पूरा कर सके। हमारा आग्रह है कि इस लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में व्यावहारिक पारदर्शिता और विश्वास बहाली के उपाय भी योगदान कर सकते हैं। इस संबंध में, हम बाह्य अंतरिक्ष में हथियारों की होड़ रोकने (PAROS) के बारे में संयुक्त राष्ट्र सरकारी विशेषज्ञ समूह के प्रासंगिक कार्यों का स्वागत करते हैं और खेद व्यक्त करते हैं कि इस रिपोर्ट पर सहमति नहीं बन पाई। हम रेखांकित करते हैं कि इस बारे में कोई भी उपाय भेदभावरहित होना चाहिए और इसमें शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए प्रौद्योगिकी के विकास के अधिकार के क्रियाशील प्रावधान समाहित होने चाहिए।
- हम सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आईसीटी) के लिए मुक्त, सुरक्षित, शांतिपूर्ण, पहुंचयोग्य तथा भेदभावरहित वातावरण के महत्व पर बल देते हैं। हम संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में, आईसीटी के अधिकार में राष्ट्रों के जिम्मेदाराना व्यवहार के लिए, और उनके विकास में संयुक्त राष्ट्र की केंद्रीयता बनाए रखने के लिए, वैश्विक रूप से सहमति वाले कायदे-कानूनों और सिद्धांतों की अहमियत पर बल देते हैं। इस सिलसिले में, इस मामले के लिए हम संयुक्त राष्ट्र के एक अबाध प्रवेश समूह की स्थापना का, साथ ही, सरकारी विशेषज्ञ समूह के नए संस्करण की

शुरुआत का स्वागत करते हैं। दोनों व्यवस्थाओं का समर्थन करते हुए, हम इस बात को महत्वपूर्ण मानते हैं कि दोतरफा (डुअल-ट्रैक) प्रक्रिया इस मामले में अंतरराष्ट्रीय प्रयासों में पूरकता और सहक्रिया उपलब्ध करा सकती है।

टिप्पणी

- हम आपराधिक और आतंकवादी गतिविधियों में आईसीटी के दुरुपयोग को रोकने की अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं। इस बारे में नई चुनौतियों और खतरों से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहयोग की जरूरत है जिसमें सहयोग की संभावित रूपरेखा पर बातचीत शामिल हो, और उसमें आईसीटी के आपराधिक इस्तेमाल पर संयुक्त राष्ट्र की नियामक संस्था शामिल हो। आईसीटी के इस्तेमाल में सुरक्षा पर कार्यसमूह (WGSICT) के जरिए जिसने इसकी संशोधित संदर्भ शर्तें मंजूर की हैं, और आईसीटी के इस्तेमाल में सुरक्षा सुनिश्चित करने में व्यावहारिक सहयोग की ब्रिक्स की रूपरेखा के जरिए, सहयोग को प्रोत्साहन देने में ब्रिक्स देशों की तरक्की की हम सराहना करते हैं। पूर्व के ब्रिक्स सम्मेलनों को ध्यान में रखते हुए, हम आईसीटी के उपयोग में सुरक्षा सुनिश्चित करने को लेकर ब्रिक्स राष्ट्रों के बीच सहयोग की कानूनी रूपरेखा स्थापित करने की अहमियत की हम पुष्टि करते हैं, और इस मामले में विचार और विस्तार के प्रस्तावों की दिशा में ॅळैप्ब्ज के कार्य की सराहना करते हैं। हम आईसीटी के इस्तेमाल में सुरक्षा सुनिश्चित करने को लेकर सहयोग पर ब्रिक्स अंतरसरकारी समझौते पर रूस के, तथा इसी मामले में ब्रिक्स देशों के बीच द्विपक्षीय समझौतों की दिशा में ब्राजील की पहल के, प्रस्ताव पर विचार करते हैं।
- हम आतंकवाद के हर प्रकार और हर स्वरूप की निंदा करते हैं जिसे किसी भी धर्म, राष्ट्रीयता या सभ्यता से नहीं जोड़ा जाना चाहिए, और हम आतंकवादी कृत्यों को आपराधिक और अन्यायपूर्ण मानते हैं चाहे उसके पीछे कोई भी इरादा हो, और किसी ने भी, कहीं भी, और कभी भी किया हो। हम संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत आतंकवाद से निपटने के सामूहिक प्रयासों का अनुरोध करते हैं, और मानते हैं कि आतंकवाद रोकने और उससे निपटने में राष्ट्रों और उनके सक्षम अधिकारियों की प्राथमिक भूमिका मानते हैं, और अपना विश्वास जताते हैं कि आतंकवाद से लड़ने में कारगर नतीजे सुनिश्चित करने में व्यापर रवैया जरूरी है। हम सभी राष्ट्रों को आतंकवादी नेटवर्क को धन मुहैया कराने और अन्य देशों की जमीन से भी चलने वाली आतंकवादी गतिविधियों को रोकने की उनकी जिम्मेदारी को याद करते हैं। हम संयुक्त राष्ट्र की रूपरेखा के तहत, अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक सम्मेलन के तीव्र निष्कर्ष और अनुपालन की भी मांग करते हैं। हम संयुक्त राष्ट्र के प्रासंगिक प्रस्तावों के क्रियान्वयन के जरिए, आतंकवाद को धन मुहैया कराने पर रोक लगाने और इससे लड़ने की अहमियत पर जोर देते हैं, और इस बारे में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 2462 (2019) को स्वीकार करने का स्वागत करते हैं। रासायनिक और जैविक हथियारों के खतरों से निपटने के लिए, हम रासायनिक और जैविक आतंकवाद के कृत्यों के दमन के लिए एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के लिए बहुपक्षीय वार्ताएं शुरू करने की जरूरत पर बल देते हैं जिनमें निरस्त्रीकरण पर सम्मेलन भी शामिल है।

- आतंकवाद से निपटने में ब्रिक्स के सहयोग में प्रगति की हम सराहना करते हैं, और ब्रिक्स आतंकवाद निरोधक कार्य समूह की चौथी बैठक के नतीजों के साथ-साथ विषयवस्तु आधारित उपकार्यसमूह की स्थापना, और ब्राजीलिया में 'ब्रिक्स आतंकवाद निरोधक रणनीतियों' पर सेमिनार कराने का स्वागत करते हैं।
- हम अवैध वित्तीय प्रवाह से लड़ने, तथा वित्तीय कार्रवाई कार्यदल (एफएटीएफ) तथा एफएटीएफ की तर्ज पर बनी क्षेत्रीय संस्थाओं के साथ-साथ अन्य बहुपक्षीय, क्षेत्रीय और द्विपक्षीय मंचों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं। हम FATF के उद्देश्यों को कायम रखने और उनका समर्थन रने के महत्व को, और एफएएफटी मानकों के क्रियान्वयन तथा उनमें सुधार के प्रति अपने सहयोग को तेज करने पर जोर देते हैं।

  AML/CFT ब्रिक्स परिषद के प्रस्तावित संस्थानिकरण को ध्यान में रखते हुए, हम एंटी मनी लॉन्डरिंग/काउंटरिंग द फाइनेंसिंग ऑफ टेररिज्म (AML/CFT) एजेंडा जैसे मुख्य मुद्दों पर ब्रिक्स देशों के बीच संवाद की कद्र करते हैं और उसे प्रोत्साहित करते हैं। हम राष्ट्रीय वित्तीय आसूचना इकाइयों (एफआईयू) के काम के महत्व को रेखांकित करते हैं।

आर्थिक और वित्तीय सहयोग

- हमारी पिछली बैठक के बाद से वैश्वक आर्थिक वृद्धि कमजोर हुई है और नकारात्मक खतरे बढ़े हैं। व्यापार तनाव और नीति-अनिश्चितता ने विश्वास, व्यापार, निवेश और ग्रोथ पर बढ़त बना ली है। इस संदर्भ में हम मुक्त बाजार, न्यायपूर्ण, निष्पक्ष और भेदभावरहित व्यवसाय तथा व्यापार परिवेश, संरचनात्मक सुधारों, प्रभावी और निष्पक्ष स्पर्धा, निवेश तथा नवाचार प्रोत्साहन के साथ-साथ अधोसंरचनायुक्त विकास के लिए फाइनेंसिंग के महत्व को याद करते हैं। हम वैश्विक मूल्य श्रंखला में विकासशील देशों की वृहद भागीदारी की जरूरत पर बल देते हैं। हम जी-20 और उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं तथा विकासशील देशों के हितों के बढ़ाने के लिए सहयोग जारी रखेंगे।
- ब्रिक्स देशों के पिछले दशक में वैश्विक विकास के मुख्य संचालक होने और वर्तमान में वैश्विक आउटपुट के करीब एक तिहाई हिस्सा होने को ध्यान में रखते हुए, हमें विश्वास है कि संरचनात्मक सुधारों का जारी क्रियान्वयन हमारी ग्रोथ क्षमता को बढ़ाएगा। ब्रिक्स सदस्यों के बीच व्यापार विस्तार से अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रवाह को मजबूत करने में और ज्यादा योगदान मिलेगा। मजबूत, टिकाऊ, संतुलित और समावेशी वृद्धि हासिल करने के लिए हम राजकोषीय, मौद्रिक और संरचनात्मक नीतियों के जारी इस्तेमाल की भी पैरवी करते हैं। हम मुख्य विकसित तथा उभरती अर्थव्यवस्थाओं से आग्रह करते हैं कि इन उद्देश्यों की दिशा में और संभावित खतरों से निपटने की दिशा में बढ़ने के लिए जी-20 और अन्य मंचों पर नीति संवाद और समन्वय जारी रखें।
- वैश्विक वित्तीय सुरक्षा जाल के केंद्र में मजबूत, कोटा-आधारित और पर्याप्त संसाधनों से युक्त अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) के लिए हम अपनी प्रतिबद्धता दोहराते हैं। आईएमएफ में कोटा आकार बढ़ाने और अल्प प्रतिनिधत्व

टिप्पणी

वाली उभरते बाजारों और गतिशील अर्थव्यवस्थाओं समेत सदस्य देशों के कोटा शेयरों में बदलाव में असफल 15वीं सामान्य कोटा समीक्षा से हम बहुत निराश हैं। हम निर्धनतम सदस्यों की आवाज और उनके प्रतिनिधित्व की सुरक्षा का भी समर्थन करते हैं। हम आईएमएफ से आग्रह करते हैं कि वह 16वीं सामान्य कोटा समीक्षा के तहत 2010 में सहमति वाले सिद्धांतों के आधार पर, जल्द से जल्द औ समयबद्ध तरीके से, कोटा और शासन सुधार पर काम करे।

- हम नियम-आधारित, पारदर्शी, भेदभावरहित, मुक्त, निष्पक्ष और समावेशी अंतरराष्ट्रीय व्यापार के बुनियादी महत्व को दोहराते हैं। हम विश्व व्यापार संगठन की केंद्रीय भूमिका वाली बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के संरक्षण तथा उसकी मजबूती के लिए प्रतिबद्ध रहते हैं। डब्ल्यूटीओ के सभी सदस्यों को एकपक्षीय और संरक्षणवादी उपायों से परहेज करना महत्वपूर्ण है क्योंकि ये डब्ल्यूटीओ की भावनाओं और नियमों के विरोध में हैं।
- हम डब्ल्यूटीओ की प्रभावशीलता और प्रासंगिकता तथा मौजूदा तथा भावी चुनौतियों से बेहतर तरीके से निपटने की इसकी क्षमता सुनिश्चित करने के लिए, 12वीं डब्ल्यूटीओ मंत्रिस्तरीय कॉन्फ्रेंस की तैयारी के लिए, इस संगठन में सुधार की अहमियत को मान्यता देते हैं। हमारे देश सभी डब्ल्यूटीओ सदस्यों के साथ मिलकर, जरूरी सुधार की दिशा में काम करेंगे जो कि संतुलित, मुक्त, पारदर्शी हो और समावेश तथा विकास को प्रोत्साहन देता हो। साथ ही, ये सुधार डब्ल्यूटीओ की केंद्रीयता, बुनियादी मूल्यों और बुनियादी सिद्धांतों का संरक्षण करने वाले होने चाहिए तथा, विकासशील देशों और कम विकसित देशों समेत सभी सदस्यों के हितों को ध्यान में रखने वाले होने चाहिए।
- हम दो स्तरीय बाध्यकारी न्याय-निर्णयन व्यवस्था वाली डब्ल्यूटीओ विवाद निस्तारण व्यवस्था के महत्व पर बल देते हैं। संगठन के नियमित तथा प्रभावशाली कार्य तथा इसके नियमों को पूरा करने के लिए अपीलीय निकाय जरूरी है। हम इस अपीलीय निकाय के सदस्यों की नियुक्ति में बाधा से उबरने की जरूरत को रेखांकित करते हैं, और सभी सदस्यों से आग्रह करते हैं कि अपीलीय निकाय चयन प्रक्रिया को शुरू करने पर तत्काल सहमत हों।
- हम उत्पादन सेक्टरों, ई-कॉमर्स, सूक्ष्म,लघु और मध्यम उद्यमों, अधोसंरचना तथा कनेक्टिविटी में निवेश के प्रोत्साहन तथा आसान बनाने के उपाय उचित मंचों पर तलाशेंगे, जो कि आर्थिक वृद्धि, व्यापार और रोजगार सृजन में मदद करेंगे। ऐसा करते समय, हम पारदर्शी, प्रभावशाली तथा निवेश-अनुकूल व्यापारिक माहौल को बढ़ाने के इरादे से, राष्ट्रीय हितों तथा नीतिगत संरचनाओं को ध्यान में रखेंगे।
- हम अधोसंरचना तथा टिकाऊ विकास वित्तपोषण में न्यू डेवलपमेंट बैंक की भूमिका की सराहना करते हैं। हम परियोजनाओं की गुणवत्ता मजबूत, संतुलित तथा उच्च बनाने के लिए प्रयास तेज करने की जरूरत पर बल देते हैं। फॉर्टालेजा, ब्राजील में एनडीबी के अनुच्छेदों पर हस्ताक्षर की पांचवीं वर्षगांठ को हम गर्व से देखते हैं, और एनडीबी की सामान्य रणनीति की आगामी मध्यावधि समीक्षा का स्वागत करते हैं।

टिप्पणी

- हम सदस्य देशों में एनडीबी के क्षेत्रीय कार्यालयों और गतिविधियां शुरू करने का स्वागत करते हैं। हम साओ पोलो में अमेरिकी क्षेत्रीय कार्यालय, और ब्राजीलिया में इसके उपकार्यालय की स्थापना का स्वागत करते हैं, और आसा करते हैं कि 2020 तक रूस और भारत में एनडीबी के दो बचे हुए क्षेत्रीय कार्यालय भी शुरू हो जाएंगे। बैंक के मुख्यालयों, इसके क्षेत्रीय कार्यालयों के मूल कार्यों के आधार पर यह सभी सदस्य देशों में अपने काम के विस्तार तथा अधिक मजबूत प्रोजेक्ट पोर्टफोलियो के प्रयासों में योगदान करेगा।
- न्यू डेवलपमेंट बैंक द्वारा इसकी सदस्यता बढ़ाने की दिशा में प्रयासों में तरक्की की हम सराहना करते हैं। इसके समझौते के अनुच्छेदों के अनुसार, एनडीबी की सदस्यता के विस्तार से बैंक की भूमिका वैश्विक विकास वित्तीय संस्थान के रूप में मजबूत होगी, और ब्रिक्स तथा अन्य उभरते एवं विकासशील देशों में अधोसंरचना तथा टिकाऊ विकास परियोजनाओं के लिए संसाधन जुटाने में और ज्यादा योगदान यह कर सकेगा। हम आशा करते हैं कि सदस्यता विस्तार के बारे में समयबद्ध तथा विचारपूर्ण निर्णयों के लिए बोर्ड ऑफ गवर्नस तैयारी का काम पूरा करेगा।
- हम सहयोग की अन्य पहलों के अति महत्व से भी जुड़े हैं जिनमें पीपीपी तथा अधोसंरचना पर ब्रिक्स कार्य बल शामिल है जो जी–20 अधोसंरचना एजेंडा, एनडीबी परियोजना तैयारी अनुकूलता, समेत अधोसंरचना पर संवाद की सुविधा देता है, जिसकी प्रभावशीलता इसकी परियोजनाओं के पहले समूह के जल्द से जल्द शुरू होने से, तथा बहुपक्षीय विकास बैंकों में विकासशील देशों तथा उभरती अर्थव्यवस्थाओं में प्रतिनिधित्व बढ़ाने के इरादे में हमारे योगदान से बढ़ जाएगी।
- हम कंटिंजेट रिजर्व अरेंजमेट (सीआरए) की तैयारी सुनिश्चित करने के लिए उठाए गए आगे के कदमों पर संतोष व्यक्त करते हैं, और जटिलता के अन्य जोड़े गए तत्वों,तथा एनकैशमेंट समेत सीआरए व्यवस्था के अलग किए गए हिस्से के साथ, द्वितीय परीक्षण के निष्कर्षों का स्वागत करते हैं।
- हम ब्रिक्स लोकल करेंसी बॉन्ड फंड की स्थापना में कई गई प्रगति पर नजर रखे हैं और इसके शुरू होने की आशा करते हैं। हम अपने लोकल बॉन्ड बाजारों के विकास के लिए जारी सहयोग का समर्थन करते हैं। हम मुद्रा सहयोग के अन्य संभावित क्षेत्रों पर संवाद जारी रखेंगे जो कि हर केंद्रीय बैंक के उद्देश्य के अनुरूप होता है।
- हम अंतरराष्ट्रीय भुगतान व्यवस्था पर ब्रिक्स के सर्वेक्षण के महत्व की सराहना करते हैं।
- हम नवाचारी, टिकाऊ तथा समावेशी आर्थिक वृद्धि समेत ब्रिक्स आर्थिक भागीदारी रणनीति के तहत की गई प्रगति का सकारात्मक रूप से आकलन करते हैं, और 2020 में रूस की अध्यक्षता में इसकी समीक्षा की आशा करते हैं। हम ब्रिक्स आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग कार्य एजेंडा के क्रियान्वयन में की सदस्यों की प्रगति की सराहना करते हैं जिसमें नीति–साझेदारी, सूचना विनिमय, व्यापार तथा निवेश सुविधा, और व्यापार–अध्ययनों के प्रोत्साहन और विकास जैसी अनेक

टिप्पणी

गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया है। हम ब्रिक्स संयुक्त व्यापार अध्ययन समीक्षा के निष्कर्ष का स्वागत करते हैं जिसने ब्रिक्स देशों के बीच व्यापार तथा निवेश की संभावना की पहचान की है, और हमारे मंत्रियों को निर्देश देते हैं कि हमारे देशों के बीच सहयोग की संयुक्त योजनाओं को समर्थन देना जारी रखें।

- हम ब्रिक्स बिजनेस फोरम के आयोजन का स्वागत करते हैं, और जैव प्रौद्योगिकी, वित्तीय सेवाओं, क्षेत्रीय उड्डयन, प्रौद्योगिकीय मानकों के पालन, कौशल विकास तथा डिजिटल अर्थव्यवस्था समेत अधोसंरचना, निर्माण, ऊर्जा, कृषि–व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने के जरिए ब्रिक्स देशों के बीच व्यापार तथा निवेश को प्रोत्साहन देने के ब्रिक्स बिजनेस काउंसिल के प्रयासों की सराहना करते हैं।
- हम ब्रिक्स वीमेन बिजनेस एलायंस (डब्ल्यूबीए) की स्थापना का स्वागत करते हैं जिसका मकसद आर्थिक वृद्धि के कारकों में महिलाओं की भूमिका को बढ़ाना है ताकि हमारे देशों में महिलाओं के आर्थिक सबलीकरण में योगदान किया जा सके और ब्रिक्स व्यापारिक समुदाय केहित के मुद्दों पर अलग सोच पैदा की जा सके। डब्ल्यूबीए का एजेंडा, कार्य करने का तरीका, तथा इसके कामकाज से जुड़े अन्य मुद्दे इसके सदस्य देश तय करेंगे। हम आशा करते हैं कि हर देश से पांच सदस्यों का चयन होगा और डब्ल्यूबीए की पहली बैठक 2020 में जल्द से जल्द आयोजित होगी।
- हम डब्ल्यूबीए और ब्रिक्स बिजनेस काउंसिल से सक्रिय सहयोग करने तथा उनकी गतिविधियों के बीच, बीबीसी समेत, सभी ब्रिक्स व्यापार पहलों में महिलाओं की भागीदारी को आपस में लागू करने तथा मजबूत करने के लिए समन्वय करने का आग्रह करते हैं।

क्षेत्रीय स्थितियां

- हम विवादों के राजनीतिक और कूटनीतिक उपायों के जरिए शांतिपूर्ण समाधान के लिए सामूहिक प्रयास करने की प्रतिबद्धता दोहराते हैं, और अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा कायम रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी वाली संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की भूमिका को सराहते हैं।
- सीरियाई अरब गणराज्य की स्थिति के बारे में, हम संप्रभुता, स्वतंत्रता, एकता और क्षेत्रीय अखंडता के प्रति अपनी मजबूत प्रतिबद्धता दोहराते हैं। हम अपना विश्वास व्यक्त करते हैं कि सीरियाई विवाद का कोई सैनिक समाधान नहीं हो सकता। हम संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 2254 (2015) के अनुसार सीरियाई अगुवाई में, सीरियाई स्वामित्व में, संयक्त राष्ट्र की राजनीतिक प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की अपनी प्रतिबद्धता भी दोहराते हैं। हम संयुक्त राष्ट्र, अस्ताना गारंटरों और राजनीतिक साधनों के जरिए विवाद को सुलझाने में लगे सभी राष्ट्रों के प्रयासों का धन्यवाद देते हुए, संवैधानिक समिति के गठन के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करते हैं। हम सभी पक्षों से आहवान करते हैं कि वो निर्बाध मानवीय मदद की और इदलीब क्षेत्र में टिकाऊ युद्धविराम के क्रियान्वयन की अनुमति दें, क्योंकि इस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा घोषित कोई भी आतंकवादी संगठन या इकाई नहीं है। हम हर तरह के आतंकवाद से लड़ने की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धता को

दोहराते हैं और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा घोषित सीरियाई आतंकवादी संगठनों से लड़ने के लिए एकता के महत्व को रेखांकित करते हैं। हम असुरक्षित नस्लीय और धार्मिक समुदायों की पीड़ा के प्रति भी चिंता व्यक्त करते हैं। हम सीरिया में मानवीय स्थिति तथा आतंकवादियों के फैलने के खतरों के प्रति भी गंभीर रूप से चिंतित हैं। हम सभी पक्षों से अनुरोध करते हैं कि पूरे देश में सभी सीरियाई नागरिकों को बिना शर्त मानवीय सहायता पहुंचने दें। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों और अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानूनों के तहत समूचे सीरिया में नागरिकों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, हम खासतौर पर 22 अक्टूबर 2019 को रूस और तुर्की के बीच हस्ताक्षरित समझौता ज्ञापन के अनुसार, पूर्वोत्तर सीरिया में संकट खत्म करने के प्रयासों का स्वागत करते हैं।

- हम यमन गणराज्य में चल रहे विवाद और बिगड़ती मानवीय संकट के प्रति चिंता दोहराते हैं, और देश भर में सभी पक्षों से अपील करते हैं कि वे मानवीय सहायताकर्मियों और आपूर्ति को त्वरित, सुरक्षित और निर्बाध तरीके से होने दें। हम मानते हैं कि यमन के विवाद का समूचे क्षेत्र की सुरक्षा और स्थायित्व पर गहरा असर पड़ रहा है और संयुक्त राष्ट्र के संरक्षण में, यमनी नेतृत्व में शांतिपूर्ण समाधान के संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों और स्टॉकहोम प्रक्रिया को हम अपना समर्थन दोहराते हैं।
- हम इस संकल्प पर एकमत हैं कि मध्यपूर्व और उत्तरी अफ्रीका में अन्य जगहों के विवाद को लंबे समय से चले आ रहे फिलिस्तीन-इस्राइल विवाद को निपटाने में देरी के बहाने के तौर पर इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। प्रासंगिक संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों, मेड्रिड सिद्धांतों और अरब शांति पहल जैसे अंतरराष्ट्रीय रूपरेखा के निर्देशानुसार, हम दोहराते हैं कि द्वि-राष्ट्र समाधान से इस्राइली और फिलिस्तीनी लोग शांति और सुरक्षा के साथ, साथ-साथ रह सकते हैं। इस संदर्भ में हम फिलिस्तीन-इस्राइल विवाद के न्यायपूर्ण और व्यापक समाधान पाने के लिए नए और रचनात्मक कूटनीतिक प्रयासों की जरूरत पर भी जोर देते हैं, ताकि मध्य पूर्व में शांति और स्थायित्व की स्थिति हासिल की जा सके।
- हम खाड़ी क्षेत्र में एकतरफा कार्रवाई समेत, जारी संकट के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त करते हैं, और मौजूदा असहमतियों को वार्ताओं और राजनयिक प्रयासों के जरिए सुलझाने के प्रति अपना समर्थन दोहराते हैं। हम इस क्षेत्र में सकारात्मक और रचनात्मक एजेंडा के प्रोत्साहन की जरूरत पर बल देते हैं जिसमें सभी देश मिलकर समान खतरों और चुनौतियों का जवाब दें। हम इस बात को रेखांकित करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देश, सुरक्षा परिषद के निर्णयों को स्वीकार करने तथा उनका पालन करने के संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 25 के तहत बाध्य हैं।
- हम अफगानिस्तान की जनता के स्थायी, समावेशी, शांतिपूर्ण और समृद्ध देश बनाने के उनके प्रयासों के प्रति अपना निरंतर समर्थन दोहराते हैं। हमारा पक्का विश्वास है कि अफगानिस्तान में कोई सैनिक समाधान नहीं हो सकता। हम शांति तथा समझौते की प्रक्रिया के प्रति अपना समर्थन दोहराते हैं जो कि अफगानी स्वामित्व में हो और अफगानी नेतृत्व के तहत हो। हम आतंकवादी हमलों के होते रहने पर अपनी चिंता व्यक्त करते हैं।

टिप्पणी

- हम कोरियाई प्रायद्वीप में शांतिपूर्ण, राजनयिक और राजनीतिक समाधान के लिए, तथा इसके पूरी तरह से परमाणुविहीन करने के प्रति अपना समर्थन दोहराते हैं। अब पूर्वोत्तर एशिया में शांति तथा स्थिरता बनाए रखने के महत्व को रेखांकित करते हैं।
- हम अफ्रीकी संघ तथा उप क्षेत्रीय संगठनों के क्षेत्रीय मुद्दे सुलझाने तथा महाद्वीप में शांति और सुरक्षा के हित में विवादों के प्रबंधन के प्रयासों की सराहना करते हैं, और संयुक्त राष्ट्र तथा अफ्रीकी संघ के बीच सहयोग के महत्व पर जोर देते हैं। हम सभी पक्षों से लीबिया में सभी तरह की सैनिक कार्रवाई तुरंत बंद करने, तथा संयुक्त राष्ट्र तथा अफ्रीकी संघ की लीबिया पर उच्च स्तरीय समिति तथा प्रासंगिक भागीदारों के साथ बात करने का आग्रह करते हैं ताकि लीबियाई नेतृत्व में और लीबियाई स्वामित्व में राजनीतिक प्रक्रिया के जरिए व्यापक तथा टिकाऊ समाधान सुनिश्चित किया जा सके।
- हम सूडानी जनता को 17 अगस्त 2019 को खार्तूम में राजनीतिक समझौता तथा संवैधानिक घोषणा पर हस्ताक्षर करने के लिए बधाई देते हैं जिसे हम सूडान में राजनीतिक स्थिति की स्थिरता की दिशा में अहम कदम मानते हैं। हम अफ्रीकी संघ तथा इथियोपियाई सरकार के प्रयासों की सराहना करते हैं जिनकी मध्यस्थता से वार्ताओं के निष्कर्ष निकलने में मदद मिली है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. निम्न में से कौन-सा देश 'ब्रिक्स' समूह का सदस्य नहीं है?
   (क) ब्राजील (ख) रूस
   (ग) भारत (घ) सुमात्रा
8. ग्यारहवां ब्रिक्स सम्मेलन किस स्थान पर हुआ?
   (क) गोवा, भारत (ख) ब्राजीलिया, ब्राजील
   (ग) शियामेन, चीन (घ) सान्या, चीन

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (क)
6. (ग)
7. (घ)
8. (ख)

4.7 सारांश

टिप्पणी

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC) का गठन सदस्य देशों की अपनी क्षेत्रीय समस्याओं को सुलझाने और परस्पर सहयोग के लिए किया गया। 1981 में बांग्लादेश के तत्कालीन राष्ट्रपति जिआ उर रहमान ने दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने हेतु एक नवीन योजना प्रस्तुत की। अगस्त, 1983 में सात देशों के विदेश मंत्रियों ने एक सामूहिक क्षेत्रीय सहयोग का घोषणा-पत्र नई दिल्ली में स्वीकार किया।

साम्यवाद के बढ़ते प्रभाव ने 1945 के बाद पश्चिमी शक्तियों को नई चुनौती पेश की। सैनिक संगठन सीटो भी इस क्षेत्र के आर्थिक विकास की समस्याओं पर अपना पूरा ध्यान फोकस नहीं कर सका। आर्थिक विकास का भार स्वयं वहन करने की घोषणा के परिणामस्वरूप 1959 में दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (ASEAN) के निर्माण का रास्ता साफ हो गया।

ओपेक का उद्देश्य पेट्रोलियम निर्यातकों को उचित और स्थायी मूल्य दिलाने के लिए, सदस्य देशों के बीच पेट्रोलियम नीतियों का समन्वय और एकीकरण करना है; खपत वाले देशों को पेट्रोलियम की सक्षम, आर्थिक और नियमित आपूर्ति करना है; और इस उद्योग में निवेश करने वालों को उचित रिटर्न दिलाना है।

2009 के प्रथम सम्मेलन के बाद से ही ब्रिक्स ने अपनी गतिविधियों का महत्वपूर्ण विस्तार अनेक क्षेत्रों में किया, लेकिन बाहरी देशों की नजर वित्तीय क्षेत्र के कारण ही इस पर पड़ी। 2008 के संकट के परिणामस्वरूप, चारों सदस्य देशों ने विश्व अर्थव्यवस्था में उभरते देशों के तुलनात्मक महत्व को बढ़ाने के इरादे से, वैश्विक वित्तीय शासन ढांचे में सुधार के ठोस प्रस्तावों के साथ जी20, आईएमएफ और विश्व बैंक के साथ मिलकर काम करना शुरू किया। ब्रिक्स ने जो भूमिका निभाई, उसी के कारण 2010 में सिओल में आईएमएफ कोटों में सुधार मंजूर हुए।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **सार्क :** साउथ एशियन असोसिएशन फॉर रीजनल को-ऑपरेशन।
- **आसियान :** असोसिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेशन्स।
- **ओपेक :** ऑर्गनाइजेशन ऑफ द पेट्रोलियम एक्स्पोर्टिंग कंट्रीज।
- **ब्रिक्स :** ब्राजील, रशिया, इंडिया, चाइना, साउथ अफ्रीका देशों का संगठन

4.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. सार्क के सदस्य देश कौन-कौन से हैं?
2. आसियान की स्थापना किस घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर कर की गई?
3. आसियान का क्वालालम्पुर शिखर सम्मेलन में किस समस्या को प्रकाश में लाया गया?

4. ओपेक की स्थापना किन देशों ने व किस वर्ष की?
5. ब्रिक्स संगठन में सबसे बाद में कौन-सा देश जुड़ा? कब?

टिप्पणी

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. सार्क के गठन के उद्देश्य व सिद्धांतों का परिचय देते हुए इसके अभिकरणों पर प्रकाश डालिए।
2. सार्क के शिखर सम्मेलनों का ब्यौरा देते हुए संगठन का मूल्यांकन कीजिए।
3. आसियान के उद्देश्य, संगठन, प्रारूप व कार्यों का विश्लेषण कीजिए।
4. ओपेक की स्थापना का परिचय देते हुए 1960 व 70 के दशक में इसकी भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. ग्यारहवें ब्रिक्स सम्मेलन के घोषणा-पत्र की समीक्षा कीजिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Khanna, V. N. and Leslie K. Kumar. 2018. *Foreign Policy of India*, 7th Edition. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Ganguly, Sumit. 2011. *India's Foreign Policy.* New Delhi: Oxford University Press.

Reddy, K. Raja. 2012. *Foreign Policy of India and Asia-Pacific.* New Delhi: New Century Publications.

Balakrishan, T.K. 2010. *Foreign Policy of India: Problems and Paradoxes*. New Delhi: Mohini Publishers and Distributors.

Muni, S.D. 2009. *India's Foreign Policy: The Democracy Dimension*. Foundation Books.

इकाई 5 समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 मानवाधिकार वैश्वीकरण
5.3 पर्यावरण
5.4 निशस्त्रीकरण
5.5 सीमापार आतंकवाद
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

मानवाधिकारों को एक न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज की स्थापना के लिए अनिवार्य तत्व के रूप में माना गया है। इकाई के अंत में मानवाधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा पर विचार किया गया है। आखिर संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों की समझ अनिवार्य क्यों है? इस सवाल के जवाब के लिए, ऐसे समाज की कल्पना कीजिए जहां समानता का अधिकार न हो, या अपने धर्म को मानने की आजादी न हो, या शोषण के खिलाफ अधिकार न हो। ऐसे अराजक माहौल में कोई कब तक रह सकता है? मानवाधिकार मौलिक किस्म के होते हैं; वे सार्वभौमिक होते हैं और कुछ ऐसे जो हमेशा सच होते हैं- इससे फर्क नहीं पड़ता व्यक्ति किस देश, धर्म, वर्ग, नस्ल या जातीयता से संबंध रखता है।

एक तरफ पर्यावरण से संबंधित कुछ समस्याएं, समान पहुंच की वस्तुओं के हिस्सा होने की विशेषता के कारण, प्रतीकात्मक और विशिष्ट सीमित भौगौलिक स्थानों के लिए प्रासंगिक हो सकती है, वहीं पर्यावरण से संबंधित कई मुद्दे ऐसे हैं जिनका वैश्विक प्रभाव है।

आज जिस गति से शस्त्र निर्माण हो रहा है उससे मानवता को भयंकर खतरा है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद शस्त्र निर्माता देशों ने अपने-अपने देशों में शस्त्र के बाजारों का मजबूती से विस्तार किया है ताकि कमजोर से कमजोर राष्ट्र भी शस्त्र खरीद सके।

सीमापार आतंकवाद वह होता है जिसमें किसी एक देश की जमीन का उसकी सरहद से लगने वाले देशों में आतंक पैदा करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। ग्रे जोन के अनुसार संघर्ष के रूप में, यह एक अघोषित युद्ध होता है और छोटे-छोटे प्रयासों द्वारा किसी राष्ट्र में लंबे समय तक खून बहाने की रणनीति का सर्वोच्च रूप माना जाता है। सीमापार आतंकवाद में साइबर हमले, राजनीतिक युद्ध, धारणा युद्ध, सशस्त्र छद्म लड़ाई प्रायोजित करने जैसी गैरपरंपरागत रणनीतियाँ शामिल हैं।

इस इकाई में समकालीन अंतर्राष्ट्रीय ज्वलंत समस्याओं पर विचार किया जा रहा है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

टिप्पणी

- वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों की आवश्यकता जान पाएंगे;
- निशस्त्रीकरण का अर्थ व महत्व से परिचित हो पाएंगे;
- मानव जीवन हेतु पर्यावरण सुरक्षा की आवश्यकता तथा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से उठाए जा रहे कदमों के बारे में जान पाएंगे;
- आतंकवाद व सीमापार आतंकवाद की स्थितियों से अवगत हो पाएंगे।

5.2 मानवाधिकार वैश्वीकरण

यह भावना थॉमस जैफरसन के इस कथन में प्रतिध्वनित होती है 'कुछ भी अपरिवर्तनशील नहीं है सिवाय मनुष्य के निहित और अहस्तांतरणीय अधिकार।' संयुक्त राष्ट्र वह एजेंसी है जिसने स्वयं को मानवाधिकारों को बढ़ावा देने वाली संस्था की भूमिका में ढाल लिया है, जो किसी देश के सामाजिक और आर्थिक विकास का अभिन्न अंग है। इन प्रयासों ने रंग दिखाया है, और कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों और संगठनों ने ऐसी नीतियां बनाई हैं जो उन मौलिक अधिकारों के अनुरूप हैं जिनकी गारंटी संयुक्त राष्ट्र सभी मनुष्यों को देता है। ऐसी कई घटनाओं के उदाहरण मौजूद हैं, जब मानवाधिकारों का उल्लंघन बहुराष्ट्रीय कंपनियों या स्थानीय तानाशाहों, या आतंकवादी संगठनों के द्वारा किया गया। इसलिए, एक ऐसा ढांचा मुहैया कराना अनिवार्य है जो इस धरती के सभी मनुष्यों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा करता हो और उनकी व्याख्या करता हो और जो निरंकुश संगठनों और संस्थाओं में जवाबदेही की भावना को जगाता हो।

मानवाधिकारों का संक्षिप्त इतिहास

मानवाधिकार एक ऐसी अवधारणा है जो मानव इतिहास में लगातार विकसित होती रही है। उन्हें कानूनों, परंपराओं और धर्मों के साथ हर युग में जोड़ा गया। कानून की संहिता का सबसे पहला उदाहरण हम्मूराबी का लेख पट था। उस लेख पट को सुमेर के राजा हम्मूराबी ने करीब 4000 साल पहले बनाया था। इस प्रकार की मिसाल और कानूनी रूप से बाध्यकारी दस्तावेज लोगों को मनमाने ढंग से सताए जाने और सज़ा दिए जाने से बचाते हैं।

मानवाधिकारों की अवधारणा पर सभी धर्मग्रंथों और शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है। मानवाधिकारों की मौजूदगी को सभी समाजों में जाना और माना जाता है। मानव अधिकारों के अवधारणात्मक विचार को प्रकृति की मर्जी समझे जाने से लेकर उसके कानूनी रूप में आने तक को विभिन्न कानूनी दस्तावेजों की मदद से बेहतर तरीके से बताया जा सकता है, जैसे:

- ब्रिटिश मैग्ना कार्टा 1215
- मनुष्यों के अधिकार का फ्रांस का ऐलान 1789
- अधिकारों का अमेरिकी बिल 1789
- जिनेवा सम्मेलन 1864

टिप्पणी

मानवाधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा से पहले कई उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटनाएं घटीं जो आखिर में इस घोषणा के रूप में सामने आईं। मानवाधिकारों के इतिहास में ये घटनाएं थी– मैग्ना कार्टा 1215, अमेरिकी घोषणा, मानवाधिकारों पर फ्रांस की घोषणा और यूएन चार्टर, 1945। जिन तात्कालिक घटनाओं ने सार्वभौमिक घोषणा को अवश्यंभावी बना दिया, वे थीं द्वितीय विश्व युद्ध में मानवाधिकारों के उल्लंघन की भयंकर घटनाएं जिन्होंने विश्व समुदाय को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि कुछ मानवाधिकारों का हक दुनिया भर में सभी को है और उनकी सुरक्षा अवश्य की जानी चाहिए। आधी शताब्दी से भी कम समय में, मानवाधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा (UDHR) को अकेला ऐसा सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाने लगा है जिसे बीसवीं सदी में तैयार किया गया और जिसे दुनिया भर में मानवाधिकारों का पैमाना माना जाता है। UDHR बीते समय के उदाहरणों के आधार पर जीवन–संरक्षण का संदेश देता है और उसे दुनिया की एक ऐसी इमारत की अत्यंत आवश्यक बुनियाद माना जाता है जिसमें सभी मनुष्य, आने वाली शताब्दियों में, गरिमा और शांति के साथ रह सकेंगे। जब द्वितीय विश्व युद्ध खत्म हो रहा था, दुनिया भर में मानवाधिकारों को मान्यता देने और उन्हें अपनाए जाने का माहौल तैयार हो चुका था।

चार बड़ी शक्तियों के नेता 1944 में डुंबर्ट ओक्स में मिले जो वाशिंगटन डीसी के जॉर्ज टाउन का एक राजकीय भवन था। तब तक 30 वर्षों के भीतर दो विश्व युद्ध लड़े जा चुके थे, और यूरोप में यहूदियों पर जो क्रूरतापूर्ण जुल्म किए गए थे उन पर यकीन करना भी मुश्किल था। ऐसा ही एशिया और यूरोप में युद्धबंदियों के साथ हुआ था। एक परमाणु बम बस गिरने ही वाला था जो यह दिखाने वाला था कि मानव जाति राष्ट्रों और व्यक्तियों को, सिर्फ इस वजह से कि वो अलग धर्म और नस्ल के हैं, निशाना बनाने के लिए कितनी भयंकर तबाही मचा सकती है। नेताओं ने महसूस किया कि राष्ट्रों और लोगों के लिए दुनिया में एक साथ रहने और अपनी समस्याएं सुलझाने का एक बेहतर तरीका होना चाहिए। इसलिए, उन्होंने एक ऐसी योजना बनाई जो संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के रूप में सामने आई। 1945 के अंत में, दुनिया भर के नेता संयुक्त राष्ट्र के गठन के लिए सैन फ्रांसिस्को में मिले। दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद से पहले के महान नेता फील्ड–मार्शल स्मट्स से प्रेरित होकर, उन्होंने यूएन के चार्टर की प्रस्तावना में मानवाधिकारों पर एक महत्वपूर्ण संदर्भ जोड़ा। (प्रस्तावना किसी भी कानूनी दस्तावेज का एक महत्वपूर्ण शुरुआती हिस्सा होता है, और वह इसके काम करने के प्रावधानों की बजाय, पृष्ठभूमि का वर्णन करता है।) प्रस्तावना का प्रासंगिक हिस्सा कहता है: 'हम संयुक्त राष्ट्र के लोग मौलिक मानवाधिकारों में मानव मात्र की गरिमा और उसके मूल्य में, पुरुषों और महिलाओं के समान अधिकारों तथा बड़े और छोटे राष्ट्रों के समान अधिकारों में अपने विश्वास को सशक्त करने के लिए दृढ़निश्चयी हैं।

मानवाधिकारों के इस जिक्र के अलावा यूएन चार्टर में इसका वर्णन छह और बार किया गया जिसमें मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं को लागू करने के प्रावधान हैं। इसके अतिरिक्त, काफी हद तक चेताओं पर करीब चालीस अमेरिकी गैर सरकारी संगठनों के दबाव के बाद धारा 68 को शामिल किया गया। इसके मुताबिक आर्थिक और सामाजिक परिषद की स्थापना की जानी थी ताकि मानवाधिकारों और आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में आयोग गठित किए जा सकें। नतीजे के तौर पर मानवाधिकारों पर आयोग का गठन हुआ। इस प्रकार, वह आयोग चुनिंदा संगठनों में से एक है जिसे सीधे

टिप्पणी

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर से शक्तियां मिलीं। अप्रैल 1946 में, अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट की विधवा, श्रीमती एलिएनॉर रूजवेल्ट को नौ सदस्यों के एक अंतरिक समूह की अध्यक्षता के लिए नियुक्त किया गया। जून तक, अंतरिम समूह ने सुझाव पेश किया कि नए आयोग को सबसे पहले मानव अधिकारों पर एक अंतर्राष्ट्रीय विधेयक तैयार करना चाहिए। आगे चलकर उसी साल, मानवाधिकारों पर अठारह सदस्यीय आयोग का गठन हुआ, एक बार फिर, श्रीमती एलिएनॉर रूज़वेल्ट को अध्यक्ष चुना गया। आयोग में चीन के पी.सी. चांग, फ्रांस के रेने कासिन और लेबनान के डॉ. चार्ल्स मलिक भी शामिल थे। आयोग की पहली बैठक जनवरी 1947 में हुई, उसने कई गंभीर मुद्दों पर विचार किया। इसके निर्णयों ने तब से लेकर अब तक मानवाधिकारों के विकास को काफी हद तक प्रभावित किया है। इसने निष्कर्ष निकाला कि एक संधि की बजाय इसे एक घोषणा तैयार करने की दिशा में काम करना चाहिए। (एक अंतर्राष्ट्रीय घोषणा, एक महत्वपूर्ण बयान होता है और अक्सर उसका उच्च नैतिक और राजनीतिक महत्व होता है, तथा वह एक सिफारिश से कहीं ज्यादा होती है, लेकिन यह किसी संधि से कम होती है, जो अंतर्राष्ट्रीय कानून में बाध्यकारी है।) शायद सबसे महत्वपूर्ण फैसला जो इसने लिया, वह था कि घोषणा में नागरिक और राजनीतिक तथा आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

कमीशन का मानना था कि घोषणा एक संक्षिप्त, प्रेरणादायी और उर्जावान दस्तावेज होना चाहिए जिसका इस्तेमाल आम लोग भी कर सकें। इसे मानवाधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय बिल के बाकी हिस्से के लिए एक आधार और केंद्रीय दस्तावेज होना चाहिए। इस तरह इसने ज्यादा कठिन समस्याओं को टाल दिया जिन पर तब विचार किया गया जब एक बाध्यकारी संधि पर चर्चा हुई– राज्य को अपने यहां इन अधिकारों को लागू करने के लिए किस तरह की भूमिका निभानी चाहिए, और क्या नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को लागू करने की प्रक्रिया आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लागू किए जाने से अलग होगी। यह सौभाग्य की बात है कि आयोग ने औपचारिक रूप से बाध्यकारी समझौतों को शुरुआती घोषणा से अलग कर दिया। हालांकि, घोषणा को दिसंबर 1948 में स्वीकृति मिली, दो समझौते, जैसे नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौता और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौता, जिसमें प्रत्येक राज्य के दायित्व का वर्णन किया गया था, उसका अंतिम रूप 1966 तक तैयार नहीं था, यानी इसे करीब अठारह साल बाद अपनाया गया।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

वर्ष 1948 की सार्वभौमिक घोषणा के विश्लेषण से पहले, यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि घोषणा, अन्य मानवाधिकारों के दस्तावेजों के साथ मिलकर, एक ऐसे दस्तावेज की शक्ल लेती है जिसे मानवाधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय विधेयक कहा जाता है। 'मानवाधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय विधेयक' को अपनाकर, जो अंतर्राष्ट्रीय कानूनी नजरिए से एक तकनीकी नाम नहीं है, हम तीन महत्वपूर्ण दस्तावेजों को स्वीकार करते है: 1948 की सार्वभौमिक घोषणा, और मानवाधिकारों पर 1966 के दो अंतर्राष्ट्रीय समझौते, जिनसे घोषणा के नियम पूरे हुए, और इस प्रकार मानवाधिकारों की एक मौलिक अंतर्राष्ट्रीय संहिता तैयार हुई। हालांकि इस अध्ययन का उद्देश्य, स्पष्ट तौर पर मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा है, और यही वह विषय है जिसकी अब हम चर्चा करने जा रहे हैं।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है UDHR सभी लोगों के लिए अधिकारों का एक मानकीकरण करने वाली थी, चाहे वो पुरुष हों या स्त्री, काले या गोरे, साम्यवादी या पूंजीवादी, विजेता या पराजित, अमीर या गरीब, अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक। UDHR की प्रस्तावना के पहले पैरा में, यह बताया गया कि 'जन्मजात गरिमा को मान्यता देने और मानव परिवार के सभी सदस्यों की समानता...' तथा उसे मान्यता देने के माध्यम से 'दुनिया में स्वतंत्रता, न्याय और शांति सुनिश्चित की जाए'।

धारा 1 इस अभियान की प्रेरणादायी प्रकृति को दर्शाती है। इसे भारी विवाद के बाद शामिल किया गया कि क्या यह जो सामने है उसे ही बता रहा है, या इसे मुख्य लेख की बजाए प्रस्तावना में शामिल किया जाना चाहिए। यह प्रतिध्वनित करने वाले शब्दों में कहता है कि-"सभी मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए हैं और उनकी गरिमा और अधिकार एक समान हैं। उन्हें तर्क और सोच-समझ के गुण मिले हैं और उन्हें एक दूसरे के प्रति भाईचारे की भावना से काम करना चाहिए।"

मुख्य लेख में इसे शामिल किए जाने का कारण यह था कि सभी मानवाधिकारों के ठोस आधार का जिक्र हो, मनुष्यों पर उनकी सोचसमझ के मुताबिक एक दूसरे के साथ नेकनीयती से व्यवहार करने का दायित्व डाला जाए, चाहे उनकी नस्ल, लिंग, संपत्ति इत्यादि से जुड़ी बातें कैसा भी भेद करती हों। और धारा 7 इस विषय को यह कहते हुए आगे बढ़ाती है कि सभी को कानून के सामने समानता का अधिकार है और उन्हें किसी भी भेदभाव से बचाव का अधिकार है।

धारा 3 और 27 संभवतः घोषणा के ठोस प्रावधानों का मूल हैं। वे प्रत्येक मनुष्य को जीने, स्वतंत्रता, व्यक्तिगत सुरक्षा और जीने के उचित स्तर का अधिकार देती हैं। पहले तीन मूल नागरिक और राजनीतिक अधिकार हैं, अंतिम एक आर्थिक और सामाजिक अधिकार है। जीने के उचित स्तर का अधिकार इस मायने में दिलचस्प है क्योंकि यह न सिर्फ किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य और स्वस्थ रहने के अधिकार को चिन्हित करता है, बल्कि उसके पूरे परिवार के स्वास्थ्य, भोजन, कपड़ा, मकान और चिकित्सा सुविधा, तथा सामाजिक सुरक्षा के अधिकार की भी बात करता है। इन सब अधिकारों में अति महत्वपूर्ण है धारा 28 और 29। (घोषणा में करीब तीस धाराएं हैं, जिनमें से सात को नागरिक और राजनीतिक अधिकारों से जुड़ा कहा जा सकता है तथा आठ को आर्थिक और सामाजिक अधिकारों से।

धारा 28 और 29 पर ज्यादा चर्चा नहीं हुई है, और उन्हें दो समझौतों में कानूनी रूप से बाध्य होने की शक्ति नहीं मिली है। लेकिन वे अपने महत्व के लिहाज से विस्फोटक हैं। धारा 28 संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की जिम्मेदारी पर जोर डालती है ताकि नागरिक और राजनीतिक तथा आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार बनाई जाए जो मानव अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति की इजाजत देती हो। इससे वर्तमान व्यवस्था या उन योजनाओं पर सवाल उठाना सरल हो गया है जो शायद ही बड़ी समस्याओं पर कोई समाधान पेश करती हैं जैसे कि व्यापार और निवेश से जुड़ी व्यवस्था तथा अंतर्राष्ट्रीय अपराध, जैसे नरसंहार और युद्ध अपराध रोकने के लिए योजना।

धारा 30 भी बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उस जिम्मेदारी का अहसास कराती है जो सभी लोगों को अपने समुदाय के प्रति है। यहां गौर कीजिए कि यह धारा राज्य की बात नहीं करती। ऐसा दावा करने में एक खतरा है क्योंकि कई तानाशाह और कुछ

लोकतांत्रिक नेताओं ने भी दावा किया है कि लोगों का राज्य के प्रति अहस्तांतरणीय कर्तव्य होता है। लेकिन ऐसा नहीं है। मनुष्य मात्र का अपने साथियों के प्रति कुछ दायित्व जरूर होता है, जैसा कि धारा 1 में बताया गया है।

टिप्पणी

कदाचित आधी सदी के बाद UDHR पर देखने से लगता है कि पर्यावरण के क्षेत्र में कुछ कमी रह गई है। हालांकि, कुछ अधिकारों से इसका अर्थ भी निकाला जा सकता है, जैसे जीवन और जीवन के एक उचित स्तर का अधिकार।

तीन महत्वपूर्ण समूहों के प्रति आभार प्रकट करना चाहिए। सबसे पहले, एलिएनॉर रूज़वेल्ट और उनके सलाहकारों का जो मुख्यतया अमेरिका के विदेश मंत्रालय के थे। किसी तरह, उन्होंने सामान्य तौर पर बेहद लंबी बैठकों के दौर में सद्भावपूर्ण माहौल बनाए रखा। दूसरा, उन महत्वपूर्ण लोगों का जिन्होंने समिति को मसौदे सौंपे। इन लोगों में नामी अंतर्राष्ट्रीय वकील, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर हेर्श लाउटरपाएट और ब्रिटेन के लेखक एचसी वेल्स शामिल थे। एक और मसौदा भी था जो मानवाधिकारों और कर्तव्यों पर अमेरिकी घोषणा के लिए तैयार किया गया था। और आखिर में, प्रोफेसर जे पी हंफ्री के नेतृत्व में सचिवालय ने बहुत बड़ा काम किया, जिसने आयोग के सामने सभी सामग्रियों को पेश किया।

मसौदे को तब आर्थिक और सामाजिक परिषद के पास भेजा गया, जिसने लेख में बदलाव नहीं किया, बल्कि इंतज़ाम किया कि यह संयुक्त राष्ट्र महासभा की तीसरी कमेटी को भेजा जाए, लेकिन वहां यह मुश्किल में फंस गया। यह सौभाग्य की बात है कि उस वक्त कमेटी के चेयरमैन चार्ल्स मलिक थे। कम से कम इक्यासी लंबी बैठकों के बाद, जिनमें 168 संशोधन के प्रस्तावों पर गौर किया गया, कमेटी आखिरकार, 6 दिसंबर 1948 को सहमति पर पहुंची। ठीक उस समय यह महासभा में पारित किए जाने के लिए पहुंची जब उसकी आखिरी वार्षिक बैठक चल रही थी।

10 दिसंबर, 1948 की शाम, महासभा ने UDHR को बिना किसी संशोधन के सहमति दे दी, सिर्फ दो दिन बाद महासभा ने अगले साल के लिए अपनी बैठक टाल दी। इसके विरोध में एक भी वोट नहीं पड़ा लेकिन छह कम्यूनिस्ट देश जो तब संयुक्त राष्ट्र के सदस्य थे, और सऊदी अरब तथा दक्षिण अफ्रीका ने मतदान का बहिष्कार किया। महासभा ने सराहना में अनोखा उदाहरण पेश करते हुए, श्रीमती रूज़वेल्ट का खड़े होकर तालियों से सम्मान किया।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का बढ़ता कद

इस प्रकार, शीतयुद्ध की शुरुआत से ठीक पहले और कई सकारात्मक गतिविधियां के धीमे पड़ने के दौरान, सार्वभौमिक घोषणा संयुक्त राष्ट्र की जटिल और राजनीतिक रूप से खतरनाक प्रक्रिया से सफलतापूर्वक बाहर आ गई और मानवाधिकारों का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण बन गई। यह घोषणा कम्यूनिस्ट और मध्य पूर्व के कुछ देशों की वजह से पूरी मान्यता हासिल करने में कामयाब नहीं हुई, लेकिन उन्होंने इसके खिलाफ वोट नहीं दिया। शुरुआती मुश्किलों और विरोधों के बावजूद, घोषणा ने विश्व में एक कद हासिल कर लिया है जिसके बारे में 1948 में इसके सबसे आशावान संस्थापकों को भी उम्मीद नहीं थी।

पहले इसे सहमति मिली (अक्सर ना-नकुर के बाद, जो सही भी है) एक मापदंड के समृद्ध दस्तावेज के रूप में, उन देशों के द्वारा भी जो मानवाधिकारों के पूरे अभियान पर ही शक करते हैं। बर्मा, अर्जेंटीना, चीन और पहले के यूगोस्लाविया जैसे देशों पर जब UDHR के उल्लंघन का आरोप लगता है और उन्हें अपना बचाव करना पड़ता है तब ऐसा लगता है कि इसने महत्वपूर्ण और राजनीतिक तथा नैतिक दर्जा हासिल कर लिया है।

दूसरा और समान रूप से महत्वपूर्ण यह है कि UDHR लगभग यूएन चार्टर का ही एक विस्तार बन गया है। हालांकि चार्टर में सिर्फ कुछ ही धाराएं हैं जो मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का जिक्र करती हैं, यह अब सामान्य-सी बात हो गई है कि UDHR का जिक्र उन अधिकारों और स्वतंत्रता के तथ्यों को सामने रखने के लिए किया जाता है। इसलिए, यह यूएनए का ही एक अंग बन गया है, और अक्सर संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रस्तावों, और बहस में इसका जिक्र होता है, उदाहरण के लिए 1960 में औपनिवेशिक देशों और लोगों को स्वतंत्रता देने की घोषणा में इसका जिक्र किया गया था। UDHR की तीसवीं वर्षगांठ पर, तेहरान में 1978 में मानवाधिकारों के सम्मेलन में, चौरासी देशों ने एकमत से ऐलान किया कि UDHR सभी लोगों के अहस्तांतरणीय अधिकारों पर एक आम समझ रखता है, तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के सदस्यों के दायित्वों को शामिल करता है।

तीसरा, अगर सभी नहीं तो भी ज्यादातर UDHR के प्रस्ताव निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीय पारंपरिक कानून का हिस्सा बन गए हैं। अंतर्राष्ट्रीय वकीलों में यह विचार तेजी से जोर पकड़ रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय कानून में सिर्फ कानून नहीं आते, जैसे समुद्र में जहाज चलाने संबंधी नियम बल्कि संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में वोट करने जैसी गतिविधियां भी उसमें शामिल हैं। दो मानवाधिकारों के समझौतों को बड़ी संख्या में मान्यता मिलने और इस तथ्य से कि UDHR में वर्णित अधिकार सामान्य तौर पर बेहतरीन नैतिक आधार और अच्छे व्यवहार जैसी शर्तों पर आधारित हैं ये मतलब निकला कि अब इस बात को किसी प्रकार की चुनौती नहीं दी जा सकती कि UDHR के अधिकार अंतर्राष्ट्रीय पारंपरिक कानून का हिस्सा बन चुके हैं। इसका अर्थ यह भी निकला कि, संधियों के विपरीत, जो सिर्फ उसी देश को बांधते हैं जिसने उसे कबूल किया है, इससे दुनिया के सभी देश बंधे हैं, चाहे उनकी धारणा इस विषय में कुछ भी हो। एक देश कभी भी अंतर्राष्ट्रीय पारंपरिक कानून को खारिज नहीं कर सकता, जबकि एक संधि के साथ वह ऐसा कर सकता है। इन तीन कारणों से, जिन लोगों ने बुलंद हौसले के साथ UDHR के प्रावधानों को तैयार और स्वीकृत किया, उन्होंने मानव जाति के लिए एक ऐसी बाध्यकारी एजेंसी बना दी है जो पिछली शताब्दियों में महान धार्मिक योगदानों के समतुल्य है। UDHR एक शक्तिशाली दस्तावेज है जो सभी के लिए मानवीय गरिमा और शांति हासिल करने के उद्देश्य से और सशक्त होता जा रहा है। मानवाधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा में जिन अधिकारों का जिक्र है, उन्हें इन चार वर्गों में बांटा जा सकता है-

(क) सामान्य (धारा 1 और 2)

(ख) नागरिक और राजनीतिक अधिकार (धारा 3 से 21)

(ग) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार (धारा 22 से 27)

(घ) निष्कर्ष (धारा 28 से 30)

टिप्पणी

10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का ऐलान किया और उसे स्वीकार किया। इस ऐतिहासिक फैसले के बाद, महासभा ने सभी सदस्य देशों से घोषणा के मसौदे को सार्वजनिक करने का आह्वान किया 'ताकि ये एक से दूसरे तक पहुंचे, दिखे, पढ़ा जाए और इसकी व्याख्या की जाए, खास तौर पर स्कूलों और अन्य शैक्षणिक संस्थानों में, किसी देश या क्षेत्र के साथ राजनीतिक दर्जे को लेकर होने वाले भेदभाव किए बिना।'

मानवाधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा की प्रस्तावना

सार्वभौमिक घोषणा में चौंकाने वाले आंकड़ों पर ध्यान खींचा गया, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मानवाधिकारों के खिलाफ किए गए भयंकर अपराधों की याद दिलाई गई जो सबसे महत्वपूर्ण तथ्यों में से एक थे जिनकी वजह से युद्ध के विजेता राष्ट्रों ने इस विषय को गंभीरता से लिया और मानवाधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताई। यह प्रतिबद्धता ऐसी थी, जिसे आप अनुलग्नक में देखेंगे, कई बयानों में देखेंगे जो संयुक्त राष्ट्र महासंघ के चार्टर में हैं, जो उन मौलिक अधिकारों में विश्वास जताते हैं जो संयुक्त राष्ट्र के सभी लोगों के पास हैं। यह घोषणा की प्रस्तावना का दूसरा अनुच्छेद है जो हमें बताता है कि 'मानवाधिकारों के लिए अनादर और अपमान ने ही बर्बर कार्रवाइयों को जन्म दिया है जिसने मानव जाति की सोच को झकझोर कर रख दिया।' यह निश्चित तौर पर सच है कि, आज के बाद अंतर्राष्ट्रीय समुदाय इस बात से पूरी तरह अवगत है कि, यदि वह मानव जाति के इतिहास में ऐसी घटनाओं को होने से रोकना चाहता है, तो इसे अपने आप को सभी लोगों के मानवाधिकारों के प्रचार, प्रोत्साहन और कारगर संरक्षण में झोंक देना होगा।

आधी शताब्दी से भी कम समय में, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR) को एक मात्र सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जाने लगा है, जिसे बीसवीं शताब्दी में तैयार किया गया और मानवाधिकारों पर विश्वस्तरीय मानक माना जाता है।

UDHR बीते समय के उदाहरणों के आधार पर जीवन-संरक्षण संदेश देता है, और उसे दुनिया की एक ऐसी इमारत की अत्यंत आवश्यक बुनियाद माना जाता है, जिसमें सभी मनुष्य, आने वाली शताब्दियों में, गरिमा और शांति के साथ रह सकेंगे। यह मानव परिवार के सभी सदस्यों के अंतर्जात गरिमा और समानता तथा अहस्तांतरणीय अधिकारों को स्वतंत्रता, न्याय तथा विश्व में शांति के आधार के तौर पर बताता है। सदस्य राष्ट्र शपथ लेते हैं कि मानव अधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता के पालन के लिए संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से उनके प्रति दुनिया भर में आदर को बढ़ाने का काम करेंगे।

प्रस्तावना का प्रासंगिक हिस्सा कहता है–

क्योंकि मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्जात गरिमा और समानता तथा अहस्तांतरणीय अधिकार स्वतंत्रता, न्याय और दुनिया में शांति की बुनियाद हैं।

क्योंकि मानवाधिकारों के लिए अनादर और अपमान का नतीजा बर्बर कार्रवाइयों और मनुष्यों की सोच को उद्वेलित करने वाला है, क्योंकि ऐसे विश्व का उदय जिसमें

सभी मनुष्य अभिव्यक्ति और धर्म की स्वतंत्रता तथा भय और भूख से मुक्ति का लाभ उठाएंगे, उसे आम लोगों की सबसे ऊंची आकांक्षा के रूप में घोषित किया गया है।

टिप्पणी

क्योंकि यह अनिवार्य है कि, यदि मनुष्य को बदला लेने के लिए और आखिरी उपाय के रूप में, अत्याचार और दमन के खिलाफ बगावत करने के लिए विवश नहीं करना चाहते तो रक्षा कानून के द्वारा की जानी चाहिए, क्योंकि राष्ट्रों के बीच दोस्ताना संबंधों को बढ़ावा और विकसित करने के अवसर दिए जाने चाहिए।

क्योंकि संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने चार्टर में मौलिक मानवाधिकारों पर फिर से अपना विश्वास जताया है, मानव मात्र की गरिमा और मूल्यों में, तथा पुरुष और महिलाओं के समान अधिकारों में और वे सामाजिक प्रगति और जीवन के बेहतर मापदंडों को व्यापक स्वतंत्रता के माहौल में विकसित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

क्योंकि सदस्य देशों ने प्रतिज्ञा ली है कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता के प्रति आदर को बढ़ावा देंगे क्योंकि इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति एक आम समझ सबसे अधिक महत्व का विषय है, इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह सफल करने के लिए, अब, इसलिए महासभा इस मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का ऐलान सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए एक आम मापदंड के तौर पर करती है जिसका नतीजा यह होगा कि सभी व्यक्ति तथा समाज के सभी अंग, इस घोषणा को सदैव ध्यान में रखकर, शिक्षा और ज्ञान से इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं को हासिल करने का प्रयास करेंगे तथा प्रगतिशील उपायों से, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय उपायों से, उन्हें सार्वभौमिक और प्रभावी मान्यता दिलाने के लिए, सदस्य राष्ट्रों और अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले लोगों, दोनों स्तरों पर जोर-शोर से प्रयत्न करेंगे।

अपनी प्रगति जांचिए

1. कानून संहिता का सबसे पहला उदाहरण है-

   (क) ब्रिटिश मैग्ना कार्टा (ख) हम्मूराबी का शिलापट

   (ग) यू.एन. चार्टर (घ) कोई नहीं

2. UHDR किससे संबंधित है?

   (क) वैश्विक मानवाधिकारों से (ख) पर्यावरण से

   (ग) राष्ट्रीय सुरक्षा से (घ) आतंकवाद से

5.3 पर्यावरण

बीसवीं सदी में इस बात को लेकर जागरूकता फैलनी शुरू हुई कि पृथ्वी के वायुमंडल में जमा कार्बन डाईऑक्साइड से ग्रीनहाउस प्रभाव पैदा हो सकता है और इस ग्रह का तापमान बढ़ सकता है। इसके बाद से ही पर्यावरणीय आंदोलन धीरे-धीरे बढ़ते जा रहे हैं। जब आधुनिकीकरण और आर्थिक विकास के साथ तीव्र औद्योगिकीकरण समाज में जगह बनाता जा रहा था, तो इसके सबसे बड़े साइड-इफैक्ट, कार्ब डाइऑक्साइड और

ऐसी ही अन्य ग्रीन हाउस गैसों के उत्पादन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया, लेकिन ये स्थिति ज्यादा देर तक नहीं रही।

टिप्पणी

इक्कीसवीं सदी के मध्य तक, यह स्पष्ट हो गया कि इंसानों के कामों से नुकसानदायक गैसों की सघनता बढ़ती जा रही है, जिससे ग्लोबल वॉर्मिंग की प्रक्रिया तेज हो रही है। अब तकरीबन सभी वैज्ञानिक सहमत है कि हमें इस प्रक्रिया को रोकना चाहिए और इसे पलटना चाहिए–वरना हमें प्राकृतिक आपदाओं की विनाशकारी बाढ़ का सामना करना पड़ेगा जो कि धरती पर हमारे परिचित जीवन को बदल देगी।

इसके खतरनाक सबूत हैं कि वो अहम स्थितियां आ चुकी हैं या निकल चुकी है, जबकि मुख्य इकोसिस्टम और ग्रहीय जलवायु तंत्र में अनुत्क्रमणीय परिवर्तन हो गए, जिससे अब और ज्यादा तत्काल काम करने की आवश्यकता आन पड़ी है। अमेजॉन के वर्षावन और आर्किटक टुंड्रा जैसे विविध पारस्थितिकी तंत्र, गर्मी और शुष्कता के जरिए नाटकीय परिवर्तन की दहलीज पर पहुंच रहे होंगे। पर्वतीय ग्लैशियरों के पिघलने का खतरा हो रहा है, और सबसे शुष्क महीनों में पानी की कम आपूर्ति का खतरा पैदा हो रहा है। इसकी प्रतिक्रिया होगी जिसे आने वाली पीढ़ियां सहन करेंगी।

इतना ही नहीं, तेल जैसे सीमित संसाधन, तीव्र आर्थिक विकास की ओर बढ़ रहे राष्ट्रों के बीच युद्ध के कारण बन रहे हैं। इसके कारण प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हुआ। इसके अलावा, देश अब संसाधनों के लिए लड़ रहे हैं, जो कि लगातार खतरनाक स्थिति बन रही है क्योंकि अनेक देश परमाणु हथियारों और रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल कर रहे हैं या इस्तेमाल की धमकी दे रहे हैं जिनसे न केवल इंसानी जानों का ही नुकसान नहीं होगा, बल्कि पर्यावरण के लिए भी यह सब विनाशकारी साबित होगा।

यही कारण है कि जल्द से जल्द वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों की पहचान करने और उनके हल निकालने की जरूरत है। यहां कुछ मुख्य वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दे दिए जा रहे हैं–

ग्लोबल वॉर्मिंग

वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड CO_2 तथा कुछ अन्य गैसों का संग्रहण पृथ्वी की सतह के पास सौर विकरण को रोक लेता है, जिससे ग्लोबल वॉर्मिंग पैदा होती है। इससे अगले 45 सालों में समुद्री जलस्तर इतना बढ़ जाएगा कि अनेक निचले तटीय शहर और नदी डेल्टा उसमें डूब जाएंगे। इससे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय कृषि उत्पादन और व्यापार व्यवस्थाओं पर भी विनाशकारी असर पड़ेगा।

ओजोन क्षय

फोम के उत्पादन और एरोसोल के इस्तेमाल के दौरान मुक्त होने वाली गैसों से वायुमंडलीय ओजोन परत के क्षरण से एक और खतरा पैदा होता है। इस तरह से ओजोन के पर्याप्त नुकसान से इंसानों और जानवरों की सेहत पर, और समुद्री खाद्य श्रंखला के आधार में कुछ जीव स्वरूपों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ सकते हैं। मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल ने हमें बताया कि कि नियमों के प्रभावी क्रियान्वयन से किस तरह से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। आज ओजोन परत में सुधार के लक्षण दिखने लगे हैं।

टिप्पणी

वायु प्रदूषण

कई तरह के वायु प्रदूषकों से पेड़ों और झीलों की मौत हो रही हैं, और इमारतों तथा सांस्कृतिक धरोहरों को नुकसान हो रहा है। इन प्रदूषकों से उत्सर्जन के स्थानों के पास ही नहीं, बल्कि कई बार तो हजारों मील दूर के स्थानों पर भी नुकसान होता है। वायु प्रदूषण से होने वाला नुकसान कुछ नए औद्योगिकृत देशों में भी दिखने लगा है। विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाने की जरूरत है। कार्बन क्रेडिट सिस्टम के साथ-साथ उत्सर्जन मानक निर्धारण (पेरिस सम्मेलन) से भी वायु प्रदूषण घटाने में मदद मिलेगी।

वनाच्छानदन का नुकसान

वनों के कम होने से भू-क्षरण, गाद, बाढ़, स्थानीय जलवायु परिवर्तन जैसे विनाश हो सकते हैं। वनों और वनीय भूमि के कम होते जाने से पौधों और जानवरों की अनेक प्रजातियां लुप्त हो रही हैं, और पृथ्वी के पारस्थितिकी तंत्र की जेनेटिक विविधता विनाशकारी तरीके से कम हो रही है जबकि इसे हर कीमत पर संरक्षित किए जाने की जरूरत है।

जल एवं स्वच्छता

पृथ्वी का वैसे तो 70 प्रतिशत हिस्सा पानी से ढंका है, लेकिन वास्तव में ताजा पानी(गैर-समुद्री) पानी की श्रेणी में केवल 2.5 प्रतिशत पानी ही आता है, और उसमें से भी 1 प्रतिशत ही नियमित इस्तेमाल के लिए उपलब्ध है। जल प्रबंधन आज वैश्विक जरूरत है जो कि न केवल सूखा जैसी स्थितियों को रोकने के लिए जरूरी है, बल्कि समान वितरण सुनिश्चित करने के लिए भी जरूरी है। इतना ही नहीं, सही इस्तेमाल, और समुद्री पारस्थितिकी तंत्र, आर्द्रभूमियों, मूंगा-चट्टानों आदि के संरक्षण पर भी ध्यान देने की जरूरत है।

हानिकारक कचरे का अनुचित निस्तारण

अनेक मामलों में, आजकल, रासायनिक उद्योगों से निकलने वाले जहरीले पानी के निस्तारण के जो तरीके अपनाए जाते हैं, उनमें अस्वीकार्य खतरे शामिल होते हैं। परमाणु उद्योग का रेडियोएक्टिव कचरा सदियों तक नुकसानदायक बना रहता है। ये कचरा उत्पन्न करने वाली गतिविधियों से नुकसान ज्यादातर तो उन्हें भी झेलना पड़ता है जिन्हें इन गतिविधियों से किसी तरह का फायदा नहीं होता है। इन संसाधनों के प्रबंधन के लिए और ज्यादा कड़े नियामन बनाने की जरूरत है।

मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें उत्पादक शुष्क और अर्ध-शुष्क जमीन आर्थिक रूप से अनुत्पादक हो जाती है। क्षेत्रीय पारस्थितिकी तंत्र की संपूर्णता के लिए अन्य खतरों के अलावा, बड़े पैमाने पर जंगलों का खात्मा भी शामिल है। उस क्षेत्र में प्रत्यक्ष और नाटकीय प्रभावों के अलावा, या पास के क्षेत्रों में भी रेत के फैलाव, या जल क्षेत्र में बदलावों तथा मृदा-क्षरण और गाद बनने का खतरा बढ़ रहा है।

टिप्पणी

स्टॉकहोम सम्मेलन

पर्यावरण की ओर दुनिया का सबसे पहली बार ध्यान 1972 में स्टॉकहोम में हुए संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन में खींचा गया था। मानव पर्यावरण पर छब्बीस सिद्धांतों वाली घोषणा पारित की गई जिसमें मुख्य उद्देश्य राष्ट्रों के विकास में पर्यावरणीय समस्याओं की बाधाओं से उबरना, और स्वच्छ तथा स्वस्थ जीवन योग्य परिस्थितियां मुहैया कराना था। स्टॉकहोम घोषणा का एक अहम पहलू मानवीय पर्यावरण के विकास के लिए कार्ययोजना का प्रारूप तैयार करने की रणनीति थी। इसके अलावा, घोषणा में कहा गया था कि मानव के लिए स्वस्थ पर्यावरण सुनिश्चित करने के लिए आर्थिक और सामाजिक विकास जरूरी है। इसी वजह से इसे पर्यावरण का मैग्ना कार्टा कहा जाता है। स्वतंत्रता, समानता और गुणवत्तापूर्ण पर्यावरण में जीवन की पर्याप्त परिस्थितियां और कल्याण मानव का बुनियादी अधिकार है; और वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ी के लिए पर्यावरण के संरक्षण और सुधार की पूरी जिम्मेदारी मानव की ही है। 1972 के स्टॉकहोम घोषणा में कहा गया कि मानव का प्राकृतिक और मानव-निर्मित पर्यावरण उसकी भलाई और, जीवन के अधिकार समेत उसके बुनियादी अधिकारों के इस्तेमाल के लिए जरूरी है। उसके बाद से विद्वानों के बीच एक सहमति रही है। अंतरराष्ट्रीय कानून के तहत, स्वच्छ पर्यावरण को मानव अधिकार के रूप में औपचारिक रूप से शामिल करना और मान्यता देने तथा इस पर सहमति देना तथा इसे लागू करना अंतरराष्ट्रीय समुदाय और सरकारों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करने का अच्छा तरीका हो सकता है कि वे पर्यावरण के इस्तेमाल में टिकाऊपन सुनिश्चित करने के अपने प्रयासों को तेज करें।

स्टॉकहोम घोषणा की प्रस्तावना

संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन स्टॉकहोम में 5 से 16 जून 1972 को हुआ था, और इसमें दुनिया के लोगों को मानवीय पर्यावरण के संरक्षण तथा मजबूती के लिए प्रेरित करने तथा दिशानिर्देश देने के लिए समान रवैये और समान सिद्धातों पर विचार किया गया। इसमें निम्न बातें कहीं गई थीं:

1. मनुष्य अपने पर्यावरण का जीव भी है और उसका सृजक भी, जिससे उसे भौतिक आजीविका मिलती है और बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, और आध्यात्मिक विकास का अवसर भी मिलता है। इस ग्रह पर मानव जाति के लंबे और जटिल विकास में एक स्थिति वह भी आ गई जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के जरिए मनुष्य ने अपने पर्यावरण को अनगिनत तरीकों से तथा अप्रत्याशित मात्रा में बदलने की शक्ति हासिल कर ली। मनुष्य के पर्यावरण के दोनों पहलू, प्राकृतिक और मानव-निर्मित, उसकी भलाई और जीवन के अधिकार समेत उसके बुनियादी मानवीय अधिकारों के इस्तेमाल के लिए जरूरी हैं।
2. मानवीय पर्यावरण का संरक्षण और सुधार, एक अहम मुद्दा है जो कि दुनिया भर में जनकल्याण और आर्थिक विकास को प्रभावित करता है। यह समूची दुनिया के लोगों की तत्काल इच्छा है, और सभी सरकारों का कर्तव्य भी है।
3. मनुष्य निरंतर अनुभव हासिल करता रहा है, और खोज, आविष्कार, सृजन तथा तरक्की में लगा रहता है। हमारे समय में मनुष्य अपने परिवेश में बदलाव की

टिप्पणी

अपनी क्षमता का अगर बुद्धिमानी से इस्तेमाल करे तो उससे सभी लोगों को विकास के फायदे मिल सकते हैं, और जीवन की गुणवत्ता को सुधारने के अवसर बढ़ सकते हैं। अगर वह अपनी क्षमता का गलत तरीके से या लापरवाही से इस्तेमाल करे तो वही क्षमता मानव जाति और मानवीय पर्यावरण को बेहिसाब नुकसान पहुंचा सकती है। हम अपने चारों तरफ पृथ्वी पर अनेक क्षेत्रों में मानव जनित नुकसानों के बढ़ते सबूत देखते हैं: जल, वायु, पृथ्वी और जीवों में प्रदूषण के खतरनाक स्तर; जीवमंडल के पारस्थितिकीय संतुलन में मुख्य और अवांछित विघ्न; अपूर्णीय संसाधनों की विनाश और क्षय; और मानव निर्मित पर्यावरण में, खासतौर पर जीवन और कार्य के पर्यावरण में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक सकल क्षतियां।

4. विकासशील देशों में पर्यावरण से संबंधित ज्यादातर समस्याएं उनके अल्प-विकास के कारण हैं। लाखों लोग मानवीय मर्यादा के न्यूनतम स्तर से काफी नीचे की जिंदगी जीते हैं, उनके पास पर्याप्त रोटी, कपड़ा और मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता उपलब्ध नहीं है। इसलिए, विकासशील देशों को अपने प्रयासों की दिशा विकास की ओर मोड़नी चाहिए और अपनी प्राथमिकताएं तथा पर्यावरण को सुरक्षित करने और सुधारने के उपाय ध्यान में रखने चाहिए। इसी उद्देश्य के लिए, औद्योगिक देशों को उनके और विकासशील देशों के बीच की खाई को कम करने के प्रयास करने चाहिए। औद्योगिकीकृत देशों में पर्यावरण की समस्याएं आमतौर पर उद्योगीकरण और प्रौद्योगिकीय विकास से संबंधित हैं।

5. आबादी की स्वाभाविक वृद्धि पर्यावरण के संरक्षण में लगातार समस्याएं पैदा करती है, और इन समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त नीतियों और उपायों को अपनाया जाना चाहिए जो कि उचित भी है। दुनिया की सारी चीजों में मनुष्य सबसे कीमती है। लोग ही सामाजिक प्रगति करते हैं, सामाजिक धन पैदा करते हैं, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास करते हैं, और अपने कड़े परिश्रम से, मानवीय पर्यावरण को लगातार बदलते हैं। सामाजिक प्रगति तथा उत्पादन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, के साथ-साथ पर्यावरण सुधार की मनुष्य की क्षमता हर दिन बढ़ रही है।

6. इतिहास का वह बिंदु आ चुका है जब हमें पूरी दुनिया में अपने कार्यों को उनके पर्यावरणीय नतीजों के हिसाब से अत्यधिक सतर्कता से आकार देना चाहिए। नादानी या उदासीनता के जरिए हम पृथ्वी के पर्यावरण को भारी और कभी ठीक न किया जा सकने वाला नुकसान पहुंचा सकते हैं जबकि इसी पर हमारा जीवन और हमारी भलाई टिकी हुई है। इसके विपरीत, पूरी जानकारी और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों के जरिए, हम अपने तथा अपनी आने वाली पीढ़ी के लिए, मानवीय जरूरतों और आशाओं को पूरा करते हुए पर्यावरण में बेहतर जीवन हासिल कर सकते हैं। पर्यावरणीय गुणवत्ता को सुधारने और बेहतर जीवन रचना की व्यापक संभावनाएं हैं। जरूरत है उत्साहपूर्वक किंतु शांत मन से लगनपूर्वक व्यवस्थित काम करने की। प्रकृति की दुनिया में स्वतंत्रता हासिल करने के उद्देश्य से, मनुष्य को अपने ज्ञान का इस्तेमाल प्रकृति के साथ मिलकर बेहतर पर्यावरण का निर्माण करना चाहिए। वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण का संरक्षण और सुधार मानव जाति

के लिए एक आवश्यक लक्ष्य बन गया है जिसे शांति तथा विश्वव्यापी आर्थिक और सामाजिक विकास के स्थापित और बुनियादी लक्ष्यों के साथ मिलकर और सद्‌भावनापूर्ण तरीके से हासिल करना चाहिए।

टिप्पणी

7. इस पर्यावरणीय लक्ष्य को हासिल करने के लिए नागरिकों तथा समुदायों को, और उद्योगों तथा संस्थाओं को हर स्तर पर जिम्मेदारी स्वीकार करनी होगी, और सबको समान रूप से बराबरी से भागीदारी करनी होगी। जीवन के हर क्षेत्र के लोगों के साथ-साथ अनेक क्षेत्रों के संगठनों को, अपने मूल्यों तथा अपने मिले-जुले कार्यों के द्वारा, भविष्य की दुनिया के पर्यावरण को आकार देना होगा।

स्थानीय और राष्ट्रीय सरकारों को अपने कार्यक्षेत्र के अंदर बड़े पैमाने पर पर्यावरणीय नीति और कार्यों का सबसे बड़ा जिम्मा उठाना होगा। इस क्षेत्र में विकासशील देशों को उनकी जिम्मेदारी उठाने के लिए मदद करने के लिए संसाधन जुटाने के क्रम में अंतरराष्ट्रीय सहयोग की भी जरूरत है। पर्यावरणीय समस्याओं की बढ़ती श्रेणी के लिए समान हित में देशों के बीच गहन सहयोग, और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के कार्य की जरूरत होगी, क्योंकि ये समस्याएं क्षेत्रीय हैं या किसी हद तक वैश्विक है या वे समान अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र को प्रभावित करती हैं।

सम्मेलन ने लोगों के लाभ और उनकी आने वाली पीढ़ियों के लिए, सरकारों और लोगों से मानवीय पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए सामूहिक प्रयास करने को कहा।

स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धांत

अब स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धांतों की चर्चा करते हैं।

सिद्धांत 1

मर्यादापूर्ण जीवन और सुख देने वाले पर्यावरण में स्वतंत्रता, समानता और जीवन की पर्याप्त परिस्थितियों पर मनुष्य का बुनियादी अधिकार है, और वर्तमान तथा भविष्य की पीढ़ियों के लिए पर्यावरण के संरक्षण और सुधार की उसकी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इस संदर्भ में, रंगभेद, नस्लीय भेद, पक्षपात, उपनिवेशीय तथा अन्य तरह के दमन, और विदेशी प्रभुत्व को प्रोत्साहन देने वाली नीतियों की निंदा की जाती है और उन्हें खत्म किया जाएगा।

सिद्धांत 2

हवा, पानी, जमीन, जीव-जंतु और वनस्पतियों, तथा खासतौर पर प्राकृतिक पारस्थितिकी का प्रतिनिधित्व करने वाले उदाहरणों समेत पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों को सावधानीपूर्वक नियोजन या प्रबंधन के जरिए वर्तमान और भावी पीढ़ियों के लाभ के लिए बचाया जाना चाहिए।

सिद्धांत 3

महत्वपूर्ण नवीनीकरण योग्य संसाधनों के उत्पादन की पृथ्वी की क्षमता को बनाए रखना चाहिए, और जहां कहीं व्यावहारिक हो, इसे बहाल करना चाहिए या इसमें सुधार करना चाहिए।

टिप्पणी

सिद्धांत 4

वन्यजीवन और उनके आवासन की धरोहर को बचाने और समझदारी से उसका प्रबंधन करने की मनुष्य की विशिष्ट जिम्मेदारी है, क्योंकि प्रतिकूल कारकों के मेल से अब यह गंभीर खतरे में है। वन्यजीवन समेत प्रकृति संरक्षण को इसलिए, आर्थिक विकास के लिए योजना बनाते समय अहमियत दी जानी चाहिए।

सिद्धांत 5

पृथ्वी के गैर नवीनीकरण योग्य संसाधनों को इस तरह से इस्तेमाल किया जाना चाहिए कि वे भविष्य में खात्मे के खतरे से बचे रहें, और यह सुनिश्चित किया जाए कि इस तरह के इस्तेमाल का लाभ पूरी मानव जाति में बँटे।

सिद्धांत 6

बहुत ज्यादा मात्रा और सघनता में जहरीले पदार्थों या अन्य पदार्थों का निकलना, और ऊष्मा का मुक्त होना कि जो पर्यावरण के इसे नुकसानरहित बनाने की क्षमता से ज्यादा हो, रोका जाना चाहिए ताकि पारस्थितिकी तंत्र पर गंभीर या अनुत्क्रमणीय नुकसान न हो। बीमार देशों के लोगों के प्रदूषण के खिलाफ न्यायपूर्ण संघर्ष का समर्थन किया जाना चाहिए।

सिद्धांत 7

राष्ट्र समुद्रों को ऐसे पदार्थों के प्रदूषण से बचाने के लिए सभी संभव कदम उठाएंगे जो मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर सकते हों, जीवित संसाधनों और समुद्री जीवन को नुकसान पहुंचा सकते हों, सुविधाओं को नुकसान कर सकते हों, या समुद्र के अन्य वैधानिक इस्तेमाल में बाधा पहुंचा सकते हों।

सिद्धांत 8

मनुष्य के लिए अनुकूल जीवन और कार्यशील पर्यावरण के लिए और पृथ्वी पर ऐसी परिस्थितियां पैदा करने के लिए जो जीवन की बेहतरी में सुधार के लिए आवश्यक हो, आर्थिक और सामिजक विकास आवश्यक है।

सिद्धांत 9

अल्प-विकास तथा प्राकृतिक आपदाओं के द्वारा जनित पर्यावरणीय क्षतियां गंभीर समस्याएं पैदा कर सकती हैं। विकासशील देशोंके घरेलू प्रयास के पूरक के रूप में पर्याप्त मात्रा में वित्तीय तथा प्रौद्योगिकीय सहायता देकर, और जरूरत के अनुसार, समयोचित सहायता देकर, विकास को तेज करके इनका निदान सबसे अच्छे तरीके से किया जा सकता है।

सिद्धांत 10

विकासशील देशों के लिए, कीमतों में स्थिरता और प्राथमिक जरूरत की वस्तुओं और कच्चे माल के लिए पर्याप्त आमदनी, पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए अनिवार्य हैं, इसलिए आर्थिक कारकों के साथ-साथ पारस्थितिकीय प्रक्रियाओं को भी ध्यान में रखना होगा।

सिद्धांत 11

सभी राष्ट्रों की पर्यावरणीय नीतियां मजबूत होनी चाहिए और विकासशील देशों की वर्तमान या भावी विकास संभावनाओं पर उनका बुरा असर नहीं पड़ना चाहिए, और न

ही उन्हें सभी के लिए बेहतर जीवन हासिल करने में बाधक होना चाहिए। पर्यावरणीय उपायों के इस्तेमाल के राष्ट्रीय और अंतरराष्टरीय संभावित आर्थिक परिणामों से निपटने क लिए समझौते को देखते हुए, राष्ट्रों और अंतरराष्ट्रीय संगठनों को उचित कदम उठाने चाहिए।

सिद्धांत 12

विकासशील देशों की परिस्थितियों और खास आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के लिए संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए, और इन देशों के विकास नियोजन में पर्यावरणीय सेफगार्ड शामिल कराने, तथा उन्हें उपलब्ध बनाने की जरूरत में आने वाली कोई लागतें, उनके अनुरोध पर, इस उद्देश्य के लिए उन्हें उपलब्ध कराई जानी चाहिए, जिसमें अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय तकनीकी और वित्तीय सहायता शामिल हो।

सिद्धांत 13

संसाधनों के अधिक तार्किक प्रबंधन को हासिल करने के लिए, और इस प्रकार, पर्यावरण में सुधार के लिए, राष्ट्रों को एक एकीकृत और समन्वित रवैया अपने विकास नियोजन में अपनाना चाहिए ताकि यह विकास उनकी आबादी के फायदे के लिए पर्यावरण के संरक्षण और सुधार की जरूरत के अनुकूल हो।

सिद्धांत 14

तार्किक नियोजन में विकास की जरूरतों और पर्यावरण के संरक्षण और सुधार के बीच किसी तरह के विवाद को सुलझाने का एक आवश्यक औजार होता है।

सिद्धांत 15

पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव से बचने, और सभी के लिए अधिकतम सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय लाभ हासिल करने के लिए, नियोजन को इंसानी बस्तियों और शहरीकरण पर लागू किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में, ऐसी परियोजनाओं का त्याग करना होगा जो उपनिवेशवादी तथा नस्लीय प्रभुत्व के लिए बनाई गई हैं।

सिद्धांत 16

बुनियादी मानवाधिकारों के प्रति पूर्वाग्रहरहित तथा संबंधित सरकारों द्वारा उचित ठहराई गई जनांकिकीय नीतियां उन क्षेत्रों में लागू की जानी चाहिए जहाँ जनसंख्या वृद्धि दर या अत्यधिक जनसंख्या घनत्व का मानवीय पर्यावरण पर प्रतिकूल असर पड़ने तथा विकास में बाधक बनने के आसार हों।

सिद्धांत 17

पर्यावरणीय गुणवत्ता मजबूत करने के इरादे से उचित राष्ट्रीय संस्थानों को राष्ट्र के 9 पर्यावरणीय संसाधनों के नियोजन, प्रबंधन या नियंत्रण का काम सौंपा जाना चाहिए।

सिद्धांत 18

आर्थिक और सामाजिक विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के योगदान के हिस्से के तौर पर इन्हें पर्यावरणीय खतरों की पहचान, बचाव और नियंत्रण में, और पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान में, तथा मानव जाति के सामान्य हित में लागू किया जाना चाहिए।

सिद्धांत 19

वंचित तबकों पर खास ध्यान देते हुए, युवा पीढ़ी के साथ-साथ प्रौढ़ों को भी पर्यावरणीय मामलों की शिक्षा शिक्षा, जरूरी है ताकि पर्यावरण को पूरे मानवीय आयाम में इसके संरक्षण और सुधार में व्यक्तियों, उद्योगों और समुदायों द्वारा बौद्धिक मत तथा जिम्मेदाराना व्यवहार के लिए आधार को व्यापक बनाया जा सके। यह भी आवश्यक है कि संचार का मास मीडिया पर्यावरण के नुकसान में योगदान करने से बचे, बल्कि इसके विपरीत, परियोजना की जरूरत के बारे में शैक्षणिक स्वरूप की जानकारी वितरित करे और पर्यावरण में सुधार करे, ताकि हर संदर्भ में विकास किया जा सके।

सिद्धांत 20

पर्यावरणीय समस्याओं के संदर्भ में, राष्टरीय और अंतरराष्ट्रीय, दोनों तरह के वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास को सभी देशों में, खासकर विकासशील देशों में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस सिलसिले में, नवीनतम वैज्ञानिक सूचना का मुक्त प्रवाह, और अनुभवों को साझा करने को समर्थन और सहयोग मिलना चाहिए, ताकि पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान निकाले जा सकें; पर्यावरणीय प्रौद्योगिकियां विकासशील देशों को उपलब्ध कराई जाएं ताकि वे बिना आर्थिक बोझ के, व्यापक वितरण को प्रोत्साहित करें।

सिद्धांत 21

संयुक्त राष्ट्र चार्टर और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के अनुसार, राष्ट्रों को अपनी पर्यावरणीय नीतियों का पालन करते हुए, अपने स्वयं के संसाधनों के दोहन का संप्रभु अधिकार है। यह उनकी जिम्मेदारी है कि उनके न्यायाधिकार क्षेत्र या नियंत्रण में उनके ऐसे कार्यों से किसी अन्य देश या क्षेत्र को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए जो उनके राष्ट्रीय न्यायाधिकार क्षेत्र की सीमाओं से परे हो।

सिद्धांत 22

किसी भी राष्ट्र द्वारा उसके न्यायाधिकार क्षेत्र में की गई ऐसी किसी भी गतिविधि से, उसके न्यायाधिकार क्षेत्र से परे इलाकों में होने वाले प्रदूषण और अन्य पर्यावरणीय नुकसान की जिम्मेदारी और मुआवजा से संबंधित अन्य अंतरराष्ट्रीय कानून बनाने में राष्ट्र सहयोग करेंगे।

सिद्धांत 23

अंतरराष्ट्रीय समुदाय जिस मानदंड पर सहमत हो, या राष्ट्रीय स्तर पर बनाए जाने वाले मानकों पर, बिना पूर्वाग्रह के, सभी मामलों में अनिवार्य होगा कि हर देश में मौजूद मूल्य प्रणालियों पर विचार करें, और मानकों की व्यावहारिकता की सीमा पर विचार करें जो कि अधिकतर विकसित देशों में वैध हैं, लेकिन विकासशील देशों के लिए अनुचित और अवांछित सामाजिक लागत वाले हो सकते हैं।

सिद्धांत 24

पर्यावरण के संरक्षण और सुधार से संबंधित अंतरराष्ट्रीय मामले सभी छोटे-बड़े देश समानता के आधार पर सहयोग की भावना से निपटाएं।

सभी क्षेत्रों में चलने वाली गतिविधियों के परिणामस्वरूप होने वाले प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों को कारगर तरीके से नियंत्रित करने, रोकने, कम करने और मिटाने

के लिए बहुपक्षीय या द्विपक्षीय समझौते या अन्य उचित साधन अनिवार्य हैं, और इस काम में सभी देशों की संप्रभुतता और हितों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

सिद्धांत 25

टिप्पणी

राष्ट्र यह सुनिश्चित करेंगे कि अंतरराष्ट्रीय संगठन पर्यावरण के संरक्षण और सुधार में समन्वित, कार्यकुशल और गतिसील भूमिका निभाएं।

सिद्धांत 26

परमाणु हथियारों और जनसंहार के अन्य सभी साधनों से मनुष्य और उसके पर्यावरण को दूर रखा जाना चाहिए। राष्ट्रों को ऐसे हथियारों को पूरी तरह से खत्म करने और मिटाने के बारे में प्रासंगिक अंतरराष्ट्रीय मंचों पर, शीघ्र और त्वरित समझौते के लिए प्रयास करना चाहिए।

रियो सम्मेलन

रियो सम्मेलन को आमतौर पर 1992 का पृथ्वी सम्मेलन कहा जाता है। पृथ्वी सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में उठाया गया सर्वाधिक क्रांतिकारी कदम था जो कि 1992 में 3 से 14 जून के बीच रियो डी जेनेरियो में आयोजित किया गया था। सम्मेलन में इतिहास में पहली बार विश्व भर के नेता इतनी बड़ी संख्या में शामिल हुए और सभी ने पृथ्वी ग्रह को बचाने के लिए विचार किया और ब्लूप्रिंट तैयार किया। इसने अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं में पर्यावरण और विकास के मुद्दों पर एक नया आयाम जोड़ा। रियो डी जेनेरियो में हुआ पृथ्वी सम्मेलन, आकार और भविष्य की संभावनाओं, दोनों लिहाज से अप्रत्याशित था। प्रथम पर्यावरण सम्मेलन के बीस साल बाद, संयुक्त राष्ट्र ने सरकारों से आर्थिक विकास के बारे में फिर से सोचने और प्राकृतिक संसाधनों के दुरुस्त न किए जा सकने वाले नुकसान और ग्रह के प्रदूषण को रोकने के तरीके खोजने को कहा। जीवन के हर क्षेत्र के सैकड़ों-हजारों लोग रियो प्रक्रिया से प्रभावित हुए। उन्होंने अपने नेताओंको रियो जाने, और अन्य देशों के साथ मिलकर, आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वस्थ ग्रह सुनिश्चित करने के लिए कड़े निर्णय लेने को कहा।

दो दिन का पृथ्वी सम्मेलन, संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों के बीच नियोजन, शिक्षा और वार्ताओं की प्रक्रिया का क्लाइमेक्स था जो दिसंबर 1989 में शुरू हुआ था, जिसमें एजेंडा 21 को स्वीकार किया गया था। एजेंडा 21 विश्वभर में टिकाऊ विकास के कार्य की व्यापक रूपरेखा है। सम्मेलन की समाप्ति पर इसके महासचिव मॉरिस स्ट्रॉन्ग ने इसे मानवता के लिए ऐतिहासिक पल बताया था।

रियो सम्मेलन के उद्देश्य

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य वर्तमान और भावी पीढ़ियों की आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय जरूरतों के बीच समान संतुलन बनाना, और विकसित तथा विकासशील देशों के बीच, साथ ही सरकारी एजेंसियों और निजी संगठनों के बीच वैश्विक भागीदारी की नींव डालना था। रियो सम्मेलन की वास्तविक उपलब्धियों में, दो सम्मेलनों पर सहमति होना था, जिनमें से एक जैविक विविधता पर और दूसरा जलवायु परिवर्तन पर था।

सम्मेलन का संदेश, यही था कि हमारे रवैये और व्यवहार में बदलाव जरूरी परिवर्तन लाएगा। संदेश में हमारे सामने मौजूद समस्याओं की जटिलता की झलक मिलती है–जिनमें गरीबी के साथ-साथ अमीरों द्वारा अत्यधिक खपत शामिल है जो कि पर्यावरण को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचाने वाले कारण हैं। सरकारों ने अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय योजनाओं और नीतियों को इस तरह से मोड़ने की जरूरत महसूस की ताकि सुनिश्चित किया जा सके कि सभी आर्थिक निर्णय हरेक पर्यावरणीय प्रभाव को पूरी तरह से ध्यान में रखकर लिए जाएं। और इस संदेश से परिणाम भी हासिल हुए, और व्यापार तथा सरकारों के लिए पर्यावरणीय दक्षता को दिशा-निर्देश का सिद्धांत बनाया गया। इन्हें निम्न तरह से वर्गीकृत किया जा सकता है:

- उत्पादन का पैटर्न, मसलन, खासतौर पर, जहरीले अवयवों का उत्पादन, यानी गैसोलिन में सीसा, या जहरीले कचरे की संयुक्त राष्ट्र और सरकारों द्वारा व्यवस्थित तरीके से छानबीन की जा रही है;
- वैश्विक जलवायु परिवर्तन से जुड़े जीवाश्म ईंधनों के इस्तेमाल की जगह ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत लाए जा रहे हैं;
- वाहनों के उत्सर्जन, शहरों में भीड़भाड़ और प्रदूषित हवा और धुएं के कारण होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने के लिए, सार्वजनिक परिवहन प्रणालियों पर नई निर्भरता पर जोर दिया जा रहा है;
- पानी की बढ़ती किल्लत के बारे में ज्यादा जागरूकता और चिंता है।

रियो सम्मेलन के सिद्धांत

रियो सम्मेलन के सिद्धांत निम्नानुसार हैं-

सिद्धांत 1

टिकाऊ विकास के सरोकारों में मानव केंद्र में हैं। प्रकृति के साथ समन्वय बनाते हुए स्वस्थ और उत्पादक जीवन उनका अधिकार है।

सिद्धांत 2

संयुक्त राष्ट्र चार्टर और अंतरराष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों के अनुसार, राष्ट्रों को अपनी पर्यावरणीय नीतियों का पालन करते हुए, अपने स्वयं के संसाधनों के दोहन का संप्रभु अधिकार है। यह उनकी जिम्मेदारी है कि उनके न्यायाधिकार क्षेत्र या नियंत्रण में उनके ऐसे कार्यों से किसी अन्य देश या क्षेत्र को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए जो उनके राष्ट्रीय न्यायाधिकार क्षेत्र की सीमाओं से परे हो।

सिद्धांत 3

विकास के अधिकार को इस तरह से पूरा किया जाना चाहिए कि वर्तमान और भावी पीढ़ियों की विकासात्मक और पर्यावरणीय जरूरतों को समान रूप से पूरा किया जा सके।

सिद्धांत 4

टिकाऊ विकास हासिल करने के लिए, पर्यावरण संरक्षण को विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाना चाहिए और इसे उससे अलग नहीं माना जा सकता।

सिद्धांत 5

दुनिया की बहुसंख्यक आबादी के जीवन मानकों में विषमता दूर करने के लिए, और उनकी जरूरतों को बेहतर तरीके से पूरा करने के लिए, टिकाऊ विकास की अनिवार्य शर्त के रूप में सभी शर्तों को गरीबी उन्मूलन के आवश्यक कार्य में सहयोग करना चाहिए।

सिद्धांत 6

विकासशील देशों, खासकर, उन देशों की जो कम विकसित हैं और जो पर्यावरणीय खतरों के प्रति सबसे ज्यादा संवेदनशील हैं, विशिष्ट स्थिति और जरूरतों को विशिष्ट प्राथमिकता देनी चाहिए। पर्यावरण और विकास के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय कार्य सभी देशों के हितों और जरूरतों को पूरा करने वाले होने चाहिए।

सिद्धांत 7

पृथ्वी के पारस्थितिकी तंत्र की सेहत और अखंडता के संरक्षण, सुरक्षा और बहाली के लिए राष्ट्रों को वैश्विक भागीदारी की भावना के रूप में सहयोग करना चाहिए। वैश्विक पर्यावरणीय क्षरण में विभिन्न योगदानों को देखते हुए, देशों की समान किंतु अलग-अलग जिम्मेदारियां हैं। विकसित देश उस जिम्मेदारी को स्वीकार करते हैं कि जो वे टिकाऊ विकास की अंतरराष्ट्रीय कोशिश में रखते हैं जिसके तहत उनके समाज वैश्विक पर्यावरण पर और उनके नियंत्रण वाली प्रौदयोगिकियों तथा वित्तीय संसाधनों पर दबाव डालते हैं।

सिद्धांत 8

टिकाऊ विकास तथा सभी लोगों के लिए जीवन की बेहतर गुणवत्ता हासिल करने के लिए, राष्ट्रों को उत्पादन और खपत के गैरटिकाऊ तरीके कम करने और खत्म करने चाहिए तथा उचित जनांकिकीय नीतियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

सिद्धांत 9

राष्ट्रों को वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय ज्ञान के जरिए, और नवीन तथा नवाचारी प्रौद्योगिकियों समेत, प्रौद्योगिकियों के विकास, अनुकूलन, मिश्रण तथा स्थानांतरण को मजबूत करके, वैज्ञानिक समझ में सुदार के जरिए, टिकाऊ विकास के लिए अंतर्जात क्षमता निर्माण को मजबूत करने के लिए सहयोग करना चाहिए।

सिद्धांत 10

पर्यावरणीय मुद्दे सभी संबंधित नागरिकों की, प्रासंगिक स्तर पर भागीदारी से ही सबसे अच्छी तरह से सुलझाए जाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर, हर व्यक्तिके पास पर्यावरण से संबंधित उस सूचना तक उचित पहुंच होना चाहिए जो सरकारी अधिकारियों के पास है। इसमें वह सूचना भी शामिल है जो खतरनाक पदार्थों के बारे में है, उनके समुदायों की गतिविधियों के बारे में है, और लोगों के पास निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर होना चाहिए। राष्ट्र सूचना को व्यापक रूप से उपलब्ध कराके, जनजागरूकता और भागीदारी बढ़ाएंगे और उसे प्रोत्साहित करेंगे। शिकायत और निदान समेत न्यायिक तथा प्रशासनिक प्रक्रिया तक कारगर पहुंच उपलब्ध करानी चाहिए।

टिप्पणी

सिद्धांत 11

राष्ट्र प्रभावी पर्यावरणीय कानून लागू करेंगे। पर्यावरणीय मानकों, प्रबंधन उद्देश्यों और प्राथमिकताओं में उन पर्यावरणीय और विकासात्मक संदर्भ की झलक मिलनी चाहिए जिन्हें वो लागू करते हैं। कुछ देशों द्वारा अपनाए गए मानक अन्य देशों के लिए अनुचित तथा अवांछित आर्थिक और सामाजिक लागत वाले हो सकते हैं, खासकर विकासशील देशों के लिए ऐसा हो सकता है।

सिद्धांत 12

राष्ट्रों को ऐसा सहायक और मुक्त अंतरराष्ट्रीय आर्थिक तंत्र विकसित करने में मदद करनी चाहिए जो सभी देशों में आर्थिक वृद्धि और टिकाऊ विकास में मददगार हो, ताकि पर्यावरणीय क्षरण की समस्याओं को बेहतर तरीके से सुलझाया जा सके। पर्यावरणीय उद्देश्यों से व्यापार नीति के उपायों में अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर मनमाने या अन्यायपूर्ण भेदभाव या प्रच्छन्न प्रतिबंध शामिल नहीं होना चाहिए। आयातक देश के न्यायाधिकार क्षेत्र से बाहर, पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिए एकतरफा कार्रवाई से बचना चाहिए। जहां तक संभव हो, सीमापार या वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने वाले पर्यावरणीय उपाय अंतरराष्ट्रीय सहमति पर आधारित होने चाहिए।

सिद्धांत 13

राष्ट्र प्रदूषण और अन्य पर्यावरणीय क्षति के पीड़ितों के लिए जिम्मेदारी और मुआवजे के लिए राष्ट्रीय कानून बनाएंगे। राष्ट्र अपने न्यायाधिकार क्षेत्र के अंदर की या उनके न्यायधिकार से बाहर के इलाकों में होने वाले पर्यावरणीय नुकसान के प्रतिकूल प्रभावों के लिए जिम्मेदारी और मुआवजे के लिए अन्य अंतरराष्ट्रीय कानून विकसित करने में तीव्र तथा अधिक संकल्पित ढंग से सहयोग भी करेंगे।

सिद्धांत 14

गंभीर पर्यावरणीय क्षति पैदा करने वाले या मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक पाये जाने वाले पदार्थ और गतिविधियों को दूसरे राष्ट्रों में भेजने और स्थानांतरित करने से रोकने या निरुत्साहित करने में राष्ट्र प्रभावशाली ढंग से सहयोग करेंगे।

सिद्धांत 15

पर्यावरण के संरक्षण के लिए, ऐहतियाती उपाय राष्ट्रों को अपनी अपनी क्षमताओं के अनुसार व्यापक रूप से लागू करने चाहिए। जहां गंभीर और अनुत्क्रमणीय नुकसान के खतरे हों, पूर्ण वैज्ञानिक निश्चितता की कमी का इस्तेमाल पर्यावरणीय क्षति को रोकने के किफायती उपायों को स्थगित करने के कारण के तौर पर नहीं करना चाहिए।

सिद्धांत 16

राष्ट्रीय अधिकारियों को पर्यावरणीय लागतों के आंतरिकीकरण के प्रोत्साहन और आर्थिक उपकरणों के इस्तेमाल के लिए प्रयास करना चाहिए, और यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि जनहित में, और अंतरराष्ट्रीय व्यापार और निवेश को विकृत किए बिना, सिद्धांत रूप में प्रदूषक को प्रदूषण की लागत वहन करनी चाहिए।

सिद्धांत 17

राष्ट्रीय उपकरण के रूप में पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन उन प्रस्तावित गतिविधियों के लिए किया जाना चाहिए जिनका पर्यावरण पर महत्वपूर्ण प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो, और जो सक्षम राष्ट्रीय अधिकारियों के निर्णय के विषय हों।

सिद्धांत 18

राष्ट्र अन्य राष्ट्रों को किसी भी प्राकृतिक आपदा या अन्य आपातस्थितियों के बारे में सूचित करेंगे जिनका उन राष्ट्रों के पर्यावरण पर अचानक गंभीर नुकसानदेह असर पड़ने के आसार हों। ऐसे प्रभावित राष्ट्रों की मदद के लिए अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा हर तरह का प्रयास करना चाहिए।

सिद्धांत 19

महत्वपूर्ण प्रतिकूल सीमापार पर्यावरणीय प्रभाव डालने वाली गतिविधियों के बारे में राष्ट्र प्रभावित राष्ट्रों को पहले से और समय पर सूचित करेंगे और प्रासंगिक सूचना देंगे।

सिद्धांत 20

पर्यावरणीय प्रबंधन और विकास में महिलाओं की महती भूमिका होती है। इसलिए टिकाऊ विकास हासिल करने में उनकी पूरी भागीदारी आवश्यक है।

सिद्धांत 21

दुनिया के युवाओं की रचनाशीलता, आदर्श और साहस को टिकाऊ विकास हासिल करने में और सभी के लिए बेहतर भविष्य सुनिश्चित करने के लिए वैश्विक भागीदारी तैयार करने के पक्ष में जुटाना चाहिए।

सिद्धांत 22

पर्यावरणीय प्रबंधन और विकास में आदिवासियों और उनके समुदायों तथा स्थानीय अन्य समुदायों की भूमिका उनके ज्ञान और पारंपरिक तौर तरीके के कारण बहुत अहम होती है। राष्ट्र टिकाऊ विकास हासिल करने में इन लोगों और समुदायों की पहचान, संस्कृति और हितों की पहचान करेंगे और पूरा सहयोग करेंगे तथा उनकी प्रभावी भागीदारी कायम करेंगे।

सिद्धांत 23

दमन, दबाव, और शासित लोगों के पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा की जानी चाहिए।

सिद्धांत 24

युद्ध अपने आप में टिकाऊ विकास के लिए विनाशकारी होते ही हैं। इसलिए, राष्ट्र सशस्त्र संघर्ष के समय में, पर्यावरण को सुरक्षा मुहैया कराने वाले अंतरराष्ट्रीय कानून का सम्मान करेंगे, और आवश्यकतानुसार, इनके और विकास में सहयोग करेंगे।

सिद्धांत 25

शांति, विकास और पर्यावरण संरक्षण एक दूसरे पर निर्भर हैं और इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

सिद्धांत 26

राष्ट्र अपने सारे पर्यावरणीय विवाद, संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार, शांतिपूर्ण और उचित साधनों के जरिए सुलझाएंगे।

सिद्धांत 27

इस घोषणा में शामिल सिद्धांतों को पूरा करने के लिए, और टिकाऊ विकास के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय कानून के आगे विकास में राष्ट्र और लोग अच्छी भावना से और भागीदारी की भावना से सहयोग करेंगे।

रियो सम्मेलन का प्रभाव

पृथ्वी सम्मेलन ने मानवाधिकार, जनसंख्या, सामाजिक विकास, महिला और मनुष्य अवस्थापन, और पर्यावरणीय टिकाऊ विकास की आवश्यकता के बीच संबंधों की पड़ताल करने वाले संयुक्त राष्ट्र के आगे के सभी सम्मेलनों को प्रभावित किया। उदाहरण के लिए, 1993 में विएना में हुए विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में लोगों के स्वस्थ पर्यावरण में रहने के अधिकार को, और विकास के अधिकार को रेखांकित किया गया। इसकी विवादित मांग को रियो से पहले तक कुछ सदस्य देशों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था।

भारत और रियो सम्मेलन

भारत अपनी आनुवंशिक विविधता के मामले में दुनिया के शीर्ष देशों में शामिल है। इसमें भू-जलवायु परिस्थितियों और समृद्ध तथा विविध वनस्पतियों और जीवों के साथ-साथ पर्यावरण संवेदनशीलता और सरोका की एक लंबी परंपरा है जो इसकी सहस्राब्दी पुरानी संस्कृति की एकदम जड़ों तक जाती है। प्रकृति के साथ सामंजस्य भारतीय समाज के लोकाचार का एक अभिन्न अंग रहा है।

भारत की तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, जून 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित संयुक्त राष्ट्र के मानव पर्यावरण सम्मेलन में भाग लेने वाली राष्ट्र या सरकार की एकमात्र विदेशी प्रमुख थीं। उस समय पर्यावरणीय मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय चिंता पूरी तरह से थी स्पष्ट होनी बाकी थी। इसमें उन्होंने जोर दिया कि पर्यावरण संबंधी चिंताओं को विकासात्मक अनिवार्यताओं से अलग-थलग नहीं किया जा सकता है।

भारत का मानना है कि पर्यावरण और विकासात्मक मुद्दों पर बारीकी से विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। वह पर्यावरण के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का पूरी तरह से समर्थन करता है ताकि वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं से प्रभावी ढंग से निपटा जा सके। वह ऐसी वैश्विक साझेदारी के लिए प्रतिबद्ध है जो एक साथ विकासशील देशों की विकास आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करते हुए पर्यावरण की रक्षा करना चाहता है।

भारत प्रमुख वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दों से निपटने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय आम सहमति के विकास में लगातार महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वह जून 1992 में रियो डी जेनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के आयोजन में अग्रणी और सक्रिय भागीदार था। रियो सम्मेलन ने सतत विकास के महत्व की पुष्टि की, जिसमें विकासात्मक और पर्यावरणीय दोनों तरह की सुरक्षा शामिल है। रियो सम्मेलन में अपनाया

टिप्पणी

गया एजेंडा 21, विकास को सामाजिक-आर्थिक रूप से टिकाऊ बनाने के बारे में रूपरेखा प्रदान करता है। बाधाओं के बावजूद, भारत ने एजेंडा 21 के संदर्भ में कई गतिविधियां और कार्यक्रम शुरू किए हैं, जो इसके राष्ट्रीय लक्ष्यों और उद्देश्यों के अनुरूप हैं। भारत पर्यावरण की सुरक्षा और सतत विकास में योगदान करने वाले कई बहुपक्षीय पर्यावरण सम्मेलनों में शामिल रहा है। इनमें जलवायु परिवर्तन पर रूपरेखा सम्मेलन, जैविक विविधता पर सम्मेलन, ओजोन परत के संरक्षण पर वियना सम्मेलन, ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले पदार्थों पर मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल, अंतर्राष्ट्रीय महत्व के आर्द्रभूमियों पर रामसर सम्मेलन, खतरनाक कचरे के सीमापार परिवहन का बेसल सम्मेलन, मरुस्थलीकरण से निपटने के लिए सम्मेलन, और वन्य वनस्पतियों और जीवों की लुप्तप्राय प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सम्मेलन शामिल हैं। एजेंडा 21 के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए रियो सम्मेलन के बाद स्थापित किए गए सतत विकास आयोग का भारत सक्रिय सदस्य भी है।

भारत पर्यावरण संरक्षण में निर्देशित प्रयासों के अग्रणी देशों के मोर्चे में शामिल है। भारत ने पर्यावरण के अनुकूल उत्पादों के लिए इको-मार्क लेबल भी शुरू किया है। इसके लिए प्रमुख औद्योगिक परियोजनाओं को शुरू करने से पहले पर्यावरण प्रभाव आकलन करना जरूरी है, और भारत पर्यावरण न्यायाधिकरणों के साथ-साथ पर्यावरण लेखा परीक्षा की एक प्रभावी प्रणाली की स्थिति में है।

रियो सम्मेलन के पांच साल बाद की गई प्रगति की समीक्षा के लिए जून 1997 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र में, भारत ने रियो में औद्योगिक देशों द्वारा स्वेच्छा से की गई प्रतिबद्धताओं की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पूरा न किए जाने पर निराशा व्यक्त की थी।

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल और क्योटो प्रोटोकॉल

1970 के दशक के शुरुआती दौर में, वैज्ञानिकों ने वैश्विक पर्यावरण के लिए पहले खतरे का पता लगाया था। यह खतरा स्ट्रैटोस्फेरिक ओजोन परत पर था और वायुमंडल में क्लोरोफ्लोरोकार्बन (सीएफसी) के मुक्त होने के रूप में था।

ओजोन परत जहरीली पराबैंगनी किरणों से पृथ्वी पर मौजूद वनस्पतियों, जानवरों और मनुष्यों रक्षा करती है। यदि मनुष्यों की गतिविधियों के परिणामस्वरूप ओजोन परत नष्ट हो जाती है, तो दुनिया भर के लाखों लोगों में त्वचा का कैंसर फैल जाएगा। वैश्विक स्थिति विनाशकारी हो जाएगी।

सीएफसी कहानी 1974 में शुरू हुई जब मारियो मोलिना और एफ शेरवुड रोलैंड ने अपने प्रकाशन में निष्कर्ष निकाला कि सीएफसी वायुमंडल की सबसे ऊपरी परत की ओर बढ़ रही है और ओजोन परत को नुकसान पहुंचा रही है। शुरुआत में, दुनिया भर के उद्योगों ने इस तथ्य पर विवाद खड़ा किया। हालांकि, अनुभवजन्य साक्ष्य ने साबित कर दिया कि ओजोन परत वास्तव में नष्ट हो रही है। यह भी साबित हुआ कि अंटार्कटिक ओजोन छिद्र का कारण सीएफसी और संबंधित रसायन हैं। यह एक उल्लेखनीय घटना थी जिसने राजनीतिक स्तर पर कार्यवाही शुरू होने में मदद की। ओजोन परत के क्षरण की सीमा इस हद तक अप्रत्याशित थी कि वैज्ञानिकों को शुरू में लगा कि उनके गैजेट ही खराब हो गए हैं।

हालांकि, ओजोन परत को और अधिक नुकसान से बचाने के लिए राजनीतिक गतिविधियां अंटार्कटिक ओजोन छेद की खोज से पहले ही शुरू हो चुकी थीं। अमेरिका, कनाडा और यूरोप में नागरिक उपभोक्ताओं ने सभी जगह स्प्रे कैन को स्वेच्छा से खारिज किया जिनमें हेयर स्प्रे, डिओडोरेंट और कई अन्य उत्पादों के लिए प्रणोदक के रूप में सीएफसी का उपयोग किया जाता है और प्रत्येक पारिवारिक इकाई में औसतन 15 डिब्बे इस्तेमाल होते हैं।

इन बहिष्कारों के बाद देश में कानून बने, जिनमें सफल प्रयास शामिल हुए जिनकी परिणति अंतरराष्ट्रीय संधि, मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल, 1987 की स्थापना में हुई। मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के सदस्य देशों ने सीएफसी और संबंधित रसायनों के पहले समूह के आधे हिस्से को 12 साल की अवधि में कम करने का निर्णय लिया। बाद के दो वार्षिक सम्मेलनों में, सदस्य राष्ट्रों को विश्वास था कि वे सुधार कर सकते हैं, और उन्होंने अपने कमी के स्तर को 75 प्रतिशत तक बढ़ाने का निर्णय लिया। उन्होंने सीएफसी के उपयोग को पूरी तरह से छोड़ने का फैसला किया और पहले तय किए गए 12 वर्षों के बजाय अपनी समय सीमा को घटाकर 10 साल कर दिया।

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल ने ओडीएस की चरणबद्ध-आउट अनुसूची पर एक महत्वपूर्ण तरीके से जोर दिया। विकसित और विकासशील देशों के लिए चरणबद्ध अवधि अलग थी। मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल प्रावधानों के तहत ओजोन परत और जलवायु की रक्षा करने का यह दोहरा लक्ष्य, खासकर 1997 के जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा सम्मेलन के क्योटो प्रोटोकॉल फरवरी 2005 में लागू होने के बाद से, एक व्यापक मूल्यांकन सुनिश्चित करता है।

क्योटो प्रोटोकॉल एक वैश्विक संधि है जो ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन और पांच अन्य गैसों को कम करने के लिए 37 औद्योगिक देशों और यूरोपीय समुदाय के लिए बाध्यकारी लक्ष्य निर्धारित करता है। इनमें कोई भी ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाला पदार्थ नहीं है। ये पांच साल की अवधि 2008-2012 के लिए 1990 के स्तर के मुकाबले औसतन 5 प्रतिशत है। यह समझौता जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा सम्मेलन से जुड़ा है।

क्योटो प्रोटोकॉल और सम्मेलन के बीच मुख्य अंतर यह है कि सम्मेलन में औद्योगिक देशों को जीएचजी उत्सर्जन को स्थिर करने के लिए प्रोत्साहित किया था, जबकि प्रोटोकॉल उन्हें ऐसा करने के लिए प्रतिबद्ध करता है।

क्योटो प्रोटोकॉल में ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले पदार्थों (ओडीएस) की अनुपस्थिति और मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल में औपचारिक जलवायु विमर्श की अनुपस्थिति, ओडीएस उत्सर्जन और उनके प्रतिस्थापितों, और मानवजन्य विकिरणकारी बाध्यता (आरएफ) के लिए उनकी प्रासंगिकता के पूर्व के और भविष्य के परिदृश्यों पर विचार करने के लिए प्रेरणा के रूप में कार्य करती है।

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल में इसकी स्थापना के बाद से 1990 (लंदन संशोधन), 1992 (कोपेनहेगन संशोधन), 1997 (मॉन्ट्रियल संशोधन) और 1999 (बीजिंग संशोधन) में काफी संशोधन किया गया है। 17-21 सितंबर, 2007 को मॉन्ट्रियल में उन्नीसवीं बैठक में भाग लेने वाले देश, विकसित और विकासशील, दोनों तरह के देशों में हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन

(HCFCs) को आक्रामक रूप से हटाने पर सहमत हुए। भारत ने भी मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए हैं।

हेलसिंकी सम्मेलन

टिप्पणी

सीमापार जलधाराओं और अंतरराष्ट्रीय झीलों के संरक्षण और इस्तेमाल पर सम्मेलन (जल सम्मेलन) 1992 में हेलसिंकी में अपनाया गया था और 1996 में लागू हुआ था। संयुक्त राष्ट्र यूरोपीय आर्थिक आयोग (UNECE) के क्षेत्र में साझा सीमापार जलधाराओं वाले लगभग सभी देश इस सम्मेलन में पक्ष हैं।

जल सम्मेलन सीमापार जल सहयोग को मजबूत बनाता है और पारिस्थितिक रूप से मजबूत ध्वनि प्रबंधन और सीमापार सतही जल और भूजल के संरक्षण के उपाय करता है। सम्मेलन, विशेष रूप से बेसिन दृष्टिकोण में, एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन के कार्यान्वयन को बढ़ावा देता है। सम्मेलन का कार्यान्वयन सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों और जल, पर्यावरण और टिकाऊ विकास पर अन्य अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं को हासिल करने में योगदान देता है।

जल सम्मेलन के तहत, पक्षों को सीमापार प्रभाव को रोकने, नियंत्रित करने और कम करने तथा उचित और न्यायसंगत तरीके से सीमापारीय जल का उपयोग करने और उनके स्थायी प्रबंधन को सुनिश्चित करने की जरूरत है। समान सीमापारीय जल को साझा करने वाले पक्ष विशिष्ट समझौतों में शामिल होकर और संयुक्त निकायों की स्थापना करके सहयोग करेंगे। रूपरेखा समझौते के तौर पर, सम्मेलन विशिष्ट बेसिन या जलदायी स्तरों के लिए द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझोतों को प्रतिस्थापित नहीं करता है; इसके बजाय, यह उनकी स्थापना और कार्यान्वयन, साथ ही उनके आगे के विकास को बढ़ावा देता है। 2003 में, UNECE क्षेत्र के बाहर के देशों द्वारा प्रवेश की अनुमति देने के लिए जल सम्मेलन में संशोधन किया गया। संशोधन 6 फरवरी 2013 को लागू हुआ, जिससे जल समझौता दुनिया भर में सीमापार जल सहयोग के कानूनी रूपरेखा में बदल गया। 1 मार्च 2016 तक, संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों ने सम्मेलन में शामिल हो चुके हैं।

पेरिस सम्मेलन, 2016

पेरिस समझौते का निर्माण सम्मेलन के अनुसार होता है और पहली बार सभी देशों को जलवायु परिवर्तन से निपटने के महत्वाकांक्षी प्रयास करने और इसके प्रभावों को अपनाने के एक समान उद्देश्य से जोड़ता है, ताकि विकासशील देशों को ऐसा करने में सहायता मिले। वैसे, यह वैश्विक जलवायु प्रयास में एक नये विमर्श की रूपरेखा बनाता है।

पेरिस समझौते का केंद्रीय उद्देश्य, इस सदी के पूर्व-औद्योगिक स्तरों से 2 डिग्री सेल्सियस नीचे लाकर, वैश्विक तापमान में वृद्धि से जलवायु परिवर्तन के खतरे के प्रति वैश्विक प्रतिक्रिया को मजबूत करना और तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक भी सीमित करने के प्रयासों को आगे बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त, समझौते का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए देशों की क्षमता को मजबूत करना है। इन महत्वाकांक्षी लक्ष्यों को हासिल करने के लिए, उपयुक्त वित्तीय प्रवाह, एक नई प्रौद्योगिकी रूपरेखा और एक विस्तारित क्षमता निर्माण ढांचा तैयार किया जाएगा। इस प्रकार विकासशील देश और सबसे कमजोर देश अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप कार्रवाई का

समर्थन करेंगे। समझौते में अधिक मजबूत पारदर्शिता ढांचे के माध्यम से, कार्रवाई और सहायता की बढ़ी हुई पारदर्शिता का भी प्रावधान है।

राष्ट्रीय प्रतिबद्ध योगदान

पेरिस समझौते के तहत सभी पक्षों को राष्ट्रीय प्रतिबद्ध योगदान (NDCs) के माध्यम से अपने सर्वोत्तम प्रयासों को आगे बढ़ाने और आने वाले वर्षों में इन प्रयासों को मजबूत करने की आवश्यकता है। इसमें ऐसी आवश्यकताएं शामिल हैं जिनके तहत सभी पक्ष नियमित रूप से अपने उत्सर्जन और उनके कार्यान्वयन के प्रयासों पर रिपोर्ट करते हैं।

2018 में, पेरिस समझौते में निर्धारित लक्ष्य की दिशा में प्रगति के लिए और एनडीसी की तैयारी को सूचित करने के संबंध में पक्षों ने सामूहिक प्रयासों का जायजा लिया।

समझौते के उद्देश्य को प्राप्त करने की दिशा में सामूहिक प्रगति का आकलन करने और पार्टियों द्वारा आगे की व्यक्तिगत कार्रवाइयों को सूचित करने के लिए हर 5 साल में एक वैश्विक पड़ताल भी होगी।

अपनी प्रगति जांचिए

3. स्टॉकहोम सम्मेलन किस वर्ष हुआ था?

(क) 1970 (ख) 1971

(ग) 1972 (घ) 1973

4. स्टॉकहोम सम्मेलन में कितने सिद्धांतों की घोषणा की गई?

(क) 23 (ख) 24

(ग) 25 (घ) 26

5.4 निशस्त्रीकरण

आज अनेक देशों के पास सम्पूर्ण विकास के सूचक परमाणु उपलब्ध हैं। हम परमाणु युग में जी रहे हैं। दो विश्व युद्धों की विभीषिका के बाद भी मानव सचेत नहीं हुआ है। आज बुद्धिजीवी वर्ग ने शस्त्र नियंत्रण व निशस्त्रीकरण द्वारा विश्व शांति के विचार को सुदृढ़ बनाने की दिशा में प्रयास करने के लिए प्रेरित किया है।

देखने में दोनों शब्द एक से लगते हैं पर दोनों में सूक्ष्म अंतर है।

शस्त्र नियंत्रण में वे सभी प्रयास शामिल हैं जो शस्त्र दौड़ में कमी करके युद्ध की संभावनाओं को कम करते हैं या इसके क्षेत्र को सीमित करते हैं। शस्त्र नियंत्रण से निशस्त्रीकरण का क्षेत्र ज्यादा व्यापक है। इसमें भविष्य में हथियारों का नियंत्रण भी शामिल है।

शस्त्र नियंत्रण राष्ट्रों में कटौती, तथा प्रतिबंध के मेल से बनी अवधारणा है। जो निकटवर्ती अवधारणा निशस्त्रीकरण से अधिक व्यापक है।

निशस्त्रीकरण उस महाविनाश को रोकने का एक प्रयास है जो युद्ध के रूप में अभिव्यक्ति प्राप्त करता है जिससे सम्पूर्ण मानवता की हानि होती है।

निशस्त्रीकरण को परिभाषित करते हुए मार्गेन्थो का कहना है कि "शस्त्र दौड़ को समाप्त करने के उद्देश्य विशेष से शस्त्रों की समाप्ति या कटौती निशस्त्रीकरण कहलाती है।"

टिप्पणी

ये दोनों अवधारणाएं एक दूसरे की पूरक हैं। युद्ध सामग्री में कटौती तब तक असंभव है जब तक कि शस्त्रों के उत्पादन पर रोक न लगाई जाए। दोनों का अभिप्राय है मानवता को युद्ध की विभीषिका से बचाना।

निशस्त्रीकरण के प्रकार

1. **सामान्य व स्थानीय निशस्त्रीकरण :** इसके अंतर्गत संधिकर्ता देशों पर गुणात्मक एवं मात्रात्मक नियंत्रण लगाए जाते हैं। जैसे 1922 का वाशिंगटन का नौसैनिक समझौता है। जिस पर हस्ताक्षर करके महाशक्तियों ने नौसैनिक क्षमताओं की होड़ की संभावनाओं को कम कर दिया था।
2. **मात्रात्मक या गुणात्मक निशस्त्रीकरण :** इसका उद्देश्य सब प्रकार के शस्त्रों में कटौती करना है। 1932 का निशस्त्रीकरण सम्मेलन इसका प्रमुख उदाहरण है।

   गुणात्मक निशस्त्रीकरण में विशिष्ट प्रकार के शस्त्रों की कटौती की जाती है। 1868 में सेंट पीटर्सबर्ग समझौते द्वारा फटने वाली उमउम गोलिकों का निषेध किया जाना इसी प्रकार के निशस्त्रीकरण का उदाहरण है। पारम्परिक तथा अणविक निशस्त्रीकरण।
3. **पारम्परिक निशस्त्रीकरण :** परपंरागत शस्त्रों व सेनाओं में कटौती का नाम पारम्परिक निशस्त्रीकरण है। आज आणविक युग में परपंरागत शस्त्रों का महत्व अधिक नहीं रह गया है। 1968 की परमाणु अप्रसार संधि आधुनिक निशस्त्रीकरण का उदाहरण है।
4. **पूर्ण एवं आंशिक निशस्त्रीकरण :** सब प्रकार के शस्त्रों को समाप्त करने का प्रयास पूर्ण निशस्त्रीकरण है। इसमें संपूर्ण कटौती शामिल होती है। इसके तहत सारी सैन्य बल तथा सैन्य सामग्री नष्ट कर दी जाएगी। SALT-I और SALT-II इसके प्रमुख उदाहरण है।
5. **अनिवार्य तथा ऐच्छिक निशस्त्रीकरण :** अनिवार्य निशस्त्रीकरण युद्ध के बाद विजेता राष्ट्र पर को पा जाता है। प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी का निशस्त्रीकरण किया जाना इसका प्रमुख उदाहरण है।

निशस्त्रीकरण का महत्व : विभिन्न तरह से निशस्त्रीकरण महत्वपूर्ण है। निम्न प्रकार से इसे समझा जा सकता है–

1. **निशस्त्रीकरण अंतर्राष्ट्रीय तनाव कम करता है :** शस्त्रीकरण से शस्त्र निर्माण की दौड़ में वृद्धि होती है। सभी राष्ट्र अल्प सुरक्षा के नाम पर शस्त्रों व भंडारण करने लग जाते हैं। इससे दूसरे हित उपेक्षित हो जाते है। इसी से अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा व शांति का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। ऐसे में सदैव युद्ध का खतरा बना रहता है। इसलिए शस्त्र नियंत्रण या निशस्त्रीकरण जरूरी है।
2. **आर्थिक विकास का रास्ता विकसित होता है :** आर्थिक विकास में कामयाब न हो पाने का एक वजह यह भी है कि सभी राष्ट्रों ने अपने आर्थिक विकास की जगह सुरक्षा साधनों को ज्यादा अहमियत दी और शस्त्र भंडारण होने लगा। इन शस्त्रों की खरीद फरोख्त होने से देश आर्थिक तरक्की नहीं कर पाए। अत: निशस्त्रीकरण से अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक विकास में मदद मिलेगी।

टिप्पणी

3. **युद्ध की संभावना में कमी आती है :** शक्ति मनुष्य को पथभ्रष्ट करती है। लड़ाई दो सेनाओं के बीच न होकर केवल दो हथियारों के बीच होती है। विपरीत शक्ति से लोहा लेने के लिए उसे भी हथियारों का जमावाड़ा करना पड़ता है। निशस्त्रीकरण प्रक्रिया से जब हथियार ही न होगें तो युद्ध की संभावनाएं भी कम हो जाती हैं। अतः आज सबसे अधिक आवश्यकता शस्त्र दौड़ को रोकने की है जिससे तृतीय विश्व युद्ध को घूमिल किया जा सके।

4. **निशस्त्रीकरण जन कल्याण का मार्ग है :** शस्त्र दौड़ के इस युग में गरीब से गरीब देश भी शस्त्रों की खरीद पर अरबों खरबों खर्च कर रहा है। यदि यही पैसा निशस्त्रीकरण की जगह जनकल्याण के कार्यों पर खर्च किया जाए तो विश्व की काया ही पलट जाएगी। एक विद्वान ने मत दिया है कि ''प्रत्येक बंदूक जिसे बनाया जाता है, प्रत्येक जलस्रोत जिसका जलावरण किया जाता है, प्रत्येक रॉकेट जिसे छोड़ा जाता है। जो ठिठुरते हैं किन्तु उन्हें वस्त्र नहीं दिए जाते हैं, एक चोरी का सूचक है।'' अर्थात् निशस्त्रीकरण ही एक ऐसा उपाय है जो विश्व से भुखमरी, गरीबी कुपोषण जैसी भयानक समस्याओं का निदान कर सकता है।

5. **शस्त्रीकरण से विवादों का शांतिपूर्ण सामाधान नहीं हो सकता :** शस्त्रीकरण से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में कटुता व जलन का जन्म होता है। कमजोर देश पर उससे थोड़ा ज्यादा ताकतवर देश अपनी नीतियां थोपता है। घृणा और द्वेष का नकारात्मक वातावरण पनपने लगता है। परस्पर विवाद इतने उग्र हो जाते हैं कि स्थायी युद्ध का माहौल बन जाता है। शांति पूर्ण उपायों के लिए ऐसे अशांत व विवादपूर्ण वातावरण में कोई स्थान नहीं। इसलिए शस्त्रीकरण पर नियंत्रण आवश्यक बन जाता है।

6. **शस्त्रीकरण सर्वनाश का दूत है :** आज खतरा छोटे-छोटे युद्धों से विनाश का नहीं अणु बम्ब का है। इसे कहीं से भी कहीं भी छोड़ा जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध में महानाश हो चुका है। यदि अब ऐसा हुआ तो पृथ्वी पर सिवा अंधकार के कुछ न बचेगा। हजारों सालों तक निकलने वाली विकिरणों का प्रभाव मानव जाति के विनाश के लिए युद्ध के बाद भी बना रहेगा। सामान्य तो कुछ भी न होगा, न मानव, न प्रकृति न वनस्पति। सम्पूर्ण मानव जाति को पृथ्वी को महाविनाश से बचाना है तो शस्त्रीकरण को अलविदा कहना ही होगा।

7. **शस्त्रीकरण से अवांछित हस्तक्षेप को बढ़ावा मिलता है :** शस्त्रीकरण असुरक्षा का ऐसा वातावरण निर्मित कर देता है कि कमजोर से कमजोर देश भी शस्त्र प्राप्ति के लिए विकसित देश या शस्त्र निर्माता धनी देश पर निर्भर हो जाता है। परिणाम यह निकलता है कि उसे जरूरी बुनियादी जरूरतों में कटौती कर इस अनिवार्य मद पर खर्च करना पड़ता है। यदि निशस्त्रीकरण हो जाए तो मालूम होगा कि शस्त्र हैं ही नहीं, तो यह खर्च न केवल बचेगा बल्कि अत्मिक सुरक्षा भी देगा।

8. **शस्त्रीकरण नैतिकता के विपरीत है :** शस्त्रीकरण युद्ध को जन्म देता है, युद्ध हमेशा अनैतिक होता है। इससे मानवता को नुकसान पहुंचता है। नैतिकतावादी विचार है कि अच्छे साह्य की प्राप्ति के लिए साधन भी अच्छे ही होने चाहिए। इसलिए निशस्त्रीकरण ही एक उपाए है जो नैतिकता के निकट हो सकता है।

निशस्त्रीकरण के लिए किए गए प्रयास

टिप्पणी

हथियारों के निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही इस पर रोकथाम की प्रक्रिया भी शुरू हो गई है। निर्माण के लिए शस्त्र और साधन तो जुटा लिए पर इनके परिणामों पर ध्यान जाते ही इन्हें निष्क्रिय तो नहीं किया गया पर रोकथाम के उपाय और रास्ते खोजने पर विचार मंच बनने लगे।

1648 की वैस्टफालिया संधि निशस्त्रीकरण की दिशा में प्रथम प्रयास थी। इसके बाद 1817 में रश बेगोट समझौता द्वारा कनाडा अमेरिका सीमांत को नि:सैन्य करने पर सहमति जताई। 1831 के फ्रांसीसी निशस्त्रीकरण प्रस्ताव ने असैन्यकृति विश्व की कल्पना की गई।

1899 में प्रथम हेग सम्मेलन में मानव कल्याण व विश्व शांति के लिए शस्त्र-अस्त्रों में कटौती करने पर विचार किया गया। फिर 1907 में सामूहिक निशस्त्रीकरण का सार्थक प्रयास किया गया। 1914 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत ने शांति के सारे उपायों को समाप्त कर दिया। सभी प्रयास कल्पना की वस्तु बन कर रह गए।

प्रथम विश्व युद्ध से द्वितीय विश्व युद्ध तक 1919 में प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होते ही विश्व शांति के प्रयास पुन: तेज हो गए। भविष्य में किसी भी युद्ध की संभावना को रोकने के वास्ते राष्ट्र संघ की स्थापना पर विचार किया गया, और विश्व शांति बनाए रखने का उत्तरदायित्व इसे ही सौंपा गया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

स्वतंत्रता प्राप्ति से ही भारत निरंतर सार्वभौमिकरण, भेदभाव रहित एवं प्रभावी सहयोग के सिद्धांतों के आधार पर वैश्विक निशस्त्रीकरण के उद्देश्य से कार्य करता रहा है। भारत मानता है कि नाभिकीय हथियारों से विमुक्त विश्व वैश्विक सुरक्षा एवं स्वयं भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा में वृद्धि करेगा।

भारत ने 1948 में आणविक ऊर्जा का इस्तेमाल केवल शांतिपूर्वक गतिविधियों एवं विकास तक सीमित रखने के विश्व के आह्वान हेतु किया। 1961 में, भारत ने अन्य गुटनिरपेक्ष देशों के साथ मिलकर संयुक्त राष्ट्र महासभा में एक प्रस्ताव रखा कि नाभिकीय एवं थर्मो-न्यूक्लिर हथियारों का इस्तेमाल संयुक्त राष्ट्र चार्टर का उल्लंघन समझा जाए। भारत ने 1964 में नाभिकीय हथियारों के प्रसार को तुरंत प्रतिबंधित करने का सुझाव दिया।

भारत का दृष्टिकोण रहा है कि निशस्त्रीकरण की व्यवस्था सभी देशों पर लागू होनी चाहिए और सख्त अंतरराष्ट्रीय नियंत्रणाधीन क्रियान्वित की जानी चाहिए। इस पृष्ठभूमि के प्रतिकूल, भारत ने 1968 की नाभिकीय अप्रसार संधि (एनपीटी) पर यह कहते हुए हस्ताक्षर करने से मना कर दिया कि यह संधि असमान एवं भेदभावपरक है।

भारत की नाभिकीय नीति दो चिंताओं द्वारा निर्देशित होती है- (i) आणविक कार्य के प्रयोग की स्वतंत्रता, और (ii) राष्ट्रीय सुरक्षा। समग्र आणविक निशस्त्रीकरण पर जोर देते हुए, 1996 में अस्तित्व में आई व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीबीटी) पर हस्ताक्षर करने से भारत ने मना कर दिया। भारत ने कहा कि संधि भेदभावपरक है और

टिप्पणी

भारत जैसे देशों के सुरक्षा हितों को ध्यान में रखकर नहीं बनाई गई है। भारत ने सीटीबीटी में तीन संशोधन प्रस्तावित किए–

1. इसे सभी देशों पर लागू होना चाहिए जिसमें पांच नाभिकीय हथियार वाले देश भी शामिल हों।
2. इसके द्वारा भूमिगत परीक्षण भी प्रतिबंधित होने चाहिए।
3. ऐसा हमेशा के लिए किया जाना चाहिए।

भारत ने आणविक ऊर्जा पर आणविक हथियारों से संपन्न राष्ट्रों का दोहरा चरित्र देखते हुए वर्ष 1998 में पोखरन में शक्ति नाम से आणविक परीक्षण किए। लेकिन भारत ने इस मामले में नो फर्स्ट यूज नीति को अपनाया है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा के 66वें सत्र को सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने नाभिकीय शस्त्र रहित एवं अहिंसक विश्व की पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी द्वारा प्रस्तुत कार्य योजना की ओर ध्यान दिलाया जिससे नाभिकीय निशस्त्रीकरण को समयबद्ध, बिना भेदभाव के तरीके से हासिल करने के लिए मजबूत रोड मैप उपलब्ध कराया। उन्होंने यह भी टिप्पणी की कि नाभिकीय शस्त्र अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के लिए निरंतर खतरा बना हुआ है। वर्ष के दौरान भारत ने कान्फ्रेंस ऑन डिसआरमामेन्ट, यूएनजीए की पहली समिति, यूएन निशस्त्रीकरण आयोग, सातवां रिव्यू कान्फ्रेंस ऑफ द बायोलॉजिकल एण्ड टाक्सिन्स वीपन्स कनवेन्शन तथा चौथा रिव्यू कान्फ्रेंस तथा कन्वेशन ऑन सर्टेन कन्वेशनल वीपन्स में भागीदारी की तथा अपने विचार रखे। 16-17 जनवरी, 2012 को नई दिल्ली में नाभिकीय सुरक्षा सम्मेलन प्रक्रिया के भाग के रूप में भारत ने शेरपा ऑफ द समिट लीडर्स की बैठक आयोजित की।

22 सितंबर, 2011 को न्यूयार्क में सुयंक्त राष्ट्र सेक्रेटरी जनरल द्वारा नाभिकीय सुरक्षा पर आयोजित एक उच्चस्तरीय बैठक में तथा अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी में नाभिकीय सुरक्षा मुद्दों पर आयोजित अन्य बैठकों में भारत ने अपने पक्ष प्रस्तुत किए।

अपनी प्रगति जांचिए

5. 1648 की वेस्टफीलिया संधि किस क्षेत्र में प्रथम प्रयास मानी जाती है?
   (क) निशस्त्रीकरण (ख) शस्त्रीकरण
   (ग) विश्वयुद्ध (घ) फ्रांस की स्वतंत्रता
4. किस समझौते द्वारा अमेरिका-कनाडा सीमा का निशस्त्रीकरण तय किया गया?
   (क) बेस्टफीलिया (ख) रश बेगोट संधि
   (ग) सेंट पीटर्सबर्ग संधि (घ) वार्सा संधि

5.5 सीमापार आतंकवाद

11 सितंबर, 2001 को अमेरिका में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हुए हमलों ने अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद की ओर सबका ध्यान खींचा था। इस तरह के आतंकवाद को सीमापार आतंकवाद के रूप में भी जाना जाता है। सीमापार से आतंकवादी समूह खुद को

क्षेत्रीय या वैचारिक रूप से किसी विशेष देश या क्षेत्र तक सीमित नहीं रखते हैं। वे वैश्विक स्वरूप के होते हैं, और एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से धन, व्यक्ति और सामान भेजते रहते हैं।

टिप्पणी

सीमापार आतंकवाद : तात्पर्य और लक्षण

कोई ऐसी गतिविधि जिसमें हिंसक कार्य शामिल होता है और जिसे किसी भी रूप में असामाजिक माना जाता है वह आतंकवाद की गतिविधि की विचार-सीमा में आती है। अगर किसी देश की सीमाओं के पार, कोई आपराधिक उल्लंघन किया जाता है, तो वह वैश्विक या अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद कहलाता है।

वैश्विक स्तर पर होनी वाली हिंसा और विभिन्न प्रकार की संभावित दुर्घटनाओं के रहते, वैश्विक संदर्भ में आतंकवाद को परिभाषित करना दुष्कर है। जिसको कोई देश आतंकवादी गतिवधि कहता है वह इसमे शामिल दूसरे देश के लिए एक स्वतंत्रता हेतु संघर्ष से अधिक कुछ भी नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, फिलिस्तीन का मुद्दा और स्वाधीनता हेतु उसका अधिकार संपूर्ण फिलिस्तीन के लिए एक पवित्र कार्य है, जबकि इजरायल के लिए यही गतिविधि आतंकवाद कहलाती है। नवीन घटनाक्रम में, उप-समूहों के द्वारा हिंसक क्रिया-कलापों और आतंकित करने के कार्यों के उद्देश्यों एवं कारणों के आधार पर उन्हे अन्य आपराधिक कार्यों से अलग तथा पृथक किया गया है। यद्यपि, आज आतंकवाद को अक्सर वैश्विकरण के साथ जोड़ा जाता है किन्तु अक्सर इसकी व्यक्तिपरक व्याख्या की जाती है, और उपस्थित तकनीकों ने इसे कई गुणा बढ़ा दिया है।

समकालीन घटनाक्रम

आतंकवाद की व्याख्या समकालीन घटनाक्रम के रूप मे करना दुष्कर है क्योंकि इसे वैश्विकरण के साथ जोड़ा जाता है। यद्यपि, यह मान लेना न्यायोचित नहीं है कि विभिन्न आतंकवादी गतिविधियों के लिए वैश्विकरण की प्रक्रियाएं उत्तरदायी हैं। यह भी कहना सही नहीं है कि एक विश्व घटनाक्रम के रूप में आतंकवाद की सफलता हेतु मार्ग प्रशस्त करने के लिए केवल तकनीक ही जिम्मेदार है। यद्यपि, निस्संदेह तकनीक ने वैश्विक संदर्भ में आतंकवाद की गतिविधियों को बढ़ाने में एक बड़ी भूमिका निभाई है क्योंकि तकनीक ने बड़े रूप में आतंकवादी गतिविधियों की प्रकृति को बदला तथा प्रभावित किया है।

यह देखा गया है कि आतंकवाद उन देशों में अधिक तेजी से फैल रहा है जहां सरकार प्रतिकूल है या विदेशी ताकतों के हाथों में एक कठपुतली मात्र है। यद्यपि, किसी देश के शासक के तौर पर सरकार कार्य करती है, पर वास्तव में, यह देश के हित को सबसे ऊपर नहीं रखती है। यह भी देखा गया है कि समाज में व्यक्तियों के मनों में असंतोष बढ़ने के कारण, समाज के कुछ तबकों के मतों को उन भ्रष्ट सरकारों से अपने मुद्दों के लिए लड़ने के लिए जबरदस्ती बदलावाया जाता है जो लोगों का किसी भी प्रकार से कल्याण करने में असक्षम है।

परिभाषा, पृष्ठभूमि, सिद्धांत और कारण

आतंकवाद को हिंसा के द्वारा पहचाना जाता है। आतंकवादी गतिविधियों के लिए प्रयोग में ली जाने वाली विधियों और युक्तियों के कई रूप होते हैं। आतंकवाद अक्सर केवल

टिप्पणी

भय उत्पन्न करने और हिंसा के उद्देश्य के साथ नागरिकों को लक्ष्य बनाता है। अधिकतर मामलों में, हिंसा का प्रयोग करने के उद्देश्य और मूल कारण के बीच असहमति होती है। ऐतिहासिक रूप से, 'आतंकवाद' शब्द की परिभाषा नागरिकों के विरुद्ध राजकीय हिंसा के रूप में की जाती थी। यद्यपि, सामान्य प्रयोग में, धार्मिक बहिष्कार या अत्याचार, वैचारिक मतभेदों या जाति-विशिष्ट संबंधी मुद्दों जैसे कारणों के लिए बहुत अधिक रक्तपात करने और उन्माद पैदा करने के लिए किसी व्यक्ति या समूह के द्वारा हिंसक तरीकों के प्रयोग के रूप में माना जाता है।

किसी को वास्तव में आतंकवादी बनाने वाले कारकों को निर्धारित करने और किसी को आतंकवादी कहा जा सकना उसका निर्धारण करने के लिए आम सहमति पर पहुंचना दुष्कर है। पारंपरिक वार्तालाप में कई आलोचक, केवल उसी सूरत में आतंकवादी गतिविधियों को वैध मानते हैं जब वे 'न्यायपूर्ण युद्ध' के मानदण्डों से जुड़ी कुछ शर्तों को पूरा करती हों। दूसरी ओर, इस मुद्दे पर यथार्थवादियों का एक भिन्न मत है। वे इसपर बल देते हैं कि वह आतंकवादी नहीं होता है जिसे हिंसा के रूप में बल प्रयोग करने का अधिकार होता है, बल्कि यह अधिकार केवल देश को होता है कि जब आवश्यक हो वह बल प्रयोग कर सके।

पृष्ठभूमि

संपूर्ण इतिहास में, मुनष्यों को साथी मनुष्यों के मन में भय बिठाने और उनको व्यवहारात्मक बदलाव हेतु विवश करने के लिए जाना जाता रहा है। आज, आतंकवाद को आधुनिक राज्य के संदर्भ के भीतर देखा जाता है। वास्तव में, संभवतया वह किसी नेता की मृत्यु के द्वारा नष्ट नहीं किए जा सकने में सक्षम एक नौकरशाही राज्य का उदय था, जिसके कारण चिंता के वातावरण का निर्माण करने और सरकार के आत्म-विश्वास को झटका देने के लिए आतंकवादियों ने अपने लक्ष्यों के दायरे को बढ़ाया। यह वह वास्तविकता है जिसके चारों ओर पिछले सौ वर्षों में आतंकवाद घूमता रहा है। इस आतंकवाद में हत्याएं, अपहरण और आत्मघाती बमबारियां शामिल हैं। 'टेररिज्म' शब्द के प्रयोग को प्रथम बार 1795 में रिकॉर्ड किया गया था। फ्रेंच सरकार ने 'रेन ऑ टेरर' शब्द का प्रयोग किया। सन् 1866 में आयरलैंड के संदर्भ में और 1833 में रूस के संदर्भ में गैर-सरकारी गतिविधियों को चिन्हित करने के लिए 'टेररिस्ट' शब्द का प्रयोग किया गया।

आतंकवाद के सिद्धांत

राजनीतिक संवादों से संबंधित सिद्धांत बमुश्किल स्पष्टता के प्रारूप हैं, किन्तु इस पर एक आम सहमति है कि आतंकवाद में क्या शामिल होता है। इसे स्पष्ट करने के लिए, अधिकारिक संयुक्त राष्ट्र कोड का वर्णन यहां किया जाता है:

'आतंकवादी गतिविधि' का तात्पर्य ऐसी गतिविधि है-(अ) जिसमें एक ऐसा हिंसक कार्य या ऐसा मानव जीवन के लिए खतरनाक कार्य शामिल होता है जोकि संयुक्त राष्ट्र या किसी देश के अपराध संबंधी कानूनों का उल्लंघन है या जोकि अगर संयुक्त राष्ट्र के या किसी देश के क्षेत्रधिकार के भीतर किए जाने पर एक आपराधिक उल्लंघन होगा, और (ब) जो इरादतन की गई हुई प्रतीत होती है: (i) ताकि किसी देश के नागरिकों को डराया या दबाया जा सके, (ii) ताकि डराकर या दबाकर किसी सरकार की नीति को

प्रभावित किया जा सके, या (iii) ताकि हत्या या अपहरण के द्वारा किसी सरकार के व्यवहार को प्रभावित किया जा सके।

इस सिद्धांत की अपनी सीमाएं हैं:

टिप्पणी

- अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद या अतिक्रमण के बीच की सीमा धुंधली है। अगर वे किसी अंतरराष्ट्रीय हिंसा की गतिविधि के मामले में अतिक्रमण के आरोप को नकारते हैं, तो हम संयुक्त राष्ट्र को संदेह का लाभ प्रदान कर सकते हैं, हम इसे आतंकवाद के छोटे अपराध के अन्तर्गत मानेंगे।
- आतंकवाद और प्रति-हिंसा या वैध प्रतिरोध के बीच भेद स्पष्ट नहीं है।

आतंकवाद का मुकाबला करने के संबंध में अमेरिकी सेना का मैन्युअल 'आतंकवाद' को निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अंतरराष्ट्रीय और इरादतन या सोच-समझकर की गई हिंसा या उत्पन्न किए गए हिंसा के भय के रूप में परिभाषित करता है:

- राजनीतिक
- धार्मिक
- वैचारिक

इसे डराकर, दबाकर या मन में भय बिठाकर प्राप्त किया जा सकता है। आतंकवाद पर परिचर्चा करने के बजाय, एक प्रसिद्ध आतंकशास्त्री रोबर्ट कुप्परमेन, पेंटागन के द्वारा आरंभ किए गए एक अध्ययन में लॉ इन्टेन्सिटी कॉनफ्लिक्ट (एलआईसी) करता है। उसके विवरण के साथ-साथ वास्तविक क्रिया-कलाप यह संकेत करता है तथा इसकी पुष्टि करता है कि एलआईसी 'जवाबी कार्यवाही' के समान है, जो कि देश के द्वारा निर्देशित अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के लिए एक नम्र उक्ति है। अन्य शब्दों में, वह आतंकवाद है जो बल प्रयोग पर निर्भर करता है और युद्ध या अतिक्रमण के अपराध के स्तर तक नहीं पहुंचता है।

इंटरनेशनल सेन्टर फॉर टेररिज्म स्टडीज, पोटोमेक इंस्टीट्यूट फॉर पॉलिसी स्टडीज के निदेशक प्राध्यापक योनाह एलेग्जेन्डर, यह महसूस करते हैं कि देश के द्वारा प्रायोजित आतंकवाद अपने कार्यों के लिए किसी के प्रति उत्तरदायी ठहराये जाने बिना उनके लिए जब युद्ध के लिए जाना सुविधाजनक हो तब देशों के द्वारा चलाया जाने वाला एक कम-प्रबलता का संघर्ष होता है। एलेग्जेन्डर का ध्यान क्रेमलिन षड्यंत्र तक सीमित है जो पीएलओ प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जैसे 'प्रतिनिधि समूहों' के द्वारा पश्चिम को अस्थिर करता है। उनके अनुसार पीएलओ सोवियत संघ में प्राप्त किए गए विशेष प्रशिक्षण 'निकरागुआ' को पारित करके मोस्को के साथ विशेष संबंध बनाने में सफल रहा था।

सीमापार आतंकवाद के कारण

इसी प्रकार, साम्राज्यवादी नेता जनता को कहते हैं कि उन पर हमला किया जा रहा है तथा वे हमला करने वालों के नाम भी बताते हैं। फिर वे 'लोकतंत्र' की खातिर लोगों को युद्ध के लिए उकसाते हैं या इसलिए उकसाते हैं ताकि उनके जीतने से पहले वे उनपर हावी हो सकें। बड़े तेल निवेशकों को राजनीतिक शक्ति प्राप्त करते हुए तथा तेल-समृद्ध देशों पर हमला करते हुए देखने के बाद भी कुछ लोग भोले-भाले तरीके से इस प्रचार पर भरोसा करते हैं। इसलिए, पूंजीवाद साम्राज्यवाद की मांग करता है तथा, बदले में, युद्ध

की मांग करता है। तुलनात्मक रूप से कमजोर पूंजीवादी अपने हितों को पूरा करने के लिए आतंकवाद का सहारा लेते हैं। केवल एक ऐसा वैश्विक समाजवादी आंदोलन जो दुनिया के कामगार वर्ग के लोगों के हितों का एकीकरण करना चाहता है वही युद्ध एवं आतंकवाद को समाप्त कर सकता है।

सीमापार आतंकवाद के प्रकार

कानून-निर्माताओं, सुरक्षा व्यवसायियों और विद्वानों के द्वारा विभिन्न प्रकार के आतंकवाद की परिभाषा की गई है। किसी हमलावर के द्वारा प्रयोग (उदाहरण के लिए, जैविक) में लिए जाने वाले हमलों एवं ऐजेन्टों के प्रकार के अनुसार या वे किसकी रक्षा करने का प्रयास कर रहे हैं (पर्यावरणीय आतंकवाद के समान) उसके आधार पर प्रकारों में भिन्नता होती है। एक दशक के बाद जिसमें स्वदेशी एवं अंतरराष्ट्रीय दोनों समूह पनपे, संयुक्त राष्ट्र में अनुसंधानकर्ता 1970 के दशक में आतंकवाद के विभिन्न प्रकारों भेद करने लगे। उस समय तक, अपनी मांगों को बलपूर्वक कहने के लिए आधुनिक समूहों ने अपहरण, बम गिराने/राजनीतिक अपहरण और हत्याओं जैसी तकनीकों को प्रयोग करने लगे और पहली बार, राजनीतिज्ञों, कानून निर्माताओं, कानून क्रियान्वयन और अनुसंधानकर्ताओं के दृष्टिकोण में पश्चिमी लोकतंत्रों के लिए वास्तविक खतरे के रूप में प्रतीत हुए। आतंकवाद का किस प्रकार सामना किया जाए तथा इसे किस प्रकार रोका जाए यह समझने के बड़े प्रयास के भाग के रूप में आतंकवाद के विभिन्न तरीकों में भेद करने लगे। यहां, विभिन्न प्रकार के आतंकवाद की एक विस्तृत सूची प्रस्तुत की गई है।

1. स्टेट टेररिज्म

आतंकवाद की कई परिभाषाएं इसे गैर-राजकीय लोगों के द्वारा क्रियान्वित और कार्यान्वित किए गए कार्य तक सीमित करती हैं। किन्तु यह तर्क भी दिया जा सकता है कि देश भी आतंकवादी हो सकते हैं और हुए हैं। देश नागरिकों को आतंकित करने और राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, बिना युद्ध घोषित किए, बल का प्रयोग कर सकते हैं या बल प्रयोग करने का भय दिखा सकते हैं। कई बार यह तर्क भी दिया गया है कि देश कई बार छद्म तरीके से, अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद में भागीदारी करते हैं। संयुक्त राष्ट्र ईरान को आतंकवाद का सबसे अनुकूल प्रायोजक के रूप में मानता है क्योंकि ईरान अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हिजबुल जैसे गुटों को हथियार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, 1980 के दशक में निकरागुआ विरोधियों के गुप्त प्रयोजक के रूप में संयुक्त राष्ट्र को भी आतंकवाद का प्रायोजक कहा गया है।

2. जैविक-आतंकवाद

जैविक-आतंकवाद का तात्पर्य है किसी राजनीतिक या अन्य कारण के नाम पर, नागरिकों को हानि पहुंचाने या आतंकित करने के लिए इरादतन विषैले जैविक घटकों को छोड़ना। यूएस सेन्टर फॉर डिजीज कन्ट्रोल ने विभिन्न प्रकार के विषाणुओं, जीवाणुओं और विषैले तत्वों को वर्गीकृत किया है जिनका प्रयोग जैविक आतंकवादी हमले के लिए किया जा सकता है। A वर्ग के जैविक रोग वे हैं जिनके कारण अधिकतम हानि होने की संभावना होती है। इनमे शामिल हैं:

टिप्पणी

- एन्थ्रेक्स (बेसिलस एन्थेसिस)
- बोटुलिजम (क्लोस्ट्रीडियम बोटुलिनम टोक्सिन)
- प्लैग (येर्सिनिया पेस्टिस)
- चेचक (स्मॉल पोक्स, वेरिओला मेजर)
- टुलारेमिया (त्रंसिसेला टुलारेन्सिस)
- इबोला विषाणु या मारबग विषाणु के कारण होने वाला, रक्तस्रावी बुखार (हेमरैजिक फीवर)

3. सायबर आतंकवाद

सायबर आतंकवादी नागरिकों पर हमला करने के लिए सूचना तकनीक का प्रयोग करते हैं और सूचना तकनीक के माध्यम से उनके कारण के प्रति ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करते हैं। इसका यह तात्पर्य हो सकता है कि वे गुप्त रूप से पारंपरिक हमला करने के लिए कम्प्यूटर या दूरसंचार जैसे साधनों के रूप में सूचना तकनीक का प्रयोग करते हैं। अधिकतर, सायबर आतंकवाद का तात्पर्य इस तरीके से स्वयं सूचना तकनीक पर ही हमला होता है कि जिससे मूल रूप से नेटवर्क सेवाएं बाधित हो जाएं। उदाहरण के लिए, सायबर आतंकवादी आपातकालीन तंत्र के नेटवर्क को बंद करते हैं या उन नेटवर्कों को हैक कर लेते हैं जिनपर संवेदनशील वित्तीय सूचना होती है। यद्यपि, सायबर आतंकवादियों के द्वारा उत्पन्न किए जाने वाले खतरे की सीमा पर व्यापक रूप से असहमति है।

4. ईको-टेररिज्म

ईको-टेररिज्म पर्यावरणवाद के हितो के संबंध में की जाने वाली हिंसा की व्यख्या करने के लिए कुछ समय पूर्व उछाला गया शब्द है। सामान्य रूप से, पर्यावरणीय चरमपंथी उद्योगों को या जिन्हे वे पशुओं या प्राकृतिक पर्यावरण को हानि पहुंचाता हुआ देखते हैं उनको आर्थिक हानि पहुंचाने के लिए सम्पत्ति को नष्ट करते हैं। इन कारकों में ऊन कम्पनियां, लकड़ियों की कम्पनियां और पशु शोध प्रयोगशालाएं भी शामिल हैं।

5. परमाणु आतंकवाद

परमाणु आतंकवाद का तात्पर्य कई विभिन्न प्रकार के तरीकों से है जिनमे एक आतंकवादी युक्ति के रूप में परमाणु सामग्रियों का प्रयोग किया जा सकता है। इनमे परमाणु केन्द्रों पर हमला करना, परमाणु हथियार खरीदना, परमाणु हथियारों का निर्माण करना या अन्यथा रेडियो-धर्मी पदार्थों को फैलाने के तरीकों की खोज करना शामिल हैं।

6. नारको-टेररिज्म

इस शब्द को 1983 में उछाले जाने के बाद से नारको-टेररिज्म के अनके संकेतार्थ रहे हैं। एक समय इसका तात्पर्य सरकार को प्रभावित करने के लिए या नशीली दवाओं के व्यापार को बंद करने के सरकार के प्रयासों को रोकने हेतु नशीली दवाओं अवैध व्यापारियों के द्वारा प्रयोग की जाने वाली हिंसा होता था। पिछले कई वर्षों से, नार्को-टेररिज्म का प्रयोग उन स्थितियों का संकेत करने के लिए किया जा रहा है जिनमे आतंकवादी गुट अपने कार्यों के लिए धनराशि जुटाने के लिए नशीली दवाओं के अवैध व्यापार को प्रयोग करते हैं।

आतंकवादी गुट और उनके प्रकार

यूएस नेशनल वॉर कॉलेज में युद्धनीति/कूटनीति की प्राधयापक ऑड्रे कर्थ क्रोनिन, ने अपनी पुस्तक 'हाउ टेररिज्म एन्ड्स: अन्डरस्टेन्डिंग द डिक्लाइन एण्ड डिमाइस ऑफ टेररिस्ट केम्पेन्स' में निम्नलिखित विभिन्न प्रकार के आतंकवादी संगठनों या गुटों और उनके व्यापक महत्व की रूपरेखा प्रस्तुत की है:

- वामपंथी आतंकवादी
- दक्षिणपंथी आतंकवादी
- जातीय-राष्ट्रवादी/अलगाववादी आतंकवादी
- धार्मिक आतंकवादी

ये वर्गीकरण उनके प्रोत्साहन के स्रोत पर आधारित हैं। वामपंथी आतंकवाद को साम्यवादी आंदोलन के साथ जोड़ा गया। दक्षिणपंथी आतंकवाद फासिस्टवाद से प्रेरित था। मुख्यतया द्वितीय विश्व युद्ध के तुरंत बाद के वर्षों में पूर्व उपनिवेश को स्वतंत्र करने के बाद अधिकतर जातीय-राष्ट्रवादी/अलगाववादी आतंकवाद का आरंभ हुआ।

आतंकवादी गतिविधियों की वैधता

मार्था क्रेन्शॉ, ने अपनी पुस्तक 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स' में हिंसक आतंकवादी गतिविधियों की वैधता को निर्धारित करने के लिए विश्लेषणात्मक किन्तु व्यक्तिपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, आतंकवाद के प्रति प्रामाणिक दृष्टिकोण को आतंकवाद के आंकलन या मूल्यांकन में एक संवेदनशील मुद्दे का सामना करना पड़ता है, जोकि वैधता है। वामपंथी आतंकवादी राष्ट्र की वैधता को स्वीकार करने से इंकार करते हैं और यह दावा करते हैं कि देश के विरुद्ध हिंसा करना नैतिक रूप से न्यायोचित है। दूसरी ओर, दक्षिणपंथी आतंकवादी विरोधियों की वैधता को नकारते हैं।

आतंकवाद का प्रसार

शब्दाडंबरपूर्ण और राजनीतिक धारणा के मध्य, दक्षिण एशियाई परिदृश्य के घटनाक्रम विभिन्न देशों के वैश्विक नीति सिद्धांतों को प्रकट करने वाली उभरती हुई क्षेत्रीय राजनीति की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। साम्यवाद के पतन के उपरान्त, 'सत्ता के आधिपत्य' की प्रधानता सुनिश्चित प्रतीत हुई। आंग्ल-अमेरिकी क्रूर इरादों का उभार एक भिन्न रूप में आरंभ हुआ। कोई संदेह नहीं कि तब भी इस पृष्ठभूमि में, इतिहास 'घनिष्ठ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संबंधों' को सांझा करने वाले भारत और अफगानिस्तान के संबंधों के बारे में बहुत कुछ कहता है तथा उनके कूटनीतिक संबंधों की जटिलता पर्याप्त रूप से दिखाई देती है।

बहुत पहले से ही, 1990 के दशक में तालिबान का उदय होने तक नई दिल्ली ने काबुल के साथ संबंध बनाने के प्रयास किए और वह सभी सरकारों में 1989 के आक्रमण के बाद क्रेमलिन के द्वारा सहायता प्राप्त और पोषित शासन को सहयोग प्रदान करने में सबसे आगे था। यद्यपि, उसके साथ-साथ, नई दिल्ली ने 1996 में काबुल के तालिबानी शासन का साथ छोड़ दिया, और ऐसा करने के लिए उसके पास हर एक कारण था। यूएस के नेतृत्व में अफगानिस्तान पर हुए आक्रमण के परिणामस्वरूप तब के बाद

से भारत व अफगान के बीच संबंधों में नाटकीय बदलाव आए, और इतिहास एक भिन्न परिप्रेक्ष्य में लिखा गया। यहां से ना केवल भारत ने पूर्ण कूटनीतिक संबंध स्थापित किए, बल्कि उसने स्वयं को अफगानिस्तान के साथ सभी मोर्चों पर स्वयं को शामिल करना आरंभ कर दिया। विशेषज्ञ रेखांकित करते हैं कि यूएस के आक्रमण ने भारत को सबसे अच्छा खोया हुआ मंच प्रदान किया जाकि वह अफगानिस्तान में अपनी उपस्थिति का अहसास करवा सके।

आतंकवाद पर भारत का पक्षः 26/11 के पहले और बाद में

भारत सबसे अनियंत्रित संभव तरीके से आतंकवाद के परिणामों का सामना कर रहा है। 26/11 या मुंबई हमले का मामला उसकी भयानक यादगार है। विशेषज्ञों का मानना है कि भारत और यूएस आतंक का सामना करने के लिए कूटनीतिक साझेदार बन सकते हैं।

क्योंकि, भारत बहुत लंबे समय से सीमापार से आतंकवाद का सामना कर रहा है, और यूएस इसका डटकर मुकाबला कर रहा है, इसलिए इसका कोई कारण नहीं है कि दोनों महत्वपूर्ण गुप्त सूचनाओं को सांझा नहीं कर सकते और रूढ़िवाद और आतंकवाद के बडे खतरे को परास्त नहीं कर सकते हैं। मध्य एशिया में यूएस सेना का संचालन केन्द्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आतंकवाद से जुडा हुआ है, इसलिए भारत नई दिल्ली और वॉशिंगटन में नीति निर्माताओं को स्पष्ट रूप से वर्णित कारणों के लिए वहां उपस्थित सेना को सहयोग करना अत्यावश्यक मानता है। भारत के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह काबुल में करजई सरकार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान करे। तालिबान का पतन दोनों पक्षों के लिए हितकारी रहा है, क्योंकि दोनों किसी भी प्रकार के स्थायी रूढ़िवाद के विरुद्ध हैं। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध एक परिपाटी का आरंभ करके महत्वपूर्ण नतीजा प्राप्त करने वाला व्यापक कदम उठाया है, जिसकी सभी देशों के नागरिकों के लिए चिंता के विषय के रूप में यूएस प्रशंसा करता है। यह एक आम अनुभव है जो समकालीन समाज में दोनों देशों के द्वारा सांझा की जाने वाली पीड़ा और चुनौतियों का सामना करने के निमित्त कठोर मतों को तैयार करने हेतु उनको निकट लाता है।

राष्ट्र मंडलों को नागरिक समाज को विश्वास में लेते हुए स्थितियों की अनिवार्यताओं को पूरा करने और वर्तमान अपराध निवारक कार्य-प्रणाली और कानून क्रियान्वयन संस्थाओं की कमियों को दूर करने हेतु समाधानों को खोजना होगा। यद्यपि लंबे समय से चली आ रही समस्याओं से निपटने के लिए बहुत से कानून हैं, फिर भी जिस प्रकार का रूप इनका हो गया है उसके लिए रूढ़िवाद के अति दुष्ट प्रारूपों को पराजित करने के लिए उसी अनुपातिक स्तर को प्राप्त करने के लिए कानून की आवश्यकता है। भारत सरकार ने पहले ही अपनी चिंता को अभिव्यक्त कर दिया है-'साउथ एशिया इज इन ग्रिप ऑफ फंडामेन्टेलिजम एण्ड कम्युनलिजम'। मध्य एशिया में यूएस की सेना के संबंध में, जब तक वे दो देशों के हितों के लिए काम कर रही हैं, भारत के पास कोई कारण नहीं है कि क्यों वह अमेरिका को समाज के चरमपंथ के विरुद्ध युद्ध लड़ने में सहायता प्रदान न करे। इसलिए, ना केवल भारत के साथ बल्कि सीमापार के संप्रभु राष्ट्रों के बीच भी कार्यवाही योग्य गुप्त सूचना पर अंतरराष्ट्रीय सहयोग के नए आदर्शों को विकसित की अधिक आवश्यकता है।

मनुष्यों के लोकाचारों, उनके मूल्यों और सम्मान की रक्षा हेतु नवीन संस्थानों, तंत्रों, और नई तकनीकों के विकास की आवश्यकता बढ़ रही है। अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के लिए जिम्मेदार आतंकवाद, उसकी उत्पत्ति, पालने-पोसने वाले दिमागों और मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों के साथ अग्रसक्रिय रूप से निपटना पड़ता है। इसमे उनके संचार तंत्रों, वित्तीय संस्थानों और उनके संचालन क्षेत्रों का पता लगाना भी शामिल है। समय की मांग है कि ना केवल अपने लोगों की रक्षा व सुरक्षा के लिए बल्कि देश की प्रणाली की अव्यवस्था का लाभ उठाकर और दुनियाभर के लोगों को बड़ी हानि पहुंचाने से आतंकवाद के खतरे को रोकने के लिए असफल हो रही नागरिक सरकारों, ढहते हुए आधुनिक देशों को संभाला जाए।

इसे सफल बनाने के लिए, आवश्यकता यह है अफगानिस्तान की सीमाओं के आगे जाया जाए। जैसा कि कूटनीतिज्ञ और विश्लेषक मानते हैं कि खतरा केवल अशांत क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह दुनिया के अन्य हिस्सों में भी पहुंच सकता है। और निश्चित रूप से, पाकिस्तान को रूढ़िवाद के बढ़ते हुए खतरे को समाप्त करने के लिए बहुत कुछ करना है। आतंकवाद चिरस्थायी पीड़ित होते हुए भारत, उस हर कदम को नैतिक तौर पर और अन्यथा समर्थन प्रदान करने के लिए बाध्य है जिसे यूएस उठाता है। इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि, भारत प्रत्यक्ष तौर पर इसका पीड़ित हैं। यह स्पष्टता की निकटता उपजाती है, सबसे पहले रक्षा विशेषज्ञ यह पा सकते हैं कि तालिबान और अल-कायदा की खोज और अफगानिस्तान में स्थिरता और सुरक्षा का लक्ष्य केवल तब ही प्राप्त कर पाना संभव होगा जब पाकिस्तान किसी भी देश के विरुद्ध घुसपैठ और सीमा-पार आतंकवाद को समाप्त करने के लिए ठोस कदम उठाने हेतु अंतरराष्ट्रीय समुदाय को बिना शर्त समर्थन प्रदान करता है। पाकिस्तान को यह समझना चाहिए कि रूढ़िवाद, प्रगतिविरोध और आतंकवाद का खतरा उसकी विदेश नीति के उद्देश्यों की नहीं बल्कि उसके स्वयं के विपरीत उद्देश्यों की ही पूर्ति कर सकता है।

एक वैश्विक शक्ति के रूप में अमेरिका की दुनिया के इस हिस्से में प्रभावशाली उपस्थिति है। आशा से कहीं अधिक समय तक सैन्य शक्ति इस क्षेत्र में बनी रहने वाली है। ओबामा प्रशासन इस क्षेत्र में नीतियों को अमेरिका के द्वारा जारी रखे जाने को केवल इसलिए समर्थन नहीं प्रदान करता है कि उसे केवल आतंकवाद से लड़ना है, बल्कि मध्य एशियाई देशों में प्रचुर मात्र में प्राकृतिक संसाधनों की उपस्थिति भी एक कारण है। किसी भी कारण से अधिक, यूएस अपनी कूटनीतिक गहराई को बनाए रखने के लिए और अपने साम्राज्य की अथाह शक्ति को खुले तौर पर या चुपचाप चुनौती देने की परिकल्पना करने वाले किन्हीं आतंकवादियों या आतंकवादी गुटों या देशों से प्रत्यक्ष रूप से निपटने के लिए अफगानिस्तान में बने रहने का इरादा रखता है। आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका के द्वारा घोषित युद्ध का कुछ भी परिणाम हो सकता है, भू-कूटनीतिक विशेषज्ञों की यह धारणा है कि खतरे के साये से घिरे देश के तालिबानीकरण का सामना करने से अधिक की लालसा रखता है। क्या अमेरिका केवल क्षेत्र के संकट का समाधान करने या डराने में रुचि रखता है और इराक व अफगानिस्तान की तरह पाकिस्तान को पाषाण-काल में भेजना चाहता है, यह देखना चिन्तनशील होगा, रक्षा विशेषज्ञ भ्रमित हैं कि यूएस कोनसा कदम

उठाना चाहता है, इसलिए आतंकवाद से लड़ने और एक कूटनीतिक साझेदार के रूप में भारत के मुद्दे का समर्थन करने के बारे में अमेरिका की सच्चाई का उत्तर केवल समय ही दे सकता है।

आतंकवाद पर अमेरिका के द्वारा चलाए जा रहे युद्ध के लिए कई छोटे देशों के साथ कूटनीतिक साझेदारी की आवश्यकता है। यद्यपि छोटे देशों के नीति संबंधी हेतु को अक्सर नजरंदाज कर दिया जाता है। किरगिस्तान इसका एक रोचक मामला हैं क्योंकि इसने अफगानिस्तान में अमेरिका के नेतृत्व में सैन्य अभियान को हवाई अड्डा प्रदान किया किन्तु उसने रूस को कोई भी इसी प्रकार की सुविधा प्रदान नहीं की। अतः, छोटे देश किरगिस्तान के हेतु का उसके दो बड़ी शक्तियों के साथ काम करने कारण आंकलन किया जा रहा है। यह लेख यह तर्क पेश करता है कि छोटे देश का हेतु इस पर निर्भर करता है कि जिस विश्व में वह रह रहा है उसके बारे में वह किस प्रकार अनुभव करता है। अगर छोटा देश एक यथार्थवादी दुनिया की अनुभूति करता है, तो उसका व्यवहार यथार्थवादी दुनिया में छोटे देशों की क्षमता के अनुरूप है।

यह बड़ी शक्तियों के 'बैंडवेगन' प्रभाव या आंतरिक खतरों के विरुद्ध बड़ी शक्तियों के साथ संतुलन बिठाने की ओर ले जाता है। अगर छोटा देश एक जटिल परस्पर-निर्भर दुनिया को देखता है, तो फिर वह उस शक्ति को उपयोग करता है जो उसके पास है, जैसे कि हवाई अड्डों की सुविधा प्रदान करना, तथा अपनी स्थिति के अनुसार अन्य लाभ प्राप्त करना। छोटे देशों की धारणाओं का निरीक्षण छोटे देशों के साथ कूटनीतियों को प्रतिपादित करते हुए यूएस नीति निर्माताओं को वास्तविक लक्ष्यों को तैयार करने हेतु सहायता प्रदान करता है। यह डेटा सुझाता है कि अमेरिका से अवसर का लाभ उठाकर किसी प्रकार के अल्पकालिक लाभों प्राप्त करते हुए रूस के साथ अपने संबंधों को मजबूत बनाने की नीतियों को जारी रखते हुए किरगिस्तान स्वयं को एक औसत दर्जे के यथार्थवादी विश्व में स्थित मानता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. 'हाउ टेररिज्म एंड्स' किसकी पुस्तक है?

   (क) ऑड्रे कर्थ क्रोनिन (ख) जॉन लेविन

   (ग) थॉमस जैफरमैन (घ) मार्गोन्थो

8. आतंकवादी संगठनों के कितने प्रकार माने गए हैं?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)

4. (घ)
5. (क)
6. (ख)
7. (क)
8. (ग)

5.7 सारांश

मानवाधिकार एक ऐसी अवधारणा है जो मानव इतिहास में लगातार विकसित होती रही है। उन्हें कानूनों, परंपराओं और धर्मों के साथ हर युग में जोड़ा गया। कानून की संहिता का सबसे पहला उदाहरण हम्मूराबी का लेख पट था। उस लेख पट को सुमेर के राजा हम्मूराबी ने करीब 4000 साल पहले बनाया था। इस प्रकार की मिसाल और कानूनी रूप से बाध्यकारी दस्तावेज लोगों को मनमाने ढंग से सताए जाने और सज़ा दिए जाने से बचाते हैं।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का ऐलान सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए एक आम मापदंड के तौर पर करती है जिसका नतीजा यह होगा कि सभी व्यक्ति तथा समाज के सभी अंग, इस घोषणा को सदैव ध्यान में रखकर, शिक्षा और ज्ञान से इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं को हासिल करने का प्रयास करेंगे तथा प्रगतिशील उपायों से, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय उपायों से, उन्हें सार्वभौमिक और प्रभावी मान्यता दिलाने के लिए, सदस्य राष्ट्रों और अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले लोगों, दोनों स्तरों पर जोर-शोर से प्रयत्न करेंगे।

बीसवीं सदी में इस बात को लेकर जागरूकता फैलनी शुरू हुई कि पृथ्वी के वायुमंडल में जमा कार्बन डाईऑक्साइड से ग्रीनहाउस प्रभाव पैदा हो सकता है और इस ग्रह का तापमान बढ़ सकता है। इसके बाद से ही पर्यावरणीय आंदोलन धीरे-धीरे बढ़ते जा रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी के मध्य तक, यह स्पष्ट हो गया कि इंसानों के कामों से नुकसानदायक गैसों की सघनता बढ़ती जा रही है, जिससे ग्लोबल वॉर्मिंग की प्रक्रिया तेज हो रही है। अब तकरीबन सभी वैज्ञानिक सहमत है कि हमें इस प्रक्रिया को रोकना चाहिए और इसे पलटना चाहिए-वरना हमें प्राकृतिक आपदाओं की विनाशकारी बाढ़ का सामना करना पड़ेगा जो कि धरती पर हमारे परिचित जीवन को बदल देगी।

शस्त्र नियंत्रण में वे सभी प्रयास शामिल हैं जो शस्त्र दौड़ में कमी करके युद्ध की संभावनाओं को कम करते हैं या इसके क्षेत्र को सीमित करते हैं। शस्त्र नियंत्रण से निशस्त्रीकरण का क्षेत्र ज्यादा व्यापक है। इसमें भविष्य में हथियारों का नियंत्रण भी शामिल है।

कोई ऐसी गतिविधि जिसमें हिंसक कार्य शामिल होता है और जिसे किसी भी रूप में असामाजिक माना जाता है वह आतंकवाद की गतिविधि की विचार-सीमा में आती है। अगर किसी देश की सीमाओं के पार, कोई आपराधिक उल्लंघन किया जाता है, तो वह वैश्विक या अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद कहलाता है।

टिप्पणी

5.8 मुख्य शब्दावली

- **यू.डी.एच.आर. (UDHR) :** यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स।
- **मेग्ना कार्टा :** इंग्लैंड का एक कानूनी परिपत्र।
- **प्रोटोकॉल :** नवाचार, संलेख, मूल लिपि।
- **सीमापार :** किसी क्षेत्र विशेष की सीमा-रेखा का उल्लंघन।

5.9 स्व-मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. मानवाधिकारों के वैश्वीकरण का क्या अर्थ है? समझाइए।
2. निशस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण में मूलभूत अंतर क्या है?
3. ओजोन क्षरण क्या होता है? स्पष्ट कीजिए।
4. मरुस्थलीकरण से आप क्या समझते हैं? बताइए।
5. साइबर आतंकवाद का क्या अर्थ है? समझाइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की समीक्षा कीजिए।
2. स्टॉकहोम सम्मेलन, 1972 की महत्ता पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में किस प्रकार प्रासंगिक है?
3. निशस्त्रीकरण के अर्थ, प्रकार एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. रियो सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रस्तावित सिद्धांतों का विवेचन कीजिए।
5. सीमापार आतंकवाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Khanna, V. N. and Leslie K. Kumar. 2018. *Foreign Policy of India*, 7th Edition. New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Ganguly, Sumit. 2011. *India's Foreign Policy.* New Delhi: Oxford University Press.

Reddy, K. Raja. 2012. *Foreign Policy of India and Asia-Pacific.* New Delhi: New Century Publications.

Balakrishan, T.K. 2010. *Foreign Policy of India: Problems and Paradoxes*. New Delhi: Mohini Publishers and Distributors.

Muni, S.D. 2009. *India's Foreign Policy: The Democracy Dimension*. Foundation Books.